मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-काव्य में
रूप-सौन्दर्य

मध्यकालीन

हिन्दी कृष्ण-काव्य में रूप-सौन्दर्य

डॉ० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल
एम ए (हिन्दी, संस्कृत) पी एच डी,
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
पी० जी०, डी० ए० वी० कॉलेज
(दिल्ली-विश्वविद्यालय)
पहाडगंज, नई दिल्ली-५५

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चौरडी का रास्ता, जयपुर-३

प्रकाशक बोहरा प्रकाशन
चौरड़ी का रास्ता जयपुर-३

आवरण शिल्पी श्री प्रेमचन्द गोस्वामी

मूल्य पच्चीस रुपये

मुद्रक स्वदेश प्रिन्टर्स
तेलीपाड़ा चौड़ा रास्ता,
जयपुर-३

चिरसंगिनी

पुष्पलता अग्रवाल

को

सप्रेम समर्पित

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

वासना रूप मे स्थित मानव के सस्कार अपनी भावनाओ एव रुचियो के अनुसार विषया की ओर प्रवृत्त होते हैं। जगत के नाम और रूप युक्त पदार्थों से सम्बन्ध स्थापित होने पर उनसे आनन्द का अनुभव होता है। इस सम्बन्ध की सघनता अथवा न्यूनता के आधार पर ही आनन्द का निर्धारण होता है। आनन्द के घनीभूत होने पर उसम आकर्षण की महाप्राणता आ जाती है और रसानुभूति अलौकिक भूमि पर होने लगती है। मानव-बुद्धि की विकल्पावस्था समाप्त हो जाती है। वह रस की परम चवणा मे लीन हो जाता है। यहाँ लौकिक धरातल की स्थूलता महत्वहीन हो जाती है तथा अलौकिकता की परिधि म कल्पना-वृत्ति सचेष्ट रहती है। इससे प्राप्त आनन्द काव्य की भूमि मे रस का आनन्द है। दशन मे वही आत्मानन्द है और आध्यात्मिक क्षेत्र म परम सत्ता के लाभ का आनन्द भी है। काव्यानन्द का मूलकारण रसानुभूति है। रसा म शृङ्गार की रसराजता सवमान्य और व्यापक है। इसका प्रभाव चर अचर सभी म दीख पड़ता है। पशु-पक्षियो से आरम्भ कर प्राणियो मे उच्चतम सृष्टि मानव तक मे इसकी महत्ता सवमान्य रही है। मानव मे रस की यह अनुभूत उसम स्थित, सस्कारगत कुछ विशेष स्थायी भावो के माध्यम से होती है। इनमें रति मूलक भाव की प्रधानता है। रति के प्रधान माध्यम नायक और नायिका है। इनके पारस्परिक आकर्षण से ही मगलमय काम का आविर्भाव होता है। इस आकर्षण के मूल म आलम्बन और आश्रय का रूप सौन्दय काय करता रहता है। अत रूप और सौदय ही शृङ्गार रस की अनुभूति कराने क प्रमुख साधन हैं। इसी रूप-सौदय को आधार मानकर यहाँ कृष्ण काव्य मे उसकी अभिव्यक्ति तथा माध्यमो का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

रूप और सौदय जगत् की सभी वस्तुओ मे रहता है। इसकी व्यापकता अनादि अनन्त सम्पत्ति के रूप मे विश्व म अपनी महत्ता का उद्घोष करती है। सम्पूर्ण जगत् ही नाम रूपात्मक है। रूप के साथ सौदय की सत्ता जड-जगत से लेकर चेतन जगत् तक सब कही वतमान है। सागर की उत्ताल तरगो, गिरिराज के उत्तुङ्ग शिखरो, भयावह चक्रवातो और गहन कान्तार की...

गुफाग्रो आदि मे यदि सौन्दय का उदात्त रूप है तो बालक की निश्छल मृदु मुस्कान और क्रियाओ, रमणी के मधुर हाव भावो, प्रकृति की कोमल कलि काओ आदि मे *रमणीयता, सुगन्ध और वर्णाभा का अनुपम और आकर्षक* सौन्दय वतमान है। कही ऋजुता एव रूप का भौतिक आकषण है और कहीं महाप्राणता का विशाल आकषण मानव को अपनी लघुता का आभास कराता रहता है। इसी लघुता और महाप्राणता के बीच मानव का मन सौन्दर्यान्वेषी होकर रूप रस का आस्वादन करता है और दूसरो के लिये भी इसे सुलभ बना देता है। वह रूप से उत्पन्न अपनी निजी प्रतिक्रियाओ को कल्पना के योग और अभिव्यञ्जना कौशल से प्रेषणीय बनाकर उस भाव को सामान्य धरातल पर ले आने मे सफल होता है। यह काय मुख्यत काव्य के क्षेत्र म आसानी से सम्पन्न हो जाता है। इससे सदा से काव्य म रूप सौन्दय की महत्ता रही है। इसी महत्ता को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत प्रबन्ध का नामकरण किया गया है।

नामकरण

प्रस्तुत प्रबन्ध का नाम 'मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य म रूप सौन्दय की अभिव्यञ्जना है। प्रबन्ध का सम्बन्ध हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल और रीतिकाल की परिधि म आने वाली श्रीकृष्ण विषयक रचनाओ से है। ऐसी रचनाओ म कवियो की दृष्टि श्रीकृष्ण के अनन्त असीम और अनिवचनीय रूप-सौन्दय के उद्घाटन मे लगी हुई है। भक्तिकाल मे अपने आराध्य श्रीकृष्ण के रूप की अतिशयता का वणन सभी कवियो ने किया है। इन कवियो का अलौकिक आराध्य सर्वाङ्ग सुन्दर और सवश्रेष्ठ है। इसके विपरीत रीतिकाल मे श्रीकृष्ण के लौकिक एव मानवीय रूप सौन्दय की अभिव्यञ्जना होने लगी थी। दोनो की दृष्टिभेद के परिणाम से उत्पन्न वणन भेद को लक्षित कराना प्रबन्ध का उद्देश्य है।

'रूप मे आकारगत शोभा का महत्त्व रहता है और सौन्दय उस आकार म स्थित छवि का बोधक है। रूप सौन्दय का अभिप्राय शृङ्गार रस के आल म्बन के शारीरिक आकषण से है। इससे प्रस्तुत प्रबन्ध म मानवीय रूप सौन्दय के शारीरिक पक्ष को ही विशेष महत्त्व दिया गया है और आकषण को बढाने वाले सभी साधनो एव उपकरणो को भी इसी के अन्तगत समेट लिया गया है।

'अभिव्यञ्जना शब्द का प्रयोग यहाँ सामान्यायक ही है। उससे अभि व्यक्ति या वणन का ही अभिप्राय है अभिव्यक्ति शैली का नहीं। रूप तथा सौन्दय का सम्बन्ध जीव-जगत् से है और उसी सीमा तक वह हम भी अभीष्ट

है। उसके प्रस्तुतीकरण के कौशल की यहाँ अपेक्षा नहीं है। यही कारण है कि कवि-कौशल के शिल्पात्मक रूपों का वर्णन यहाँ अलग अध्याय में न करके वर्ण्य विषय के सन्दर्भ में यत्र-तत्र आवश्यक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

शोध का कारण —

हिन्दी-साहित्य में रूप सौन्दर्य सम्बन्धी सामग्री का नितान्त अभाव तो नहीं है परन्तु जितनी सामग्री उपलब्ध है उनमें विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का अभाव सा ही है। विभिन्न शोध ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरी हुई कुछ सामग्री मिल जाती है, परन्तु इस सामग्री का समुचित विश्लेषण एवं विवेचन नहीं हो सका है। इससे रूप सौन्दर्य की वास्तविक भावना का विकास शृङ्खलाबद्ध रूप में प्रस्तुत नहीं हो सका है। काल विशेष को आधार लेकर डा० रामेश्वर खण्डेलवाल और डा० बच्चनसिंह ने अपना अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। डा० खण्डेलवाल ने 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य' नामक प्रबन्ध लिखा है। इसमें उन्होंने प्रेम और सौन्दर्य को शील संयम तथा शालीनता प्रदान करके उसका विवेचन किया है। उन्होंने लिखा है कि 'प्रेम और सौन्दर्य की मूल भावना को अस्वाभाविक जीवन दृष्टियों से मुक्त कराकर तथा शुद्ध मानवीय परिवेश में प्रतिष्ठित कर उसे एक सांस्कृतिक प्राण प्रदान करना मेरा केन्द्रीय अध्यवसाय रहा है।' उनके मत से प्रेम और सौन्दर्य दोनों ही गंभीर, उज्ज्वल और उदात्त अनुभूतियाँ हैं और इन्हीं का स्पष्टीकरण उनका प्रमुख ध्येय है। डा० बच्चनसिंह ने रीतिकाव्य में वर्णित प्रेम को ही अपना प्रधान विवेच्य विषय बनाया है। स्वच्छन्दधारा का उन्मुक्त और एकनिष्ठ प्रेम उनकी दृष्टि में गौण हैं। इसीमें उन्होंने प्रेम वर्णन प्रसंग में रूप का यत्किञ्चित् संकेत मात्र कर दिया है। अन्य स्थलों पर भी रूप सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों का प्राय अभाव सा ही है। उसी अभाव की पूर्ति के लिये प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप रेखा तैयार कर मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य को रूप सौन्दर्य विवेचन का आधार बनाया गया है।

इस सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि विषय की विशदता के लिए यत्र-तत्र कृष्णेतर काव्यों से भी पंक्तियाँ उद्धृत करके प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप रेखा—

प्रबन्ध की सम्पूर्ण सामग्री को निम्नलिखित अध्यायों में विभक्त किया गया है —

(१) पूर्व पीठिका।
(२) रूप और सौन्दर्य-स्वरूप निवचन।
(३) रूप और सौन्दर्य-अभिव्यक्ति निवचन।
(४) भक्तिकाल में रूप सौन्दर्य।
(५) रीतिकाल में रूप सौन्दर्य।
(६) उपसंहार।

इनमें पूर्व पीठिका के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति का संक्षिप्त विकास दिया गया है। विकास की इस भूमिका पर प्रस्तुत विषय का विवेचन सरल हो गया है।

दूसरे प्रकरण में रूप और सौन्दर्य के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है। इसमें रूप और सौन्दर्य सम्बन्धी भारतीय विचारों का स्पष्टीकरण हुआ है। सौन्दर्यानुभूति की परम्परा को देते हुए सौन्दर्य के तत्त्व व्युत्पत्ति, अर्थ, अन्य समानार्थक शब्द तथा भारतीय मतों का विवेचन हुआ है। यहीं पर सौन्दर्य और कुरूपता तथा सुन्दर और उदात्त के सम्बन्धों को स्पष्ट किया गया है। इसमें विचारकों की परिभाषाओं को देते हुए रूप और सौन्दर्य के सूक्ष्म भेद पर विचार किया गया है। सौन्दर्य को आत्मगत मानकर उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा की गई है। भारतीय दृष्टि की आध्यात्मिकता के कारण आत्मा की सत्ता सर्वोपरि रूप में स्वीकृत है। यही आधारभूत तत्त्व है। सौन्दर्य के इस आत्मतत्त्व के साथ वस्तुनिष्ठ मान्यता का विवेचन वस्तुपरक दृष्टिकोण से हुआ है। इस प्रकार आत्मपरक और वस्तुपरक व्याख्याओं को प्रस्तुत करके समन्वयवादी मध्यम मार्ग को अपनाया गया है। इसमें रूप और सौन्दर्य के स्वरूप निर्धारण में दोनों ही विचारों का अपने विषय के अनुकूल समर्थन एवं सहयोग लिया गया है। यहीं पर रूप और सौन्दर्य के स्वरूप की शास्त्रीय व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। इसी व्याख्या को आधार मानकर आगे के अध्यायों का विचार किया गया है। अन्त में सौन्दर्य के तत्त्वों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में रूप और सौन्दर्य के अभिव्यञ्जना पक्ष पर विचार हुआ है। सिद्धान्त विवेचन के रूप में इस अध्याय का विशेष महत्त्व है। इस अध्याय में रूप और सौन्दर्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार है। सम्पूर्ण प्रबन्ध में इस अध्याय का वही महत्त्व है जो शरीर में रीढ़ की हड्डी का है। इसी का आधार लेकर प्रबन्ध का सम्पूर्ण कलेवर निर्मित किया गया है। इस अध्याय

मे सौंदय के मुख्यत तीन भेद कलात्मक, मानवीय और तटस्थ (प्राकृतिक) सौंदय-किये गये हैं। इन तीनो म मानवीय सौंदय की मीमासा करना ही इस प्रबंध का प्रमुख ध्येय है। इस सौंदय के विभिन्न स्वरूपो का विवेचन शास्त्रीय आधार पर किया गया है। मानवीय सौंदय म सौंदय के उद्दीपन के मुख्य चार माध्यम स्वीकार किये गये हैं। गुण, चेष्टा, अलङ्कृति और तटस्थ साधनो से आलम्बन के बढे हुए सौंदय का देखने की चेष्टा की गई है। मानवीय सौंदय के बाह्य और आन्तरिक तत्वो का विश्लेषण किया गया है। इन सभी आधारो पर मानवीय सौंदय के विश्लेषण की एव समुचित कसौटी तयार हो जाती है।

चतुथ और पचम अध्यायो म रूप सौंदय का व्यावहारिक पक्ष ग्रहण किया गया है। मध्यकाल के दो भेद भक्तिकाल और रीतिकाल करके दोनो म रूप सौंदय का देखने की चेष्टा की गई है। चतुथ अध्याय मे भक्तिकाल के जिस रूप सौंदय का विवेचन हुआ है उसका आधार तृतीय अध्याय म स्थापित सिद्धात ही है। उन्ही सिद्धान्तो को निकष बनाकर भक्तिकालीन कृष्ण साहित्य का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि इस युग की रचनाओ म रूप सौंदय किन किन रूपो म उपलब्ध है। अपने विचारो की पुष्टि मे भक्त कवियो की रचनाओ म स पुष्कल उदाहरण देते हुए विषय विश्लेषण एव विवेचन को ग्राह्य बनाया गया है। मुख्यत बल्लभ सम्प्रदाय के अष्ट छाप के कवियो तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेक कवियो की रचनाओ म से उदाहरण दिये गये है। इन दोनो सम्प्रदायो के रूप सौंदय निरूपण म प्रमुख भेद यह है कि प्रथम मे श्रीकृष्ण के रूप-सौंदय की महत्ता और द्वितीय म प्रधान पद राधा को प्राप्त है, जिसे रसेश्वरी मानकर उनके रूप का अनुपम, मोहक सौंदय वर्णित हुआ है। प्रचुर उदाहरणो द्वारा इस विचार की पुष्टि की गई है। इस काल मे शृङ्गार का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, उसी को आधार मानकर परवर्ती रीतिकालीन कवियो ने सामयिक प्रवृत्तियो के अनुकूल अपना काव्य प्रस्तुत किया है।

रीतिकाल के रूप सौंदय का निरूपण पचम अध्याय म हुआ है। इस अध्याय म भी तृतीय अध्याय म स्थापित सिद्धान्तो का ही आधार लिया गया है। सामयिक सामाजिक विशेषताओ के कारण रूप सौंदय निरूपण की भावना म परिवतन आ गया था। इन परिवतनो का यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। भक्ति विषयक आध्यात्मिक भावनाओ के उच्च स्तर स गिर जाने के कारण रूप सौंदय निरूपण का भक्तिकालीन भाव कवियो म न रह गया। दास्य एव सख्य भाव की गहनता लगभग समाप्त हो गयी। श्रीकृष्ण और

(१) पूव पीठिका।
(२) रूप और सौदय-स्वरूप नियमन।
(३) रूप और सौदय-अभिव्यक्ति नियधन।
(४) भक्तिकाल म रूप-सौदय।
(५) रीतिकाल म रूप सौदय।
(६) उपसहार।

इनम पूव पीठिका के अतगत श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति का सक्षिप्त विकास दिया गया है। विकास की इस भूमिका पर प्रस्तुत विषय का विवेचन सरल हो गया है।

दूसरे प्रकरण म रूप और सौदय के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है। इसमे रूप और सौदय सम्बन्धी भारतीय विचारा का स्पष्टीकरण हुआ है। सौदर्यानुभूति की परम्परा को देते हुए सौन्दय के तत्व व्युत्पत्ति, अथ, अय समानाथक शब्द तथा भारतीय मता का विवेचन हुआ है। यही पर सौन्दय और कुरूपता तथा सुन्दर और उदात्त के सम्बन्धा को स्पष्ट किया गया है। इसम विचारका की परिभाषाओ को देते हुए रूप और सौदय के सूक्ष्म भेद पर विचार किया गया है। सौन्दय को आत्मगत मानकर उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा की गई है। भारतीय दृष्टि की आध्यात्मिकता के कारण आत्मा की सत्ता सर्वोपरि रूप मे स्वीकृत है। यही आधारभूत तत्त्व है। सौन्दय के इस आत्मतत्त्व के साथ वज्ञानिक मान्यता का विवेचन वस्तुपरक दृष्टिकोण से हुआ है। इस प्रकार आत्म परक और वस्तुपरक व्याख्याओ को प्रस्तुत करके समन्वयवादी मध्यम माग को अपनाया गया है। इसमे रूप और सौदय के स्वरूप निर्धारण म दोनो ही विचारो का अपने विषय के अनुकूल समथन एव सहयोग लिया गया है। यही पर रूप और सौदय के स्वरूप की शास्त्रीय व्याख्या भी प्रस्तुत की गइ है। इसी व्याख्या को आधार मानकर आगे के अध्यायो का विचार किया गया है। अन्त मे सौदय के तत्वा का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय मे रूप और सौदय के अभिव्यञ्जना पक्ष पर विचार हुआ है। सिद्धान्त विवेचन के रूप मे इस अध्याय का विशेष महत्त्व है इस अध्याय में रूप और सौदय के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार है। सम्पूण प्रबन्ध म इस अध्याय का वही महत्व है जो शरीर म रीढ की हड्डी का है। इसी का आधार लेकर प्रबन्ध का सम्पूण कलेवर निर्मित किया गया है। इस अध्याय

मे सौदय के मुख्यत तीन भेद कलात्मक, मानवीय और तटस्थ (प्राकृतिक) सौदय-किये गये है। इन तीनो म मानवीय सौन्य की मीमासा करना ही इस प्रबध का प्रमुख ध्येय है। इस सौन्दय के विभिन्न स्वरूपा का विवचन शास्त्रीय आधार पर किया गया है। मानवीय सौन्य म सौदय के उद्दीपन के मुख्य चार माध्यम स्वीकार किय गये हैं। गुण, चेष्टा, अलकृति और तटस्थ साधनो से आलम्बन के बढे हुए सौदय को देखने की चेष्टा की गई है। मानवीय सौदय के बाह्य और आन्तरिक तत्वा का विश्लेषण किया गया है। इन सभी आधारो पर मानवीय सौदय के विश्लेषण की एव समुचित कसौटी तयार हो जाती है।

चतुथ और पचम अध्याया म रूप सौदय का व्यावहारिक पक्ष ग्रहण किया गया है। मध्यकाल के दो भेद भक्तिकाल और रीतिकाल करके दोना म रूप सौदय का देखने की चेष्टा की गई है। चतुथ अध्याय मे भक्तिकाल के जिस रूप सौदय का विवेचन हुआ है उसका आधार तृतीय अध्याय म स्थापित सिद्धात ही है। उन्ही सिद्धान्ता का निकप बनाकर भक्तिकालीन कृष्ण साहित्य का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि इस युग की रचनाओ म रूप सौदय किन किन रूपा म उपलब्ध है। अपने विचारा की पुष्टि मे भक्त कविया की रचनाओ मे से पुष्कल उदाहरण देत हुए विषय विश्लेषण एव विवचन को ग्राह्य बनाया गया है। मुख्यत बल्लभ सम्प्रदाय के अष्ट छाप के कवियो तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेक कविया की रचनाओ मे से उदाहरण दिये गय हैं। इन दोनो सम्प्रदाया के रूप सौदय निरूपण म प्रमुख भेद यह है कि प्रथम म श्रीकृष्ण के रूप-सौदय की महत्ता और द्वितीय मे प्रधान पद राधा को प्राप्त है, जिसे रसेश्वरी मानकर उनके रूप का अनुपम मोहक सौदय वर्णित हुआ है। प्रचुर उदाहरणा द्वारा इस विचार की पुष्टि की गई है। इस काल म शृङ्गार का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, उसी को आधार मानकर परवर्ती रीतिकालीन कविया न सामयिक प्रवृत्तियो के अनुकूल अपना काव्य प्रस्तुत किया है।

रीतिकाल के रूप सौन्य का निरूपण पचम अध्याय म हुआ है। इस अध्याय मे भी तृतीय अध्याय म स्थापित सिद्धान्ता का ही आधार लिया गया है। सामयिक सामाजिक विशेषताओ के कारण रूप सौदय निरूपण की भावना मे परिवतन आ गया था। इन परिवतना का यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। भक्ति विषयक आध्यात्मिक भावनाओ के उच्च स्तर से गिर जाने के कारण रूप सौदय निरूपण का भक्तिकालीन भाव कविया म न रह गया। दास्य एव सख्य भाव की गहनता लगभग समाप्त हो गयी। श्रीकृष्ण और

राधा का आध्यात्मिक स्वरूप लुप्त हो गया। फल यह हुआ है कि रूप-सौंदय वर्णन की भक्तिकालीन मर्यादित एव रूपकातिशयोक्ति वाली सांकेतिक पद्धति समाप्त हो गई। राधा-कृष्ण का स्पष्ट और विलास भावना से युक्त ऐसा चित्र प्रस्तुत किया गया, जो गौरव सम्पन्न और भक्तिभाव का उद्रेक करने वाला न होकर मासल हो गया। इस मासल रूप सौंदय म शरीर के बाह्य आकर्षण और अवयवो की बनावट का सूक्ष्म वर्णन किया जाने लगा। नारी सौन्दय को महत्ता मिल गई। वह पुरुष के आकर्षण की साधन बन गई। नारी भोग्या बनी और पुरुष उसका भोक्ता। इससे नारी रूप चित्रण म उसके अवयवो के उभार बनावट आदि के मादक सौंदय का वर्णन हुआ। पुरुष सौंदय अधिकाश कवियो की दृष्टि से ओझल रहा। एक-दो कवि इस परम्परा के अपवाद भी हैं। इन सभी कवियो की रचनाओ से उद्धरण दे देकर विश्लेषण करते हुए अपने विचारो की पुष्टि की गई है।

उपसहार मे प्रस्तुत प्रबन्ध के विचारो एव विश्लेषणो का सार दिया गया है। इसमे एक निर्णय पर पहुँचने की चेष्टा की गई है। इसी अध्याय म पूर्व विवेचित विचारो के आधार पर मध्यकालीन कृष्ण काव्य म रूप-सौंदय की समता विभिन्नताओ का सकेत किया गया है। बदलती हुई काव्यधारा को दृष्टि मे रख कर रूप सौन्दय चित्रण के विभिन्न प्रकार अभिव्यञ्जना और प्रवृत्तियो आदि का सकेत कर दिया गया है। अन्त म रूप सौन्दय की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए मानवीय हित म उसके योगदानमूलक विशेषताओ का सकेत करके प्रबन्ध की समाप्ति की गइ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की विशेषता—

आज तक के उपलब्ध प्रकाशित शोध ग्रन्थो मे या तो केवल प्रेम की व्यञ्जना हुई है अथवा प्रेम के साथ सौन्दय का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'रूप' के विवेचन का प्रयास शोध ग्रन्थो मे नही दीख पड़ा। रूप और सौंदय दोनो के युगपत् विवेचन एव विश्लेषण का अभाव अभी तक बना हुआ था। हिन्दी के मध्यकालीन कृष्ण काव्य को आधार बना कर आज तक किसी शोधक ने उसम रूप सौंदय की अभिव्यञ्जना का विश्लेषण प्रस्तुत नही किया है। यह प्रबन्ध उसी अभाव की पूर्ति का एक प्रयास है।

इस प्रबन्ध म रूप एव सौंदय सम्बन्धी सत्य का अनुसधान वैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए पाश्चात्य एव पौर्वात्य मतो को सुव्यवस्थित रूप म उपस्थित किया गया है। सौंदय विवचन और उसके प्रभावो की व्यञ्जना मे आश्रय और आलम्बन की मन मे उठती हुइ विभिन्न भावनाओ का विश्लेषण हुआ है। सौन्दय-दर्शन से उत्पन्न प्रतिक्रियाओ का साहित्यिक विवेचन विभिन्न

कवियो की कृतियो के उद्धरणो द्वारा किया गया है । ऐसी स्थिति मे आलम्बन की स्वत सभवी छवि और सौन्दय-साधक उपकरणा स बढ जाने वाली छवि को ही रूप-सौन्दय के विश्लेपण का निकप माना गया है । आलम्बन के आक पण को बढाने वाली सभी प्रसाधक सामग्रिया को भी सौन्दर्योपकारक रूप मे ग्रहण करके ऐसे सभी तत्वो का आत्मसात् सौन्दय के अ तगत कर लिया गया है जिनसे आश्रय आलम्बन के रूप सौन्दय की वृद्धि होती है ।

सौन्दय के स्वरूप निर्धारण म विभिन्न मनीपिया के अतिवादी विचारों की भिन्नता मे समन्वयात्मक प्रवृत्ति अपनाई गई है । व्यक्तिवादी अथवा आत्मवादी और विपयवादी या वस्तुवादी इन दोना विचारो का समन्वय करते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध म सौन्दर्यानुभव म व्यक्ति और वस्तु दोनो की महत्ता स्वीकार की गई है क्याकि अनुभविता के अभाव मे वस्तु का सौन्दय महत्वहीन होता है और वस्तु म सौन्दय की शून्यता अनुभवकर्ता की आत्मा को सन्तुष्ट नही करती । अत सौन्दर्यानुभव मे वस्तु के सौन्दय के साथ उसके अनुभवकर्ता की महत्ता भी रहती है । इन दोनों म प्रमुखता मानवीय दृष्टिकोण की ही है । इस से मानव की महत्ता के सापक्ष म वस्तु-सौन्दय का स्वीकार किया गया है । इस से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) आत्मपरक और वस्तुपरक दृष्टि से सौन्दय विवचन की दो अलग अलग आधार भूमिया प्राप्त होती हैं । (२) सौन्दय बोध से उत्पन्न आनन्द के महत्व का प्रतिपादन होता है । यह आनन्द काव्य के सौन्दर्यानुभव से ही उत्पन्न होता है । कला का आनन्द भी सौन्दयजन्य ही है । इस से काव्य का सौन्दय परक अनुशीलन उसके मूल ध्येय का ही अनुशीलन है । इस अनुशीलन म विपय की एक सीमा है, उस सीमा मे रह कर ही अपना विचार व्यक्त किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के नामकरण से ही विपयवस्तु की परिधि का ज्ञान होता है । मध्यकालीन कृष्णकाव्य से अभिप्राय भक्तिकाल और रीतिकाल की कृष्ण सम्बन्धी रचनाओ से है । इन दोना काला की अनन्त रचनाओ का विवेचन करना प्रस्तुत प्रबन्ध का ध्येय नहीं है अपितु इन काला के प्रमुख कविया की कृतिया का प्रवृत्ति परक विश्लेपण ही सौन्दय दृष्टि से किया गया है । भक्तिकाल में वल्लभ सम्प्रदाय और राधावल्लभ सम्प्रदाय के कुछ कवियों की रचनाओं को प्रमुखता दी गई है परन्तु आवश्यकतानुसार अन्य कृष्ण भक्त कवियों के उद्धरणों आदि स भी प्रस्तुत विपय की पुष्टि हो सकी है । इन्हीं कवियो की रचनाओं के माध्यम से सिद्धान्त पक्ष का निरूपण किया गया है । एक बार सिद्धान्त का प्रतिपादन कर लेने पर अलग अलग अध्याया म भक्ति-काल और रीतिकाल का सौन्दय विपयक विश्लेपण उसी आधार पर हुआ है ।

इन दोनो कालो की सभी प्रवृत्तिया का गभीर विवेचन इस शोध प्रबन्ध की सीमा के अतगत नही आता । इसस सौन्दय साधक पक्तियो की ही सहायता ली गई है । कही कही पर विषय को ग्राह्य बनाने के लिए कृष्णेतर काव्या से भी अनेक पक्तियो की सहायता ली गई है ।

भक्तिकाल के विवेचन म भक्त कवियो की रचनाएँ ही आलोच्य रही हैं । इनकी भावनाओ से रीतिकालीन कविया की भावनाओ म महान् अतर आ गया था । आलम्बन और आश्रय की एकरूपता होते हुए भी उसके स्वरूप म बदली हुई सामाजिक मा यताओ का प्रभाव पडा है । राधा और कृष्ण वही हैं परन्तु उनके स्वरूप म अतर आ गया । रीतिकाल मे राधा-कृष्ण भक्ति के आलम्बन नही रह गये । वे सामान्य नायक नायिका की स्थिति म आ गये । यदा कदा भक्ति भाव स आप्लावित होती हुई कवियो की रचनाएँ मुक्तको के रूप मे प्रस्तुत होती रही है । इनम भक्ति की एक क्षीण होती हुई भावना दीख पडती है, परन्तु कलात्मक अभियक्ति उच्च कोटि की होन से अभि यञ्जनात्मक सौदय अच्छा बन पडा है । प्रस्तुत प्रबन्ध म रीतिकालीन कृष्ण काव्य मे राधा कृष्णादि स सम्बन्धित रचनाओ का आधार लिया गया है । कृष्ण से सम्बन्धित किसी भी पक्ति का चयन सुविधा और विषय के प्रतिपादन क उद्देश्य से ही किया गया है । प्राय सभी रीति ग्रन्थो म राधा कृष्ण विषयक सामग्री प्राप्त हो जाती है । पर तु प्रमुख कवियो की मुक्तक रचनाओ का ही सहारा लिया गया है और इन्ही के आधार पर रूप और सौन्दय का व्याख्या की गई है ।

रूप सौदय को यहा मानवीय सौदय के सन्दभ मे ही उपस्थित किया गया है । इस सौदय की व्याख्या शृङ्गार रस के सन्दभ मे की गई है । इससे शृङ्गार रस म रति का आलम्बन होने के कारण नायक अथवा नायिका रूप राधा कृष्ण क शारीरिक सौदय को महत्त्व दिया गया है । रूप या आकारगत विशेषताओ के कारण शरीर के आकषण की अभिव्यक्ति के साथ आकार से भिन्न लावण्य छवि नूतनता आदि विशेष गुणो से बनी हुई शारीरिक शोभा का वणन हुआ है । इस प्रकार मुख्यता मानवीय सौदय की ही है । इस सौदय का अभिव्यक्त करने अथवा शरीर को आकषक बनाने वाले ऐसे सभी साधना का भी सौन्दय म लिया गया है जिनसे आश्रय के मन म आलम्बन के प्रति कोमल भावनाओ का उदय होता है । ऐसे साधना म प्रसाधनो को माना गया है । मानव के इस भौतिक सौदय के अतिरिक्त भावनाओ को उद्दीप्त करके आलम्बन क आकषण को बना दन म सहायक प्रकृति आदि की शोभा का

केत मात्र 'तटस्थ-सौन्दय' के नाम से कर दिया गया है। ऐसा शृङ्खला को जोडन के लिए ही किया गया है।

इस प्रबन्ध मे श्रीकृष्ण अथवा व्रज से सम्बन्धित काव्यो को ही ग्रहण किया गया है। श्रीकृष्ण का मध्यकालीन वैष्णव भक्तो मे प्रचलित रूप अचानक समक्ष नही आ गया था, अपितु श्रीकृष्ण की साहित्यिक या धार्मिक अभिव्यक्ति शताब्दियो से होती चली आई है। वदिक युग से आरम्भ कर पौराणिक युग तक श्रीकृष्ण के विभिन्न विकसित रूपो क आधार पर ही हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य म श्रीकृष्ण के रूप और सौदय की अभिव्यक्ति हुई है। इस परम्परा का ज्ञान कराने के लिये श्रीकृष्ण के वैदिक विष्णु रूप के विकास की एक शृङ्खला स्थापित की गई है। क्रमश महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराण मे वर्णित श्रीकृष्ण क स्वरूप की व्याख्या करते हुए उनके भक्तिकाल मे ग्राह्य रसिकेश्वर रूप को ग्रहण किया है। उनके इसी रूप के सौदय का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण या गोपागनाओ आदि का जो सौदय वर्णित है, उसका मूल आधार यह पौराणिक साहित्य ही है। यह साहित्य अपन पूववर्ती ग्रन्थो को उपजीव्य मानकर परवर्ती साहित्य को प्रभावित करने वाला बन गया था। इसी दृष्टि से श्रीकृष्ण के पूव नामो और चरित्र आदि की सक्षिप्त परम्परा भी उपस्थित की गई है।

कृतज्ञता ज्ञापन—कारण और काय का अनवरत सम्बन्ध बना रहता है। काय की सिद्धि की मूल प्रेरणा प्रेरक कारण एव परिस्थिति के ऊपर अवलम्बित रहती है। सामयिक स्थितियो से परिचालित होकर व्यक्ति काय की ओर अग्रसर होता है और काय काल म उपस्थित अवरोधो को दूर करने मे निर्देशक का स्नेह और माग-दशन उसके लिये सम्बल का काम करता है। इसके अभाव म व्यक्ति का बल और धैय या तो समाप्त हो जाता है या वह काय से विमुख हो जाता है। मेरे लिये इस प्रकार की कोई बाधा उपस्थित नही हुई क्योकि मैं अपने निर्देशक का एक प्राचीनतम शिष्य रहा हू और उनके स्नेह का पूण अधिकारी भी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए प्राय उनके निवास-स्थल पर ही रहकर अपनी शकाओ का समाधान करता रहा। वहाँ पर उनका सौहाद्र पूण पारिवारिक वातावरण मेरी प्रेरणा का कारण बनता रहा और नराश्य के क्षणो म भी आशा की ज्योति मुझे आगे बढाती रही। यही कारण है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आज पूण होकर प्रकाशित हो रहा है।

इस प्रबन्ध के शीषक चयन में एक नाटकीय परिस्थिति का योग है। नवलगढ़ (राजस्थान) की सस्था श्री सूय-मण्डल' म आमन्त्रित डा० सत्येन्द्र,

पूर्व पीठिका

(१) वेदों मे विष्णु
(२) नारायण और श्रीकृष्ण
(३) महाभारत मे श्रीकृष्ण
(४) पुराणो मे श्रीकृष्ण

वेदो मे विष्णु

साहित्य मे भगवान श्रीकृष्ण के जिस रूप की आज इतनी अधिक महत्ता है, उसके मूल पर विचार कर लेना जिज्ञासुओ की तप्ति का एक प्रधान साधन होगा। आज श्रीकृष्ण की सव यापकता के सम्बध म मत वभिन्न नही है। यदि उनके इसी गुण पर ध्यान केन्द्रित कर दिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वदिक युग मे विष्णु के भी इसी गुण का वार वार वणन किया गया है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण को अपने आदि रूप मे विष्णु मान लेने पर अत्युक्ति नही कही जा सकती है। विष्णु के इस यापकतापरक रूप पर विचार करना आवश्यक है।

'विष्णु' शब्द का युत्पत्तिगत अथ प्रवेश या याप्ति है। 'विश' धातु स निष्पन्न इस शब्द से सम्पूण विश्व म व्यापकता का भाव यक्त होता है। यह शब्द जिस यक्तित्व का वाधक है वह निश्चित रूप से अपने इस गुण के कारण सवमा य रहा है। वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने विष्णु का अथ "व्यापनशील' माना है, ब्लूमफिल्ड (पाश्चात्य विचारक) के अनुसार 'पृष्ट पर होकर' (On the back) अथ किया गया है। आप्टे ने इस शब्द की निष्पत्ति 'विश धातु से मानते हुए कहा है कि चू कि उसी की शक्ति से यह सम्पूण विश्व व्याप्त है, अत विश धातु के 'प्रवेश मूलक अथ के कारण उसे विष्णु कहा जाता है।[1] यास्क ने कहा है कि 'अथ यद् विपितो भवति तद् विष्णुभवति। विष्णुर्विशतेवा यश्नातेर्वा। दुर्गाचाय ने अपने निरुक्त म कहा है कि जो समस्त चराचर जगत् को याप्त करता है वही विष्णु है वेवेष्टि व्याप्नोति चराचर जगत् स विष्णु'। एक अ य स्थल पर कहा है कि रश्मियो द्वारा यह व्याप्त होता है अत विष्णु कहा जाता है।[2] यहा पर विष्णु को ही आदित्य के रूप मे स्वीकार किया गया है। विष्णु श द मे वि का अथ मोक्ष भी बताया गया है। अत मोक्ष की योग्यता रखने वाला या मोक्षदाता ही विष्णु कहा गया। वेदा मे इस मोक्ष का इन्द्र द्वारा वृत्र और पणिम से जलमोक्ष का अथवा

---

1 यस्माद्विश्वमिद सव तस्य शक्त्यामहात्मन।
तस्मादेवोच्यते विष्णुर्विशधातो प्रवेशनात्।

2 यदा रश्मिभिरतिशयनाय व्याप्तो भवति, व्याप्नोति वा रश्मिभि य सवम्।
तद् विष्णुरादित्यो भवति। निरुक्त २/३/३

वरुण द्वारा पाश मोक्ष का अर्थ लगाया जा सकता है।[1] इस दृष्टि से यही विष्णु उपेन्द्र भी कहे जा सकते हैं और इनका प्रमुख गुण व्यापकता है।

विष्णु की इस व्यापकता की चर्चा ऋग्वेद के कई मन्त्रों में है। वहाँ पर विष्णु को कुचर और गिरिष्ठा कहा गया है।[2] इनका एक नाम त्रिविक्रम भी बताया गया है। अपने पगों से अखिल ब्रह्माण्ड को माप लेने वाली विशेषता के कारण विष्णु एक महान् और व्यापक शक्ति के प्रतीक बनकर हमारे समक्ष आते हैं। आदित्य वाचक भाव का बोधक होकर उनके जिन तीन पदों की चर्चा है उनमें दो पदों का आधार पृथ्वी और अन्तरिक्ष तो चक्षु का विषय है परन्तु तृतीय परम पद अदृष्ट है आकाश की ओर दृष्टि रखकर विद्वान् उसे देख सकते हैं।[3] विष्णु के इन तीन पदों की चर्चा वेदों में अनेक स्थलों पर है। अपनी व्यापकता के कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को माप लेने की शक्ति वर्तमान है। कहा गया है कि "अदम्य विष्णु गोप ने तीन पदों में ब्रह्माण्ड बाँध लिया।[4] उन्होंने तीन पद किये और ब्रह्माण्ड को नाप गये।[5] विष्णु का यह तीसरा पद पक्षियों के लिये भी अगम्य है।[6] यह तीसरा पद मधु का उत्स है।[7] यही परम पद बाद के धार्मिक ग्रन्थों के साधकों का प्राप्य बन गया। विष्णु के इन तीन पदों की चर्चा पौराणिक साहित्य में की गई है। वामनावतार का मूल स्रोत इसे ही मान सकते हैं। उस अवतार में भगवान वामन ने तीन पद से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को माप लिया था। उपर्युक्त मंत्र में प्रयुक्त गोपा का शाब्दिक अर्थ गौवों का पालन करने वाला है। श्रीकृष्ण का सम्बन्ध गायों से बहुत अधिक

---

1 सूर की झाँकी। डा० सत्येन्द्र पृ० १७ प्रथम संस्करण शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० आगरा।

2 प्रतद् विष्णु स्तवते वीर्येणमृगा न भीम कुचरा गिरिष्ठा।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। ऋग्वेद १/५४/२

3 इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। ऋग्वेद १/२२/१७
तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम्। १/२२/२० ऋग्वेद

4 त्रीणि पदानि विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। ऋग्वेद १/२२/१८

5 इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। ऋग्वेद १/२२/१७

6 द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः। ऋग्वेद १/१५५/५

7 उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः ।
[illegible] मध्व उत्सः। १/१५४/५ ऋग्वेद

था। यहा पर जिस लोक की कल्पना की गई है, वहाँ सिंगो वाली गायो की स्थिति भी बताई गई है।[1] सिंगा से युक्त गायो का यह स्थान विष्णु का परम पद कहा गया है जो सदा प्रकाशित होता रहता है। हो सकता है कि वैष्णव साधको ने यहीं से अपने वैकुण्ठ और विष्णु के वासस्थान गो लोक का मूल बीज पा लिया हो। वृन्दावन की कल्पना म भी यही भावना दीख पडती है। वदो मे विष्णु के सम्बन्ध म वर्णित अनेक बातें श्रीकृष्ण के अवतारो मे प्राप्त होती हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु की यही भावना परवर्ती साहित्य मे श्री कृष्ण के व्यक्तित्व म विकसित हो गई। श्रीकृष्ण जीवन से सम्बन्धित अन्य कई शब्दो का उल्लेख भी वेदो म प्राप्त हो जाता है।

विष्णु के अनेक पर्यायो का उल्लेख भी वेदो मे है। ऐसे शब्दो म त्रिविक्रम, उरगाय और गोपा आदि शब्दो का नाम लिया जा सकता है।[2] यहाँ पर कृष्ण या वृष्णि कहना अकारण नही हो सकता। परवर्ती साहित्य म पौराणिक आख्यानो के आधार पर श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार और वृष्णि वश म उत्पन्न मान गये हैं। इन्हा विष्णु के लिये वदो म ऋग्वद १/२२/१८ और १/२२/१७ निरिण पदानि विचनम और 'त्रेधा निदधे पदम्' का प्रयोग किया गया है।

श्रीकृष्ण की लीलाओ स सम्बन्धित अन्य बहुत से शब्द वेदो मे प्रयुक्त हुए हैं। राधा,[2] गौ,[3] व्रज,[4] अहि वृषभानु,[5] रोहिणी,[6] कृष्ण, अर्जुन[7] आदि शब्द इसी प्रकार के है। ऋग्वद क बहुत से मत्रो[8] के द्रष्टा ऋषि श्रीकृष्ण का वर्णन भी मिलता है। इन्ही क नाम पर कार्ष्णायिण गोत्र चला था। हो

---

1 ता वां वास्तुन्युश्मसि गमध्य यत्र गावोभूरि शृंगा अयास।
यत्राह तदरुगायस्य वृष्ण परम पदमवभाति भूरि। ऋग्वेद १/१५४/६

2 प्रभविष्णवे शूपमेतुमन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे। ऋग्वेद १/१५४/३

3 स्तोत्र राधाना पते। ऋ० १/३०/२६॥
३—गवामव्रज वृधि। ऋ० १/१०/७

4 दासपत्नी अहिगोपा अतिष्ठन। ऋ० १/३२/११

5 त्व नृचक्षा वृषभानुपूर्वी कृष्णास्वाग्न अरुषो विभाहि। अथववेद ३/१५/३

6 तमेन्ताधार य कृष्णा रोहिणीषु। ऋग्वेद ८/६ /१३

7 कृष्णा रूपाणि अर्जुना विवो मदे। ऋग्वेद १०/२१/३

8 ऋग्वेद मडल ८ सूक्त स० ८५, ८६, ८७, तथा मण्डल १०/४२-४३-४४

सकता है कि इस प्रचलित नाम का आधार ग्रहण कर वसुदेव ने अपने पुत्र का नाम श्रीकृष्ण रख दिया हो। वैदिक आख्यानक के अनुसार नाग जाति का एक नेता अहश्यक वर्ण में काला होने के कारण मरुत ऋषि द्वारा कृष्ण कहा गया था।[1] वही बाद में अपनी लोकप्रियता के कारण मूल पुरुषों में गिना जाने लगा था। इस प्रकार विष्णु और कृष्ण नाम की प्रसिद्धि वैदिक युग में हो चुकी थी, इसमें सन्देह नहीं है। यह बात दूसरी है कि उनके रूप का इतना अधिक विस्तार नहीं हो सका था।

इस स्थल पर तार्किकों के मन में यह एक सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि श्रीकृष्ण तो अनादि और अनन्त हैं तो वेदों के माध्यम से उनके अस्तित्व को कैसे स्वीकार किया जा सकता है? यहाँ पर मेरा केवल इतना ही निवेदन है कि रचनाओं में श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति होने के पूर्व ही वह अस्तित्व में आ चुके थे। श्रीमद् भागवत के अनुसार महाभारत में इतिहास के माध्यम से वेदों के रहस्य का उद्घाटन हुआ है।[2] इससे ऐतिहासिक दृष्टिकोण और वैदिक रहस्य इन दोनों का युगपत् ज्ञान होता है। इस कथन से वेदों को महाभारत के पूर्व का ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। महाभारत में भी श्रीकृष्ण को वेद वेदांग वेत्ता बताया गया है। इस विचार से भी यह स्पष्ट है कि वेदों के परिशिष्ट करने अथवा अस्तित्व में आ जाने के बाद ही श्रीकृष्ण नाम का परिचय प्राप्त होने लगा होगा। ऐसा मान लेने पर एक दूसरी शंका यह उत्पन्न होती है कि ऐसी स्थिति में वेदों में प्रयुक्त राधा, गो आदि शब्दों का क्या अर्थ लगाया जायगा। इस शंका का निराकरण अत्यन्त सरल है। वैदिक व्याख्या ग्रन्थों में इन सभी शब्दों का तत्कालीन अर्थ दूसरा था। राधा शब्द धन, अन्न और नक्षत्र का बोधक है, गो का अर्थ किरण और व्रज का किरणों का स्थान हो है। कृष्ण रात्रि, अर्जुन दिन, कृष्ण बलराम अर्थ को व्यक्त करते हैं। आरम्भ की वैदिक व्याख्याओं में यही अर्थ प्रचलित था, परन्तु शब्दों के सतत् प्रयोग और अर्थ परिवर्तन से इनका सम्बन्ध श्रीकृष्ण से जोड़ लिया गया होगा। इस आधार पर यह निर्णय समुचित प्रतीत होता कि वेद में प्रयुक्त राधा कृष्ण आदि शब्द ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्तियों के द्योतक नहीं, अपितु अपने मूल रूप में एक अन्य अर्थ के ही प्रतिपादक रहे हैं। यह बात दूसरी है कि हमारी धार्मिक भावनाएँ अन्तर विचार का द्वार बन्द कर लेने का प्रयत्न हो

---

१ साहित्यिक निबन्ध पृ० ३१ [illegible]

२ भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः। भागवत १/४/२८

गई हैं और इसी भावना के फलस्वरूप इन शब्दा के मूल मे अवतार का रहस्य हम प्राप्त हो गया है।

इस सम्बन्ध म मनु का विचार है कि सभी नामो एव कर्मों का निर्माण वेदा से ही हुआ है।[1] डा० हरवश लाल शर्मा के अनुसार इन मन्त्रा म जो नाम आये हैं, उनका यद्यपि गोपाल कृष्ण मे कोई सम्बन्ध नही है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड दिया गया, उसी प्रकार इन सभी नामो का उपयोग पौराणिक युग म कृष्ण के लिये कर लिया गया।[2] डा० मु शीराम शर्मा ने भी इसी विचार का समर्थन किया है कि 'इस प्रकार वदो म जो राधा, विष्णु, कृष्ण आदि शब्द आये हैं, वे ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम नही है। ऐतिहासिक व्यक्तिया एव पदार्थों के नाम वेद के शब्दो को देखकर रखे गय हैं। वेद के शब्द पहले हैं, ऐतिहासिक व्यक्ति बाद म हुए हैं।'[3] अत स्पष्ट है कि इन्ही शब्दो का प्रयोग अवतारा म होने लगा होगा।

विष्णु के विभिन्न नामा म उनके आदित्य परक भावना का उन्मेष भी मिलता है। ये विष्णु यज्ञ के सहायक और द्वादश आदित्य भी कहे गये हैं।[4] विष्णु देवताओ मे श्रेष्ठ हैं "तस्मादाहु विष्णुर्देवानाम् श्रेष्ठा।" अन्य स्थलो पर भी उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।[5] मैत्रेय उपनिषद् मे विष्णु को अन्न रूप मे पोषक माना गया है। आदित्य की उष्मा से अन्न का पोषण प्रसिद्ध ही है। विष्णु के विभिन्न कार्यों मे उसका दैनिक कार्य आदित्य रूप मे ही निष्पन्न होता है। इस रूप म विष्णु के तीन पदो का अर्थ भूत, भविष्य और वर्तमान काला से लगाये जाने की परम्परा रही है। इस विचार म भिन्नता हो सकती है परन्तु इसम कोई सन्देह नही है कि सूर्य, विष्णु और आदित्य एक ही देवता के भिन्न नाम उनके कार्यों के आधार पर बताये गये हैं। विष्णु मे सूर्य के गुणो का समावेश है यद्यपि यह शब्द आरम्भ मे विश

---

1 सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक पृथक।
वद शब्देभ्य एवादौ पृथक् सस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति १/२१

2 सूर और उनका साहित्य–पृ० १२५ डा० हरवश लाल शर्मा।

3 भारतीय साधना और सूर साहित्य–पृ० १६६ स० २०१० वि०

4 एकादशास तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यत।
जघान्याज स तु सर्वेषाम् आदित्यानाम गुणाधिक। १४/५५/६

5 अथर्ववेद ५/२६/७ व ८–५,१। तत्तिरीय सहिता १/७/५४ वाज सनेयी सहिता १/३०–२, ६, ८–५, २१

पराक्रमी रहा होगा परन्तु बाद में गाद् प्रभाव के कारण विष्णु की स्वतन्त्र सत्ता निर्धारित होने लगी।

विष्णु को आदित्य का पर्याय मानने का एक विशेष रहस्य प्रतीत होता है। वेदों में वर्णित विष्णु के तीन पगों में तीसरे पग को परम पद कहा गया है। यह पद आकाश में है। अपनी इस व्यापकता के कारण ही विष्णु शब्द पूषन् मित्र आदि अन्य पर्यायों की भांति सूर्य का पर्याय ठहरता है। तीन पगों द्वारा ब्रह्माण्ड को नाप लेने वाली विशेषता के कारण अन्य विशेषताओं की तुलना में इस शब्द की महत्ता बढ़ी और स्वतन्त्र देवता के रूप में विष्णु का विकास होने लगा। यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के चौदहवें काण्ड की एक कथा द्वारा देवताओं के एक सत्र में विजयी होकर ही विष्णु श्रेष्ठ बन गये और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती चली गई। श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्वयं कहा है कि मैं आदित्यों में विष्णु और देवताओं में इन्द्र हूँ।[1]

गीता के इस कथन से यह स्पष्ट है कि विष्णु ही आदित्य और इन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। एक अन्य स्थल पर भी श्रीकृष्ण ने अपने को वेदों में साम वेद और देवताओं में इन्द्र माना है।[2] यहाँ प्रयुक्त वासव शब्द इन्द्र का ही पर्याय है। इन्द्र की इस धारणा का कोई विशेष कारण रहा होगा। वेदों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सूक्तों में अग्नि और इन्द्र की स्तुति ही अधिक की गई है। ये ही दोनों प्रधान देवता के रूप में प्राप्य रहे हैं। इनमें इन्द्र को यदि हम राष्ट्रीय नेता मानें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि उन्होंने वृत्रासुर का वध करके जल का मोचन किया था। उनकी स्तुति में सूक्तों का मानवीय रूप दीख पड़ा। बाद में इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ ही विष्णु में समाहित कर दी गई होंगी। इसी से इन्द्र के साथ विष्णु की गणना परवर्ती मन्त्रों में होने लगी।

ऋग्वेद में विष्णु की चर्चा इन्द्र सखा के रूप में भी है। वृत्रासुर वध के अवसर पर विष्णु का विक्रम वर्णित है। विष्णु परम पद के अधिकारी होकर महादेव के रूप में प्रतिष्ठित होने लग गये थे। तीन पदों में ब्रह्माण्ड को नाप लेने वाली कथा से विष्णु की महिमा बढ़ती गई और कालक्रम से इन्द्र का महत्व अपेक्षाकृत कम होता चला गया। अतएव वैदिक सूक्तों में कभी स्वतन्त्र रूप में कभी अन्य देवताओं के साथ उनका गान होने लगा। ऋग्वेद में विष्णु

---

१ आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। गीता १०/२१

२ वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः। १०/२२

पीछे ऊपर नीचे सभी कहीं व्याप्त है।[1] ब्रह्म के इस गुण (सर्वव्यापकता के कारण) यह ऋगवेद के विष्णु के समकक्ष हो जाता है। परवर्ती ग्रन्थों में भी विष्णु की चर्चा इसी रूप में की गई है। ब्रह्म को परम सत्ता मानकर उसे स्वयंभू माना गया और परम आत्मा के रूप में ब्रह्म की प्रतिष्ठा हुई।

वेदों के अतिरिक्त अन्य वैदिक ग्रन्थों में विष्णु रूप का विकास दीख पड़ता है। इन ग्रन्थों में ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् की गणना हो सकती है। कठोपनिषद् में विष्णु के परमपद की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय माना गया है। मत्रेय में विष्णु को अतरूप में पापक कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को वामन के रूप में स्वीकार किया गया है। यह विष्णु ब्रह्म की भाँति ही कल्पनातीत है। वामनावतार का मूल स्रोत इसे ही मानना युक्ति संगत प्रतीत होता है। यज्ञ निष्ठा की दृष्टि से इसमें विष्णु को अग्रणी बताया गया है। उनकी अलौकिक कथा यहां चमत्कारिक ढंग से स्पष्ट की गई है। वैदिक काल में इन्द्र को प्राप्त होने वाला महत्व ब्राह्मण काल में विष्णु को ही मिलने लगा और इसी में अवतारों का बीज खोज लेने की चेष्टा भी की गई। शतपथ में ही विष्णु के अन्य अवतारों-मत्स्य, कूर्म वाराह और वामन आदि का वर्णन है।[3] यहां विष्णु के साथ नारायण की चर्चा भी हुई। तैत्तिरीय आरण्यक में विष्णु को नृसिंह कहा है।[4] नृसिंह तापनी में इस नाम की चर्चा है। यही विष्णु पुरुषोत्तम वासुदेव और देवकी पुत्र भी हो जाते हैं। गोपाल तापनी में उनका दिव्य रूप दीख पड़ता है। विभिन्न सम्प्रदायों में विष्णु ही नृसिंह राम, नारायण और कृष्ण के रूप में विख्यात हुए। क्रमश इनका विष्णु रूप नारायण में परिवर्तित होने लगा।

नारायण रूप

चराचर व्याप्त विष्णु की व्यापकता के आकर्षण से ही वैष्णव सम्प्रदायों ने इन्हें नारायण रूप में ग्रहण किया। नर के अयन का अन्तिम लक्ष्य नारायण' कहे गये। ऋग्वेद की १०/२५/५-६ ऋचाओं में नारायण का संकेत है। मनुस्मृति में नारायण शब्द की व्याख्या की गई है कि नर का अयन

---

[1] ब्रह्म वेदममृत पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्व प्रसृत ब्रह्मवेद विश्वमिद वरिष्ठम।

[2] शतपथ १/२/५

[3] शतपथ/क्रमश १/८/१/२-१० । १४/३५ ।
१४/१/२/११ । १/२५/१-७

[4] तै० आ०-१०/१/८

होने से ही इसे नारायण कहा गया है।[1] दशम मण्डल के पुरुष सूक्त म जिस पुरुष की विशद चर्चा की गई है उसके सम्बन्ध म शतपथ ब्राह्मण का मत है कि वह पुरुष ही नारायण है।[2] इसी पुरुष के पञ्चरात्रि यज्ञ करन पर सभी वस्तुए उत्पन्न हुई। नर भी इसी नारायण से उत्पन्न माना गया। **तत्तिरीय आरण्यक** के मत स नारायण ही वासुदव है "नारायणाय विदमह वासुदेवाय धीमहितन्नो विष्णु प्रचोदयात्।' इसी आरण्यक म कूर्मावतार १/२३/१ और वासुदेव श्री कृष्ण १०/१/६ का वर्णन है। **ऐतरेय ब्राह्मण** मे विष्णु को परम देवता और अन्या की गणना विष्णु के बाद की गई है।[3] इसी विष्णु से सम्बन्धित उनकी पूजा का जो रूप ग्रहण किया गया उसी की नारायण सज्ञा मानी जा सकती है। शतपथ ब्राह्मण म नारायण का नाम है।[4] बृहन्नारायणोपनिषद् म विष्णु को हरि कहा गया और वासुदव तथा हरि स नारायण का सम्बन्ध स्थापित किया गया। तत्तिरीय आरण्यक म विष्णु का नारायण से सम्बन्ध स्थापित किया गया। वे सवमान्य परमश्वर का एश्वय प्राप्त करत हैं। इसीसे व ब्रह्म स्थानीय हो जात हैं १०/११/ इससे विष्णु की विशिष्टता का ज्ञान भी हो जाता है।[5]

ऋग्वेद म सृष्टि के पूर्व जल की स्थिति और ब्रह्मा की उत्पत्ति नारायण की नाभि से बताई गई है।[6] इसी म पाच रात्र मत्र का प्रयोजक पुरुष एव पुरुष सूक्त के वक्ता के रूप म नारायण को ही माना गया है।[7] शतपथ ब्राह्मण की एक कथा के अनुसार पुरुष नारायण न एक बार स्वय यज्ञ स्थान पर निवास कर वसुओ, रुद्रो और आदित्यो को कहीं अन्यत्र भेज दिया और यज्ञ सम्पादित करके स्वय सर्वव्यापी बन गय। १२/३/४ इसीमे पुरुष द्वारा पाच रात्र करके सर्वश्रेष्ठ बन जान का वर्णन आता है। अत नारायण पुरुष नारायण, परमात्मा के अवबोधक और विष्णु के समानार्थक बन गय।

---

[1] आपो नरा इति प्रोक्ता आपो व नर सूनव।
ता यदस्यायन पूर्व तन नारायण स्मृत। मनुस्मृति १/४

[2] पुरुषम् हि नारायणम् प्रजापतिरुवाच। शतपथ १४/३-४

[3] अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परम तदन्तरेण सर्वा अन्यादेवता।
एतरेय ब्राह्मण १/१

[4] शतपथ १३/३/४

[5] त० आ० १४/१/१

[6] ऋग्वेद १०/८२/६

[7] ऋग्वेद १०/८२/६

नारायण और श्रीकृष्ण

विष्णु की सर्वव्यापकता पहले ही सिद्ध एवं स्थिर हो चुकी थी। अवतार की कल्पना में ब्राह्मण और उपनिषद् में वर्णित नारायण को कृष्ण का अवतार[1] बताकर विष्णु और कृष्ण का तादात्म्य स्थापित कर लिया गया। उपनिषदों में भी अवतार विषयक अनेक वर्णन आते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में देवकी पुत्र श्री कृष्ण का वर्णन है।[2] यहां श्री कृष्ण को घोर आंगिरस का शिष्य और देवकी का पुत्र माना गया है। कौशितकी ब्राह्मण में भी श्री कृष्ण के गुरु घोर आंगिरस का चर्चा है।[3] इन सभी नामों से एक ही व्यक्तित्व की व्यञ्जना होती है। ब्रह्मपुराणकार ने युग के अनुसार इन भिन्न भिन्न नामों को एक ही माना है।[4] एक ही कृष्ण सात्वत धर्म के उपदेष्टा ईश्वर और परब्रह्म माने गये हैं। यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में 'श्रीश्चते लक्ष्मी च पत्न्यौ ३१/२२ कहा गया है। इसमें विष्णु की दो पत्नियां श्री और लक्ष्मी का संकेत है। श्रीकृष्ण विष्णु और नारायण के अवतार हैं इससे इनके संग लक्ष्मी का होना अनिवार्य माना गया।

उपर्युक्त विचार से स्पष्ट है कि ब्राह्मणकाल के समाप्त होते होते विष्णु के नारायण रूप को परम देव मानने की परम्परा चल पड़ी थी। मानव प्रकृति से युक्त सगुण रूप का निर्धारण भी हो चुका था। नारायण और विष्णु की एकता मानव प्रकृति से सम्बद्ध थी। इनका यही रूप परवर्ती ग्रन्थों में वासुदेव कृष्ण के रूप में दीख पड़ा जिसका समर्थन एवं वर्णन महाभारत में अधिक हुआ है। अब कहा जा सकता है कि आरम्भ में विष्णु का सम्बन्ध यज्ञ से था। वे यज्ञ पुरुष उपेन्द्र या इन्द्र के सहायक रहे हैं। नारायण सृष्टि के मूलकर्त्ता के रूप में ग्राह्य हैं। क्रमशः दोनों में ऐक्य हो गया। ब्राह्मण काल में विष्णु यदि परम देव थे तो नारायण में ईश्वरत्व का आरोप था। विष्णु वैदिक देवता नारायण ब्राह्मणकालीन और श्रीकृष्ण पौराणिक हो गये।

---

1. शतपथ ब्राह्मण १२/३/४ और तैत्तिरीय आरण्यक १०/११
2. तद्ध तद् घोर आंगिरस कृष्णाय देवकी पुत्राय उक्त्वा उवाच। अपिपास एव स बभूव। सोऽन्तवेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येत। अक्षितमसि अच्युतमसि, प्राणसंशितमसि। छान्दोग्य उपनिषद् ३/१८/६
3. कृष्णो हि आङ्गिरसो ब्राह्मणाद् छन्सीय तृतीय सवन ददर्श। कौ० ब्रा०
4. विष्णुरेव श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे। ७०/वैकुण्ठश्च च देवेषु कृष्ण-त्वं मानुषेषु च ७१ नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवाव्यय एव च। ७२ ब्रह्मपुराण अध्याय ७०

पचरात्र का मम्बध वासुदेव से था। नारायण का भागवत वासुदव तथा श्रीकृष्ण म विलीनकरण हो गया। गीता का विश्वरूप विष्णु का ही रूप है। वैदिक विष्णु और बाद के विष्णु के रूप म भी बहुत परिवतन आ गया था। इसी वदिक विष्णु का विकसित रूप भक्ति कालीन साहित्य म ग्राह्य हुआ, जो महाभारत काल म परम पद का प्राप्त करता हुआ वदिक इन्द्र से भी अधिक महत्वपूण हो गया। वदिक विष्णु से भगवान कृष्ण के क्रम म जो परिवतन है, उसके मूलरूप म एकता बनी हुई है। भक्ति काल के कृष्ण लोक रक्षक एव लोकरजक दोनो ही हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विकास का जो क्रम आरम्भ हुआ, उसके बाह्य रूप म भिन्नता रहते हुए भी उसकी आन्तरिक एकता पूणत बनी हुई है। परवर्ती साहित्य क कृष्ण वदिक विष्णु एव इन्द्र के प्रतिरूप हैं। यदि यह कहा जाय कि विष्णु एव इन्द्र की गाथाएँ ही श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कर दी गई हैं तो इस कथन म अत्युक्ति नही मानी जायगी। इनमे विष्णु और श्रीकृष्ण की एकता का आभास दिया जा चुका है। यहा पर इन्द्र और श्रीकृष्ण की कथाओ का सक्षिप्त परिचय देंगे

वदिक देवताओ म इन्द्र की महत्ता सवमान्य थी। उसकी पराक्रम की गाथा वदिक ऋचाओ म गाई गई है। वह एक प्रिय राष्ट्रीय नेता है। अपने वज्र से अधकार या वृत्र को समाप्त कर देता है और दुश्मनो पर विजय प्राप्त करता है। सोम उसका प्रिय पेय पदाथ है। वज्रबाहु विशेषण से शोभित है। इन्द्र के साथ त्वष्ट्रि का नाम भी लिया गया है। विष्णु का नाम भी इसके साथ लिया गया है। उसका रूप बहुत विशाल है। उसकी शक्ति को अन्य देवता या मानव प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वह वृत्र और अहि का हन्ता है। इस द्वन्द्व से पृथ्वी और स्वग दोनो काप उठती हैं। वह पवतो मे छिद्र करके जल को मुक्त करता है। दस्युओ को मार भगाता है। दस्य उससे भयभीत होते हैं। यह साधको का सहायक और रक्षक है। इसी की सहायता से देवदूत स्वग से अमरत्व ले आते हैं। वह सम्पूण विश्व का शासक है। इन आधारों पर श्री कृष्ण के जीवन से समता स्थापित की जा सकती है।

वदिक युग म विष्णु की उपेन्द्र सत्ता भी थी। यहा विचार यह है कि बाद के श्रीकृष्ण को ही यदि हम वदिक इन्द्र कह तो इसमे अत्युक्ति होगी या नही? इस प्रश्न के समाधान म इन्द्र का परिचय देने वाले मत्रो का ध्यान देना आवश्यक हो जायगा।

१ यो जात एव मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पयभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ।

अर्थात् हे लोगो जिसने जन्म लेते ही देवताओं को पीछे छोड़ दिया, जिसकी शक्ति से समस्त दोनों संसार काँपते हैं वही इन्द्र है। श्रीकृष्ण भी जन्म ग्रहण कर परमदेव बन जाते हैं। उनकी शक्ति भी असीम है।

२ य पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् य पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्र ।

जिसने काँपती हुई पृथ्वी को स्थिर किया क्रुद्ध पर्वतों को ठीक किया, अन्तरिक्ष को माप लिया तथा स्वर्ग का सहारा दिया वही इन्द्र है।'

३ यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान, संवृक्समत्सु स जनास इन्द्र ।

जिसने सर्प को मारकर सातधाराओं को मुक्त किया, जिसने बल के घेरे से गायों को छुड़ाया दो चट्टानों से अग्नि उत्पन्न किया जो युद्धजयी है, वही इन्द्र है।

इन ऋचाओं में वर्णित घटनाओं का परवर्ती कृष्ण कथा पर प्रभाव पड़ा है। श्रीकृष्ण और इन्द्र के जीवन की इन घटनाओं का साम्य दोनों की एकता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर देता है। गोवर्धन पर्वत को उठाना, अन्तरिक्ष को मापना कालिय नाग को नाथ कर जल को स्वच्छ बनाना आदि घटनाओं का साम्य आकस्मिक नहीं कहा जा सकता है। गायों का घेरे से मुक्त करना और युद्धजयी होना आदि से इसी तत्त्व का संकेत मिलता है कि वैदिक युग के इन्द्र के जो उस समय के एक राष्ट्रीय नेता थे सभी गुण महाभारत के श्रीकृष्ण में समाहित हो गये हैं। दोनों के गुणों एवं क्रियाओं में इतना साम्य है कि इसे देखकर ऐसा लगता है कि वैदिक इन्द्र ही श्रीकृष्ण के रूप में पुनः प्रतिष्ठित हुए हैं। अन्य भी बहुत से स्थलों पर यह समता दीख पड़ती है।

चौथे मण्डल के १८ वें मंत्र में इन्द्र के जन्म एवं बाल जीवन का संकेत है। वहाँ इन्द्र की माता ने जन्म के समय ही देवता जानकर इन्द्र की स्तुति देवकी द्वारा कृष्ण की स्तुति की भाँति की थी तथा उस नारकीय स्थान से उसे मुक्त कराने की प्रार्थना भी की थी। कृष्ण के कारागार में जन्म लेने के वर्णन से कितना अधिक साम्य है। 'अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे। अतश्चिद् आ जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेक।' हो सकता है कि इन्द्र की माता भी वृत्र जैसे किसी असुर की बंदिनी रही हो। यहाँ इन्द्र यह चिन्तन करते हैं कि अभी मुझे अन्य भी बहुत काय करने हैं अतः अभी उस दानव को मारना समीचीन न होगा। इनका यह चिन्तन

वत्स-वध के पूव श्रीकृष्ण के चितन के ही तुल्य है। सोम की चोरी म माखन चोरी का बीज मिलता है।[1] इद्र का 'कुमार' नामक दैत्य द्वारा निगल लिये जाने की कथा भी है। इस प्रकार की बहुत सी समताएँ मिल जाती हैं। ऋग्वेद के २/१२/१-१५ म अनेक बातो का वणन है जिनका साम्य श्रीकृष्ण के जीवन से प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाय कि इद्र ही अपने नाम को परिवर्तित करके श्रीकृष्ण के रूप म हमारे समक्ष आगये हैं, तो इस कथन म कोई अयुक्ति नहीं होगी। वदिक युग म इद्र सवमाय थे। इसी कारण उन्ही के गुणा का अवतरण श्रीकृष्ण म कर लेना असंगत प्रतीत नही होता। व्यक्तित्व की यह एकता केवल नामो म ही अपना अन्तर रखती हैं, गुणो मे नही। अत श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति मे इद्र के गुणो एव क्रियाओ का महत् योग है। श्रीकृष्ण विकास क्रम म पहले विष्णु, उपेद्र, वामरूप मे इद्र से अधिक महत्वपूण हो गय, विष्णु म इद्र समा गये। यही विष्णु कृष्ण रूप म अवतरित हुए। इद्र का विकसित रूप ही कृष्ण म प्रकट हुआ। यही कृष्ण नारायण हरि, वासुदेव आदि रूपो मे वष्णव सम्प्रदाया म माय हुए। भागवत की छाप के बाद इष्ट देव होकर भगवान श्रीकृष्ण रूप म इनकी मायता हुई। इसे श्रीकृष्ण का प्रथम विस्तृत वणन महाभारत मे है।

महाभारत मे श्रीकृष्ण

वदिक ग्रथो के उपरात श्रीकृष्ण का विस्तृत परिचय देने वाला प्रथम प्रसिद्ध ग्रथ महाभारत है। इसम उह परब्रह्म के रूप मे स्वीकार किया गया है। वे विष्णु के अवतार और विराट पुरुष हैं। श्रीकृष्ण के पूव सभी नामो मे समवय स्थापित करने की चेष्टा इसी ग्रथ से प्रारम्भ होती है। एक स्तुति में कहा गया है कि हे श्रीकृष्ण तुम अदिति के पुत्र हो, इद्र के छोटे भाई हो, तुम विष्णु हो। बालपन म ही तुमने ध्रुवलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को तीन परो से नाप लिया। युगान्त म सब भूतो का सहार करके तथा आत्मा म जगत् को आत्मसात् करके तुम स्थित होते हो। तुम्हारे जसे कम पूव या अपर काल मे कोई नही कर सका। तुम ब्रह्म के साथ वराज लोक मे निवास करते हो। इस स्तुति से स्पष्ट है कि उपेद्र विष्णु वामन और ब्रह्म को एक ही माना गया है। यही श्रीकृष्ण व्रज की लीलाओ के कर्ता हैं। अजुन के

---

[1] परायती मातरम वचष्ट न गायनुनुगमिमानि।
त्वष्टुगृहे अपिवत् सोममिद्र शतधय चम्वासुतस्य।

अनुसार नर और नारायण एक हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि जो भगवान नर तथा हरि हैं वही नारायण भी हैं।[1] यही नारायण जगन्नियन्ता, देवाधिदेव, अखिल लोकपति वासुदेव श्रीकृष्ण के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। सभा पर्व में भीष्म ने कहा है कि 'कृष्ण ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति स्थान एवं विश्रामभूमि हैं और इस चराचर प्राणि-जगत का अस्तित्व उन्हीं के लिए है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति सनातन धर्म कर्ता और समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं अतएव पूजनीय हैं।[2]

महाभारत में श्रीकृष्ण को वासुदेव कहने का कारण यह है कि वे अपनी अलौकिक शक्ति से सभी प्राणियों को आच्छादित कर लेते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं सूर्य के रूप में अपनी किरणों से समस्त विश्व को ढक लेता हूँ और सभी प्राणियों का अधिवास हूँ। इसी से मुझे वासुदेव कहा गया है। शांति पर्व में कहा गया है कि 'सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वर्य विधिमाश्रित'। सर्वभूत कृतावासो वासुदेवेति चोच्यते।'[3] गीता में भी वासुदेव नाम का समर्थन है 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि'। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि जिसमें सब बसते हैं तथा जो सबमें रहता है वही वासुदेव है।[4] विष्णु पुराण में बताया गया है कि प्रभु समस्त भूतों में व्याप्त हैं। समस्त भूत उन्हीं में रहते हैं। वे ही संसार के रचयिता हैं रक्षक हैं अतः वासुदेव कहलाते हैं।[5]

मथुरा के उत्तरी भाग में रहने वाले राजवंश की सन्तति को वासुदेव कहा गया है।[6] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वृष्णि वंश का उल्लेख है। पाणिनी के अनुसार वासुदेव उपास्य देव हैं। इन्हीं के साथ अर्जुन का नाम लिया गया

---

[1] नरस्त्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम्। काले लोकमिमं प्राप्तौ नर नारायणावृषी। अनन्य पार्थमत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च। नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ। महाभारत १२/४६ ४७

[2] कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्यय। कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदंभूतं चराचरम्। एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातन। परश्च सर्व भूतेभ्य स्तस्मात् पूज्यतमो हरि। सभा-पर्व ३८/२३-२

[3] शान्ति-पर्व ३४७/७४

[4] सर्वे वसति वै यस्मिन् सर्वस्मिन् वसते च य। तमाहुर्वासुदेव च योगिनस्तत्वदर्शिन। महाभारत ५२/८६

[5] भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसत्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगता वासुदेवस्तत प्रभु। विष्णुपुराण अंश ६ अ ५/८२

[6] घट जातक

है ("वासुदेवाजु नाम्या वुज ४।३।९३)"। पतञ्जलि के अनुसार वासुदेव और वलदेव दोनो ही वृष्णि नाम है। बौद्ध ग्रथ 'निद्देश' मे वासुदेव के साम्प्रदायिक अनुयायियो की चर्चा है अत वासुदेव कृष्ण और देवकीपुत्र कृष्ण दोनो एक हैं तथा वासुदेव ही श्रीकृष्ण नाम के पूव रूप हैं।

महाभारत म इन सभी नामा का समन्वय है। श्रीकृष्ण नाम मे उनके प्र माणाश्री शक्ति की प्रवलता है। यह सब नामा मे श्रेष्ठ है। पृथ्वी के सुख पहुचान के अथ म इसका व्यवहार होता है।[1] दत्यो से आक्रात पृथ्वी एक बार ब्रह्मा के शरण म गई थी और भगवान् ने दत्यो को मार करके पृथ्वी को सुख दिया था।[2]

महाभारत म श्रीकृष्ण के नाम पर्याया को एक ही व्यक्ति का बोधक माना गया है। यहा विष्णु के माध्यम से जिस भागवत धम का समथन किया गया है उसके उपास्य श्रीकृष्ण ही है। नारायणी उपाख्यान मे श्रीकृष्ण और विष्णु को परमेश्वर माना गया है। शान्ति पव की इस कथा म नारायण की पूजा करने वालो का निवास स्थान श्वेत द्विप वताया गया है। इसी नारायण को ब्रह्माण्ड पुराणकार न वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण के नाम से बताया है। इसी पुराण के अनुसार वकुण्ठ म निवास करने वाले भगवान पुरुषोत्तम, श्वेत द्विपवासी नारायण ही श्रीकृष्ण हैं।[3]

महामुनि नारद ने बदरिकाश्रम म नारायण को प्रकृति की पूजा मे सलग्न देखा था। सप्तर्षिया द्वारा पाञ्चरात्र धम का शास्त्र तयार किये जाने पर नारायण उन्हे वेदा का सार वताते हैं। इस शब्द की व्याख्या मे मनु ने वताया है कि ईश्वर की प्रथम सृष्टि जल है (अप एव ससर्जादौ तासु वीयमथासृजत्) जल को 'नारा कहते हैं इसी मे निवास किये जाने से उन्हे नारायण कहते है।[4] वह स्वय अजन्मा है, परन्तु उसकी नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। नारद की स्तुति से प्रसन्न होकर नारायण ने कहा है कि जो नित्य

---

1 कृषिभू वाचक शब्द णश्च निवृत्तिवाचक । विष्णुस्तदभाव योगाच्च कृष्णो भवति शाश्वत ।

2 भूमिदृप्त नृप व्याज दत्यानीक शतायुत । आक्राता भूमि भारेण ब्रह्माण शरण ययौ । भागवत ।

3 यो वकुण्ठे चतुर्वाहुभगवान पुरुषोत्तम । य एव श्वेतद्विपेतो नरो नारायणश्च य । स एव वृन्दावन भू विहारी नन्दनन्दन । ब्रह्माण्ड पुराण ।

4 आपो नरा इति प्रोक्ता आपो व नर सूनव। । ता यदस्यायन पूव तेन नारायण स्मृत । मनु स्मृति ।

अन्तरात्मा शाश्वत और त्रिगुणों से परे है, जो आत्मा रूप में प्राणियों में साक्षी बनकर रहता है वह परमेश्वर वासुदेव है। प्रलय में सभी तत्वों के एक दूसरे में समाहित हो जाने पर वासुदेव ही शेष रह जाते हैं। यही वासुदेव सूक्ष्म रूप में शरीर में निवास करते हैं। मार्कण्डेय मुनि ने प्रलय में सम्पूर्ण जगत को आत्मसात् करके वट वृक्ष पर शयन करने वाले विष्णु को नारायण एवं युधिष्ठिर के सम्बन्धी श्रीकृष्ण जनार्दन बताया है।[1] इस प्रकार वासुदेव, नारायण और जनार्दन तीनों एक ही हैं।

शान्ति पर्व में भगवान के अवतारों का वर्णन है। वहाँ हंस, कूर्म, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, राम, सात्वत और कल्कि अवतारों की चर्चा है। अध्याय ३४१–३४२ में नारायण के विभिन्न नामों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्वयं उन्हीं के मुख से कहलाया गया है। वहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्राणियों के शरीर में मेरा अयन या निवास रहता है इससे मुझे नारायण कहा गया है। सारे विश्व में व्याप्त होने और विश्व का मुझ में स्थित होने के कारण मैं ही वासुदेव हूँ। विश्व को व्याप्त करने के कारण मुझे विष्णु कहते हैं। पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष मैं ही हूँ इससे मैं दामोदर कहा जाता हूँ। सूर्य चन्द्र और अग्नि की किरणें मेरे केश हैं इससे मैं केशव हूँ। 'गो' पृथ्वी को ऊपर ले जाने के कारण मैं गोविन्द हूँ। यज्ञ का हविर्भाग ग्रहण करने के कारण 'हरि' हूँ। सत्व गुण की प्रधानता से सात्वत और लोहे के काले फाल के रूप में पृथ्वी जोतने और रंग का काला होने से मैं कृष्ण हूँ।[2]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नारायण, वासुदेव, विष्णु, दामोदर, केशव, गोविन्द और हरि आदि विभिन्न पर्याय श्रीकृष्ण के ही वाचक हैं। ये भिन्न नाम उनके विभिन्न गुणों और विशेषताओं का बोध कराते हैं। इनसे व्यक्तित्व की एकता में कोई अन्तर नहीं आता। दूसरी बात यह भी स्पष्ट है कि काले वर्ण के कारण ही उन्हें श्रीकृष्ण कहा गया। वैदिक काल में भी इसका समर्थन मिलता है। वहाँ पर अङ्गिरस नामक व्यक्ति को वर्ण में काला होने के कारण मन्त्र ऋषि द्वारा कृष्ण कहा गया है। इससे उनके वर्णगत इस गुण का समर्थन होता है। अतः श्रीकृष्ण को रूप विशेषता के साथ एवं उपास्यत्व के रूप में भी इनका विकास होने लग गया था। इनके विभिन्न नामों के व्याख्यान की प्रवृत्ति दीख पड़ने लग गई थी। वैदिक ग्रन्थों में परमेश्वर के

---

[1] स एष देवः सदा हृष्टः पुराणपुरुषोत्तमः ।
स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः ।

[2] म० भा० ३४१–३४२

विभिन्न नामा का समन्वय भी दिखाई पडता है। इसी से दाशनिक ग्रथो मे भी एकत्व का प्रतिपादन है। वहा पर भी परमात्मा के समवित रूप की व्याख्या करके चतुर्व्यूह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

यहा यह बताया गया है कि जो व्यक्ति अधिदेव चतुष्टय (अनिरुद्ध, प्रद्युम्न सकपण और वासुदेव), अध्यात्म चतुष्टय (विराट, सूत्रात्मा, अन्तर्यामि और शुद्ध ब्रह्म) तथा अवस्था चतुष्टय (विश्व, तजस, प्रान और तुरीय) को क्रमश स्थूल से सूक्ष्म म लय कर देता है, वह एक कल्याण पुरुष तक पहुँच जाता है। इसी पुरुष को योग म परमात्मा, सांख्य मे एकात्मा और वेदान्त मे केवलात्मा कहा गया है। एक रूप य सभी भिन्न दशना म अलग अलग ढग से वर्णित है। नाम की इस भिन्नता के होन पर भी स्वरूप मे किसी प्रकार का अन्तर नही है।

भगवान के इस चतुर्व्यूह सिद्धान्त का प्रतिपादन महाभारत मे भी है। इसमे भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति बताई गई है। वसु उपरिचर के उपाख्यानो म जहाँ हरि के महत्व का प्रतिपादन किया गया है वही नारद प्रसग मे चतुर्व्यूह भगवान के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। ऐसा कहा गया है कि 'निगुणात्मक क्षेत्रज्ञ भगवान वासुदेव जो जीव रूप मे अवतार लेता है वह सकपण है। सकपण से मन रूप म अवतार लेने वाला प्रद्युम्न है प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का उद्भव होता है। वही अहकार और इश्वर हैं। यहा पर यह बताया गया है कि प्रद्युम्न (मन) अनिरुद्ध (अहकार) सकपण (बलराम) जीव के अवतार और वासुदेव के अवतार श्रीकृष्ण हैं। चतुर्व्यूह सिद्धान्त की यह कल्पना सात्वत सम्प्रदाय म मान्य रही है और ये लोग श्रीकृष्ण के ही वशज थे। अत श्रीकृष्ण ही सात्वत वासुदेव, नारायण और विष्णु रूप मे प्रतिष्ठित हो गये।

महाभारत की गणना इतिहास ग्रन्थ के रूप म होती है। इसम श्रीकृष्ण ही अधिकाश घटनाओ के नियामक और सूत्रधार हैं। वे सन्धि-वाहक, शान्ति दूत और गीता के उपदेष्टा भी हैं। समदृष्टि के कारण दोनो पक्षो की सहायता करना उनका परम लक्ष्य है। व राजसूय यज्ञ के नियामक विचारवान् व्यक्ति हैं। भीष्म ने कहा है कि श्रीकृष्ण वेद वेदाग वेत्ता और ऋत्विक् होने से सबसे अधिक आदर के पात्र ह।[1] अपनी दिव्यता के कारण कालगति म पडे हुए कुल को नष्ट होन से नही बचाते हैं। गीता म इसी दिव्यता का समथन किया गया है 'जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वत। त्यक्त्वा देह पुनजन्म

[1] सभा पव अ० ३८

नेऽति मामेति सोऽजु न ।[1] महाभारत म भी कृष्ण के विराट रूप का वणन है। युद्ध के उपरात उद्दग मुनि द्वारा श्रीकृष्ण से अध्यात्म दशन की व्याख्या करने को कहा है। यहा पर इस दशन को समझाने के साथ ही भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया है। वहाँ उनके इस रूप को वष्णव रूप की सना दी गई है।[2] आगे चलकर श्रीकृष्ण के विष्णु रूप की व्याख्या[3] करके नारायण और विष्णु रूप की एकता स्थापित की गई है।

महाभारत मे श्रीकृष्ण का मूल उद्देश्य धम की स्थापना है। अपनी समदृष्टि के कारण वे दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनो की ही सहायता करते हैं। दुर्योधन की सहायता उनकी नारायणी सना और युधिष्ठिर के पक्ष म वे स्वय युद्ध क्षेत्र मे उपस्थित रहते हैं। द्रौपदी के चीर हरण प्रसग पर अपनी अलौकिकता का सकेत करके लोगो को अपने स्वरूप का सकेत दे देते है। इसी न्यायता के आधार पर उन्होंने राजनेतृत्व और नाति का निर्धारण किया है। लोगो की रक्षा करके अपनी लोक दृष्टि का उन्मीलन किया है। वे आसक्तिहीन समता-परायण और कमयोगी हैं। उनकी न्यायता ज्ञान विज्ञान सम्पन्नता व्युत्पन्नमतित्व आदि विश्व कल्याण से प्रेरित होकर ही प्रत्यक्ष होता है। इसी दृष्टि के पूत्यथ उनम ईश्वरत्व का आरोप है।

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाभारत म श्रीकृष्ण के अनेक नामा म समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। इस ग्रन्थ म उन्हें उच्च कोटि का राजनतिक योद्धा और विष्णु का अवतार माना गया है। महाभारत के ही एक अश गीता म उन्ह अवतारी पुरुष माना गया है। इनके सम्पूण व्यक्तित्व का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकालीन अनुराग के भाव भीने आलम्बन न होकर इस कृष्ण म क्षात्र धम का तेज और शक्ति ही अधिक प्रबल है। क्षत्रिय योद्धा सात्वता द्वारा पाचरात्र धम का प्रचार हुआ था। इससे श्रीकृष्ण में भी उन गुणा का आना अनिवाय हो गया था। उनका यही व्यक्तित्व पौराणिक युग के अवतार में हिन्दी कवियो का आलम्बन बन गया। इस प्रकार जिस रूप का उद्घाटन हुआ वह अपने पूव ग्रन्थो का आधार लेकर भी अपनी नवीनता में आकषक और ग्राह्य था।

---

1 श्रीमद्भगवद्गीता ४/६

2 आश्वमधिक पव अ० ५३-५४

3 शान्ति पव अ० ४८

पुराणो में श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति हमारे ग्रथ का एक प्रमुख उपादान है। आदि से ही श्रीकृष्ण के किसी न किसी रूप के प्रतिपादन की परम्परा रही है। वदिक ग्रन्थो मे वद, उपनिषद्, ब्राह्मण और आरण्यक आदि म श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति मिलती है। वेदो से आरम्भ करके महाभारत तक श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का एक क्रमिक विकास दीख पडता है। वे विष्णु उपेन्द्र आदित्य, नारायण, वासुदव, जनादन और श्रीकृष्ण सना को धारण करत हुए दीख पडते हैं। महाभारत मे उनके विभिन्न नामा और व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओ के समन्वय की चेष्टा आरम्भ हो गई थी। पुराणो का प्रमुख उद्देश्य उनके माहात्म्य के वणन के साथ उनम ईश्वरत्व का आरोप भी था। एक प्रमुख उपास्य देव के रूप म श्रीकृष्ण की महत्ता बढती चली गई है। यही पौराणिक श्रीकृष्ण बाद मे साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रमुख आलम्बन बन गय और उनके स्वरूप का जो हृदय आवजक वणन किया गया, वह जन जन क मानस को प्रफुल्लित कर देन म पूण समथ सिद्ध हुआ।

पौराणिक साहित्य म श्रीकृष्ण का वणन कई पुराणा म है। श्रीमद् भागवत, हरिवश, ब्रह्मववत्य, विष्णु ब्रह्म, पद्म, वायु, वामन, कूम गरुण, अग्नि, ब्रह्माण्ड, वृहन्नारदीय आदि पुराणा म श्रीकृष्ण की कथा है। इनम भागवत, विष्णु ब्रह्मववत्य वृहन्नारदीय और पद्म पुराण का भक्ति स अधिक सम्बन्ध है। भक्तिकालीन रचनाओ से इनका प्रत्यक्ष और सीधा सम्बन्ध है। इनम विष्णु का परब्रह्म स्वीकार किया गया है और श्रीकृष्ण उन्ही परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं। वे ही सृष्टि के कता, पालक और सहारक हैं। कही पर जनादन को सृष्टि का रचयिता, पालक और सहारक कहा गया है। इस प्रकार दोना एक ही हैं। पुराणो म अवतार वाद का पूण विकास हुआ है। यही पर श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध अनेक लीलाओ, पूतना वध, शकट भजन यमला जुन, माखनचोरी का वणन आरम्भ हो गया था। इन पुराणो मे से अधिकाश मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का यत्र-तत्र सकेत है केवल चार पुराणो–भागवत, हरिवश, ब्रह्मववत्य और विष्णु मे कुछ विस्तार भी प्राप्त होता है। क्रमश सभी पुराणो मे वर्णित श्रीकृष्ण का सकेत किया जायगा।

विष्णु पुराण मे रासलीला सम्बन्धी श्लोक है। यहा श्रीकृष्ण के मनोरम रूप का वणन है।[1] श्री कृष्ण का कमल सदृश खिलामुख गोपिकाओ

---

[1] काचिद् भ्रूभगर कृत्वा ललाटफलक हरिम्।
विलोक्य नेत्रभृगाभ्या पपौ तन्मुख पकजम्। विष्णु पुराण १३/४५

के सतप्त नेत्रों के प्रावपण का सापन है। उनकी नृत्य की गति और वलय का मधुर रव दोनों मिलकर गति एव ध्वनि सौन्दर्य के जनक हो जाते हैं "तत स ववृते रासश्चलद्वलय निस्वन। अनुयात शरत्काव्य गेय गीतिरनुक्रमात्।
इसी पुराण के चौथे अश के १५वें अध्याय म कृष्ण जन्म और पाँचवे म श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है। इस पुराण म परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण जगत पालक कर्ता और सहारक हैं। स्वय ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की स्तुति म कहा है कि 'हे देवताओं के अगोचर प्रभु! परा और अपरा य दो विद्याए आप ही हैं। हे नाथ! दोनो आप ही के मूत और अमूत रूप हैं। हे अत्यन्त सूक्ष्म! हे विराट स्वरूप! हे सव हे सवज्ञ! शब्द ब्रह्म और परब्रह्म ये दोनों आपके ब्रह्ममय रूप ही है।[1] ससार के सभी ज्योति पुज तथा त्रिभुवन वन पवत दिशाए नदियाँ आदि भी विष्णु ही हैं। इस कथन म विष्णु की महत्ता व्यापकता इस शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ को ही प्रतिपादित करता है। विष्णु पुराण के इस कृष्णावतार की समानता ब्रह्मपुराण म वर्णित कृष्णावतार से है।

रासलीला के प्रसग पर राधा के व्यक्तित्व का प्रारम्भिक रूप इस पुराण म है। जरासध वध के साथ अन्य भी अनेक कथाए हैं। ब्रह्मपुराण म व्यास द्वारा विष्णु की स्तुति विष्णु के सिर के केश से श्रीकृष्ण का उद्भव (अध्याय १८१) शकट भग पूतना वध यमलार्जुन कथा कालियदमन कस-वध रुक्मिणि का राक्षस विवाह पारिजातवृक्ष का ले आना द्विविद-वानर कथा श्रीकृष्ण का स्वग गमन आदि अनेक प्रसग है।

पद्म पुराण के पाताल खण्ड म श्रीकृष्ण की कथा है। उत्तर खण्ड म श्रीकृष्ण का अवतार व अन्य चरित्र है। वायु पुराण के अध्याय ६६-६७ म श्रीकृष्ण के वश का वर्णन है। अग्नि पुराण म कृष्णावतार की कथा है। ब्रह्माण्ड पुराण के २०वें अध्याय म कृष्ण के आविर्भाव की चर्चा और देवी भागवत के चौथे स्कन्ध म श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है। इन पुराणों के

---

1 द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चवापरा तथा।
त एव मत्तो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ॥ ३४

द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन् सवसवविद्।
शब्दब्रह्म पर चव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य मत्। ५/१/३५ विष्णु पुराण

2 ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णु गिरयो दिशाश्च। नद्य समुद्राश्च स एव सर्व यदस्ति यन्नास्ति च विश्ववय। २/१२/३८

अतिरिक्त अन्य भी बहुत से पुराण जैसे पद्म[1], वायु[2], वामन, कूर्म[3] और गरुड[4] में भी श्रीकृष्ण की कथा है। पद्म पुराण में श्रीकृष्ण असुर संहारक और माखन चोर हैं। इसमें पारिजात वृक्ष की कथा, बाणासुर कथा और रासलीला का वर्णन है। बृहन्नारदीय पुराण में विष्णु को परमात्मा का रूप माना गया है। इसमें कहा गया है कि जगत के कर्ता ब्रह्मा इनकी नाभि से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए ये विष्णु ही परमात्मा रूप है इनसे परे अन्य कोई नहीं है। विष्णु से सभी चर और अचर उत्पन्न हुए हैं कुछ भी विष्णु से भिन्न नहीं है। ब्रह्मा ने इस विष्णु की स्तुति करते हुए उन्हें सबका मूल कारण और परमेश्वर माना है। पद्म पुराण के पाताल खण्ड अध्याय ६९ में विष्णु परमात्मा और भगवान् हैं। वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर जगत के लिए प्रकट हुए हैं। इसी श्रीहरि के अंश से कोटि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर उत्पन्न होते हैं। इन्हीं से सृष्टि का पालन, नाश और उत्पत्ति होती है।[5]

वायु पुराण में श्रीकृष्ण जन्म स्यमन्तक मणि, श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र पत्नियों का वर्णन है परन्तु राधा नाम की किसी गोपी का कोई उल्लेख नहीं है। इसी में आभीरों के दश राजाओं का वर्णन है। वामन पुराण में केशी, मुर और कालनेमि के वध की चर्चा है। वामनावतार और त्रिविक्रम की भी कथा है। कूर्म पुराण में यदुवंश कृष्ण द्वारा महादेव की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है। गरुड पुराण के आचार काण्ड में श्रीकृष्ण की कथा का विस्तार दिया गया है। पूतना वध यमलार्जुन कथा, गोवर्धन धारण केशी चाणूर वध, कालिय दमन शकटासुर प्रसंग, सान्दीपनी द्वारा शिक्षा की प्राप्ति और श्रीकृष्ण की आठ पत्नियों आदि का उल्लेख है।

हरिवंश पुराण में श्रीकृष्ण

हरिवंश पुराण को महाभारत के परिशिष्ट के रूप में स्वीकार किया गया है। पुराणों में इसकी प्राचीनता असंदिग्ध रही है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण का सर्वप्रथम वर्णन इसी पुराण में है। कृष्ण की इस कथा को सौति उग्रश्रवा ने शौनक को सुनाया था। इसमें श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का आकर्षक

---

1 पाताल खण्ड। वृन्दावन महात्म्य। अध्याय ८९ से ८३ तक

2 द्वितीय खण्ड। अध्याय ३४

3 पूर्वार्द्ध अध्याय २३-२७

4 आचार काण्ड। अध्याय १४८

5 पद्म पुराण। पाताल खण्ड अध्याय ६९

वर्णन हुआ है । इस भौतिक सौंदर्य की समस्त निधियों के साथ ब्रह्म रूप श्रीकृष्ण का अलौकिक और अद्वितीय सौंदर्य भी उल्लास का विशेष कारण है । यह सौंदर्य रास के प्रसंग पर और अधिक प्रस्फुटित हो जाता है ।

इस पुराण की प्राचीनता के कारण इसे प्रमाण रूप में ग्रहण किया जा सकता है । इसमें श्रीकृष्ण के दवी और मानवीय नाना रूपों का समन्वय है । वे विष्णु के अवतार परब्रह्म और विराट हैं । गोरक्ष व पुरुष, वीर योद्धा और महापुरुष रूप में इनको उपस्थित किया गया है । कृष्ण चरित्र और विष्णु भक्ति का प्रारम्भिक रूप यहीं प्राप्त होता है । इसमें वर्णित कथाओं का प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पड़ा है । यहाँ की अस्पष्ट और सांकेतिक रूप में वर्णित कथाएँ ही बाद के साहित्य में विस्तृत रूप धारण करके मालासित हो जाती हैं । इसी से कृष्ण चरित्र को प्रभावित करने में भागवत की भाँति ही इस पुराण का भी अधिक महत्व है ।

इसमें कृष्ण के गोपाल रूप और दार्शनिक कृष्ण का स्पष्ट समन्वय है । नारद ने बाल्यकाल से मथुरा तक की कथा में उसके रहस्यपूर्ण अंशों की सांकेतिक व्याख्या प्रस्तुत की है । शिव ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उन्हें ब्रह्मविद् अग्नि और ज्योतिपति, सूर्यपुत्र और तेज का स्वामी कहा है । 'अग्नयेऽग्निपतनुभ्य ज्योतिषां पतये नमः । सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः ।' इसमें श्रीकृष्ण का सम्बन्ध ज्योति एवं ज्योतिपति से करके उनके आदित्य रूप तेज पुंज की व्याख्या की गई है । यह उनका वह्नि रूप है जिसका संकेत पीछे किया जा चुका है । इसमें प्रयुक्त इन दोनों विशेषणों का सम्बन्ध छान्दोग्य उपनिषद् और गीता में वर्णित श्रीकृष्ण के सूर्य और ज्योति रूप विशेषणों का ही प्रतिरूप है । इससे इन दोनों ग्रन्थों के कृष्ण ही 'हरिवंश' में आलम्बन बने हुए हैं । छान्दोग्य में कृष्ण स्वयं भी सूर्यपूजक हैं उन्हें उत्तम ज्योति की पूजा सिखाई जाती है । अन्य पुराणों में श्रीकृष्ण के इस ज्योति रूप का वर्णन नहीं है । इस वर्णन की दृष्टि से छान्दोग्य महाभारत, गीता और हरिवंश पुराण के श्रीकृष्ण की एकता स्वयं सिद्ध हो जाती है । दार्शनिक एवं उपास्य श्रीकृष्ण का समन्वय भी इन ग्रन्थों में हुआ है । उत्तर वैदिक काल के गोपाल कृष्ण यहाँ आकर छान्दोग्य कृष्ण की भाँति अपने गुरु आंगिरस के समान ही सूर्यपूजक और ज्योति को महत्व देने वाले बन जाते हैं । इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित श्रीकृष्ण की एकता सिद्ध हो जाती है ।

श्रीकृष्ण की अनेक कथाओं का वर्णन इसमें है । कालियदमन नाग पत्नियों की स्तुति रासलीला, कंस, धनुभंग, कुवलयापीड प्रसंग चाणूर मुष्टिक

वध, बलराम का गोकुल गमन, रुक्मिणीहरण, काल यवन प्रसग, प्रद्युम्नकथा, बाणासुर आख्यान पौण्ड्रक का द्वारिका पर आक्रमण, श्रीकृष्ण का कैलाश गमन, बदरिकाश्रम मे तपस्या आदि अनेक प्रसग इस पुराण मे आये हैं। इस प्रकार इसम विष्णु भगवान और कृष्णावतार की कथा का विस्तार मिल गया है। वृष्णिवश और श्रीकृष्ण के जन्म पर भी विचार है। विष्णुभक्ति के विकास का क्रमिक रूप यहाँ से आरम्भ हो जाता है विभिन्न रूपा म विष्णु के नामो का समन्वय भी आरम्भ हो जाता है। वासुदेव, नारायण श्रीकृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया। बाद मे तो कृष्ण को भगवान ही मान लेने की परम्परा चल पडी। भगवान कृष्ण की लीलाओ के बीच म प्रकृति का वणन भी किया गया है। यही उनके रूप और सौन्दय की अभिव्यक्ति भी अनेक ढग से हुई है।

ब्रह्मवैवत्य पुराण में श्रीकृष्ण

हरिवश के अतिरिक्त ब्रह्मववत्य म भी श्रीकृष्ण की अनक कथाएँ मिलती हैं। श्रीकृष्ण के जन्मादि और लीलाओ से सम्बन्धित इन पुराण की बडी महत्ता है। इसम श्रीकृष्ण परब्रह्म है। ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है कि आप ही जगत के स्वामी है सुख दुख और ससार के कारण हैं। शकर भी आपसे पार नही पाते। जो कुछ ससार म है सब आपका ही अश है।[1] एक अन्य स्थल पर भी इसी भाव का समथन किया गया है कि आप ही ब्रह्मधाम और निगुण निराकार हैं। आप ही सगुण है। आप ही साक्षी रूप है निर्लिप्त हैं और परमात्मा हैं। प्रकृति और पुरुष के भी आप ही कारण है।[2] परमात्मा और जगत का प्रादुर्भाव भी आप से ही हुआ है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के मूल कारण के रूप म श्रीकृष्ण का विशद वणन है।

ब्रह्मववत्य म गोलोक राधा मन्दिर राधा कृष्ण का सांख्य के अनुसार प्रकृति-पुरुष रूप म सम्बन्ध, श्रीकृष्ण के अशावतारा आदि का वणन किया गया है। इसके सातवें अध्याय म श्रीकृष्ण जन्माख्यान आठवें मे जन्माष्टमी व्रत, नौवें मे नन्द के पुत्रोत्सव का वणन है। कस बध मथुरागमन, उद्धव कथा आदि भी है। शृङ्गारिक वणना मे उचता है। राधा के अस्तित्व और वणना की विशदता की दृष्टि से इस पुराण की बहुत अधिक महत्ता है। पौराणिक साहित्य मे सवप्रथम इसी पुराण मे राधा की परिचय प्राप्त होता है, जबकि

---

[1] ब्रह्मवैवर्त्य पुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्ड २०/४०–५१

[2] ब्रह्मवैवत्य पुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १/३६–३७

अन्य पुराण इस सम्बन्ध में मौन ही हैं। भागवत की एक प्रिय गोपी ही कृष्ण के राग में रंजित होकर यहाँ राधा नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। इसी प्रसंग में प्रकृति और पुरुष के एकीकरण का सफल प्रयास किया गया है। सांख्य की यह दृष्टि अन्य स्थलों पर उपलब्ध नहीं है।

इस पुराण में राधा का विस्तृत वर्णन है। राधाकृष्ण की प्राणेश्वरी है, उनकी शक्ति है और प्रकृति है। कृष्ण कहते हैं कि हे राधा तुममें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे दूध में सफेदी अग्नि में दाहकता और पृथ्वी में गंध रहता है वैसे ही मैं सदा तुझ में रहता हूँ। तुम संसार की आधार हो और मैं कारण रूप हूँ। मैं जब तुमसे अलग रहता हूँ तो लोग मुझे कृष्ण और जब साथ रहता हूँ तो श्रीकृष्ण कहते हैं।[1] इसी में राधा के महात्म्य का वर्णन भी किया गया है। राधा शब्द में प्रयुक्त रकार का उच्चारण करोड़ों जन्मों के अघ शुभ और अशुभ कर्मफलों को नष्ट करता है। आकार गर्भवास और मृत्यु रोगादि से छुड़ाता है। धकार आयु की हानि से बचाता है और आकार भव-बन्धन से मुक्त करता है।[2] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन युग में राधा को ही सर्वशक्तिशालिनी मानकर पूजा उपासना प्रचलित हो गई थी। बाद के साहित्य में इस राधावाद का पूर्ण प्रचार हो गया।

इस पुराण की साहित्यिक दृष्टि भी दर्शनीय है। श्रीकृष्ण के जन्म पर उनके रूपाकार का मार्मिक चित्रण है। जलदप्रभा से मण्डित कृष्ण का रूप अतीव सुन्दर था। वे सुन्दर शरद पूर्णिमा के समान मुख और इन्दीवर तुल्य लोचना वाले थे। सुविस्तृत वक्ष और लाल कमल के समान पद थे —
इन्दु पुत्र भूमिस्थ नवीन नीरद प्रभम्। अतीव सुन्दर नग्न पश्यन्त गृहशेखरम्।
शरत्पार्वण चन्द्रास्य नीलेन्दीवर लोचनम्। ब्रह्मवैवर्त पुराण ६।५४ ५८

इस स्थल पर वर्णित सौन्दर्य आलंकारिक पद्धति का अनुसरण करता है। स्वयं कृष्ण का रूप सौन्दर्य मूर्त है। यही सौन्दर्य चेतना आगे के हिन्दी कवियों में दीख पड़ती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राधा विषयक कल्पना का मूल उपजीव्य ग्रन्थ यही पुराण है। सर्व प्रथम इसी पुराण में विस्तार से किया गया वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से इसकी अत्यधिक महत्ता स्वीकार की जा सकती है। इसी पुराण के साथ श्रीमद्भागवत् पुराण भी श्रीकृष्ण की लीलाओं का आधार ग्रन्थ माना जाता है।

---

1 ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १५/५६-६४
2 रेफ हि कोटि जन्मार्जित कर्मणां शुभाशुभम्। आकारो गर्भवास च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्। धकारादायुषो हानि आकारो भवबन्धनम्। ब्र० वै०पु०

श्रीमद् भागवत पुराण में श्रीकृष्ण—

श्रीकृष्ण के चरित्र से स्पष्ट और सीधा सम्बन्ध रखने वाले पुराणों में भागवत प्रमुख है। हिंदी के मध्यकालीन कवियों पर इस पुराण का अधिक प्रभाव पड़ा है। इसमें वैदिक युग से आरम्भ कर अब तक के वर्णित श्रीकृष्ण सम्बन्धी सभी सामग्रियों का सार संग्रह समन्वित रूप में दिया गया है। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण स्वयं भगवान रूप हैं और अन्य अवतार अंश रूप के ही बोधक माने गये हैं, 'एते चांश कला पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।[1] ऐसे स्थलों पर यह बताया गया है कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों नारायण के दो रूप कृष्ण और शुक्ल है, जिन्होंने असुरों के संहार के लिये अवतार लिया है।[2] इनका सोलहों कलाओं से युक्त पुरुषावतार है। सृष्टि के निर्माण प्रसंग पर बताया गया है कि इन्हीं से पंचभूतों की रचना हुई है। वे ब्रह्माण्ड का निर्माण करके अपने अन्तर्यामी रूप से प्राणियों में प्रवेश करके 'पुरुष' नाम को सार्थक करते हैं।[3]

ब्रह्मा की स्तुति के अवसर पर भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि, 'हे अधीश! क्या आप नारायण नहीं है? आप अवश्य ही नारायण है, क्योंकि आप सब जीवों का आत्मा और अखिल विश्व के साक्षी हैं।[4] धार्मिक दृष्टि से श्रीकृष्ण पर ब्रह्म के अवतार और भागवत धर्म के पुनरुद्धारक है। उनके इस अवतार रूप का समर्थन स्थान स्थान पर है। इसी से भागवत में भगवान के छः गुणों ऐश्वर्य, वीर्य यश, श्री ज्ञान, वैराग्य—का वर्णन है।

इस पुराण में भगवान ने स्वयं कहा है कि मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूं। सबमें अनुगत हूं इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। 'भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्। यथा भूतानि भूतेषुखंवाय्वग्निजलं मही। तथा हं च मनः प्राण भूतेंद्रिय गुणाश्रयः।[5] आगे चलकर कहा गया है कि 'जगत का परम कारण मैं ही हूं। मैं ब्रह्मा और महादेव हूं। मैं सबका आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वयं प्रकाश और उपाधि शून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मैं ही जगत की रचना पालन और संहार करता रहता हूँ। ऐसा ही भेद रहित

---

[1] श्रीमद्भागवत् १/३/२८
[2] ,, ,, २/७/२६
[3] ,, ,, ११/४/२
[4] ,, १०/१४/१४
[5] ,, ,, १०/४७/२६

विशुद्ध परब्रह्म स्वरूप मैं हूँ। इसम अनानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, तथा अन्य समस्त जीवा को विभिन्न रूप म देखता है।[1]

ब्रह्मा ने भी अपनी स्तुति म यही समर्थन किया गया है कि 'आपकी नाभि रूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर म समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार म प्रवृत्त हुआ हू।[2] इस ब्रह्मा की स्तुति से तथा गो रूप म पृथ्वी की प्रार्थना पर भगवान न अवतार लिया था। भगवान का यह स्वरूप लीला क निमित्त है इसी से श्रीकृष्ण एक आराध्य के रूप म मान्य हैं और इनकी अनेक लीलाओं का वर्णन भागवत म है। कई नये प्रसगो का भी इसम समावेश है। कृष्ण की एक प्रिय गोपी का वर्णन दशम स्कन्ध म मिलता है। श्रीकृष्ण काव्य को प्रभावित करने वाला यह एक विशिष्ट पुराण है।

इसम श्रीकृष्ण भक्ति के आधार हैं। इनके चरण कमल ससार सागर को पार करने के एक मात्र आधार हो सकते हैं। कहा गया है कि, 'जो मन और इन्द्रिय रूप नगरो म भरे हुए इस ससार सागर को योग आदि दुष्कर साधना से पार करना चाहते हैं उसका उस पार पहुँचना कठिन ही है क्योंकि उन्ह कर्णधार रूप श्री हरि का आश्रय प्राप्त नहीं है। अत तुम भगवान के आराधनीय चरण कमलो को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर लो।

> कृच्छ्रो महानिव भवार्णवमप्लवेशा षड्वर्गनुक्रम सुखेन तितीर्षन्ति।
> तत्व हरेभगवतो भजनीयमङ्घ्रि कृत्वाडुप व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥
> ४/२२/४० भागवत

उपर्युक्त विचारो के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक क्रमिक विकास ग्रन्थों मे दीख पडता है। परवर्ती रचनाओं म महाभारत गीता और भागवत का महत्व स्वीकार करना ही पडेगा। इन तीनो ही ग्रन्थो से श्रीकृष्ण के स्वरूप का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य रूप का जो सकेत महाभारत म मिलता है उसका पूर्ण विकास भागवत म है। महाभारत के आख्यानों म ही भागवत धर्म का पूर्व रूप दीख पडता है। गीता म इन दोनो का समन्वित रूप स्पष्ट है।

---

[1] श्रीमद् भागवत ४/७/५९-५२
[2] „ ४/९/२१

महाभारत और भागवत मे जो विभिन्न आख्यानो का वर्णन है, उसके विश्लेषण से यह प्रकट हो जाता है कि महाभारत का नारायणी धम और भागवत का भागवत धम दोनो एक ही है। गीता का निष्काम कमयोग भक्ति के अभाव म सफल नही हो सकता है। भागवत मे इसी भक्ति का पूर्ण रूप से प्रतिपादन किया गया है। गीता मे पुरुष रूप धारण कर अपने विश्व रूप का उन्मीलन करते हैं महाभारत के नारद प्रसग म भी इसी रूप का वणन है। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण पर ब्रह्म है। इनका यह रूप गीता के श्रीकृष्ण रूप से मिलता हैं। महाभारत म श्रीकृष्ण के पर ब्रह्मत्व के रूप म सशय बना रहता है। अत स्पष्ट है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण एक वीर योद्धा, गीता में पर ब्रह्म और भागवत म रसिकेश्वर वृदावन विहारी गापी प्रिय यशोदोत्सग लालित नन्दनन्दन है।

श्रीमद्भागवत म यद्यपि उनके अनेक रूपो का उद्घाटन हुआ है परन्तु प्रधानता उनके रासिकेश्वर रूप की है। उनमे सभी प्रवृत्तियो का समाहार है। वे एक साथ ही असुर सहारक वीर योद्धा बालकृष्ण, गोपी बिहारी, राजनीतिवेत्ता कूटनीतिज्ञ योगेश्वर, पर ब्रह्म आदि सब कुछ हैं। इसम बाल लीला, गोपी प्रसग, और अलौकिक चरित्रादि है। उत्तराद्ध मे श्रीकृष्ण असुर–सहारक, राजनीतिवत्ता, कूटनीतिज्ञ आदि हैं। इनका यह रूप महाभारत से मिलता है। इस प्रकार समन्वय की प्रवृत्ति दीख पडती है। पुराणा मे श्रीकृष्ण को नारायण ऋषि, वामन, क्षीरोपशायी, महस्रशीर्ष वैकुण्ठनाथ और नारायण आदि कहा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन तीनो ग्रथो के माध्यम से एक ही तत्व की व्याख्या भिन्न भिन्न ढग से की गई है। भागवत म श्रीकृष्ण लोकरजक और लोकरक्षक दोनो ही हैं। गीता का कमयोग ही भक्ति से मिलकर भक्ति की महत्ता का प्रतिपादक बन जाता है।

गीता मे भगवान श्रीकृष्ण परमपुरुष, सवव्यापक अव्यक्त और अमृत तत्व है। यही अव्यक्त व्यक्त होकर सगुण बन जाता है। श्रीकृष्ण उसी परम पुरुष के अवतार है। उन्होंने अपने को पुरुष कहकर व्यक्त रूप की उपासना का समथन किया है। गीता म ज्ञान कम और उपासना इन तीनो का समन्वय है, परन्तु भागवत मे श्री कृष्ण की भक्ति की महत्ता सर्वोपरि है। इसमे श्री कृष्ण पूर्णावतार है उनके षडगुणो की चर्चा है। गीता ने भी इन गुणो का समथन किया है।

भागवत म श्रीकृष्ण महाभारत के अनुसार ही पाण्डवो के सखा, गीता के उपदेष्टा और धम के सस्थापनाथ प्रकट हुए हैं। वे ही ब्रज के लीला–विधायक राज्य के सचालक और असुरो का सहार करने वाले हैं। योगेश्वर

रूप का पूर्ण विकास इस पुराण में हो सका है। अर्जुन द्वारा सम्बोधित गीता के वार्ष्णेय कृष्ण ही सात्वत हैं। भागवत में उन्हें सात्वतर्षभ कहा गया है। देवकी और वासुदेव पुत्र दोनों एक हैं। श्रीकृष्ण की ही वासुदेव संज्ञा है। वे इस पुराण में पूर्णब्रह्म हैं। इसीसे उनकी लीलाएं लौकिक नहीं हैं अपितु वे योगलीलाएं हैं। श्रीकृष्ण अपनी योग माया से एक का अनेक रूप धारण करके लीला में प्रवृत्त होते हैं। यही कारण है कि लौकिक स्थूल शरीर से गोप अंगनाएं अपने पतियों के समक्ष बनी रहती हुई भी योग माया के कारण दूसरा स्वरूप धारण कर श्री कृष्ण के सानिध्य का लाभ उठाती हैं। सच तो यह है कि श्रीकृष्ण परस्त्री का स्पर्श तक नहीं करते अपितु अपना चिन्मय श्री विग्रह ही प्रकट करके उसी रूप में रमण करते हुए अपनी दीव्यता का प्रतिपादन करते हैं। इनकी इच्छा रूप और आकार ग्रहण कर लेती हैं। वे स्वयं इस रूप से मुग्ध नहीं होते। इसीसे वे अलौकिक हैं। यही नहीं, अपितु राजनैतिक स्थिति में भी राज्य धर्म को न्याय और सत्य की कसौटी पर कसने वाले वे एक ऐसे राज्य नियन्ता हैं जो भक्ति प्लावित होकर ही हमारे समक्ष आते हैं। इसी कारण वे सर्वज्ञ, सर्वेश्वर और योगेश्वर हैं। वे भक्ति के आराध्य हैं और उनका रूप इतना आकर्षक है कि हिन्दी के भक्त कवियों का मूल उपजीव्य ग्रन्थ इसे ही माना जाने लगा। श्रीकृष्ण के इसी मोहक रूप की व्यञ्जना में कवियों ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगा दी। इन भक्त कवियों ने अपने आराध्य के रूप के साथ ही उनके सौन्दर्य का जो अनिर्वचनीय रूप प्रस्तुत किया उससे सम्पूर्ण मध्यकालीन हिन्दी साहित्य आप्लवित है। श्रीकृष्ण का यह रूप सौन्दर्य भक्त कवियों के आकर्षण का परम प्रेरक तत्व था। इसीसे इन कवियों ने श्रीकृष्ण के साथ अन्य गोपांगनाओं के रूप सौन्दर्य का भी वर्णन करके आश्रय और आलम्बन दोनों के ही सौन्दर्य का सम्यक रूप से उद्घाटन किया है। इस दृष्टि से आश्रय आलम्बन दोनों के ही सौन्दर्य की उत्तमता की व्यञ्जना आवश्यक मानी जाती है। यही कारण है कि मध्यकालीन श्रीकृष्ण साहित्य में रसेश्वर कृष्ण और रसेश्वरी राधा तथा अन्य गोपियों के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उच्चकोटि की है। इसी रूप सौन्दर्य के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत प्रबन्ध में बताया गया है। इसके पूर्व रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की एक संक्षिप्त परम्परा प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभावों की चर्चा भी की गई है।

रूप सौन्दर्य-स्वरूप निर्वचन

(१) सौन्दर्य स्वरूप और व्याख्या
(२) सौन्दर्य एवं अन्य समानार्थक शब्द
(३) आलंकारिकों का सौन्दर्य सम्बन्धी मत
(४) संस्कृत कवियों का मत
(५) हिन्दी कवियों का मत
(६) सुन्दर और उदात्त
(७) सुन्दर और कुरूप
(८) सौन्दर्य के तत्व

सौन्दर्य स्वरूप और व्याख्या

प्राय सभी देशो के साहित्य मे कवियो ने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने में अपनी अपनी रुचि का प्रदर्शन किया है। धार्मिक और लौकिक दोनो ही प्रकार की रचनाओ म इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। वेदो म सौन्दय के प्रति अभिरुचि प्रकट की गई है। ऋग्वेद के कई मत्रो मे अनेक स्थलो पर इस शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] इन स्थलो पर इस शब्द का वतमान रूप व्यवहृत नही हुआ है। यह शब्द विशेषण (सुनर) कारक (सुनरम्) सम्बोधन (सूनरि) अथवा प्रथमा विभक्ति (सूनरी) मे प्रयुक्त हुआ है। यही 'सुनर' शब्द भाषा विज्ञान के एक विशेष नियम के आधार पर सुन्दर बन जाता है। यहाँ मध्यागम हो जाता है। इसस अर्थ का विस्तार भी हो गया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'सुष्ठुनर इति सुनर' अर्थात् सुन्दर मानव है। इस व्युत्पत्ति से मानवीय सौन्दर्य ही लक्षित होता है परन्तु अर्थ विस्तार द्वारा इससे मानव और मानवतर जगत के अतिरिक्त कलागत और मानवकृत सौन्दर्य का बोध भी कराया जाता है। सामान्य व्यावहारिक अर्थ म सुन्दर शब्द का सम्बन्ध मूर्त वस्तु से ही लगाया जाता है और मानव जगत तक इसकी सीमा मानी जाती है।

सौन्दर्य एव अन्य समानार्थक शब्द —

साहित्य म प्राय बहुत स समानार्थक शब्दो का प्रयोग हुआ करता है। इन शब्दो के मूल अर्थ म अन्तर न होते हुए भी इनके व्यावहारिक अर्थ म अन्तर दीख पडता है। यह अन्तर प्रबुद्ध एव शिक्षित मनीषियो की भाषा मे देखा जा सकता है। जन-सामान्य के भाषा प्रयोग म इस प्रकार का कोई अन्तर नही दीख पडता। इसका कारण शब्द प्रयोग करने वाले लोगो की अबोधता है। इस अबोध प्रयोगो द्वारा शब्दो के अर्थ का अन्तर समाप्त नही हो जाता, अपितु बना रहता है। फिर भी अपनी अज्ञानता के कारण हम इन सभी शब्दो को एकार्थक मान लेते हैं।

सुन्दर के समानार्थक शब्दो म रूप, लावण्य, मनोहर, रुचिर, चारु, सुषम साधु, शोभन कान्त, मनोरम रुच्य, मनोज्ञ, मञ्जु मञ्जुल, मनोहारि, सौम्य भद्रक, रमणीय, रामणीयक, बन्धुर, पेशल, वाम, राम, अभिराम,

---

[1] ऋग्वेद—८/२६/१ १/४०/४, १/४८/१०,४/५२/१, १/४८/५, १/४८/८,७/८१/१

नन्दित सुमन वल्गु हारि रम्य और न्यि मादि बताये गये हैं।[1] अमर कोश में भी लगभग इन्हीं शब्दों का प्रयोग हुआ है। सुन्दर, रुचिर, चारु, सुषम, साधु शोभन कान्त, मनोज्ञ मनोरम रुच्य, मंजु और मञ्जुल आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।[2] ऋग्वेद में सौन्दर्य के पर्याय रूप में अप्स, लावण्य, शुभ, पेशल, हिरण्यपेशस् आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों में अप्स विषयगत सौंदर्य का बोध कराता है। मानस शरीर अथवा अन्तर्बाह्य अवस्था का ज्ञान कराने के लिये सुन्दर के स्थान पर लावण्य शब्द का प्रयोग किया गया है। पेशल शब्द को अन्तःकरण के सौन्दर्य का वाचक माना जा सकता है। 'विश्वपेशस' व्यापक सौन्दर्य का बताने वाला है। हिरण्य पेशस को यास्क उपदेशात्मकता तथा आनन्द का, आत्मा और ब्रह्म का समन्वय आधार मानते हैं। अतः पेशस' शब्द द्वारा वस्तु तथा शैली में समन्वित रूप का ही ज्ञान होता है। ऋग्वेद में ही मरुत को शुभ और अश्विना को शुभस्पति कहा गया है। इसके द्वारा बाह्य एवं आभ्यन्तर सौन्दर्य का स्वीकृति मिलता है। यही कारण है कि सौंदर्य प्रेमी अश्विन् को शुभस्पति कहा जाता है।[3]

ऋग्वेद के अतिरिक्त कोशगत सुंदर शब्द के अन्य समानार्थक शब्दों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इन शब्दों में 'रूप' और लावण्य प्रसिद्ध शब्द हैं। रूप की व्युत्पत्ति करते हुए बताया गया है कि रूप्यते वीक्ष्यते रौति वा रूप।' इस शब्द की निष्पत्ति रू+प्वाप् निरु शप्येति प दीघश्च सूत्र से होती है। 'भोग-तत्व के समुचित विन्यास से रूप का आविर्भाव होता है। 'रूप' में आकार की महत्ता होती। लावण्य 'रूप में स्थित चमक या कांति का बोध कराता है। लवणस्य भाव लावण्य'। खाद्य पदार्थों में नमक की महत्ता के समान ही रूप में लावण्य का महत्व रहता है। दोनों शब्द काल काल में सुंदर के पर्याय रूप में प्रयुक्त होते हैं।

'मनोहर शब्द मनोज्ञ या मनोहारि अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'मनसो हरमिति *मनोहर —हृ+अच प्रत्यय से इस शब्द की निष्पत्ति होती है।* मन को हरण करने वाला मनोहर कहा जाता है। रूप और सौंदर्य सम्पन्न मानव में ही यह गुण होता है। इससे किसी चेतन में मनोहरता का गुण होता है। 'मनोरम' वस्तु या प्राणी का ऐसा गुण है जिसमें मन रम जाय।

---

1 हलायुध-कोश, पृ० ७१४

2 सुन्दर रुचिर चारु सुषम चारु शोभनम्।
कान्त मनोरम रुच्य मनोज्ञ मञ्जु मञ्जुलम्। अमरकोश ३/१/५२ ५३

3 सौंदर्य तत्व-भूमिका भाग पृ० ३७ अनु० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित

'सुन्दर' के साक्षात्कार से मन में लीनता आती है। वस्तु के सौंदय को देखकर बहुधा उसमें लीन होते हुए देखा गया है। कभी-कभी जड़ और कलात्मक वस्तुओं में भी मन रम जाता है। इससे मन को रमाने का साधन जड़ पदार्थ और चेतन प्राणी दोनों में ही पाया जाता है। 'रुचिर' शब्द रुच् धातु मे किरच प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। 'रुच्यते इति रुचि', जो रुचिकर हो, उसे 'रुच्य' कहते हैं। इस रुच्य से बना हुआ रुचिर शब्द 'सुन्दर' अर्थ को बताता है। 'रुचिर' में मन की प्रियता रहती है, मनोरम और मनहर शब्दों में मन के स्तम्भन का भाव लक्षित होता है। प्राय 'सुन्दर' के साक्षात्कार से मन निश्चल होकर उसमें लीन हो जाता है। वस्तु में मन की यह लीनता उसके स्तम्भन की दशा को व्यक्त करने वाली होती है।

नैसर्गिक सौन्दर्य से आकृष्ट करने वाले रूप को 'रामणीयक' 'रमणीय' और 'हारि' कहा जा सकता है। आकारगत प्रशंसनीय सौन्दर्य को 'अभिराम' संज्ञा दी जायगी। 'अभित राम इति अभिराम' अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दर 'अभिराम' है। 'राम' शब्द की व्याख्या 'रमयति मन अस्मादिति राम' है। इस व्याख्या में मन के रमण करने की व्युत्पत्ति बताई गई है। इससे अभिराम ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर के लिये प्रयुक्त होगा जिसमें आकारगत शोभा प्रशंसनीय हो। इस शोभा में आनन्ददायकता का गुण भी वर्तमान रहता है। अत आनन्ददायक सुन्दर रूप को 'अभिराम' की संज्ञा दी जा सकती है आकार में रहने वाली शोभा या चमक के लिये 'लावण्य' और 'कान्त' शब्द उपयुक्त होता है। रूप का वह तत्व जो नेत्रों को प्रिय लगे, वह 'शोभा' है। 'शोभा' में प्रियता का कारण आलम्बन के मार्दव की सहजता और भोलापन है। अंग्रेजी में इसके लिये Gracefullness का प्रयोग किया जा सकता है। 'चारु' में चित्त को दोलायमान कर देने की शक्ति वर्तमान रहती है। इसकी नैसर्गिक शोभा से ही मन की यह अवस्था होती है।

कोमलता-जन्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दर शब्द के समानार्थक कई शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों में मञ्जु, मञ्जुल, पेशल की गणना हो सकती हैं। मञ्जु और मञ्जुल की मृदुता दृष्टि गत है 'पेशल' में स्पर्श सुख का सौंदर्य रहता है। इसमें शारीरिक मार्दव की महत्ता रहती है। स्पर्श के अतिरिक्त घ्राण और दृश्य की मृदुता का वर्णन भी होता है।

आकारगत सौंदर्य के लिए 'बन्धुर' शब्द का प्रयोग हुआ है। सुविन्यस्त अवयवों से युक्त रूप' 'बन्धुर' कहा जाता है। विन्यासगत सौंदर्य के लिए 'वल्गु' शब्द का प्रयोग हुआ है। औचित्य मूलक प्रयोग में 'साधु' शब्द

उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें उपयोगितावादी दृष्टिकोण माना जा सकता है। काम शब्द में जय प्राप्त कर लेने वाले सौन्दर्य का गुण रहता है। इसे Winsome Beauty कहेंगे। यह प्राप्तव्य सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य के गुण द्वारा आश्रय का मन जीत लिया जाता है।

'सौम्य' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सम्बोधन के लिए किया जाता है। शान्त चित्त व्यक्ति में इस गुण के कारण उत्पन्न होने वाले आकर्षण से ही उसे 'सौम्य' कहा जाता है। सौम्य में शान्त स्वभाव का आकर्षण रहता है। इससे चरित्रगत सौन्दर्य का बोध होता है। सामाजिक सन्दर्भ एवं लोक कल्याण की भावना से युक्त अनेक शब्दों में सौन्दर्य की समानार्थता मिल जाती है। भद्र भद्रक आदि शब्दों में कल्याण की प्रवृत्ति और व्यवहारगत सौन्दर्य का औचित्य रहता है। यह सौन्दर्य क्रिया पारस्परिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों के सन्दर्भ में औचित्य का ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सौन्दर्य के पर्याय में अनेक शब्दों का प्रयोग होता रहा है। इन सबका समान अर्थ होते हुए भी उनके प्रयोग विधि में अन्तर आ जाता है। रूप अभिराम, बंधुर और वल्गु द्वारा आकार के विन्यास से उत्पन्न सौन्दर्य का बोध होता है। लावण्य और कांति आकार में स्थित चमक या आभा का द्योतक है। मञ्जु मञ्जुल आदि शब्दों द्वारा रूप की दृश्य कामनता की प्रतीति और पेशल शब्द से स्पर्श सुख की अनुभूति होती है। आकार के रंग वैभव से उत्पन्न सौन्दर्य को सुषम कहते हैं। इन सभी शब्दों की सौन्दर्य मूलकता में आकार का महत्व किसी न किसी रूप में अवश्य बना रहता है। मन को प्रभावित करने वाले सौन्दर्य अर्थ के व्यञ्जक अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों में मन की प्रियता का सम्बन्ध 'रुचिर' शब्द से होता है। मन को स्तम्भित कर देने वाला सौन्दर्य मनोहर, मनहर, मनोहारि शब्द से ज्ञान होता है। मनोज्ञ, मनोरम में आकर्षण है। नैसर्गिक शोभा के लिए रमणीय, रामणीयक और हारि शब्द प्रयुक्त होते हैं। चित्त को दोलायमान कर देने की शक्ति चारु शब्द में है। इन आकार मूलक और मन से सम्बन्धित सौन्दर्य के पर्याय शब्दों के विभिन्न प्रयोगों के अतिरिक्त औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। ऐसे शब्दों में साधु से औचित्य का, भद्र और भद्रक द्वारा कल्याण भावना का और सौम्य तथा वाम द्वारा मध्यम पुरुष के गुणगत सौन्दर्य का बोध होता है। अतः सौन्दर्य के समानार्थक प्रयुक्त शब्दों की तीन प्रमुख कोटियाँ हो जाती हैं—

(१) आलम्बन का आकारगत सौंदय।

(२) आलम्बन का आकार और गुणगत सौंदय तथा आश्रय के मन के सदभ म इन शब्दों का प्रयोग।

(३) औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक सौंदय के समानाथक प्रयोग।

इन सभी शब्दों के साम्यमूलक प्रयोग की भिन्नता को ऊपर बताया जा चुका है।

आलंकारिकों का मत

काव्य के स्वरूप का निधारण करते हुए वामनाचाय ने लिखा है कि 'काव्यम् ग्राह्यम् अलंकारात्। सौंदयमलंकार अर्थात् काव्य का ग्रहण अलंकार से होता है और सौंदय ही अलंकार है। इस कथन द्वारा इन्होंने सौन्दय को अलंकार कहकर चारुत्व सौन्दय और अलंकार को एक कर दिया है। इस प्रकार दोनों म अभेद स्थापित किया गया है। और काव्य म सौंदय की महत्ता स्वीकार करली गई है। अलंकार विरोधियों ने इसे अप्रस्तुत योजना के अंतगत काव्य परिच्छद के रूप म स्वीकार किया है। यदि इस मत को भी मान लिया जाय तो काव्य सौंदय के हृदयगम करने एव सम्यक विश्लेषण के लिए इस वाह्य रूप की सत्ता का भी महत्व कम नहीं होता। सौन्दय की अवधारणा के लिए अप्रस्तुत तत्व कभी उपेक्षणीय नहीं रहे हैं। रस और भाषा की रमणीयता के उपरान्त सौन्दय विधायक तत्वों मे अप्रस्तुत योजना या अलंकारों का महत्त्व निर्विवाद रहा है। हिंदी के अलंकार वादी केशव न तो अलंकारों से रहित रचना को सौंदय युक्त माना ही नहीं है।[1] उन्होंने अप्रस्तुत योजना म वण्य वस्तु और वणन प्रणाली के पार्थक्य को स्वीकार करके सामान्य और विशिष्ट अलंकार से अभिहित किया है। इनम वणन शैली को अभिव्यञ्जना पक्ष के अंतगत माना जाता है।

सौंदय के लिये चारुत्व शब्द का प्रयोग आनन्दवद्धन ने किया है। इनके मत से अलंकार चारुत्व के हेतु हैं। इनम अनुप्रासादि शब्दगत चारुत्व हेतु और उपमादि अथगत चारुत्व हेतु तथा अथ के संघटनागत चारुत्व हेतु वण संघटना धम माधुर्यादि गुण हैं।[2] यही पर सौन्दय के लक्षण या संकेत

---

[1] यदपि सुजान सुलक्षणी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु नहि राजही कविता वनिता मीत। केशव।

[2] तत्र केचिच्चारुशरीरं शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम्। तत्र शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादय प्रसिद्धा एव। अथगताश्चोपमादय। वणसंघटना

उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें उपयोगितावादी दृष्टिकोण माना जा सकता है। 'काम' शब्द में जय प्राप्त कर लेने वाले सौन्दर्य का गुण रहता है। इसे Winsome Beauty कहेंगे। यह प्राप्तव्य सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य के गुण द्वारा आश्रय का मन जीत लिया जाता है।

'सौम्य' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सम्बोधन के लिए किया जाता है। शान्त चित्त व्यक्ति में इस गुण के कारण उत्पन्न होने वाले आकर्षण से ही उसे 'सौम्य' कहा जाता है। सौम्य में शान्त स्वभाव का आकर्षण रहता है। इससे चरित्रगत सौन्दर्य का बोध होता है। सामाजिक सन्दर्भ एवं लोक कल्याण की भावना से युक्त अनेक शब्दों में सौन्दर्य की समानार्थता मिल जाती है। भद्र, भद्रक आदि शब्दों में कल्याण की प्रवृत्ति और व्यवहारगत सौन्दर्य का औचित्य रहता है। यह सौन्दर्य क्रिया पारस्परिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों के सन्दर्भ में औचित्य का ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सौन्दर्य के पर्याय में अनेक शब्दों का प्रयोग होता रहा है। इन सबका समान अर्थ होते हुए भी उनके प्रयोग विधि में अन्तर आ जाता है। रूप, अभिराम, बन्धुर और वल्गु द्वारा आकार के विन्यास से उत्पन्न सौन्दर्य का बोध होता है। लावण्य और कान्ति आकार में स्थित चमक या आभा का द्योतक है। मञ्जु, मञ्जुल आदि शब्दों द्वारा रूप की दृश्य कोमलता की प्रतीति और पेशल शब्द से स्पर्श सुख की अनुभूति होती है। आकार के अंग वैभव से उत्पन्न सौन्दर्य को 'सुषम' कहते हैं। इन सभी शब्दों की सौन्दर्य मूलकता में आकार का महत्व किसी न किसी रूप में अवश्य बना रहता है। मन को प्रभावित करने वाले सौन्दर्य अर्थ के व्यञ्जक अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों में मन की प्रियता का सम्बन्ध रुचिर शब्द से होता है। मन को स्तम्भित कर देने वाला सौन्दर्य मनोहर, मनहर, मनोहारि शब्द से ज्ञात होता है। मनोज्ञ, मनोरम में आकर्षण है। नैसर्गिक शोभा के लिए रमणीय, रामणीयक और हारि शब्द प्रयुक्त होते हैं। चित्त को दीप्तिमान कर देने की शक्ति चारु शब्द में है। इन आकार मूलक और मन से सम्बन्धित सौन्दर्य के पर्याय शब्दों के विभिन्न प्रयोगों के अतिरिक्त औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों में साधु से औचित्य का, भद्र और भद्रक द्वारा कल्याण भावना का और सौम्य तथा काम द्वारा मध्यम पुरुष के गुणगत सौन्दर्य का बोध होता है। अतः सौन्दर्य के समानार्थक प्रयुक्त शब्दों की तीन प्रमुख कोटियाँ हो जाती हैं—

(१) आलम्बन का आकारगत सौंदय ।

(२) आलम्बन का आकार और गुणगत सौंदय तथा आश्रय के मन के सदभ म इन शब्दा का प्रयोग ।

(३) औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक सौंदय के समानाथक प्रयोग ।

इन सभी शब्दा के सौन्दयमूलक प्रयोग की भिन्नता को ऊपर बताया जा चुका है ।

आलकारिको का मत

काव्य के स्वरूप का निधारण करते हुए वामनाचाय ने लिखा है कि काव्यम् ग्राह्यम् अलकारात् । सौंदयमलकार अर्थात् काव्य का ग्रहण अलकार स होता है और सौंदय ही अलकार है। इस कथन द्वारा इन्होंने सौन्दय को अलकार कहकर चारुत्व, सौंदय और अलकार को एक कर दिया है । इस प्रकार दोना मे अभेद स्थापित किया गया है । और काव्य म सौन्दय की महत्ता स्वीकार करली गई है । अलकार विरोधिया न इसे अप्रस्तुत योजना के अतगत काव्य परिच्छद के रूप मे स्वीकार किया है । यदि इस मत का भी मान लिया जाय तो काव्य सौंदय के हृदयगम करने एव सम्यक विश्लेषण क लिए इस बाह्य रूप की सत्ता का भी महत्व कम नही होता । सौंदय की अवधारणा क लिए अप्रस्तुत तत्व कभी उपेक्षणीय नहीं रहे हैं । रस और भाषा की रमणीयता क उपरान्त सौंदय विधायक तत्वा म अप्रस्तुत योजना या अलकारा का महत्व निर्विवाद रहा है । हिन्दी के अलकारवादी केशव न तो अलकारा से रहित रचना का सौंदय युक्त माना ही नही है ।[1] उन्होंने अप्रस्तुत योजना मे वण्य वस्तु और वणन प्रणाली के पाथक्य को स्वीकार करके सामान्य और विशिष्ट अलकार से अभिहित किया है । इनम वणन शली को अभिव्यञ्जना पक्ष के अन्तगत माना जाता है ।

सौंदय के लिये चारुत्व शब्द का प्रयोग आनन्दवद्धन न किया है । इनके मत से अलकार चारुत्व के हेतु हैं । इनम अनुप्रासादि शब्दगत चारुत्व हेतु और उपमादि अथगत चारुत्व हेतु तथा अथ के सघटनागत चारुत्व हेतु वण सघटना धम माधुर्यादि गुण हैं ।[2] यही पर सौन्दय के लक्षण का सकेत

---

[1] जदपि सुजात सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु नहिं राजही कविता वनिता, मीत । केशव ।

[2] तत्र केचिदाचक्षीरन् शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम् । तत्र शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादय प्रसिद्धा एव । अथगताश्चोपमादय । वणसघटना

किया गया है कि वस्तु के दर्शन से हमारे हृदय में नवीन भावनाओं और प्रेरणाओं का सचार उसी प्रकार होता चला जाता है जैसे घण्टे के निनाद का अनुरणन दीर्घकाल तक हमारे कानों में गूंजता रहता है। यहाँ वस्तु की नवीन भावनाओं को सचरित करने वाली शक्ति का स्वीकार किया गया है। यही शक्ति उसका आन्तरिक मूल्य है और इसे ही सौन्दर्य नाम देना असगत नहीं होगा। काव्य शास्त्र में इसे ध्वनि नाम से बताया गया है। यही काव्य की आत्मा है। इसीमें सौन्दर्य का चिरन्तन रहस्य छिपा रहता है। आनुषगिक रूप में सौन्दर्य को बाह्य उपकरण मानते हैं फिर भी वह आन्तरिक की रमणीयता को बढाने वाला ही सिद्ध होता है। ध्वनिकार का मत है कि वह परम तत्व रमणियों के प्रसिद्ध तत् तत् अगों से भिन्न लावण्य के समान दीप्तिमान् रहता है।[1] यह सौन्दर्य अवयवों से भिन्न पृथक रूप में ही सुन्दरियों में दीख पडता है। अभिनव गुप्त ने इस सौन्दर्य को विच्छित्ति के रूप में स्वीकार किया है। यह प्रतिभासित होने वाली छवि है जो अगों में ही वर्तमान रहती है।

आचार्य कुन्तक ने भाषा और अभिव्यक्ति के जिस समन्वय को काव्य माना है उसमें भी अर्थ चमत्कार और अर्थ सौन्दर्य बना रहता है। वहां पर काव्य के लिये सौभाग्य और लावण्य इन दो शब्दों का प्रयोग है। सौभाग्य छन्दोमयी वाणी के आन्तरिक धर्म का वाचक है और लावण्य द्वारा उसकी बाह्य रमणीयता और सुन्दरता का ज्ञान होता है। इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों का बोध इन शब्दों द्वारा हो जाता है।

सौभाग्य के अन्तरीण धर्म के लिये लावण्य के बाह्य सौन्दर्य को स्वीकार करते हैं क्योंकि उनके मत में सौन्दर्य विषयगत है। लावण्य के आधार से ही सौभाग्य का स्फुरण होता है। सौन्दर्य की अनुभूति में विषय की सत्ता निर्विवाद है फिर भी तज्जन्य आनन्द का उपभोग करने वाला ही उस सौन्दर्य का साधक करता है। अतः विषयी में ही सौन्दर्य की भावना माननी चाहिए। कुन्तक के लावण्य का यह सौन्दर्य बोध आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त सौन्दर्य को अपने में पूर्णतः आत्मसात् नहीं कर पाता। उदाहरण वाक्य विन्यास में भी

धर्मोश्च य माधुर्यादयस्त हि प्रतीयन्त। ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत–पृ० ६ ७ गौतम बुक डिपो–दिल्ली सन् १९५२

[1] यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु। ध्वन्यालोक १/४

सौन्दय वाय की वात वन्ध सौन्दय सम्पदा' व वथा द्वारा की है, तथा शब्द और अथ सहित विचित्र विन्यास पर ही उनका काव्य अवलम्बित है।[1]

आचाय क्षेमेन्द्र न काव्य के वाह्य आवरण मे सौन्दय देखा है। उन्होंने उचित स्थान विन्यास म सौन्दय का माना है।[2] क्षेमेन्द्र ने चमत्कृति की सिद्धि के लिये 'लावण्य' का प्रयोग किया है।[3] इसमे बताया गया है कि लावण्यहीन युवती निर्दोष का लेश होने पर भी किसके चित्त म उदित होती है। इन्होंने *चमत्कार के दश भेदो म से अविचारित रमणीय और विचायमाण रमणीय* चमत्कार का सम्बन्ध 'लावण्य और 'रमणीय' से माना है। इस दृष्टि से चमत्कृति और रमणीय एक दूसरे के पर्याय कहे जायगे। रस का सार हमारे यहाँ चमत्कार का ही माना गया है। रसे सारश्चमत्कार।' अत चमत्कार और रस का अविच्छिन्न सम्बन्ध माना जायगा। हमारे यहा चमत्कार की नवीनता का अथ है उस रचना की अनन्तता अमेयता, अखण्डता और अभूत पूवता। यदि चमत्कार को हम रस का पर्याय मानें, तो सौन्दय की अनुभूति भी रसानुभूति के समान अनन्त अमय अखण्ड और अपूर्व है। इससे स्पष्ट है है सान्दय म नाविन्य नामक गुण की महत्ता है। इस गुण की चर्चा अनक मनीषियो न की है।

जगन्नाथ का मत

पण्डित राज जगन्नाथ की सान्दय विषयक मान्यता स्पष्ट है। उनका चित्ताभरणभग इसी रहस्य के उद्घाटन क लिये है। इसम चित्त पर पडे हुए आवरण का भग होकर रसानुभूति होने लगती है। यहाँ चमत्कार अनुभूति रूप म स्वीकृत है। इन्होंने सौन्दय म जिस चमत्कार को देखा है, वह उनके मत से 'जाति विशेष है।[4] यहाँ रमणीयता नामक चमत्कार आनन्द से

---

[1] शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविन्यापारशालिनी।
वन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणी। कुन्तक

[2] औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम्। उचितस्थानविन्यासादल कृतिरलकृति। औचित्यादच्युतानित्य भवन्त्येव गुणागुणा॥ औचित्य विचार चर्चा–श्लाक ५–६ हरिदास सस्कृत ग्रन्थ माला।

[3] एकेन केनचिदनघमणिप्रभेण काव्य चमत्कृति पदेन विना सुवणम।
निर्दोष लेपमपि राहति कस्य चित्तेलावण्य हीनमिव यौवनमगनानाम्।
कविकण्ठाभरण २/२

[4] लाकात्तरत्व चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जाति विशेष। कारण च तदवच्छिन्न भावना विशेष पुन पुनरनुसन्धानात्मा।

भिन्न है। यह अनुभूति का विषय है। यहाँ पर प्रयुक्त 'भावना विशेष' वाक्यांश उद्‍बोधित संस्कार विशिष्ट को व्यक्त करता है। इस प्रकार सौन्दर्य बोध मन में जाग्रत भावों का परिणाम है। दूसरे प्रयुक्त पद 'अनुसंधानात्मक' द्वारा बताया गया है कि मन पर संस्कार रूप में पड़े भाव ही समान नई वस्तु के अवलोकन से आह्लाद की सृष्टि कर देते हैं। अतः प्राचीन भागवत संस्कार ही वर्तमान ज्ञान के संग भावात्मक संयोग से सौन्दर्य या रस व्यञ्जना या अभिव्यक्ति के कारण बनते हैं। इस दृष्टि से उनके सौन्दर्य बोध के दो पक्ष हो जाते हैं—प्रथम द्वारा पुरातन संस्कारों का उद्‍बोधन होता है। पुनः पुनः अनुसंधानात्मा भावना विशेष।' द्वितीय पक्ष में नित नूतन आकर्षण और अनुसंधान की प्रवृत्ति बनती है। इस दृष्टि से रमणीयता पार्थिव मात्र न रह कर आध्यात्मिक भी हो जाती है। सहृदय की आत्मा और पार्थिव वस्तु जगत के सम्मिलन में ही सौन्दर्य की अनुभूति होती है। इस आधार पर निस्संकोच रूप में यह निर्णय दिया जा सकता है कि भाव के अभाव में केवल वस्तु सुन्दर नहीं हो सकती और वस्तु के अभाव में सौन्दर्य निराधार और अशरीरी होकर टिक नहीं सकता। ऐसी स्थिति में वह मात्र संस्कार ही रह जायगा।

पण्डित राज ने रमणीयता के साथ रस को स्वीकार किया है। काव्य स्वरूप निर्धारण में रमणीय तत्व को प्रधानता दी गई है। रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य माना गया है।[1] यहाँ रमणीय के अन्तर्गत सौन्दर्य को भी मान लिया गया है। भारतीय काव्य साधना में रस या रमणीयार्थ को सौन्दर्य बोध का मूल स्वीकार किया गया है। इसका कारण भारत की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति प्रतीत होती है। इसी से पाश्चात्य मनीषियों के समान इन्होंने सौन्दर्य को बाह्य अलंकरण का साधन न मानते हुए रस प्रतीति में इसे प्रमुख माना है।

भारत के अन्य आलंकारियों ने सौन्दर्य की अपेक्षा रस की महत्ता की ओर अधिक रुचि दिखाई है। रस को प्रधानता को मानकर रमणीयता और रस दोनों का पार्थक्य बताया गया है। जगन्नाथ के मत से यदि रस को ही

रस गङ्गाधर पृ—१०-११, व्याख्याकार पण्डित मदनमोहन झा १९५५ ई० चौखम्भा विद्या भवन—बनारस १।

[1] रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। पृ० ९ रस गङ्गाधर।

काव्य मानें तो वस्तु और अलङ्कार वर्णन प्रधान रचना काव्य के अन्तर्गत नहीं आ सकती। दूसरी कमी यह होगी कि ऐसा मानने पर परम्परागत कवि परिपाटी में गड़बड़ी उत्पन्न हो जायगी क्योंकि कवियों ने जो स्थान स्थान पर जल प्रवाह, वेगादि का वर्णन किया है यदि वे सभी रस से सम्बन्धित कर दिये जाँय, तो 'बालक दौड़ता है' जैसा वाक्य भी काव्य कहा जायगा, परन्तु ऐसा सम्भव न होने से इसे उचित नहीं कहा जा सकता है।[1]

पण्डित राज ने जिस सौन्दर्य को स्वीकार किया है उसके सम्बन्ध में बताया गया है कि विशिष्ट सामञ्जस्य अथवा विशेष परिचय बोध को ही सौन्दर्य कहेंगे। इसे न तो विशेषात्मक या विशिष्ट बोध कह कर ही इसका लक्षण स्थिर किया जा सकता है और न हम लाल, नीला या हरा अथवा मधुर तिक्त आदि बताकर ही इसका लक्षण किया जा सकता है सौन्दर्य बोध तो मन की एक विशिष्ट अनुभूति है। इसका तटस्थ लक्षण तो फिर भी देना सम्भव है परन्तु स्वरूप लक्षण उपस्थित करना सम्भव नहीं है[2]। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि हमारे मन में स्थित संस्कार देश काल पात्रादि से सम्बद्ध होकर उत्तेजक वस्तु के साक्षात्कार से उद्बुद्ध हो जाते हैं। ऐसी उद्दीपक सामग्री के द्वारा उद्बुद्ध उपचेतन में स्थित संस्कारों का जो आत्म लाभ है, उसे सौन्दर्य मान सकते है। इसमें उद्दीपक एवं उद्दीप्त संस्कार दोनों की ही महत्ता है। इस पर विचार करते हुए डा० दीक्षित ने कहा है कि इसी कारण जहाँ एक ओर हम सौन्दर्य बोध सम्बन्धी विशिष्ट जातीय अनिर्वचनीय अन्तर बोध रूप का ग्रहण करते हैं वहाँ साथ ही वस्तु को भी सुन्दर कहते है अर्थात् सौन्दर्य से एक ओर संस्कारों का उद्बोध ज्ञान होता है और दूसरी ओर उद्बोधक सामग्री की प्रतीति भी रहती है।[3] इस प्रकार सौन्दर्य बोध के समय

---

1 सौन्दर्य तत्व डा सुरेन्द्रदास गुप्ता अनु डा आ० प्र० दीक्षित पृ ६६–७०

2 यत्तु रसवदेव काव्यमिति साहित्यदर्पणे निर्णीतम् तन्न। रसवदलङ्कार प्रधानानाम् काव्यानाम् अकाव्यतापत्ते। न चेष्टापत्ति। महाकवि सम्प्रदायस्य आकुलीभाव प्रसङ्गात्। तथा च जलप्रवाहवेगपतनोत्पतने भ्रमणानि कविभिर्वर्णितानि कोऽपि बालानि विलसितानि च। न च तत्रापि यथा कथचित परम्परया रस स्पर्शोऽस्त्येव इति वाच्यम्। इदृशो रसस्पर्शस्य गोश्चलति मृगोधावति इत्यादौ अतिप्रसक्तत्वेन अप्रयोजकत्वात्। अर्थ मात्रस्यविभावानुभावव्यभिचार्यन्यतमत्वात्॥

3 सौन्दर्य तत्व अनु० डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित पृ० १०४–१०५

इमने वस्तु का जान लिया है यह ज्ञान भी बना रहता है अर्थात् सौन्दर्य बोध में सौन्दर्य और उसके विषय ज्ञाता की युगपद् प्रतीति होती रहती है। न्याय दर्शन इसी तत्व का प्रामाण्य वाद में अन्तर्गत स्पष्ट करता है। इसमें वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता का ज्ञान और बाद में उस ज्ञान का ज्ञान होता है। अर्थात् वस्तु है तथा मैंने इस वस्तु का जान लिया इस प्रकार इसमें ज्ञान की दो श्रेणियाँ होती है।

आचार्य ने जिस रमणीयता को स्वीकार किया है उसका स्पष्टीकरण भी वहीं कर दिया गया है रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता" अर्थात् "लोकोत्तरस्यालौकिकस्य आह्लादस्यानन्दस्य, जनकमुत्पादकं यज्ज्ञानं तद्गोचरतातन्निरूपितविषयता रूपा च निष्ठा रमणीयतत्वम्।[1] यहां जिस लोकोत्तर आनन्द की बात कही गई है इसे केवल अनुभव द्वारा ही समझा जा सकता है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी इसका समर्थन किया है कि 'सचेतसामनुभव प्रमाणं तत्र केवलम्। इस प्रकार चित्त पर पड़े हुए संस्कार का अनुसधान जिस चमत्कार को उत्पन्न करता है वह अलौकिक है। इसे दो रूपों में ग्रहण करेंगे।

(१) रमणीयता या सौन्दर्य का स्वरूप लोकोत्तर होने से इसकी अलोक सामान्य स्थिति है।

(२) यह चमत्कार ज्ञान आह्लाद तथा क्रिया वृत्ति का संश्लिष्ट रूप उपस्थित करता है।

इस स्थल पर ध्यान देने की एक बात यह है कि रमणीयता का यह आनन्द व्यक्तिगत सुख दुःख जन्य सासारिक प्रयोजन की तृप्ति के आनन्द से भिन्न होता है इसी कारण यह रमणीय भी है। इस दृष्टि से इस आनन्द प्राप्ति की तीन उत्तरोत्तर श्रेणियाँ मानी जा सकती हैं—(१) किसी चमत्कार युक्त रचना द्वारा किसी विषय का अभिव्यञ्जित होना। (२) इस अभिव्यञ्जना से ज्ञान की सक्रियता। (३) आनन्द की प्राप्ति। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी माध्यम द्वारा कथित विषय की अभिव्यक्ति से आनन्द की उपलब्धि होती है। काव्य के लिए इस माध्यम के साथ अर्थ का महत्ता भी रहती है। इसी से अपना निर्णय देते हुए जगन्नाथ ने बताया है कि इस प्रकार लोकोत्तर आह्लाद का जनक भाव के अर्थ के प्रतिपादक शब्द में काव्य है। यह रमणीयता

---

[1] रस गङ्गाधर। पृ० १० व्याख्याकार बदरीनाथ झा। चौखम्भा विद्याभवन बनारस स० १०११

का आधार लेता है और यही लाकोत्तर आह्लाद सौंदय जनक है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि काव्य का रस सौंदय की अनुभूति ही है। वस्तु दशन का विषय होकर शब्दों के माध्यम स जब रमणीय और चमत्कार युक्त रूप म अभिव्यक्त हो जाता है ता वही काव्य सना का धारण करता है। सुदर भाव या वस्तु ही अन्तमन की चेतना से सम्बद्ध हो सस्कारा के उद्बुद्ध हान पर सत्व का उद्रेक कर देता है। यही जब अभिव्यञ्जनात्मक सौंदय का साहाय्य पा लेता है तो सुदर हो जाता है। इस प्रकार भारतीय काव्य शास्त्र की सौंदय चेतना मन की चेतनापूर्ण सत्ता अथवा चेतन अश के स्वीकार से अन्त मुखी ही मानी जायगी, पाश्चात्यों के समान वहिमुखी नहीं।

यही पर सौंदय शब्द के अन्य अर्थों पर भी विचार कर लेना चाहिए इसके विभिन्न प्रयोगा का निर्देश निम्नलिखित रूप म किया जा सकता है।

(क) व्युत्पत्तिगत अर्थ—(१) सौन्दय शब्द की रचना सुन्दर' विशेषण स भाव अथ म 'ष्यञ् प्रत्यय लगाकर हुई है। सुदर+ष्यञ (य) अर्थात् सुदरस्य भाव सौन्दय। इसम सुदर के आदि उ का औ तथा अन्त्य अकार का लाप होकर सौंदर+य→से सौन्दय शब्द निष्पन्न हो जाता है।

(२) सुद् पूर्वक रा धातु (आदान→लाना) म औणादिक अच प्रत्यय से सुन्दर शब्द बनता है तथा 'गुण वचन ब्राह्मणादिभ्य ष्यञ्" सूत्र स ष्यञ (य) लगान स 'सौंदय' शब्द बनता है। सुद राति इति सुदर तस्य भाव सौन्दय। अथवा सुष्ठु नन्दयति इति सुदर तस्य भाव सौंदय मानकर अच्छी प्रकार से प्रसन्न करने के अथ म भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

(ख) कोशगत अथ—(१) वाचस्पत्य कोश के अनुसार 'सु उपसग पूवक उन्द् धातु म 'अरन् प्रत्यय जोडकर यह शब्द बनता है। सु अर्थात् (अच्छी प्रकार) उन्द्' (आद्र करना) से अरन् प्रत्यय जोडकर यह शब्द निष्पन्न हुआ है। इस रचना स इसका व्युत्पत्ति मूलक अथ 'अच्छी प्रकार आद्र या सरस करना' होगा। सुदरता म चित्त को सरस बना देने की क्षमता रहती है।

(२) हलायुध कोश मे सुन्दर' शब्द के कई अथ है। 'सुष्ठु उनत्ति-आर्द्री करोति चित्तमिति।' अर्थात् जो चित्त को अच्छी प्रकार आद्र कर दे, उसे सुदर कहते। यहाँ पर इस शब्द की व्युत्पत्ति सु' पूवक उन्दी (क्लेदने) और अर प्रत्यय लगाकर की गया है। इस शब्द को स्पष्ट करने के लिय

पर्याय रूप में जिन अन्य शब्दों[1] का प्रयोग हुआ है, कोशकार की दृष्टि में वे सभी शब्द समानार्थक हैं।

(ग) अन्य अर्थ— सुष्ठु नन्दयति इति सुन्दर तस्य भाव सौंदर्य मानकर अच्छी प्रकार प्रसन्न करने के अर्थ में इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार सौंदर्य में आनन्द देने का गुण वर्तमान रहता है।

संस्कृत कवियों का मत—

संस्कृत साहित्य के अन्य विद्वानों एवं कवियों के विचारों को ग्रहण करना समीचीन नहीं होगा। अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि कालिदास माघ भारवि भास बाण आदि की सौंदर्य चेतना अधिक जागरूक रही है। कालिदास तो प्रेम और सौन्दर्य के कवि ही हैं। बाण की कल्पना उनकी सौन्दर्य वृत्ति की परिचायिका है। क्रमश सौन्दर्य विषयक इन कवियों की मान्यता पर भी ध्यान दिया जायगा।

संस्कृत साहित्य के आदि लौकिक ग्रन्थकार वाल्मीकि का अन्त विश्लेषण करने से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है कि तपस्वीन वाल्मीकि के समक्ष काम-रत क्रौंच मिथुन में से एक का निषाद द्वारा वध किये जाने पर उनके मुख से जिस श्लोक बद्ध वाणी का निस्सरण हुआ उसका विचार स्वयं उन्हें भी विस्मय विमूढ़ बना गया सिद्ध हुआ। वे बार बार उस श्लोक का उच्चारण करते हुए भाव विभोर हो गये। उस रस विह्वल दशा में उन्होंने कहा था कि अहो गानस्य माधुर्यम् और इसे सुनकर मुनिगण भी 'वाष्प पर्याकुल नेत्र वाले हो गये थे।[2] यदि इस स्थिति का विश्लेषण करें तो स्पष्ट है कि विह्वलता जन्य अश्रु बिन्दुओं का आविर्भाव गति के माधुर्य के सम्बन्ध में मन के सहज उद्गार अपने मूल रूप में सौन्दर्य मूलक वृत्ति के ही परिचायक हैं। अत लौकिक काव्य में सौन्दर्य शास्त्र के मूलभूत तत्व माधुर्य का प्रारम्भ वाल्मीकि रामायण से ही समझना चाहिए।

कालिदास की सौंदर्य चेतना अत्यधिक विकसित थी। उन्होंने सौंदर्य को सभी अवस्थाओं में रूप का पोषक माना है। मनोहर आकृति वालों को कोई भी वस्तु शोभा विधायक हो जाती है।[3] प्रसिद्ध प्रसाधन के अभाव में

---

[1] हलायुद्ध कोश पृ० ७१४

[2] तच्छुत्वा मुनयः सर्वे वाष्पपर्याकुलेक्षणा —वाल्मीकि रामायण।

[3] सर्वावस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम् शाकुन्तलम् अंक ६

(ii) सर्वास्वप्यवस्थासु चारुता शोभान्तर पुष्णाति। , अंक २

(iii) स्त्रावस्थासु अननुद्यता रूपस्य।' मालविकाग्नि मित्र

भी ऐसी आकृति वाला की शोभा बढ़ती ही है। इसी ने वल्कल द्वारा शकुन्तला का सौन्दय और बढ़ जाता है।[1] भास ने भी बताया है कि सुरूप लोगों के लिये सभी वस्तु अलकार हो जाते है।[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरूप व्यक्ति या वस्तु की सुदरता स्वत सिद्ध है उसके लिये बाह्य साधनो की अनिवायता नही है। प्रसिद्ध मण्डनो के अभाव म भी सौदय वृद्धिगत ही होता है। यहा सौन्दय की प्राकृतिक सत्ता का समथन मिलता है। ऐसा सौंदय मन को पापवृत्ति की ओर कभी भी नही ले जा सकता है।[3] इससे स्पष्ट है सौन्दय म सात्विकता उत्पन्न करने की क्षमता रहती है। इसम मधुर एव मनोहर आकृति की मुग्धता बनी रहती है। यह सौंदय इसी कारण ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठित, आध्यात्मिक और अभौतिक भी है। कालिदास ने हार्मोनी और सीमेट्री को भी सव द्रव्य समुच्चय और यथा प्रदेश विनिवेश' शब्द द्वारा व्यक्त किया है। जिसे पाश्चात्य सौंदय शास्त्री सौन्दय के अवयव के रूप म स्वीकार करते है।

कालिदास के सौंदय की पूणता उपेक्षणीय नही है। पावती के सृजन मे 'जग की रचना करने वाले ब्रह्मा ने सभी उपमान द्रव्यो के समुच्चय से उन्हे यथा स्थान विनिवेशित करके एक ही स्थान पर सौन्दय की पूणता को देखने की इच्छा से यत्नपूवक उसका निर्माण किया है।[4] यही कारण है कि रूप और सौंदय इनकी दृष्टि म सभी अवस्थाओ मे प्रिय और आकषक बना रहता है। एक अन्य स्थल पर पावती के स्वरूप वणन म सूय और अरविन्द को प्रस्तुत करके सौंदय सिद्धि के लिये व्यक्ति और वस्तु के सामञ्जस्य का रहस्योन्मीलन किया गया है।[5] यहाँ पर सौन्दय के अधिष्ठान की चर्चा की गई है और विषय तथा विषयी दोनो के समन्वय म सौंदय को स्वीकार किया गया है।

---

1 इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणामण्डन नाकृतीनाम्। शाकुन्तलम्

2 सवमलकारो भवति सुरूपाणाम्। भास नाटक चक्रम्। पृ० १२६

3 यदुच्यते पावति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच। कु स ५/३६

4 सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेश विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौंदय दिदृक्षयेव। कु० स० १/४९

5 उन्मीलित तूलिकयेव चित्रम् सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्या चतुरस्रशोभी, वपुर्विभक्त नवयौवनेन॥

सौन्दर्य की नित नूतनता के सम्बन्ध में भी इनका अपना विचार है। यह प्रतिक्षण बदलता ही रहता है। मालविकाग्निमित्र में इस विचार का एक अच्छा उदाहरण मिल जाता है। इस नाटक का एक पात्र नाट्याचार्य गणदास कहता है कि यह राजा मेरा परिचित नहीं है ऐसा नहीं है। वहाँ मेरा जाना अगम्य भी नहीं है। इसके समीप मैं चकित हो जाता हूँ क्योंकि यह मेरे नेत्रों को प्रतिक्षण नवीन प्रतीत होता रहता है।[1]

माघ की सौन्दर्य कल्पना भी इसी प्रकार की है। इनके विचार से क्षण क्षण में जो नवीनता को धारण करता है उसे ही रमणीय रूप कहते हैं।[2] यह सौन्दर्य वस्तु का आन्तरिक गुण होने से वस्तु निष्ठ हो जाता है। माघ के रमणीय रूप की इस व्याख्या से तीन बातों का ज्ञान होता है (१) सौन्दर्य के रूप को ग्रहण नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह प्रतिक्षण बदलता रहता है और उसमें नवीनता आती रहती है इससे वह अग्राह्यता के कारण निश्चित रूप वाला नहीं हो पाता है।

(२) सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओं के दर्शन में अतृप्ति का भाव बना रहता है। सौन्दर्य का मूल भाव वास्तव में यही है और इस रूप में पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र में इसकी चर्चा नहीं मिलती है। प्रतिक्षण की नवीनता का यह वर्णन केवल भारतीय परम्परा में ही प्राप्त है। इसकी विशेषता यही है कि नित्य नूतन तथा अपनी परिवर्तनशीलता में भी आकर्षक है। यही लावण्य का मूल है।

माघ के इस विचार की तीसरी विशेषता यह है कि सौन्दर्य धर्म वर्ण और आकार की सीमाओं का उल्लंघन करके अपनी सूक्ष्मता और अग्राह्यता से प्रेक्षक को चमत्कृत कर देता है। भारवि के मत से रम्य वस्तुएं गुण की अपेक्षा नहीं करती। इस दृष्टि से रम्यता भी निरपेक्ष सिद्ध होती है।[3] सौन्दर्य की पराकाष्ठा का वर्णन भवभूति ने मालती माधवम् में किया है। मालती सौन्दर्य की निधि या देवता है सौन्दर्य के सार का निकेतन है इसके निर्माण में निश्चय ही इन्दु सुधा मृणाल ज्योत्स्ना आदि का उपकरण लिया गया है

---

[1] न च न परिचितो न चाप्यगम्य चकितमुपैति तथापि पार्श्वमस्य। सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवनवोऽयमक्ष्णो। मालवि०

[2] क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया। शिशुपाल वध ४/१७

[3] न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्। किरातार्जुनीयम् ४/२३

और इसका निमाण करता स्वय कामन्व है।[1] इस प्रकार कवि परम्परा में प्रसिद्ध सौदय के सर्वोत्तम साधन एव तत्वो के सग्रह से उस उच्चतम रूप में प्रस्तुत किये जाने की चेष्टा की गइ है। इसे सौदय की पूण कल्पना कह सकते हैं।

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि संस्कृत कवियो ने सौन्दय के यथातथ्य चित्रण में अपनी असमथता व्यक्त की है। उनके मन में इसकी पूणता का बोध तो बार बार होता रहा है फिर भी वे उसे शब्दो में नही बाध पाते थे। इन कवियो ने सौदय के पराश्रय निरपेक्षता नित नवता पूर्णता आनन्दात्मकता आदि गुणो का वर्णन किया है। इनकी सौन्दय कल्पना अद्वितीय और स्वत सिद्ध है। इसके लिए किसी वाह्य साधन की आवश्यकता नही है। सौदय के पयाय के रूप में यहा कई शब्द मिलते हैं। यथा सुदर के लिए शोभन, विचित्र चित्रमय के लिए पेशल और आनन्दमय के लिये रमणीय तथा रूपवान् के लिये चारु जैसे पर्यायो का प्रयोग किया गया है। सौदय की वस्तु निष्ठता में इन कवियो का विश्वास बना हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि सौन्दयशास्त्र नाम से स्वतत्र रूप में सौदय की व्याख्या तो नही हो पाई है परतु प्रसगत सौदय सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वो का विवचन सस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। यदि इन सभी विचारो को सगृहीत कर दिया जाय, तो यह एक शास्त्र का रूप ग्रहण कर सकता है।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सौन्दय की व्याख्या करते हुए दाशनिक मनोवैज्ञानिक और शृगार मूलक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दाशनिक व्याख्या द्वारा सौदर्यानुभव में जमान्तर के सस्कारो की महत्ता स्वीकार की गइ है। वस्तु-सौदय के साथ चित्त पर पडे सस्कारो से ही उसके सौन्दय का अनुभव होता है। इस सस्कार से रहित होकर केवल वस्तुगत सौदय अनुभविता के अभाव में व्यथ हो जाता है। मनोवैज्ञानिक व्याख्या में सौदय बोध के लिये आकषण रुचि प्रियता, आकाक्षा-तृप्ति और वासना का महत्व स्वीकार किया गया है। शृगार मूलक विवेचन में वस्तु का सौन्दय प्रकृति का साहचय, सौदय की बोध विक्षोभन शक्ति लावण्य प्रतिक्षण की भासमान नवलता, अवस्था निरपेक्ष रमणीयत्व पूणत्व आत्म निभरत्व आदि तत्वो

---

[1] सा रामणीयकनिधेरधि देवता वा । सौदयसारनिकाय निकेतन वा ।
तस्या सखे नियतमिन्दुसुधा मृणाल ज्योत्स्नादि कारणमभूत् मदनश्च वेधा ।
मालती माधवम् भवभूति

की चर्चा की गई है। सौन्दर्य की स्थिरता के लिये प्राकृतिक मानवकृत एवं स्वर्गिक उपकरणों का प्रयोग भी बताया गया है। इन्हीं प्रवृत्तियों का आधार लेकर रूप में सौन्दर्य को देखने की चेष्टा की गई है।

अतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में सौन्दर्य की जो कल्पना की गई है वह रूप पर आधारित है। रूप में आकार एवं विभिन्न अंगों के उचित संगठन आदि का सौन्दर्य रहता है। यह रूप बाह्य प्रसाधनों के अभाव में भी स्वतः सभी रमणीयता से उद्भासित होता रहता है। इसमें रूप के नैसर्गिक गुणों का समर्थन मिलता है, अर्जित सौन्दर्य की रुचि कम दीख पड़ती है। यहीं पर हिन्दी के कवियों की सौन्दर्य विषयक मान्यता भी देख लेनी चाहिए।

हिन्दी कवियों का मत

सौन्दर्य विषयक हिन्दी कवियों की अपनी अलग मान्यताएँ हैं। बिहारी की धारणा इस सम्बन्ध में प्रमुखतः दो रूपों में दीख पड़ती है। प्रथमतः वे वस्तु में रूप अथवा कुरूप को नहीं मानते हैं। उनके विचार से वस्तु में रूप अथवा कुरूप नहीं होता, अपितु समय-समय पर मन की रुचि के अनुसार ही वस्तु प्रिय अथवा अप्रिय प्रतीत होती है।[1] इस विचार का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि बिहारी ने सौन्दर्य के आत्मपरक दृष्टिकोण का समर्थन किया है। सौन्दर्य को विषय प्रधान न मानकर विषयी प्रधान माना है और सौन्दर्यानुभूति में व्यक्ति की भावना का सम्यक् स्वीकार किया गया है। इस प्रकार यह सौन्दर्य आत्मपरक हो जाता है। वास्तव में आँखों में ही सौन्दर्य का मान रहता है। यह देखने की जान वाली वस्तु या व्यक्ति में नहीं होता। एक दूसरे स्थल पर उन्होंने रूप का विधान बताया और उसको

सस्कृत कवियों की भांति इनकी सौंदर्य कल्पना भी बहुत उच्च-कोटि की है। वास्तविक सौंदर्य का अंकन तो ससार का बडे से बडा कलाकार भी नही कर सकता है। बिहारी की नायिका के सौंदर्य को चित्रित करने मे जगत् के केते चतुर चितेरे कूर हो जाते हैं।[1] इसका कारण सौंदर्य की प्रतिक्षण की नूतनता और रमणीयता है। दास की नायिका भी 'भोर म और पहर मे और दोपहर म और ही हो जाती है।[2] मतिराम की कल्पना मे पास से देखने पर गुराई खरी दीख पडने लगती है।[3] पद्माकर ने अगों के पल-पल मे बदलते रहने की बात कही है। इसी से ऐसी बाला का वर्णन करते नही बनता है —

पल-पल म पलटन लगे, जाके अग अनूप।
ऐसी इक ब्रजबाल का कहि नहि सकत सरूप ॥

यहा उनका वस्तु परक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है जिसमे सामीप्य भी एक आवश्यक तत्व हो जाता है। इनकी सौंदर्य दृष्टि का माधुर्य परिचिति की सान्द्रता म स्पष्ट हो जाता है। कुलपति मिश्र ने राधा की लुनाई' की सरसता को कल्पना की मधुरिम जगत् म परिणित कर दिया है। सूर की गोपियाँ कृष्ण से पहचान मानती ही नहीं हैं क्योंकि उनका रूप निमिष निमिष म और हो जाता है। अत रूप की एक निश्चित धारणा के अभाव मे छबि की रति नही हो पाती।[4]

तुलसी की सौन्दर्य चर्चा भी द्रष्टव्य है। उन्होंने मनोहर शब्द का प्रयोग बार-बार किया है। उनके मति के अनुसार राम की कथा 'मनोहर है। करउ मनोहर मति अनुसारी। काव्य म बाल्मीकि न माधुर्य आचार्य जगन्नाथ ने रमणीय का प्रयोग अधिक किया है। इसी प्रकार तुलसी ने उसी ग्रथ मे मनोहर शब्द का प्रयोग किया है। इस मनोहरता के साथ

---

1 लिखन बठि जाकी सबिहि गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर। बिहारी

2 आज भोर औरई पहर होत औरई ह्व, दोपहर औरई,
रजनि होत औरई। दास

3 ज्यो ज्यो निहारिय नेरे ह्व नैननि,
त्यो त्यो खरी निकर सी निकाई। मतिराम

4 स्याम मो काहे की पहचानि।
निमिष निमिष वह रूप न वह छबि, रति कीज जेहि आनि। सूर

मंगलकारिता के गुण को भी उन्होंने माना है। 'मधुर मनोहर मंगलकारी।' रामचरितमानस में वर्णित विभिन्न घाटों को 'मनोहर' कहा है, उपमाओं का विचित्र विलास मनोहर है, चौपाइयाँ 'चारु' हैं, कवि-युक्तियों में 'मञ्जुता' है। छन्द सोरठा दोहा ये सभी सुन्दर हैं, अर्थ अनूप हैं।[1] तुलसी के छन्दों की विवेचना मात्राओं आदि की न होकर उनके प्रति विशेष अभिव्यंजनाओं में है। छन्द विभिन्न रंग के कमलों के तुल्य माने गये हैं। यह अर्थ फूलों के पराग, मकरंद, सुवास आदि के समान ध्वनि को आह्लादित करता है। अतः मधुर मनोहर मञ्जु चारु आदि शब्दों का प्रयोग उनकी सौन्दर्य-वृत्ति को ही प्रकट करता है।

आधुनिक युग में जयशंकर प्रसाद ने सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है।[2] यदि सौंदर्य का सम्बन्ध चेतना से है तो यह मानसिक जगत की वस्तु है। अतः प्रसाद को आत्मवादी दृष्टिकोण वाला कहा जायगा। पंत ने सुन्दरता को सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का संधान बताया है।[3] मैथिलीशरण गुप्त ने निष्कम्प सत्य को विश्वास और कल्पना के मन को सुन्दरतम कहा है।[4]

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि भारतीय काव्यशास्त्र में सौंदर्य का विवेचन स्वतंत्र शीर्षक में न होकर काव्य रस या रमणीयार्थ के प्रसंग पर हुआ है। काव्य-ग्रंथों में भी इसे स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त नहीं हो सका है। प्राचीन ग्रंथों में सौन्दर्य शब्द का विवेचन भी नहीं होता था। आज तो इसे काव्य का प्राण माना है। इसका मूल भरतमुनि और अरस्तू का काव्य सिद्धान्त माना जाता है। पाश्चात्य की आधुनिक विचारधारा का प्रभाव भी उपेक्षणीय नहीं है। इस सम्बन्ध में डा० विजयेन्द्र स्नातक का मत द्रष्टव्य है, "अरस्तू का 'दी गुड एण्ड दि ब्यूटिफुल' के रूप में जिस ब्यूटिफुल का संकेत किया है वह सुन्दर की भूमिका में सामने आया और उसका बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप का आख्यान आरम्भ हुआ। ईसा की उन्नीसवीं शती के

---

1. छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।
   अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा। [illegible]
2. उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं—
   जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं। कामायनी-लज्जा सर्ग
3. [illegible] ऐश्वर्यों का संधान—[illegible]—पृ० ५८ [illegible]
4. सत्य सत्य निज शीश धरे पर वो किन्तु [illegible] ना होता है।
   और कल्पना का मन कहता सुन्दरतम ही होता है। मैथिलीशरण गुप्त

अतिम चरण म सत्य शिव, सुदरम् के रूप मे जो सिद्धात वाक्य बगला भाषा से हिंदी मे आया, वह भी कदाचित् पाश्चात्य मीमासको की विचार धारा से ही नही वरन् शब्दावली से भी प्रभावित था।[1]

स्पष्ट है कि भारतीय काव्य शास्त्र सौन्दर्यानुभूति मे मन के चेतन अश की महत्ता को स्वीकार करता है। इसमे यह अन्तमुखी है, साहित्य म सौदय का आरम्भ शब्द की जिज्ञासा के साथ स्वीकार की जा सकती है, क्योकि आत्मा की जिज्ञासा सहज एव स्वाभाविक है। यह सौदयानुभूति शब्दाथ के माध्यम से भाव जगत् की निधि बनकर सौदय का परिष्कृत रूप हमारे समक्ष लाती है जिसे लक्ष्य करके सौदय का बोध हो, वही वस्तु सुदर है। वह शब्द, भाव, कवि या कलाकार की सृष्टि कुछ भी हो सकती है। वस्तु तभी सुदर कही जाती है जब उपचेतन के सस्कार उद्बुद्ध होन पर मन की एक विशेष स्थिति बन जाती है। यही स्थिति सत्वोद्रेक की भाव भूमि है। सच तो यह है कि कलात्मक अभिरुचि जिनम है, वे सभी सौदय के पारखी है और सहृदय भावो का प्रेषणीय बनान के साथ ही अव्यक्त कलागत सौदय को देखता और परखता भी है।[2] एस सौदय की तीन कोटिया हो सकती है (१) देखत ही लुब्ध कर लेने वाला सौदय। ऐसा वणन सूर न एक स्थल पर अच्छा किया है।[3] (२) दनिक व्यवहारो म दीख पडन वाला सौदय, जिसका महत्व परिचय की अधिकता से चेतन दशा तक नही पहुँच पाता या वह वस्तु विशेष चर्चा की विषय नही बनती। बहुधा सम्बन्ध भावना की मधुरता क अभाव म ही वस्तुगत सौदय का अभाव सा रहता है। यदि वही वस्तु हमसे सम्बन्धित हो जाय तो उसके सौदय का अलौकिकत्व प्रकट होन लग जाता है। (३) मध्यवर्ती सौदय यही काव्य का प्रेरक हो सकता है क्योकि वस्तु म सम्बन्ध रहने से या तो

---

1 हिंदी काव्य और उसका सौदय भूमिका भाग डा० विजयेन्द्र स्नातक।

2 Every man is an artist not only in that he conveys his impressions to others by language but becaue he perceives the beauty of world and of art each of which he must create or recreate for himself since neither speaks to the animal Carritt

3 औचक ही देखी तहाँ राधा, नन विशाल भाल दिय रोरी।
नील वसन फरिया कटि बाँधे बेनी रुचिर भाल झकझोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नन नन मिलि परी ठगोरी। सूर सागर।

वह अलौकिक हो जायगा या भाव सवलित होकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होगा। मध्यवर्ती स्थिति में वस्तु का वास्तविक मूल्यांकन सम्भव होता है। ऐसी वस्तु सौंदर्य युक्त होकर हमारे समक्ष आती है। इस सौंदर्य के अनेक तत्व स्वीकार किये गये हैं। इसकी व्याख्या करने के पूर्व सुन्दर शब्द के साथ उदात्त और कुरूप के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण होगा।

सुन्दर और उदात्त—

सौंदर्य आत्मा का धर्म है। वस्तु के साथ मन का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर तथाकथित असुन्दर वस्तु भी सुन्दर प्रतीत होने लगती है। ऐसी वस्तुओं में मन या आत्मा के विभिन्न गुण अनन्तता विशालता आदि के दर्शन होने लगते हैं। यहाँ तक कि प्रकृति का विराट रूप भी हमारे आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। इस आकर्षण के साथ सौंदर्य के अन्य भी कई तत्व—नवीनता, माधुर्य, रमणीयता, आह्लादकता-आदि की चर्चा की गई है। प्रकृति की इस विशालता को देखकर उसकी महानता को हम स्वीकार कर लेते हैं। हमारी मौन स्वीकृति उस विशालता के समक्ष अपनी लघुता को व्यक्त करने लग जाती है। विशालता और आत्म लघुता के इसी भाव में उदात्त तत्व छिपा रहता है।

आत्मा की विशालता में उदात्त तत्व निहित रहता है। उदात्त बोध के अवसर पर दृश्य वस्तु में भय का मिश्रण और तज्जन्य आतंक की विभीषिका के साथ अपनी लघुता का भाव भी तुलनात्मक दृष्टि से बना रहता है। काव्य में वर्णित विराट घटनाएं जीवन का विराट राग द्वेष त्याग और वीरता आदि सभी विराट के किसी रूप की अभिव्यञ्जना करते हैं। उत्तुंग पर्वत श्रेणियाँ महासागर की गहनता एवं विस्तार कान्तार की भयावह गुफायें तथा इसी प्रकार के अन्य विराट वस्तुओं में उदात्त के भाव उत्पन्न होते हैं। यह उदात्त-तत्व सुन्दर से भिन्न होता हुआ भी उसके भेदों में एक है।

सुन्दर का विवेचन करते हुए उसके पाँच भेद किये गये हैं। उदात्त (Sublime), भव्य (Grand), सुन्दर (Beautiful), मनोरम (सुष्ठु-GraceFul) और ललित (Pretty)। इनमें उदात्त को पराकाष्ठि और ललित को अपराकाष्ठि बताया गया है। सुन्दर को मध्यवर्ती स्थिति स्वीकार की गई है। इसकी स्थिति बहुत कुछ प्रसाद गुण की सी मानी गई है। सुन्दर तत्व एक ओर उदात्त और भव्य में और दूसरी ओर मनोरम और ललित में सूक्ष्म वर्तमान रहता है। भाव पक्ष में उदात्त की अनुभूति चित्त के उत्कर्ष और विस्तार के रूप में होती है। आलम्बन और प्रमाता के बीच एक सुखद

सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। सुन्दर की अनुभूति प्रीति के रूप मे होती है।[1]

उदात्त शब्द का प्रयोग नायक विश्लेषण प्रसग पर भी नाट्यशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थो म किया गया है। नायक या नेता के चार भेद धीर ललित प्रशान्त, उदात्त और उद्धत बताये गये हैं। इन चारो भेदो म धीरता का गुण अनिवार्य रूप म वर्तमान है। धीरोदात्त कोटि का नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन स्थिर, निगूढ अहकार वाला और दृढव्रत होता है।[2] इन विशेषताओ म गम्भीरता की अत्यधिक महत्ता स्वीकार की गई है। एक अन्य स्थल पर लोकातिशय सम्पत्ति वर्णन या प्रस्तुत के अग रूप मे महा पुरुष का चरित्र सुनना ही उदात्त बताया गया है। लोकातिशय सम्पत्ति वर्णनोदात्तमुच्यते। यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्ग महता चरित भवेत्।" यहाँ पर महापुरुष के कथन द्वारा भी लोकोत्तर विशाल चरित्र की व्यञ्जना की गई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उदात्त म महानता का होना आवश्यक है परन्तु वैभव सम्पन्न ऐश्वर्य युक्त राज दरबार का वर्णन उदात्त की श्रेणी म नही आयगा।

सुन्दर को ललित और उदात्त की मध्यवर्ती स्थिति म माना गया है। 'ललित शब्द की चर्चा कई स्थलो पर हुई है। धीर ललित नायक को निश्चिन्त, कलाओ म आसक्त सुखी और कोमल चित्त का बताया गया है। शृगार की प्रधानता के कारण उसके आचार-व्यवहार और चित्त की वृत्तिया म सुकुमारता होना है। वह मृदु होता है। नायक के आठ सात्विक गुणो म भी 'ललित' की गणना की गई है। स्वाभाविक शृगार और आकार की चेष्टा करने को ललित कहते हैं।[3] नायिका के स्वभावज अलकार मे भी ललित की गणना होती है। यहाँ पर सुकुमार अगो के सरस विन्यास म 'ललित माना गया है। अगो की सुकुमारता सुन्दरता के साथ रहती है। सौंदर्य के अभाव मे सुष्ठुता का यह गुण नही पाया जाता। अत ललित और सुन्दर का विशेष सम्बन्ध माना जायगा।

भारतीय परम्परा म जो सम्बन्ध ललित और उदात्त मे है, पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र म वही सम्बन्ध उदात्त और सुन्दर म है। इस दृष्टि से ललित

---

1 काव्य म उदात्त तत्व—डा० नगेन्द्र

2 महासत्वोऽतिगम्भीर क्षमावानविकत्थन।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत ॥ दशरूपक २/४-५ धनञ्जय

3 शृङ्गाराकार चेष्टा च सहज ललित मृदु। २/१४ दशरूपक

और सुदर दोनों समानार्थक हैं। सौन्दर्य के मोहक शक्ति या लावण्य गलित होने से ही प्रिय और ग्राह्य होता है। इसमें आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसी से उसके सानिध्य की कामना मन में बना रहता है।

सुन्दर में प्रियता का जो भाव है उदात्त में उस कोटि का भाव उपलब्ध नहीं होता। उदात्त के विशेष गुणों के कारण वह श्रद्धास्पद होता है। इसमें शील और महानता का सौन्दर्य रहता है। उदात्त की महानता के कारण उसके प्रति श्रद्धा मिश्रित और एक भय युक्त भाव की उत्पत्ति होती है। उदात्त सौन्दर्य का आलम्बन हमारे श्रद्धा भाव को उभारता है और रूप सौन्दर्य युक्त आलम्बन हमारा प्रेम पात्र बनता है। इस प्रकार उदात्त और सौन्दर्य की अनुभूतियों के फल में अंतर पड़ता है। पहले में श्रद्धा और दूसरे में प्रेम है। सुदर की आत्मीयता उदात्त के भय में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रेम का एकान्त भाव श्रद्धा में विस्तार पा लेता है। प्रेम में आश्रय और आलम्बन की एकता मानी जाती है श्रद्धा में आश्रय अनेक हो सकते हैं।

उदात्त तत्व के मूल पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वैदिक युग का ऋषि प्रकृति के महान् तत्वों को एक विशेष शक्ति के रूप में स्वीकार करता रहा है। वह उनसे आतंकित रहता था। उसके प्रति उदात्त भावना थी। इस प्रकार आरम्भ में उदात्त के साथ भय की भावना वर्तमान रहती रही है।

बर्क ने बताया है कि उदात्त और सुदर में भिन्नता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध प्रियता से है और उदात्त का दुख और भय से है। कुरूप को सुदर का विरोधी माना है। इससे वह प्रियता का विरोधी भी हो गया।[1] इसके अतिरिक्त स्पर्हीनता शक्ति महताकार आदि उदात्त के अन्य महत्वपूर्ण गुण हैं। लिस्टोवेल ने बर्क के उदात्त के एक और गुण का संकेत किया है। उदात्त की स्थिति में भय तभी उत्पन्न होता है जब जीवन और शरीर के लिए वास्तविक खतरा नहीं होता।[2]

काण्ट की उदात्त कल्पना बर्क के सिद्धान्त से प्रभावित है। बर्क का विचार है कि जो कुछ भयानक है अथवा भय के उत्पादन का मूल है उसे उदात्त उद्गम का एक साधन मान सकते हैं।[3] इनके आधार उदात्त का

---

1 History of Aestheics P 203

2 A critical Hi tory of Modern Aesthetics P .50

3 Whatever is fitted in any sort to excite the idea of pain, and danger that is to say whatever is in any sort terri

सम्बन्ध आत्म रक्षा से अवश्य है किन्तु उदात्त की कलात्मक अनुभूति तभी होती है जब मृत्यु अथवा शारीरिक शक्ति का कोई वास्तविक खतरा नहीं रहता।[1] काट ने सुन्दर और उदात्त म भेद माना है। इनकी सौदय कल्पना रूपात्मक है। उदात्त का इन्होंने भी बर्क के अनुसार रूपहीन या कुरूप माना है।[2]

सौदय एक शक्तिशाली संवेदना उत्पन्न करता है, जो कल्पना और आकर्षण से युक्त होता है। उदात्त की प्रसन्नता सीधी न होकर अवान्तर रूप म मिलने वाली रहती है क्योंकि यह एक विशेष शक्ति के क्षणिक अवरोध स आता है।[3] इन्होंने उदात्त के दो भेदो का बताया है। प्रथम गणितात्मक है जिसका मुख्य गुण आकार की महत्ता है। इन्द्रिया इस महत् आकार को ग्रहण करने म असमर्थ रहती ह। उदात्त का दूसरा रूप सक्रिय है, इस रूप म शक्ति की महत्ता के विपरीत हमारी अशक्तता का उद्घाटन होता है।[4] इस प्रकार आकार और शक्ति की महत्ता द्वारा हमार म भय का भाव उत्पन्न होता है।

हीगेल न उदात्त को अनन्त की अभिव्यक्ति का प्रयास कहा है। रूप-प्रधान कला का विषय उदात्त नहीं हो सकता, यद्यपि भारतीय देवा की असामान्य कल्पना से उदात्त को रूप देने की चेष्टा विद्वानो ने की है। ब्रह्मा के चार और कार्तिकेय के छ मुखो की कल्पना का यही रहस्य है। फिर भी अनन्त का आकार देने के विभिन्न साधना रूप, रंग सख्या आदि म बाधना

---

ble or is conversant about terrible object, or operates in a manner analogous to terror, is a source of the sublime Edmond Burke Quoted from Philosophies of Beauty by E F Carritt

1 Critical History of Modern Eesthetics P 250

2 History of Aesthetics P 276

3 Beauty brings with it directly a feeling of vital stimulus and so can be united with charm and play of imagination But our feeling for the Sublime is only an indirect pleasure since it is produced by the experience of a momentary check to our vital powers The critique of Judgement P 117 Immamuel kant

4 History of Aesthetics P 277

इस सम्बन्ध म रामरतन भटनागर का विचार है कि सूर की शृंगार भावना का गोपीकृष्ण अथवा राधाकृष्ण सम्बन्धी सन्दर्भो मे उदात्तीकरण हुआ है। प्रतीकात्मक रूप मे ग्रहण किये गये राधाकृष्ण म उनका व्यक्तित्व छिप गया है। उनके दमन ने लौकिक शृंगार भाव को अलौकिक का शृंगार बना कर प्रस्तुत किया है। इससे समाज की स्वीकृति प्राप्त होने म कोइ बाधा नही आई। जहा कही समाज द्वारा दूषित विचारो का ग्रहण किये जाने की आशका थी, वहा सूर न प्रतीको का अवलम्ब लिया, कूट काव्य के द्वारा समाज और अपने व्यक्तित्व के बीच म एक पर्दा डाल दिया, तथा साहित्यिक रूढि एव परम्पराओ के रूप म अपने अवचेतन मन की वासनाओ को तृप्त होने के लिये मुक्त रूप म छोड दिया। अत उनम कवि एक जागरूक कलाकार और रस भोक्ता के रूप मे समक्ष आता है।[1]

डा० हरद्वारी लाल शर्मा के अनुसार जब हम अनन्त पीडा का चित्र, काव्य मूर्ति, भवन आदि म मूर्त बनाकर अथवा प्राकृतिक पदार्थों म इसी का मूर्त रूप पाकर इसका आस्वादन करते हैं तब हम इसे सुदर न कहकर उदात्त कहते है। वस्तुत सुदर का ही उत्कृष्ट रूप उदात्त है, जिससे प्रवृत्तिया से ऊपर उठकर मन आध्यात्मिक जगत की अनुभूतियो का मूर्त रूप मे आस्वादन करता है।[2] इस जगत मे पहुँच कर वह धर्म की सीमा म आ जाता है, उसकी आध्यात्मिकता यथार्थ की प्रतिकूलता समाप्त कर देती है। ध्यान म रखना चाहिये कि सौन्दर्यानुभूति की सरसता उदात्त म नही रहती। उदात्त के अनन्त भाव के जाग्रत होने म व्यक्ति मे लघुता का भाव आता है। वेदनानुभूति मन म सकोच उत्पन्न करती है। तदनन्तर मन तीव्र गति से आत्म बोध प्राप्त करता हुआ नवीन चेतना की जागरूकता अनुभव करने लगता है। यह चेतना धर्मगत भी होती है। इसमे धर्म का अनुभूति को उदात्त का अनुभूति कह सकते है। धर्म का उदय जीवन म अनन्त और असीम तत्व की स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दर्शन एव चिन्तन से ही होता है। बौद्ध दर्शन मे 'सर्व दुखम् एव क्षणिकम्' की अनन्त कल्पना मे जीवन का विषाद देखा गया था। इसका अवसान उनके जीवन का ध्येय था। इस कल्पना म लोकोत्तर वेदना और सन्तोष के अनुभव म उदात्त की ही अनुभूति की गई। युद्धोपरान्त महाभारत की शान्ति कल्पना उदात्त की भूमि पर है। सभी धार्मिक ग्रथो म कल्पना का यही सुन्दर रूप

---

1 मूल्य और मूल्याकन—पृ० ११६–११७ रामरतन भटनागर
2 सौन्दर्य शास्त्र—पृ० १०५ (१९५३ सस्करण) साहित्य भवन।

दीख पड़ेगा। भगवान् कृष्ण के जीवन में सुन्दर और उदात्त की कल्पना का अच्छा समन्वय मिलता है। उनमें रूप माधुर्य शोभा आदि गुण आनन्दामय हैं रुदन उत्पन्न करने वाले नहीं हैं। विपत्तियों में उनका अविचल भाव यहाँ तक कि उनका अवसान भी आनन्द का ही विषय है। इसे ही उदात्त की उच्च अनुभूति कहेंगे। उनके रूप स्वरूप की तथ्यता जानने के लिये ही धर्मगत साधना का प्रादुर्भाव होता है। अतः स्पष्ट है कि धर्म के क्षेत्र में ग्रन्थों में जिस परम शक्ति या तत्व का वर्णन किया जाता है वह लोक भावनाओं के अनुकूल होकर भी लोकोत्तर है। यही उदात्त की शक्ति है। इससे आराध्य की विशालता, अलौकिकता और अपनी लघुता का भाव बराबर बना रहा है।

लौकिक जगत की यथार्थता से अलौकिक की सृष्टि में उदात्त की भूमि पर मानव के पहुँचने की प्रवृत्ति का विश्लेषण एवं उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगा। 'रति' नामक भाव का प्रधान साधन नायिका का वर्णन साहित्य में बहुत हुआ है। यह वर्णन लौकिक व्यवहार में मधुर एवं आकर्षक माना जाता है। यह उदात्त भावनापूर्ण नहीं कहा जायगा परन्तु इसका उदात्तीकरण दो प्रकार से सम्भव हो सकता है। (१) लौकिक रति विषयक अन्य भावनाओं को एक मात्र अलौकिक आलम्बन के आधार से प्रकट कर दिया जाय। सूर आदि भक्त कवियों ने ऐसा ही किया है। इसी से वे उच्चकोटि के भक्त कवियों में स्थान पा सके हैं। (२) रति भाव की अनुभूति की अति से मानव में विरक्ति जन्य जिस भावना का विकास होने लगता है वही रत्यनुभूति की निस्सारता से 'उदात्त तत्व' की ओर अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार रमणी का आकर्षक सौन्दर्य उसमें अनासक्ति उत्पन्न कर देता है।

व्यक्ति के इस मानसिक स्थिति का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उसमें वैराग्य की भावना मूर्त और स्पष्ट होने लगती है तथा एक अलौकिक प्रकाश की प्रतीति होने लगती है। यह मन का ऐसा सन्धि स्थल होता है जहाँ एक ओर रूप का आकर्षण एवं वासना और दूसरी ओर उदात्त की आलोकमय कान्ति रहती है। व्यक्ति पीछे लौटकर विषय स्वाद पाने की विकलता के अनुभव के साथ विराग जन्य वेदना का अनुभव करता है। विकलता एवं वेदना में दोलायमान उसकी चित्तवृत्ति क्रमशः स्थिरता ग्रहण करती हुई शान्ति की ओर उन्मुख होकर भावों से विरक्त होती चली जाती है। यह विरक्ति उसमें एक नये सृजन का बल देती है। वह यथार्थ जीवन से परे एक आध्यात्मिक जगत की कल्पना करने लग जाता है। यही कल्पना कलाओं में व्यक्त होने लगती है।

थला वल्पना के इस साहाय्य स आध्यात्मिक जगत म प्रविष्ट हो आनन्दानुभव का कारण बनती है। कलाकार कल्पना लाक स आनन्द के लोक म जाकर विराटता, अनन्तता और विस्मयजनकता क स्थायित्व म 'उदात्त' का दशन करन लग जाता है। ससार की उसकी कल्पना अनन्त म लीन हो जाती है, उसका आत्म चेतन प्रवुद्ध हो जाता है, वह स्वय म ब्रह्म की अनुभूति पा लेता है। लौकिक वदना आध्यात्मिक आनन्द म परिणित हो जाती है। वह अब सौन्दय के स्थान पर उदात्त की अनुभूति करन लग जाता है। उसकी मानसिक भाव भूमि लोक के वस्तुगत आकपण का त्याग कर उस महान् तत्व के साथ एकाकार करती हुई उसक आलोक के विस्मय से मुग्ध हो उदात्त की अनुभूति क्षेत्र म प्रविष्ट हो जाती है।

डा० रामेश्वर खण्डेलवाल का मत है कि उदात्त सौन्दय म मानव और प्रकृति म व्याप्त आत्मा की अनन्तता, शक्ति, विशालता उदात्तता और विराटता का दशन होता है। इसम दृश्यमान वस्तु या परिस्थिति को देखन पर अनुभूत होन वाला एक धार्मिक भाव मिश्रित भय या आतक ही मुख्य तत्व है। उदात्त के दशन के समय हमम एक आत्म लघुता की भावना भी होती है। प्रचण्ड झझावात, महिमावान् विराट हिमवान् का विस्तार विशाल व विस्तृत नद, तारा भरा अनन्त आकाश, क्षितिज विस्तृत नील वर्णी तरगायित रत्नाकर, दृढ व विशाल भवन, शिव-ताण्डव, शिव की जटा स आकाश से कूदती हुई गङ्गा आदि का सौन्दय उदात्त सौन्दर्य कहलाता है क्योकि इनका विस्तार दृढता व शक्ति मन पर एक ऐसा विचित्र और मधुर आतक स्थापित कर लेती है कि मन चुपचाप अपनी लघुता स्वीकार कर लेता है।[1] इस विचार म प्रकृति क विशाल रूपो के समक्ष अपनी लघुता की भावना पर बल दिया गया है।

उदात्त म इसका आलम्बन हमार चित्त को केवल आकर्षित ही नही करता अपितु उसका विकास और उन्नयन भी करता है। इस प्रकार जो आलम्बन चित्त को उत्कर्ष की ओर ले जाय वह उदात्त कहा जाता है अर्थात् जिस तत्व से आश्रय की चित्त भूमिका उत्कर्ष को प्राप्त हो, वही उदात्त है। इस उत्कर्ष अथवा उन्नयन क साथ लोकातिशयता अथवा महानता प्राप्त होती है। व्यक्ति की स्वार्थमयी भावना से ऊपर उठकर लोक मगल की भाव भूमि पर आते ही अतिशयता का आरम्भ हो जाता है। आलम्बन की अतिशयता से हम उसके तात्विक स्रोत की ओर अभिमुख होते हैं। उसक प्रकर रहस्य भावना

---

[1] आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और शृगार—पृ० १७३

म रमण करने लग जाते है। अत उदात्त का दशन वहीं होगा, जहाँ किसी वस्तु घटना, शील आदि म अतिशयता के साथ उत्कप हो।

उदात्त की यह अतिशयता दो प्रकार की होती है। प्रथम प्रवाह की ओर ले जाने वाली (२) धारा स्रोत के प्रवाह म रमा देने वाली अतिशयता। इस दूसरी अतिशयता म जिज्ञासा का भाव होता है। इसम हम अपने को रमा देना चाहते हैं। अत वह अतिशयता जो रहस्य भावना को जन्म दे, उसकी स्रोत कल्पना म निमग्न कर दे वह उदात्त कोटि की मानी जायगी। इन दोनो म विस्मय और तन्मयता का भाव पहले प्रकार म होगा।

उदात्त के सम्बन्ध म किये गये विचार के दो दृष्टिकोण हो सकते हैं। प्रथम दार्शनिक दृष्टिकोण और दूसरा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। बताया जा चुका है कि उदात्त अपने वृहत् रूप म मानव म एक लघुता का आभास कराता है। व्यक्ति अपने लघुत्व को वृहत् अथवा विशाल म मिला देने की चेष्टा करता है। इसी चेष्टा द्वारा रहस्य की भावना का उदय होता है। प्रकृति के विशाल काय विभिन्न अंग समुद्र पर्वतादि इसी विराट के रूप हैं। इसे देखकर मनुष्य म जिस भय की उत्पत्ति होती है उस भाव के दो आलम्बन हो सकते है। प्रथम वह स्थूल वस्तु समुद्र पर्वतादि जिसे देखकर इस भाव का सचार होता है। दूसरा सूक्ष्म तत्वों स उत्पन्न होने वाला भाव। इसम अमूर्त भावो स भय का सचार होता है। काल की अनन्तता अनादि अवस्था विश्व की निस्सीमता आदि इसी क्षेत्र म आते है। यहाँ साधक साध्य के प्रति आत्म बलिदान का अनुभव करता है। वह अपने अस्तित्व को उस अनन्त म विलीन कर देना चाहता है। उसका यही भाव कला या काव्य म उदात्त का अनुभव कराता है। इससे साधक अपने क्षुद्रत्व एव सीमाओं के बन्धन को छोड़कर महान् और निस्सीम हो जाता है। कबीर आदि कवियों की रहस्यात्मकता इसी कोटि की है।

उदात्त का दूसरा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। उदात्त की मानसिक अनुभूति करते समय प्रवृत्तियो म एक गतिरोध आ जाता है। इससे एक पीड़ा का अनुभव होता है जिससे भावनाएं ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं इसम आत्म चेतना और स्फूर्ति का अनुभव होता है। उदाहरण के लिये त्याग बलिदान आदि म मन को निम्न प्रवृत्तियों का दमन करना पड़ता है। इससे आत्मा भौतिकता व स्वार्थ स ऊपर उठकर एक आनन्द का अनुभव करने लग जाता है यही उदात्त का अनुभव है। इसी अनुभव की अभिव्यक्ति कृष्णभक्तो ने अपनी कला के माध्यम स दास्य भक्ति के विभिन्न अवसरों पर की है। इनके

दीनता के पदा म आत्म प्रक्षालन की कामना तथा आराध्य की महत्ता के साथ अपनी लघुता का नान बना रहता है। इसी स उनकी अभियक्ति आनन्द दायिनी बन जाती है।

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि सुदर और उदात्त की रूप भव्यता मे अतर है। 'सुदर म अरसिकता अथवा भयानकता नही होनी। उदात्त म भय को उत्पन्न करने की क्षमता रहती है। कही-कही पर 'अरूप से भी भयोत्पत्ति हो जाती है। ग्रन्था म वर्णित प्रलयकाल म रूप के अभाव से ही उदात्त की कल्पनात्मक अनुभूति होनी है। यहा उस परमनियता की चेतना भाव तत्व से जाग्रत न होकर अभाव तत्व स ही हो जाती है। प्रकृति के इस विनाश म भी महानता के बीज वतमान रहत । भव्य निर्माण म यदि सौन्य की अनुभूनि होनी है तो इस निमाण के अवशेष चिन्हा से उदात्त की ही अनुभूनि होनी है, सौदय की नही । सौन्दयानुभूति म रूप' उसका प्रमुख साधन है जिसकी एक निश्चित आकार और सीमा है, परन्तु उदात्त की अनुभूति मे इसका आलम्बन रूप और रूप का अभाव भी हो सकता है। इस अभाव दशा म वह अनन्त हो जाता है। इस दृष्टि से सौदय और उदात्त मे गति प्रस्थान और ध्यय का अतर भी माना जायगा।

उदात्त म धम की भावना है और सुन्दर म प्रियता की। कोमलता मे भी सौदय का आभास हो सकता है। सुन्दर कलाओ की सृष्टि म माधुयगुण की महत्ता मान्य रही है। सुदर वस्तु वह है, जिसम माधुय और रमणीयता दोना ही गुण वतमान हो। क्षण क्षण म उत्पन्न होने वाली नवीनता ही रमणीयता है। माधुय का अथ चित्त को द्रवित करने वाला आह्लाद है ' चित्त द्रवीभावमयोऽह्लादो माधुयमुच्यत । रमणीय वस्तुओ म उदात्त को भी सम्मिलित किया जा सकता है, परन्तु नवता और माधुय स सुदरम् की ही सृष्टि होती है उदात्त की नही। फिर भी सुन्दर और उदात्त पूणत भिन्न नही कहे जा सकत। उनकी सगति कही न कही अवश्य रहती है। सुदर और उदात्त मे मूल भेद यह है कि सुदर म सुख की मात्रा अधिक होती है। सामान्य दुख के द्वारा आनन्द की अनुभूति नही होती, परन्तु यदि दुख से भी आनन्द की अनुभूति होने लगे तो उस सुदर न कहकर उदात्त' ही कहेगे। इस प्रकार सुदर और उदात्त एक ही भाव के दो भिन्न पक्ष कहे जा सकते हैं।

सुदर और कुरूप

जगत की सम्पूर्ण वस्तुओ के प्रति मानव म तीन प्रकार की

प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं। कोई वस्तु आकर्षित करती है किसी वस्तु में आकर्षण के स्थान पर उन विषयों में विकर्षण उत्पन्न होता है और तीसरे प्रकार की वस्तु से वह उदासीन रहता है। ऐसी वस्तुएँ न तो उसे आकर्षित करती है और न ही उसे देखकर मानव के मन में विकर्षण का भाव उत्पन्न होता है वह ऐसी वस्तुओं की उपस्थिति से पूर्ण निरपेक्ष रहकर उदासीन रहता है। यह आकर्षण और विकर्षण की मध्यावस्था है जिसमें मानव चेतना में किसी प्रकार का कोई आन्दोलन उपस्थित नहीं होता। मन की इन्हीं तीन प्रवृत्तियों के आधार पर वस्तु की तीन कोटियाँ की गई हैं (१) सुन्दर (२) असुन्दर या कुरूप (३) उदासीन यहाँ उदासीनता वस्तु का गुण न होकर मन की एक अवस्था विशेष है जो इस स्थल पर चर्चा का विषय नहीं है। शेष दो-सुन्दर और कुरूप-को स्पष्ट किया जायगा।

ऊपर की पंक्तियों में बताया गया है कि वस्तु में आकर्षण होने से उसकी ओर खिंचाव होता है। इससे वस्तु को सुन्दर कहा जाता है। सौंदर्य उसका गुण बन जाता है। यह गुण सहृदयता पर निर्भर है। यदि वस्तु में आकर्षण नहीं है तो उसमें रुचि नहीं होगी। इस आकर्षण से व्यक्ति के मन में प्रियता का भाव उत्पन्न होता है। प्रियता जन्य इसी रुचि से वस्तु सुन्दर प्रतीत होने लगती है। यदि प्रियता न हो तो वही वस्तु विकर्षण उत्पन्न करती है और वह सुन्दर होने के स्थान पर कुरूप प्रतीत होने लगती है। इससे स्पष्ट है कि वस्तु की तटस्थता के स्थिर रहने पर भी उसे देखकर आकर्षण और विकर्षण युक्त मनोगत भाव ही उसकी सुन्दरता या कुरूपता के निर्धारण में सहायक होते हैं। वस्तु को दी जाने वाली यह विशेषता वस्तु के स्वयं का गुण न होकर अनुभविता आत्मा का गुण है जो अपनी मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर उन आकर्षक या विकर्षक भावों को व्यक्त करता है।

वस्तु में आकर्षण रहने से सुख मिलता है। व्यक्ति का आचरण उसकी मानसिक प्रवृत्तियाँ वस्तु को सुन्दर मान लेता है। इसके विपरीत किसी वस्तु से द्वन्द्व का सामञ्जस्य स्थापित न होने पर एक ही वस्तु विभिन्न मानसिक स्थितियों में अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करता है। अतः कवि सूरदास की गोपियाँ एक ही भावों का अनुभव करती हैं। श्री कृष्ण के वियोग में एक ही वस्तु कभी समृद्ध भावना होने के कारण उन्हें प्रिय प्रतीत होता है और परिवर्तित स्थिति में परिवर्तन हो जाने से वही उन्हें अप्रिय और दुख देने वाला

सिद्ध हो जाता है।[1] इससे सिद्ध है कि प्रियता या अप्रियता के कारण उत्पन्न होने वाले वस्तु का सौन्दर्य या कुरूपता उसका व्यक्तिगत गुण न होकर अनुभविता की आत्मा की मानसिक स्थितियों के आधार पर ही निर्भर रहता है। इस दृष्टि से सौंदर्य वस्तु का गुण न होकर आत्मा के अनुभव का फल है। रूप आकर्षक प्रतीत होने पर सुंदर और विरूपक या घृणोत्पादक होने के कारण असुंदर या कुरूप हो जाता है। यहाँ सुंदर का तात्पर्य सुंदर का विरोध या विलोम नहीं है अपितु असुन्दर विशेषण उस वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका रूप आकर्षक न होने से कुरूप का धारण कर जाता है। गोपियों को सुखदायिनी यमुना इसी से कुरूप प्रतीत होने लग गई थी। दखियत कालिन्दी अतिकारी[2]' पद का यही रहस्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव मन में वस्तु के प्रति आकर्षण और विकर्षण की उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ ही सुंदरता या कुरूपता की नियामिका हैं। आकर्षण के कारण प्रियतामूलक भावभूमि की परिधि में आने वाली सम्पूर्ण वस्तुएँ सुन्दर हो जाती हैं। इसके विपरीत विकर्षण से उत्पन्न अप्रियता वस्तु के प्रति अरुचि का भाव जाग्रत करती है। व्यक्ति की यही अप्रियता या अरुचि वस्तु को कुरूपता की कोटि में प्रविष्ट करा देता है। इससे वस्तु के प्रति उपेक्षा के साथ ही निन्दामूलक भाव उत्पन्न होता है। यदि प्रशंसा और निंदा इन दोनों से मन तटस्थ रहे तो यही वस्तु के प्रति मन की उदासीन स्थिति है। इस स्थिति में वस्तु का गुण व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता और उसकी मानसिक चेतना उस वस्तु में किसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण नहीं करती। इससे उसकी प्रतिक्रिया भी तटस्थ हो रह जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सौन्दर्य और कुरूपता वस्तु का गुणमात्र ही नहीं है अपितु मनुष्य की चेतना के भाव पर भी निर्भर है।

वस्तु का सौन्दर्य उसके रूप के आश्रित रहता है। सामान्य अर्थ में 'रूप' आकार में रहने वाली कान्ति है। 'रूप' में चक्षुप्रियता रहने से ही उज्ज्वल वर्ण वाले व्यक्ति सुंदर कहे जाते हैं। नैतिक मान्यताओं के आधार पर कुत्सित भाव कुरूप और मंगलमय भाव सुन्दर होते हैं। 'कुरूप' को लोग ग्रहण नहीं

---

[1] (i) बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारे।
बासर रैन नाव लै बोलत भयौ विरह जुर कारे। सूरसागर
(ii) हौं तो मोहन की विरह जरीरे, तू कत जारत।
रे पापी तू पंखी पपीहा, पिउ, पिउ कत अधिरात पुकारत। सूरसागर

[2] सूरसागर।

करना चाहते। वह बाह्विक रूप म अग्राह्य है। यह कुरूपता वस्तु के रूप म ही रहती है तत्व म नही रहती। श्लेगल का मत है कि श्रेय की सुखद अभिव्यक्ति सौदय और अश्रेय की अप्रिय अभि यक्ति ही कुरूप है।[1] इस स्थल पर अभिव्यक्ति के आधार पर सुदर और कुरूप का निर्धारण किया गया है। इससे स्पष्ट है कि जगत म अमगल जनक क्रूर एव अप्रिय सभी अभियक्तियाँ कुरूपता की श्रेणी म आयेंगी और इनस मुक्त प्रिय और आकषक अभियक्तिया सौदय की परिधि म परिगणित होगी। अत सौन्दय लोकहित स सम्पन्न सगत अभियक्ति और कुरूपता क्रूर विचारो से युक्त अमगल जनक असगत अभिव्यक्ति है। इस निणय के आधार पर कहा जा सकता है कि कलात्मक सौदय भी सगत अभिव्यक्ति का ही फल है। कला के सृजनात्मक निपुणता म सौदय और कला हीनता म कुरूपता का बीज दखा जा सकता है। इसी से कुरूप वस्तुएँ भी कलात्मक ढग स अभि यक्त होने पर आकषक हो जाती हैं। चित्रकला मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। चित्रा म अकित कुरूप वस्तुए भी कला के मनबल से दशक को आकृष्ट कर लने म पूण समथ होती हैं। इससे वस्तु सौदय मे कला का विशेष हाथ है। भारतीय साहित्य के विभिन काव्य सम्प्रदायो मे कलात्मक अभियञ्जना का बहुत महत्त्व है। रीति वक्रोक्ति ध्वनि और अलकार सम्प्रदायो का सौन्दय अभियक्ति का ही सौदय है। इन सम्प्रदायो स स्पष्ट है कि समस्त सौन्दय विधायक साधनो म प्रकट होने वाला सौदय अभियक्ति का ही सौन्दय है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि काव्य म प्रत्येक उपकरण का मूल्याकन सौन्दय दृष्टि से किया जाता है। काव्योत्कष म सहायक तत्वो को सुदर और बाधक तत्वो को असुन्दर कहग। इसी से अभियक्तिगत बाधक तत्व मात्र प्रदशन रह जाते है। उनम रस की पूण निष्पत्ति नही हो पाती है। ऐसे प्रदशनकारी उपकरणो स युक्त काव्य को अधम काव्य की श्रेणी मे रखा जाता है।

कुरूपता रूप के तत्वो का व्यवस्थागत दोष है ऐसे वस्तुओ के साक्षात्कार से व्यक्ति का मानसिक श्रम बढ जाता है और आनन्दानुभव का अभाव हो जाता है। सौन्दय सुखद एन्द्रिय सवेदना स युक्त 'रूप' का गुण है। यह सुख की अनुभूति करान वाला होता है। रूप ही सुखद होकर सुदर और दुखद बनकर कुरूप बन जाता है। सौदय म रूप के भोग्य पदार्थो के उचित

1 Beauty is defined as the pleasant manifestation of the good ugliness as the unplea ant manifestation of the bad *fr V Schlagels Es ay on Study of Greak Poetry*

सयोजन से आस्वाद योग्य मधुरता का आविर्भाव हो जाता है। यह माधुय अवयवो के उचित सगठन गत व्यवस्था से उत्पन्न होता है। यह मन म सुख की अनुभूति कराता हैं। इससे वह वस्तु हमे प्रिय लगती है। उसकी ऐद्रिय सवेदना मन के अनुकूल रहती है। इसके विपरीत कुरूप वस्तुओ के साथ सवेदना और भावनाओ का आत्मीय सम्बन्ध नहीं रहता। कुरूपता से घृणा और विकपण का भाव उत्पन्न होता है और सुरूपता से प्रियता और आकषण का भाव उद्भूत होता है। इसस सौंदय और प्रियता का अयोन्याश्रय सम्बन्ध होता है। इस सौंदय के अभाव म वस्तु कुरूप प्रतीत होती है। कभी-कभी एक ही वस्तु व्यक्ति भेद से सुदर और असुन्दर दोनो ही प्रतीत होती है। अन्य स्थलो पर एक ही वस्तु भिन्न भिन्न मानसिक स्थितियो मे प्रिय या अप्रिय भाव उत्पन्न करती है। इससे स्पष्ट है कि सौंदय का निर्धारण व्यक्ति भेद और मानसिक चेतना के परिवर्तित होने से होता है। सम्बन्ध भावना से कुरूप वस्तु प्रिय हो जाती है। ऐद्रिय सवेदना रहत हुए भी उसकी स्वीकृति न रहने से वस्तु अप्रिय बन जाती है। सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता भी रहती है वही कलात्मक अभिव्यक्ति से आकषक बन जाती है। कला जगत म कुरूप भी सुदर बन जाता है। इससे यथाथ जगत की विभीषिका क्षीण हो जाती है। कुरूप को बौद्धिक रूप से ग्रहण के अयोग्य कहा जा सकता है क्योकि इस कुरूप के सग आत्मसात् की प्रवृत्ति लोगो मे नहीं देखी जाती है। 'कुरूपता सौंदय की व्यवस्था मे एक हीन तत्व है। सुदर वस्तुओ की तुलना म कुरूप वस्तु के रूप म उसके तत्वो की व्यवस्था ठीक ढग से नही रहती।

सुदरता और कुरूपता य दोनो ही सापक्षिक शब्द है। कुरूपता के अभाव मे सौंदय का महत्व गिर जायगा। सौन्दय कुरूपता के माध्यम से ही अपनी साकारता ग्रहण करता है। कुरूप तत्व की समुचित आकषक व्यवस्था सौंदय का आविर्भाव करती है। कुरूपता के माध्यम से सौंदय का साधक बनता है। इन दोनों शब्दो म सौन्दय की मन्ता कुरूप क अस्तित्व से ही है। यदि कुरूपता न हो तो सौन्दय चर्चा का विषय न बन सकेगा। ऐसी स्थिति म कुरूपता सौंदय का साधक तत्व हो जाता है। अत सुदरता के निर्धारण म कुरूपता का अस्तित्व महत्वपूण है। कुरूपता के अभाव मे सौन्दय महत्वहीन हो जायगा। इससे ये दोनो ही शब्द एक दूसर के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये सापक्ष और पूरक हैं।

इन विचारो के आधार पर इस निणय पर पहुँचा जा सकता है कि सौन्दय और कुरूपता के निर्धारण म निम्नलिखित परिस्थितियाँ एव भाव काय करते हैं।

(१) वस्तु से उत्पन्न होने वाली मन की सुखद अनुभूतियाँ अथवा ऐन्द्रिय संवेदना की अनुकूलता या प्रतिकूलता।

(२) सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं के नियमानुसार वस्तु का मंगल या अमंगल रूप होना।

(३) व्यक्ति का वस्तु से सम्बन्ध भाव।

(४) कलात्मक योजना और 'रूप' में भोग्य पदार्थों की व्यवस्था।

(५) व्यक्ति भेद और एक ही व्यक्ति की मानसिक स्थितियों में अन्तर का आ जाना।

सुन्दर और कुरूप के इस विचार के उपरान्त सौन्दर्य के तत्व पर विचार किया जायगा।

सौन्दर्य के तत्व

सौन्दर्य की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसके तत्वों का ज्ञान हो जाना आवश्यक है। रूप के स्पष्टीकरण के लिये डा० हरद्वारीलाल शर्मा ने सुन्दर वस्तुओं में तीन तत्वों का होना आवश्यक माना है। इन्हें क्रमशः भोग, रूप और अभिव्यक्ति तत्व कहते हैं।

भोग तत्व—दृश्यवस्तु का साधारण अनुभव गम्य और भौतिक अंश 'भोग-तत्व' कहा जाता है। वस्तु के निर्माण में उसके कलेवर को निर्मित करने के साधन रूप में लिये गये पदार्थ को भोग कहा जाता है। व्यक्ति अपनी सौन्दर्य चेतना द्वारा ही इस तत्व का अनुभव कर सकता है। सौन्दर्य के अनुभव का वास्तविक आधार यही है। मानव की किसी भी स्थिति में इसके मूल में कोई अन्तर नहीं आता। शिशु के किसी वस्तु के प्रति आकर्षण में भोग की यही प्रवृत्ति दीख पड़ती है। सुन्दर वस्तु में भोग तत्व के विभिन्न साधनों पर विचार किया गया है। इनमें सर्वप्रथम साधन रंग है।

रंग द्वारा शिशु की वास्तविक सौन्दर्यवृत्ति प्रेरित होती है। किसी वस्तु के प्रति सौन्दर्य या आकर्षण में बालकों के मन में जो एक ललक होती है उसके मूल में रंग का मोहक स्वरूप ही है। रंग की इस क्रिया में अवस्था भेद से अन्तर भी आ जाता है। विज्ञान के अनुसार वस्तु से सतत रूप में निकलने वाली प्रकाश किरणों द्वारा उसके वर्ण की मोहकता का ज्ञान होता है।

रंग के इस आकर्षण में भोग-तत्वों के अन्य अवयवों या साधनों की चर्चा भी मिलती है। ज्ञानेन्द्रियों के विभिन्न विषय ज्ञान में भी भोग-तत्व की यही प्रधानता है। ध्वनि, स्पर्श, गंध और रस का सम्बन्ध इन ज्ञान-ग्राहकों के माध्यम से 'भोग-तत्व' बन जाता है। चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषय के

नान के साथ उनके उपभोग से आनन्द की प्राप्ति भी होती है। विषय की अनुभूति के सुख से सौन्दर्य की चेतना जागृत होती है। इसे ही साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से व्यञ्जित करता है।

दृश्य रूप 'भोग' तत्व का आधार मानव या मानवेतर सृष्टि कोई भी हो सकती है। यही सौन्दर्य का अनुभव कराता है। प्रकृति में इसी कारण रंग रूप, स्पर्श, गन्धादि का कारण होना है। इसी से मनुष्य की सौन्दर्य चेतना तुष्ट होती है। प्रकृति के विभिन्न उपकरण सौन्दर्य के अपरिमित साधन और आनन्द के निधान हैं। आकाशादि की नीलिमा में विस्तार और अपूर्वता के साथ ही वर्ण रंग आदि की विविधता भी वर्तमान है। वहाँ पर विन्यास का अभाव है इसी से उसकी सीमा नहीं है। किसी रूप रेखा में बंध जाने पर एक सीमा हो जाती है। अत नैसर्गिक शोभा के लिये आवश्यक है कि प्राकृतिक वस्तुओं में विन्यास का अभाव हो। इस अभाव में ही वस्तु का भोग-तत्व रहता है। यदि अभाव समाप्त होकर विन्यास की भूमिका में प्रविष्ट हो जायगा, तो वह भोग-तत्व' कहा जाने का अधिकारी न रह जायगा। क्रमश उसका एक आकार उभरता हुआ दीख पडेगा। इसी आकार में सौन्दर्य का दूसरा तत्व रूप प्रत्यक्ष होने लगता है।

रूप तत्व—वस्तुओं का अविन्यस्त रूप भोग-तत्व कहा गया है। औद्योगिक जगत के शब्द में इस रूप-तत्व को कच्चा माल (Raw Material) कहेंगे। उदाहरण के लिये केवल ईंट किसी भवन के लिये भोग-तत्व मात्र है और ईंट, चूना, गारा, मिट्टी सिमेण्ट आदि के विन्यास से उनका जो आकार निर्मित हो जाता है, उसे रूप तत्व कहेंगे अर्थात् भोग-तत्व के समुचित विन्यास में 'रूप' का आविर्भाव होता है। रूप' कोई अलग सत्ता वाला पदार्थ नहीं है अपितु भोग्य पदार्थों में ही वह निहित रहता है और उनकी समुचित व्यवस्था से प्रकट हो जाता है।

रूप और भोग तत्व—रूप का यह आविर्भाव विभिन्न कलाओं म विभिन्न साधनों मे सम्भव है। यह रंग, रेखा, गति, ध्वनि आदि म अपनी साकारता पा लेता है। चित्र म यह रंग और रेखा का आधार ग्रहण करता है संगीत म ध्वनि के आरोहावरोह से इसका रूप आविर्भूत होता है। गति के समुचित संचालन से यह नृत्य बनता है तथा शब्द और अर्थ के साथ विन्यास द्वारा काव्य रूप म प्रकट हो जाता है। इस प्रकार 'रूप रेखा, ध्वनि, गति शब्दार्थ आदि के संगठन स उत्पन्न होता है।

रूप भोग्य पदार्थों म रहता हुआ भी उससे भिन्न है। भोग्य पदार्थ

म अनेकता और रूप म एकता रहती है। इस दृष्टि से रूप अवयवी या अगी और भोग्य पदाथ अवयव या अग है। भोग्य पदाथ की अनेकता में रूप की एकता वतमान रहती है। भोग्य पदाथ यदि खण्ड सत्तात्मक है, तो रूप पूण सत्ता वाला। भोग्य पदार्थों के सम्मिलन से ही 'रूप' आकार ग्रहण करता है। यदि यह मिलन निरथक हो, तो उसे रूप नही कहेंगे। रूप न तो अवयव विशेष है और न उनका निरथक समूह ही है। जसे शब्दों का साथक समूह या विन्यास वाक्य कहा जाता है उसी प्रकार अवयवो के साथक विन्यास म 'रूप' का आविर्भाव होता है। इस प्रकार अवयवों का व्यवस्थित समष्टि रूप' सज्ञा प्राप्त करता है और अलग अलग विभिन्न अवयव 'भोग्य पदाथ' कहे जाते हैं। अत 'रूप' व्यापक, अखण्ड सत्ता वाला, अनेक की साथक एकता से उत्पन्न सौन्दय का एक तत्व विशेष है। भोग्य पदाथ की अपेक्षाकृत एक सीमा है, जिसम विन्यास का अभाव होता है।

इससे स्पष्ट हो गया कि भोग-तत्व का अभिप्राय उस पदाथ से है, जिससे किसी वस्तु के कलेवर का निर्माण होता है। उदाहरणाथ भवन निर्माण म प्रस्तरादि भोग्य-पदाथ और भवन का आकार रूप' है। इसी प्रकार सुन्दर वस्तु के भोग-तत्व मे रगा आदि का महत्व है और इनसे जो आकार बनता है, वह 'रूप' है। इस रूप के सौन्दर्य का ग्राहक सहृदय ही कहा जा सकता है।

मानव की रचनात्मक प्रकृति नसर्गिक है। वह रूप का निर्माण करना चाहता है। उसकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति बालकों द्वारा खेल म बनाये गये मिट्टी या इट के एक विन्यास में दिखाई पडती है, जिसे वह कुछ समय के लिये घर या किले के 'रूप' म स्वीकार कर लेता है। बालकों का यही स्वभाव बडे होने पर सुधर कर ललित कलाओ म विकास पाता है। रूप के आविर्भाव का यही कारण है।

मानव की इस रचनात्मक प्रवृत्ति से रूप का आविर्भाव होने में दो उद्देश्य दीख पडते हैं —

(१) रूप को अधिकाधिक सुन्दर और स्पष्ट बनाकर उसे जीवन के लिय उपयोगी बनाने की चेष्टा की जाती है।

(२) इस सृजन म उसे आनन्द मिलता है। रचनात्मक प्रवृत्ति से रूप प्रकट होता है। यही रूप सौन्दय का कारण बनता है और सौन्दय म आनन्द की अनुभूति होती है।

रूप के इस आविर्भाव म कलाकार की कल्पना उसकी मानसिक एव बौद्धिक धारा उसमें एक गति लाती है। उसकी शालीनता उसमें आह्लाद

का कारण बनती है। इस रूप के निर्माण की मोहकता बहुत कुछ कलाकार की कारयित्री प्रतिभा के ऊपर निर्भर रहती है। सौंदय के अनुसंधान की प्रतिभा का अभाव होने पर वह एक समय 'रूप' प्रकट नहीं कर पाता। उसका भोग्य-पदार्थ मात्र साधन होकर रह जाता है।

इन दोनों तत्वों में भोग्य पदार्थ को साधन बताया गया है जिससे सौन्दर्य उद्भूत होता है। मानवीय-सौंदर्य के आधार पर कवियों का नख शिख भोग-तत्व के अंतर्गत आ सकता है, क्योंकि भोग्य पदार्थों की सत्ता स्वतंत्र रूप में स्वीकार की गई है। नख शिख वर्णन की एक स्वतंत्र सत्ता और स्वीकृति है। नख शिख वर्णन की इस अनेकता में एक समष्टिगत एकता 'रूप' की व्यञ्जना होती है। इसकी अभिव्यक्ति के आवरण में ही सौंदर्य बोध की महत्ता छिपी रहती है। इसी से कवियों में सौन्दर्य-चेतना को उद्बुद्ध करने के लिये अंग प्रत्यंग अथवा भोग्य पदार्थ के वर्णन की परम्परा रही है। इसे केवल कवि प्रथा कहकर महत्वहीन नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि इसका एक महत् उद्देश्य है, जिसके द्वारा हमारी आत्म चेतना परिष्कृत और सत्व प्रधान होकर सौंदर्य का उपभोग करने में सक्षम हो जाती है।

रूप भेद—बताया जा चुका है कि भोग्य-पदार्थों के समुचित विन्यास से रूप का आविर्भाव होता है। यह रूप इन पदार्थों में ही रहता है। यह कोई अलग वस्तु नहीं है। इस रूप के कई भेद हो जाते हैं —

(१) निर्जीव या जड़ रूप—पदार्थों का ऐसा संयोजन जिसमें चेतना का अभाव हो, निर्जीव रूप कहा जाता है। इन रूपों में गति का अभाव होता है। स्थिरता इस रूप का प्रथम लक्षण है। ललित कलाओं में स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला को स्थिर रूप में ग्रहण किया जा सकता है। किसी प्रकार की रेखा स्थिरता को बताती है। जहाँ भी किसी आकार का निर्माण होता है जिसमें चेतनता न हो उसे निर्जीव रूप कहेंगे। इसके अन्तर्गत अचल वस्तुओं की गणना की जायगी। ऐसी वस्तु मानव कृत या प्रकृति कृत हो सकती है।

(२) रूप का दूसरा भेद 'सजीव रूप' है। इसमें गत्यात्मकता चंचलता स्पन्दनशीलता या परिवर्तनशीलता अनिवार्य तत्व है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में ऐसे सभी पदार्थ जो एक निश्चित नियम में बँधकर बढ़ते हैं शक्ति प्राप्त करते हैं उन्हें सजीव रूप में माना गया है। निरन्तर की परिवर्तनशीलता और विकास या वृद्धि की अवस्था को इसके अन्तर्गत मानते हैं। इसमें स्पन्दन और गतिशीलता को आवश्यक अंग माना गया है। संगीत और नृत्य को इसी सीमा के भीतर मानते हैं। संगीत में ध्वनि की गतिमयता और नृत्य

में अंग संचालन और गति का प्रवाह माना गया है। सभी प्राणी, पशु पक्षी, वनस्पतियाँ आदि बढ़ती हुई शक्ति संचित करती हैं।

(३) रूप का तीसरा भेद 'प्रतीक' कहा गया है। काव्य में मनोगत भावों की सूक्ष्मता और सौन्दर्य सत्ता का आभास इन्हीं प्रतीक विधानों में होता है। प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण की गई वस्तु के सूक्ष्म तत्वों का विधान होता है। प्रतीक विधानों की यह परम्परा काव्य में सदा से रही है। प्रतीक विधान द्वारा अव्यक्त अनुभूति, विचार या भावों को व्यक्त रूप दे दिया जाता है। यथा कमल को सौंदर्य का, सिंह को शक्ति का, हाथी को मद का प्रतीक मानते हैं। इसी प्रकार अन्य भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रूप का महत्व अभिव्यक्ति के माध्यम पर निर्भर रहता है। यदि अभिव्यक्ति का ढंग आकर्षक न हो तो रूप आनन्ददायक नहीं हो पाता। कुछ लोगों ने तो रूप को नगण्य मान लिया है। "काव्य में नाम या रूप का महत्व नगण्य है। मेरा तो केवल यह मन्तव्य है कि रूप का कविता में वह सार्वभौम महत्व नहीं हो सकता है जो कि अन्य कलाओं में प्राप्त होता है।"[1] परन्तु यह विचार समुचित नहीं जान पड़ता क्योंकि रूप की आधार शिला पर ही सौंदर्य के महल का निर्माण होता है। इससे रूप को नगण्य तो माना ही नहीं जा सकता है। वस्तुतः काव्यतत्व और अर्थ का अन्योन्य सम्बन्ध रूप की भाव भंगिमा में प्राण संचरित करता है। काव्य में तत्व ही रूप को चेतना प्रदान करता है। रूप के कलेवर में ही काव्य-तत्व की परिव्याप्ति रहती है। अतः कहा जा सकता है प्रतीक विधान द्वारा दो कार्यों की सिद्धि होती है। प्रथम यह एक रूपात्मक तथ्य है और द्वितीय प्रतीक उसके रूप में प्राण प्रतिष्ठा करने वाला तत्व हो जाता है। इसी से उस प्रतीक से अर्थ का ज्ञापन सम्भव हो पाता है। रूप के ये तीनों ही भेद—जड़ सजीव और प्रतीकात्मक—प्राकृतिक और कलात्मक दोनों प्रकार के सौन्दर्य में पाये जाते हैं।

रूपानुभूति—बताया जा चुका है कि भौतिक पदार्थों के रूपाकृति विन्यास में 'रूप' का आविर्भाव होता है जिसे सौन्दर्य के एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टि से रूप नेत्रों के माध्यम से सौन्दर्य का विकास करने वाला एक सबल विषय माना जा सकता है। इसकी अनुभूति की सत्ता असंदिग्ध है। सर्वप्रथम चक्षुरिन्द्रिय के सम्पर्क से रूप का ज्ञान और तत्पश्चात् भावों के योग से पुनः उसकी अनुभूति होने लगती है। इस अनुभूति में भाव

---

[1] हिन्दी काव्य में श्रृंगारवाद का विकास—पृ० ५८

तत्व की प्रबलता होती है। इसके विकास की तीन अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं।

(१) **वस्तुगत रूप की अनुभूति**—इसमे अनुभूति कर्ता एक तटस्थ व्यक्ति की भाति वस्तु के भोग्य पदार्थों का एक सामूहिक रूप देखता है। वह वस्तु के विभिन्न अगो के सामञ्जस्य को ग्रहण करता है। इसमे उसकी निजी रुचि अरुचि का किसी प्रकार का मेल नही हो पाता। वह तटस्थ-द्रष्टा की भाति एक 'बोध' से अवगत हो जाता है। उसे यह चेतना हो जाती है कि उसने वस्तु को जान लिया है। ज्ञान की यह प्रथम अवस्था है जिसे तर्क शास्त्र मे 'प्रामाण्यवाद' के नाम से जाना जाता है।

(२) रूप की अनुभूति की इस दूसरी अवस्था मे रूप जन्य मानसिक आनन्द की अनुभूति होती है। इसमे वस्तु के 'भोग्य पदार्थों' के सुविन्यस्त रूप के साथ मानवीय भावों का भी सामञ्जस्य रहता है। इस सीमा म आकर द्रष्टा तटस्थ नहा रह पाता। वह अपनी वृत्तियो के योग से अपनी भावनाओ के अनुकूल रूप म प्रियता या अप्रियता का सायुज्य उत्पन्न कर देता है। उसकी सौन्दर्यानुभूति सचेष्ट हो जाती है और वह रूप के आस्वादन की ओर उन्मुख होने लगता है।

(३) रूप के प्रति वासना का अनुभूति तृतीय सोपान है। मन म वासना का उद्रेक होते ही शरीर के उपभोग की कामना बलवती हो जाती है। यहा रूप की तीव्रता अथवा हलकेपन का ज्ञान उसकी उपयोगिता के आधार पर निश्चित की जाती है। प्रसाद ने इसी आधार पर 'कसी कनी रूप की ज्वाला लिखा है। इसमे आनन्द की भावना मे वैषयिक चेतना का प्राधान्य रहता है।

इस सम्बन्ध म अभिनव गुप्त पादाचार्य का विचार भी दर्शनीय है उन्होंने माना है कि नारी सौन्दर्य का वर्द्धक काम भावना का आधिक्य ही है। उन्होने वीर्य विक्षोभन शक्ति को रूप की वास्तविक कसौटी मानी है। आचार्य के मत से, "आँखो म रमणीय लगने वाला रूप वीर्य विक्षोभन-जन्य सुख का प्रतीक है। मधुर गीतादि के श्रवणगत होने म भी यही बात है। यदि सर्वत्र इसका चमत्कार न हो तो वह व्यक्ति मनुष्य रूप म भी जड ही माना जायगा। अधिर चमत्कार का आवेश अर्थात् आनन्दानुभूति म मग्न होने वाली वीर्य विक्षोभात्मा ही सहृदयता है।[1] इस विचार स दो बातो का ज्ञान होता है।

---

[1] नयनयोरपि हि रूप तद् वीर्य विक्षोभात्मक महाविसर्ग विश्लेषण युवत्या एव सुन्दरायि भवति। श्रवणयोश्च मधुर गीतादि। सवनो हि

प्रथम यह कि बोध विक्षोभ के माध्यम से ही विषय सौंदर्य का माप हो सकता है और द्वितीय स्थान पर प्रेक्षक की सहृदयता का भी अपना एक अलग महत्व होता है।

सौंदर्य की इस रूपानुभूति में रस शास्त्र के आधार पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि इस अनुभूति में विस्मय, आनन्द और रति की पृथक अथवा सम्मिलित अनुभूति होती रहती है। इसी अनुभूति के आधार पर वस्तु या व्यक्ति के रूप जन्य सौंदर्य में अन्तर आता रहता है। सुन्दरता रूप के तत्वों पर निर्भर रहती है। यह उसके विन्यास से आविर्भूत हो जाती है। अतः रूप के तत्व ही मानवीय चेतना के सम्पर्क से सुनियस्त होकर सुन्दर बन जाते हैं। इसके अनेक गुणों की चर्चा हुई है।

रूप तत्व के गुण—आधुनिक सौंदर्य शास्त्र ने रूप-तत्व के चार गुणों की चर्चा की है। इन्हें क्रमशः सापेक्षता, समता, संगति और सन्तुलन कहते हैं।

सापेक्षता (Proportion)—इसमें भौतिक पदार्थों को अनुकूल ढंग से सजाया जाता है। प्रत्येक अंग का सम्पूर्ण के समक्ष एक विशिष्ट स्थान होता है। कला के प्रत्येक खण्ड की महत्ता अंगी के निर्माण में होती है। इसमें किसी वस्तु या प्रत्येक खण्ड एक दूसरे से निरपेक्ष और असम्बद्ध न रहकर सापेक्ष और सम्बद्ध रहता है। यदि विभिन्न अवयवों को केवल एकत्र कर दें तो इससे रूप की योजना नहीं हो पाती। उसे तो केवल भाग्य पदार्थ ही कहा जायगा। इससे स्पष्ट है कि अवयवों के समूह से रूप की उत्पत्ति नहीं होती अपितु एक विशेष योजना द्वारा विभिन्न अंगों के संयोजन से ही ऐसा सम्भव है। विभिन्न अवयवों को संरचना में उनका जो एक उचित स्थान संयोजन के समय प्राप्त हो जाता है—अर्थात् उनकी विभिन्नता द्वारा जो एक समग्रता उत्पन्न हो जाती है उसे ही सापेक्षता कहते हैं। यहाँ पर प्रत्येक खण्ड एक दूसरे पर निर्भर रहकर रूप का आविर्भाव करते हैं।

समग्र में अवयवों का यह उचित संयोजन सजीवता उत्पन्न कर देता है। इससे उत्पन्न होने वाले चमत्कार में माधुर्य का उद्भव होता है। इसी माधुर्य और अंगों की सापेक्षता से किसी युवती का सुन्दरी नाम सार्थक होता है। उसे हम सौन्दर्यमयी कहने लग जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अंगों की सापेक्षता उस अंगी के निर्माण में सहायक और सक्रिय होती है।

[illegible] [illegible] पृ० ८७-८८

समता (Symmetry)—समता के लिय किसी एक विन्दु को आधार बनाकर उसके चतुर्दिक सापेक्ष खण्डो की पुनरावृत्ति की जाती है। उदाहरणार्थ शरीर के प्रत्येक अग मे एक दूसरे की अपेक्षा रहती है। आकार की समता का बडा महत्व होता है। शरीर की लम्बाई चौडाई के अनुसार ही सिर, बाहु, पैर आदि की सानुपातिक समता होनी चाहिए। यदि कोई अवयव दूसरे की तुलना म बहुत बडा या छोटा हो, तो सुन्दर नही प्रतीत होगा। उसका बडापन या छोटापन समतानुसार ही होना चाहिये। सुन्दर वस्तु या शरीर मे एक प्रकार की दो वस्तुए एक ही समान होनी चाहिए दोनो एक दूसरे की प्रतिरूप हो, तभी वे 'सम' हो सकेंगी। उदाहरण के लिये यदि एक आख छोटी और दूसरी बडी हो, तो शरीर 'समता' के अभाव म सुन्दर नही कहा जा सकता है। अत स्पष्ट हो जाता है कि 'अवयव अपने अवयवी के साथ किसी विन्दु से सानुपातिक योजनानुसार बनाये जाने पर 'सापक्षता' और 'समता' गुण से युक्त होकर वस्तु को सुन्दर बना देता है।

सगति (Harmony)—सगति के द्वारा रूप मे विरोध का शमन होता है। इसम अनेक मे एकता उत्पन्न हो जाती है। इसे रूप का अनिवार्य गुण कहा जायगा, क्योकि अन्य सभी गुण इसी के अन्तर्गत आ जाते है। रूप के सग सगति भी रहती है। काव्य म रूप तत्व का आविर्भाव रस परिपाक से होता है। किसी एक रस को प्रमुख मानकर अन्य सहायक रसो का योग उस मुख्य रस के परिपाक म और सौन्दर्य ला देता है। विभिन्न रसो की इस सगति से काव्य म रूप का आविर्भाव होता है। यदि रूप का अभाव हो, तो काव्य रस मे सगति न बन सकेगी, 'रस परिपाक' होना तो दूर की बात है। अत विभिन्न अवयवो के समन्वय से ही 'रूप' का निर्माण होता है तथा रूप से रस परिपाक और सौन्दर्य की अनुभूति होती है। सगति के अभाव म रूप कुरूप हो जाता है। काव्य मे शब्द और अर्थ की सगति से भाव का रूप उपस्थित होता है। स्वरो की सगति से सगीत मे वैचित्र्य आता है। रेखाओ की सगति चित्र मे चमत्कार उत्पन्न करती है। इस प्रकार सगति की महत्ता किसी भी कला के सौन्दर्योत्पादन मे सहायक हो जाती है।

सन्तुलन (Balance)—रूप तत्व का चौथा गुण सन्तुलन है 'अनेक तत्व जब एक योजना म आबद्ध होकर एक दूसरे को क्षति न पहुँचाते हुए सौन्दर्योत्पत्ति के कारण होते हैं तो वही पर सन्तुलन होता है।' मानसिक भावनाओ को कलाकार काव्यादि द्वारा रूप प्रदान करता है। यथार्थ जगत की प्रतिकूल भावनाएँ जब 'रूप' धारण कर अनेक अगो के विन्यास एव सचारी

भावों का समर्थन प्राप्त कर लेती हैं तो अन्य तत्वों की योजना में जो नियम लगता है, वही सन्तुलन कहा जाता है।

इस पर विचार करते हुए व्हाइटहैट नामक दार्शनिक कहता है कि जब अनेक तत्व किसी योजना में इस प्रकार संघटित हों कि एक दूसरे का विघात न करके वे परस्पर गौरव और प्रभाव की वृद्धि करें, एक स्वर दूसरे स्वर का एक भावना अलंकार, घटना, रंग रेखा और कथन आदि[1] दूसरे के प्रभाव की वृद्धि करें, तो इससे एक सन्तुलित रूप का उदय होता है। सन्तुलन के रूप का अवयव अपने प्रधान भाव के अन्तर्गत उसकी रक्षा और संवर्द्धन करता है।

काव्य में भाषा और भाव का सन्तुलन सृजन का सौन्दर्य उत्पन्न करता है। शब्द और अर्थ का समन्वय अर्थ की परस्पर सम्बद्धता या संगति सन्तुलन, सापेक्षता से उसका सौन्दर्य और बढ़ जाता है। यही कारण है कि यदि किसी शब्द का स्वतन्त्र अर्थ ग्रहण किया जाय तो अन्य शब्दों की संगति के अभाव में वह सौन्दर्य उत्पन्न नहीं हो पाता है, जो उन सबके एक समुचित मिश्रण, सन्तुलन, संगति आदि से होता है। विषयगत सौन्दर्य की दृष्टि से सापेक्षता, संगति सन्तुलन समता सानुपातता आदि एक ऐसे पूर्णत्व का बोध कराते हैं जिससे सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। इसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति काव्यों में हुई है जो रूप का आधार लेकर अग्रसर होता है।

काव्य में रूप काव्य में रूप का अर्थ उसकी शब्दगत सत्ता और छन्दात्मक आकार से है।[2] कवि द्वारा काव्य में अभिव्यक्त विचार या अनुभव अपनी शैली में काव्य कृति के रूप हैं।[3] प्रत्येक काव्य कृति की अपनी विशेषता, निजी आकार या बाह्य रूप उसे अन्य काव्य कृति से पृथक कर देता है। कृति का यह बाह्य ढांचा जो हमारी मनश्चक्षुओं के सम्मुख नाम मात्र से स्पष्ट हो

---

1 सौन्दर्य शास्त्र डा० हरद्वारीलाल पृ० ७४ से उद्धृत

2 The commonest meaning of form in poetry is perhaps that of metrical pattern or form Encyclopedia Britannia–Volume IX Page 95

3 These thoughts and experiences which are put in different ways in different poems of the poet we call that particular way their form or 'Poetical Form' From the style in Poetry W P, Ker Page 97

जाता है, वही उसका रूप है। रूप ही कला का बाह्य-तत्व है, जिससे हमारी चेतन-वृत्ति जाग्रत होती है। इसी से वह इन्द्रियों का विषय बनता है। रूप के अभाव म कला का निर्माण असम्भव हो जाता है।

काव्य रूप का अभिप्राय काव्य विशेष के उस समस्त वाह्याकार से है जिसका सृजन कवि अपने अनुभवों के साहाय्य से अनेक अथवा एक ही छंद के माध्यम द्वारा करता है। यहा काव्य रूप के निर्माण म छन्दों का विशेष योग रहा है। *कवि द्वारा निर्मित यह समस्त आकार जो काव्यगत है, काव्य रूप* सत्ता का अधिकारी है। इन काव्य रूपों म अपनी एक निजी विशेषता होती है जिससे वे विशेष कवियों की कृति के परिचायक हो जाते है। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा —

कृष्ण की रस सिक्त मधुर लीला के गायकों म विद्यापति, सूरदास और मीराबाई विशेष प्रसिद्ध हैं। इन तीनों ने पद शैली को अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इनके पदों के अध्ययन से इनके रचयिता के व्यक्तित्व का ज्ञान हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन तीनों के ही काव्य-कृति के रूप म अन्तर है जिससे वे पहचान लिये जाते हैं। इनका अलग अलग काव्य रूप या आकार है। इसी से तीनों के वर्ण्य-वस्तु और आलम्बन के एक रहते हुए भी उनमे काव्य रूप गत भिन्नता है, भिन्नता का यह रूप उनका नितान्त अपना और निजी है। समता म भिन्नता दीख पडने का यही कारण है। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि का अपना काव्य रूप ही काव्य सृजन म योगदान देता हुआ कवि के काव्य के विभिन्न तत्वों और उसके अनुभवों की एकाग्रता की रक्षा करता है। इस प्रकार कोई भी कला कवि द्वारा रूप प्राप्त करके ही सफल होती है। अत काव्य कृति म रूप का अभिप्राय ऐसी शब्द ग्रथ मयी रचना से है, जिससे कवि का सौंदर्य बोध पाठक या दर्शक के लिये प्रेषणीय बन जाता है। इसी विचार का समर्थन किया गया है कि काव्य कृति के रूप से तात्पर्य उसके उस निश्चित आकार अथवा रूप रेखा का है जिसके अन्तर्गत एक नियमित विधान अथवा पद्धति के अनुसार *शब्दों के माध्यम से कवि की अनुभूति पाठक तक प्रेषणा पाती है।* रूप निर्माण की ये पद्धतियाँ विषय और आवश्यकता के अनुकूल भिन्न हो सकती है।'[1]

प्रत्येक कला किसी न किसी रूप की रचना है। इससे रूप मे एक वैचित्र्य आ जाता है। इसम निहित सौंदर्य प्रकट हो जाता है। इस प्रकार

---

[1] आधुनिक हिन्दी काव्य म रूप विधाएँ—डा० निर्मला जैन पृ० ४

कलाओं द्वारा रूप के सौन्दर्य का सृजन होता है। यह सृजन मानव मन की प्रियता और सौन्दर्यानुराग का वाचक है। इसके अतिरिक्त मानवेत्तर सत्ता व रूप भी किसी चेतन तत्व की कला का सृजन है। उस सृजन में महानता के सौन्दर्य का बोध आकाश पर्वत नदी, वन वृक्षादि के रूप में होता है। इनकी एक स्वतंत्र सत्ता है और उसमें सौन्दर्य का एक अमानवीय तत्व है। इसे प्राकृतिक सौन्दर्य की संज्ञा दी जायेगी।

सौन्दर्य प्राकृतिक, मानवीय या कलात्मक कोई भी क्यों न हो, उसे वस्तु के गुण के रूप में स्वीकार किया गया है। यही गुण मानसिक प्रत्यक्षता प्राप्त कर सौन्दर्य हो जाता है। इसकी अनुभूति से ही आनन्द प्राप्त होता है। चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों के विषय रस गन्धादि अनुभवगत हैं, परन्तु सौन्दर्य बोध के साथ वस्तु का गुण है। सौन्दर्य की अनुभूति में 'आनन्द' है। इस प्रकार रूप की आधार शिला पर सौन्दर्य की कलात्मक अथवा भावात्मक अभिव्यञ्जना होती है तथा सौन्दर्यानुभूति आनन्द का कारण है। अतः इन तीनों—रूप सौन्दर्यानुभूति और आनन्द— के सम्बन्ध में उत्तरोत्तर एकता और परस्परता बनी रहती है।

'रूप समस्त कलाओं का आधार है। शरीर रचना में रीढ़ का जो स्थान है कलाओं में वही रूप का है। साहित्य में अर्थ का अपना एक रूप होता है जो विभिन्न साहित्यिक मूर्तियों या विधाओं के रूप में जानी जाती हैं। ये विधाएँ ही अर्थ के व्यक्त रूप हैं। साहित्य में रूप के इसी सौन्दर्य का बड़ा महत्व है। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा।

नैयायिकों ने वस्तु में संकेतित अर्थ के चार भेद (जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा) माने हैं।[1] महाभाष्यकार ने भी इन भेदों का समर्थन किया है।[2] परन्तु मीमांसक मत में 'जाति' रूप केवल एक प्रकार का ही संकेतित अर्थ होता है। यह जाति मनुष्य में मनुष्यत्व है। इसी प्रकार तथाकथित सुन्दर वस्तुओं में सौन्दर्य एक जाति विशेष ही है। यहाँ पर एक दूसरा प्रश्न यह उठ सकता है कि ऐसी स्थिति में इस सौन्दर्य का अधिष्ठान किसमें मानें? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। उदाहरण के लिए एक पुष्प में पुष्पत्व क्या है? वह

---

१ संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा। काव्य प्रकाश २/८ पृ० ४३ ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी। व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर

२ चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः जातिशब्दाः, गुणशब्दाः क्रियाशब्दाः यदृच्छाशब्दाश्चतुर्था। महाभाष्यकार। काव्य प्रकाश से उद्धृत।

पखुडियो का सश्लिष्ट रूप है उसका रग है या कोमलता है या सौरभ है ? इस प्रश्न के उत्तर मे मतक्य नही रहेगा। यदि पखुडिया को बिखेर दें, तो वह 'पुष्पत्व' रहेगा या नही ? ऐसा करने से उसके 'रूप' मे भी अन्तर आ जाता है। अत स्पष्ट है कि पखुडियो के समुचित विधान मे एक ऐसे 'रूप' का निर्माण हो जाता है जिसे सौदय की आधार शिला कह सकते हैं। इसमे सापेक्षता, सतुलन, समता आदि का एक ऐसा सघात है जिसका विवेचन सौदय शास्त्र की परिधि मे आता है। इन सभी तत्वो की गणना विषयगत सौन्दय के अतगत होती है। इन सबका समन्वित रूप अपनी पूणता म पय वसित होकर 'सौन्दर्योत्पत्ति' का कारण बन जाता है। इसी से यह आनन्द का जनक हो जाता है। यहाँ 'रूप' का अथ और तत्सम्बन्धी धारणा का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

रूप का अर्थ—

उज्ज्वल नील मणिकार ने रूप की व्याख्या करते हुए कहा है कि किसी भूषणादिक द्वारा भूषित न होने पर भी जिसके द्वारा भूषणवत् कान्ति हो जाती है उसे 'रूप' कहते हैं।[1] इस व्याख्या मे रूप निर्धारण के लिये उसके आवश्यक गुणो मे कान्ति उत्पन्न करने वाले गुण का समथन किया गया है। वस्तु के 'रूप' म उत्पन्न होन वाली भास्वरता अधिक महत्वपूण होती है। इसी से उसकी रूप सज्ञा साथक होती है। इस दृष्टि से आकार मे रहने वाली छवि या प्रकाश को रूप कहेंगे। यह 'रूप वण और कान्ति से आच्छादित वाह्य आवरण का विन्यास है। रूप' वस्तु का वह गुण हैं जिसका ग्रहण चक्षु द्वारा देखकर ही होता है। इसमे रूप म चाक्षुष बोध का महत्वपूण स्थान है। इसके अभाव मे रूप म वतमान कान्ति या भास्वरता का ज्ञान नही हो पाता। इससे 'रूप को आकार की चाक्षुष प्रतीति कहेंगे। आकार मे अवयवो के उचित सस्थान से उत्पन्न अवरोधो और समन्वित प्रभाव रूप सज्ञा को धारण कर लेता है।

रीति कालीन कवि देव ने 'रूप की व्याख्या मे 'सुख' को प्रमुख तत्व माना है। उनका विचार है कि 'रूप दशन मात्र से मन को हर लेने वाला, आँखों को सुख देन वाला और ससार को चेरा बना लेने वाला होता है।[2] इस

---

[1] अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।
येन भूषितवद् भाति तद्रूपमिति कथ्यते।

[2] देखत ही जो मन हर, सुख अखियन को देइ।
रूप बखान ताहि को जग चेरो कर लेइ। रस विलास-देव

व्याख्या म रूप के तीन गुणों को आवश्यक माना गया है। (१) रूप द्वारा मन को हरण कर लेने म रूप की शक्ति और उसके प्रभाव की व्यन्जना की गई है। यह रूप की भावात्मक व्याख्या है। (२) रूप की सुखद शक्ति द्वारा आनन्द का उपस्थापन किया गया है। सुख आँखो के माध्यम से मिलता है। इसम चक्षु रूप के वाहक हुए। यह रूप आकार का आधार लेकर ही स्थित रहता है। इससे रूप द्वारा आकार म स्थित गुण का ही बोध होता है। (३) रूप के ग्राहक गुण को बताते हुए इसकी मोहकता का विस्तार और प्रभाव सम्पूर्ण जग म बताया गया है। इन तीनो गुणो द्वारा रूप की आकारगत सत्ता और उसके आतरिक प्रभाव की व्यन्जना की गई है। इससे स्पष्ट है कि रूप की एक सत्ता और स्थिति होती है जिसके बाह्य एव आतरिक प्रभावो द्वारा चक्षुओ की तृप्ति एव मन मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है। इस दृष्टि से रूप केवल बाह्य आकार का बोधक मात्र न रहकर लावण्य जन्य सौंदय की अनुभूति कराने से आनन्द का कारण बन जाता है। यह बाह्य तुष्टि एव आत्म-तृप्ति दोनो का ही साधन है। इस व्याख्या के आधार पर रूप के स्वरूप निरूपण म दो प्रकार की मान्यताएँ दीख पड़ती हैं—

(१) रूप की सामान्य धारणा—नेत्रेन्द्रिय के सन्निकर्ष से दीख पडने वाला वस्तु का आकार रूप कहा जाता है। रूप का यह सामान्य एव व्यावहारिक अर्थ है। इस अर्थ की परिधि म कोई भी भौतिक सत्ता युक्त पदार्थ मानसिक भाव या तत्वादि किसी माध्यम के द्वारा प्रकट होकर 'रूप' सज्ञा को धारण करते हैं। यही रूप बोलचाल म सौंदय का पर्याय बनकर प्रयुक्त होता है।

(२) रूप की विशेष धारणा—इस धारणा के अनुसार रूप म विभिन्न अवयवो के सगठन और सुविन्यास म अनेकता म एकता उपस्थित होने पर दिखाई पडने वाले आकार को 'रूप' कहते हैं। इसम विन्यास एव दृश्य रूप की महत्ता स्वीकृत है। अत किसी भी जीवधारी चेतन प्राणी या जड पदार्थ का दृश्य बाह्याकार ही रूप है। सुविन्यस्त तत्वो द्वारा निर्मित बाह्याकार के रूप म गृहीत इस 'रूप' की परिधि काव्यात्मक कृतियो तक ही सीमित न रहकर वास्तु चित्र सगीत आदि सभी विधाओ को अपने म समाविष्ट कर लेती है। इन्हीं विभिन्न विधाओ म दृश्य या चाक्षुष रूपो म अभिव्यक्ति के माध्यम द्वारा सौंदय का आविर्भाव होता है। इसी से भ्रमवश रूप और सौंदय को पर्याय मानने की परम्परा है।

उपयुक्त दोनो रूपो को पर्याय मानने की यह परम्परा लोक-व्यवहार

और सस्कृत साहित्य म है। लोक व्यवहार मे किसी सुदरी को रूपवती कहते हैं। सस्कृत मे 'रूप शब्द 'सौदय' के पयाय रूप म प्रयुक्त हुआ है। कालिदास न अनेक स्थला पर इस शब्द का प्रयाग सौदय' अथ मे किया है। शिव को आकृष्ट न कर सकन के कारण पावती ने अपने 'रूप की निदा की है।[1] शकुतला के सौन्दय वणन म कालिदास ने कहा है कि ऐसा लगता है मानो विधाता ने विश्व के समस्त रूप के सचय द्वारा शकुतला के सौदय की रचना की है।[2] इन दाना ही स्थला पर रूप' द्वारा सौदय का ही अथ व्यक्त किया गया है। इसी रूप शब्द म सौदय का तत्व निहित रहता है। इस दृष्टि से रूप और सौदय समानाथक शब्द हैं। इस अथ म रूप के प्रयोग की सीमा है। सभी रूपो को सौदय नही कहा जाता है, अपितु प्राकृतिक पदार्थों और मानवीय आकार तक ही इस 'रूप' शब्द का प्रयाग सौदय के पर्याय मे होता है। इस 'रूप' म आकषण का कारण अवयवा के उचित सश्लेषण से उत्पन्न उनका सौदय है। रूप वस्तुगत आकार या छवि है तो सौदय उस रूप की छवि या लावण्य है। इस लावण्य की अनुभूति इद्रियो की सवेदना से हाती है।

'रूप' तत्वो से निर्मित आकार ग्रहण करन वाला कोई भौतिक पदाथ या मानसिक भावादि है। पदाथ के तत्व अभिव्यक्त हाकर ही रूप' कहे जा सकते हैं। यह अभिव्यक्ति ऐद्रिय, इद्रिया से ग्रहणीय या मानसिक भी हो सकती है। इससे सभी प्रकार की सूक्ष्म या स्थूल सत्ताएँ अभिव्यक्त होती हैं। इससे 'रूप' को वस्तु के तत्व की अभिव्यक्ति मानेंगे। अभिव्यक्त होने पर ही वस्तु मे एक ऐसा गुण उत्पन्न हो जाता है जिससे 'रूप' की चाक्षुप प्रतीति होने लगती है। सौदय म इसी चाक्षुप रूप की महत्ता रहती है। जहा इस 'रूप की अधिकता होगी वही सौदय लक्षित होगा। नारी के मासल और वतुलाकार अगो मे रूप की चाक्षुप प्रतीति अधिक होने से यह सुदर दीख पडती है। आकार के उचित सगठन और अगा के विस्तार मे स्त्री का सौदय आकषक प्रतीत होता है। वक्ष नितम्ब, जघन आदि के सौदय का यही रहस्य है।

'रूप' शब्द अगरेजी के फाम शब्द का समानाथक है। अभिव्यक्त होने पर समस्त रूपा को फाम कहा जा सकता है। तत्वो के सश्लेषण से आकार रूप मे अभिव्यक्त होने वाला रूप नेत्रा द्वारा ग्रहण किया जा सकता है आकार से वस्तु की रूप रेखा प्रकट हो जाती है। डा० रामानन्द तिवारी के अनुसार

---

[1] निनिन्द रूप हृदयेन पावती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता। कु स ५/१

[2] रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृतानु। अभिज्ञान शाकुतलम्। अक २

का 'रूप सौन्दर्य का आधार है। 'रूप' बाह्य तत्व और 'सौन्दर्य' उस रूप की आन्तरिक क्रियाजन्य अनुभूति है। हमारी मनोवृत्तियाँ आकार को देखकर जब आनन्द की अनुभूति करने लग जाती हैं तो अपने मानसिक परिष्कार में अनुकूल ही उस वस्तु में सौन्दर्य का भान होने लग जाता है। इस दृष्टि से 'रूप सौन्दर्य का उपादान कहा जा सकता है। वस्तु के बाह्य तत्व के अभाव में सौन्दर्य की रूपात्मक कल्पना कठिन हो जाती है। आकार मूलक वस्तु का बाह्य तत्व सौन्दर्यानुभूति का निमित्त तत्व है और उससे उत्पन्न आनन्दानुभूति उसका साध्य है जो सौन्दर्यमूलक होता है। तत्व ही अभिव्यक्त होकर 'रूप' कहा जाता है और रूप में आकर्षण, कान्ति शोभा लावण्यादि के अतिशय से सौन्दर्य की अनुभूति होती है। आनन्द की प्राप्ति में रूप उसका प्रथम तत्व और सौन्दर्यानुभूति द्वितीय तत्व है। इन दोनों में पूर्वापर सम्बन्ध है। दोनो एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। रूप का समुचित प्रकाशन ही सौन्दर्य है। 'रूप की सार्थकता इसी सौन्दर्य के भवन में है। कोई भी प्रकाशन की कला से सौन्दर्य बन जाता है। इसी से क्रिया विदग्धा और वचन विदग्धा नायिकाओं की क्रियाओं और वचनों में प्रकाशन का आकर्षक और मोहक सौन्दर्य रहता है। हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य में इस प्रकार का सौन्दर्य स्थान-स्थान पर वर्णित है। इस प्रकार की अभिव्यक्तियों द्वारा वस्तु या भावों की सत्ता और स्थिति का भान होता है। इन अभिव्यक्तियों से स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार की सत्ताएँ ग्रहणीय बन जाती हैं। इससे रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का आधार है और सौन्दर्य रूप के आधिक्य या पुंजीभूत प्रिय आनन्द मूलक अनुभूति है। इन दोनों में इस सूक्ष्म अन्तर के होते हुए भी काव्य और लोक व्यवहार में इन दोनों को समानार्थक मानने की परम्परा है।

रूप और लावण्य—भोग्य पदार्थ के समुचित विन्यास में 'रूप का आविर्भाव होता है। किसी वस्तु के विभिन्न अंगों के सुव्यवस्थित ढंग से रखने मे उसका जो आकार बन जाता है वही रूप कहा जाता है। इस 'रूप' मे रहने वाले मोहक तत्व को लावण्य कह सकते हैं। जैसे मोती में वर्तमान उसकी आब या कान्ति उसके मूल्य को बढ़ाकर दर्शन-सुखद बना देती है और अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी रख सकने में समर्थ होती है उसी प्रकार विभिन्न अवयवों से निर्मित शरीर के रूप तत्व में आश्रित रहने वाला लावण्य स्वतन्त्र सत्ता वाला होता है। वह न तो शरीर है न कोई विशेष अंग। शरीर में आश्रित रह कर भी उससे भिन्न है। रूप में लावण्य का अनुभव करने के लिये सजीव रूप में तरलता और तरंग की प्रतीति होती है। इसी से सुन्दरी के अंगों में तरङ्गमान योजना लावण्य कही जाती है।

ध्वनिकार ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि यह तत्व रम णियों के प्रसिद्ध तद्–तद् अगों से भिन्न प्रकाशित होता है।[1] 'यत् तद् प्रसिद्धावयवातिरिक्त, विभाति लावण्य मिवाङ्गनासु। यह लावण्य सुदरियो के अग मे रहता हुआ भी उससे भिन्न सत्ता वाला है।

'लावण्य की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। प० बदरीनाथ शर्मा ने बताया है कि "अङ्गनासु प्रशस्त स्त्रीषु प्रसिद्धेभ्योऽवयवेभ्य करचरणादि भ्योऽतिरिक्त भिन्न लावण्यम् 'मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमितीरितम्' इति शिङ्गभूपेन लक्षित कान्ति पूर मिव [2] स्त्रियो के प्रसिद्ध कर चरणादि से भिन्न कान्तिपूर्ण तत्व जो अगो म प्रकाशित होता रहता है, उसे ही लावण्य कहते हैं, जसे मुक्ताफल मे उसके पानी की तरलता प्रतिभासित होती है, वसी ही अगो म लावण्य प्रतिभासित होता है।

लावण्य का अपना आकर्षण तो है ही वह जिन अगो म रहता है उसकी शोभा का कारण भी बन जाता है। रूप मे यह गुण नही है। रूप केवल बाह्याकार का बोधक है। इससे किसी वस्तु की सम्पूर्ण रेखाओ का एक रूप म बोध हो जाता है। रूप यदि तत्व का बोधक है तो लावण्य उस तत्व मे वतमान छवि का मापक है। लावण्य के अन्तगत लय, रूप सौंदय, अभि रूपता मादव आदि कायिक गुणो का उपपादन किया गया है।

लावण्य—अवयव सस्थान से व्यक्त होने वाला अवयव से भिन्न एक दूसरा धम है। अवयवो की निर्दोषता अथवा भूषण योग लावण्य नही है। अवयवो से अविकल रमणी भी कई बार लावण्य युक्त नही होती। अलकार भी लावण्य के विधायक नही होते। यह तो एक आतरिक धम है, जो शरीर म वतमान रहता हुआ भी अपनी स्वतत्र सत्ता मे रहता है। यह बाहरी उप करण न होकर शरीर की कान्ति की आन्तरिक चमक है। इसी का समथन राम सागर त्रिपाठी ने किया है कि, 'लावण्य हि नामावयवसस्थानाभि व्यङ्ग्यमवयवव्यतिरिक्त धमान्तरमेव। न चावयवानामेव निर्दोषता वा भूष णयोगो वा लावण्यम्। पृथङ निवण्यमाणकाणादि दोषशून्य शरीरावयव

---

1 यथाह्यङ्गनासु लावण्य पृथङ निवण्यमाननिखिलावयवव्यतिरेकि किमप्यन्यदेव सहृदय लोचनामृत, तत्वान्तर ध्वन्यालोक १.४ पृ १६ (१६५२) टीका आ० विश्वेश्वर।

2 ध्वन्यालोक–दीधिति–टीका (१६५३) बदरीनाथ शर्मा पृ १७ चौखम्भा सस्कृत सीरीज, काशी

यागियामप्यनन्य शून्यायामपि लावण्यशून्यमिति अनयाभूतायामपि कस्याञ्चित् लावण्यामृत चन्द्रिकेयमिति सहृदयाना व्यवहारात् ।[1] कालिदास ने भी लावण्य के लिये आभूषण का होना अनिवार्य नही माना है । उनके विचार से लावण्य अपने मौलिक अथवा मूल रूप म ही प्रतिभासित होता है । इसके लिये मण्डन अनावश्यक है ।[2] मधुर आकृतियों के लिये सभी वस्तुए आकर्षक हो जाती हैं । अलकारो की भी आवश्यकता नही रहती है ।

लावण्य युक्त रमणी सभी अवस्थाओं म मनोज्ञ प्रतीत होती है । बिहारी ने आभूषण को दपण पर लगे मोर्चे के समान माना है ।[3] इससे स्वत प्रका शित अवयवो की चमक और नहीं बढ़ती । अत लावण्य तो वस्तु म रहता हुआ उसका एक धम विशेष है । 'रूप वस्तु का वाह्यतत्व होने से इतिवृत्तात्मक है और लावण्य वस्तु म स्थित उसका धम विशेष है । अत सभी प्रकार के रूपो म लावण्य का होना आवश्यक नही है । रूप के सग लावण्य की स्थिति होती भी है और नही भी होती है परन्तु जहाँ लावण्य है वहाँ रूप अवश्य होगा ।

रूप म आकृति की महत्ता है और लावण्य म उस आकृति म रहन वाली चमक का आकषण होता है । लावण्य अवयवो से स्फुरित होन वाला उसका एक प्रधान तत्व है वह स्वय अवयव नही है । उनसे निर्मित भी नहीं है, फिर भी सम्पूण अवयव म वतमान एक तेज के समान है । जसे सूय का प्रकाश न तो स्वय सूय है और न उसकी किरण ही है अपितु उन सबका उनम व्याप्त रहन वाला एक तेजो मय रूप है उसी प्रकार लावण्य न तो अग विशेष है और न अगो से निर्मित उसका एक रूप विशेष ही है अपितु इन अगो म ही वतमान रहने वाला एक तेज है । अत यह अगो म रहता हुआ भी अगो से भिन्न है ।

रूप मे वस्तु सत्ता का बोध इतिवृतात्मक होने से सामान्य है और 'लावण्य सत्ता म व्याप्त रहने वाला गुण विशेष है । सहृदय लावण्य का प्रशसक होने से उसकी अनुभूति करता है यह अनुभूति भावनात्मक पक्ष का आधार ग्रहण करती है । इसस इसका क्षेत्र आतरिक है । रूप का बोध सामान्य है इसस वह बौद्धिक है । मैंने अमुक वस्तु के रूप (फाम) को जान लिया है' इस प्रकार की प्रवृत्ति म माधुय का अभाव है । लावण्य मे जहाँ रसिकता है,

---

1 लोचन टीका–ध्वन्यालोक–पृ० ७८ (१९६३) व्याख्या ।
रामसागर त्रिपाठी । मोतीलाल बनारसीदास ।

2 इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतिनाम् । --अभि० शाकुन्तलम् १।१७

3 सतसई ।

वही रूप ज्ञान म एक शुष्क बौद्धिकता है। रूप मे बुद्धि की ज्ञापन शक्ति है, लावण्य मे भाव-पक्ष की सरलता है। लावण्य का स्फुरण हमारी चेतना म अविलम्ब हो जाता है, इसकी व्याप्ति पूरे शरीर मे रहती है।

लावण्य के सौदय म जीवन का आनन्द रहता है। 'लुनाति जाड्य मिति। लू×नन्द्यादित्वात् ल्यु। नन्द्यादिगणे णत्वपाठाद् णत्वम्। लवणस्य भाव लावण्यम्।[1] इस व्युत्पत्ति मे लावण्य शब्द का रहस्य छिपा है। लूणपणे के भाव मे ही लावण्य है। जस भोज्य सामग्री मे नमक के योग से आस्वाद सुख रुचिकर हा जाता है वसे ही 'रूप' मे लावण्य के सयोग से आकषण और मनारमता उत्पन्न हो जाती है। लावण्य अवयवा म मधुरता और सरसता का विधायक तथा उसके जीवन की समृद्धि का स्रोत है। इससे रूप म सौदय की वृद्धि होती है। आनन्द का सचार होता है। इस दृष्टि से सौदय रूप का लावण्य है। रूप वस्तुगत आकार है। रूप का लावण्य इद्रिया की विशेष प्रक्रिया स सम्वदना म बदल जाता है। ऐद्रिय रूपा के लावण्य मे एक प्रियता हाती है। इसी पियता से सौन्दय का आत्मिक आनन्द जागृत होता है। इससे चेतना उद्बुद्ध हानी है। यही आत्म चेतना वस्तु मे सौदय का अनुभव करती है। इसी स वस्तु का आस्वाद मिलता है।

रूप और सौन्दय का विधान सभ्यता के विभिन्न उपकरणो म दीख पडता है। जीवन क विभिन्न उपकरणा म सन्निहित सौदय रूप का ही लावण्य माना जायगा। इद्रिया की प्रक्रियात्मक सहयोग से रूप का यह लावण्य सवेदना मे बदल जाता है। उत्तरात्तर वस्तुगत रूप लावण्य तथा ऐद्रिक सवेदना और मनोगत चेतना की यह पारस्परिकता उत्तरात्तर घटित होती गई है इसी क्रम विकास म भागवत सौदय का उदय हाता है। एद्रिक रूप का लावण्य अपनी प्रियता द्वारा सौदय के आत्मिक आनन्द के जागरण मे सहायक होता है। चेतना के भाव से वस्तु सुदर होती है। यह चेतना ऐद्रिय रूप के लावण्य से जाग्रत होती है। इस प्रकार ऐद्रिय रूप और चेतना दोनो एक दसरे से प्रभावित होते हैं और वस्तु का लावण्य ही हम सवेदनात्मक बोध करान मे सहायक होता है। यदि रूप का लावण्य न हो तो किसी प्रकार की प्रियतामूलक सवदनात्मक चेतना जाग्रत नही हो सकती। अत रूप लावण्य, सवेदना, और तज्जन्य चेतना का उत्तरात्तर विकास क्रम है।

डा० हरद्वारी लाल ने रूप लावण्य की व्याख्या करत हुए कहा है कि सजीव रूप मे यदि अवयव इस प्रकार गुम्फित हैं कि उनम तरलता जीवन का ओज और तरग की प्रतीति होती है तो हम रूप म लावण्य का अनुभव हात

---

[1] हलायुध-कोश-पृ० ५७७

है[1] रूप की उचित और सजीव योजना को उन्होंने लावण्य कहा है। विभिन्न अंगों के सुविन्यस्त संगठन और तरङ्गमान योजना से ही यह सम्भव होता है। इस प्रकार उनकी दृष्टि से रूप के विन्यास में ही लावण्य है। इस दृष्टि से यह विन्यास से उत्पन्न होने वाला एक तत्व विशेष हो जाता है परन्तु लावण्य विन्यास में न होकर रूप में वर्तमान ओज में अथवा कान्ति में ही माना जायगा।

अतः हम कह सकते हैं कि वस्तु के रूप और लावण्य में आकार और धर्म का भेद है। 'लावण्य' शब्द के उच्चारण मात्र से वस्तु में वर्तमान कान्ति का आभास होने लगता है। जड़ पदार्थ आकर्षक हो सकता है परन्तु लावण्य तो चेतन का ही धर्म है। रूप की सत्ता चेतन अचेतन सभी में ही रहती है लावण्य में सत्त्व की प्रधानता रहती है। इसका आश्रय स्थान सचेतन प्राणी ही है। रूप में 'सत्त्व' नहीं भी होता। इसमें लावण्य के आश्रय भूत तत्त्व की एक सीमा है और रूप में इस प्रकार की कोई सीमा नहीं होती। लावण्य जीवन में आकर्षण और रस उत्पन्न करता है। इसी से लावण्य युक्त रूप स्पृहणीय बन जाता है। इस स्पृहणीयता से सौन्दर्य उद्भासित होता है। अतः कहा जा सकता है कि रूप ही सौन्दर्य का आधार है। रूप के बिना सौन्दर्य की स्थिति हो नहीं हो सकती है। इस रूप में विन्यास की महत्ता रहती है और विन्यास गत आकर्षण प्रसाधन के उपकरणों से उत्पन्न होता है। रूप में सौन्दर्य की मोहकता विन्यास के गुण और बाह्य प्रसाधनों से आती है। इससे रूप और सौन्दर्य दोनों का ही युगपत् कथन होता है। भेद केवल यह है कि सौन्दर्य की अधिकता में रूप की चेतनता दब जाती है और सौन्दर्य की मोहकता ही उभर कर समक्ष आ जाती है फिर भी दोनों एक दूसरे के सापेक्ष और पूरक हैं। इसी रूप में इनकी मान्यता है। अगले अध्यायों में आत्मगत और विन्यासगत रूप सौन्दर्य का तात्विक आधार निश्चित करके उसी निकष पर मध्यकालीन कृष्ण काव्य को परखने का प्रयास किया गया है।

(३) अभिव्यक्ति—सुन्दर वस्तु का तृतीय तत्व अभिव्यक्ति है। काव्य की परिधि में अमूर्त अथवा अव्यक्त मानसिक वृत्तियों को व्यक्त रूप दे देना ही अभिव्यक्ति है। संसार के सभी पदार्थ किसी अदृश्य के व्यक्त रूप ही हैं। कोई अनन्त चेतन सत्ता प्रकृति और प्राणियों के माध्यम से अपने को व्यक्त करती रहती है। इससे अभिव्यक्ति की यह सनातन और स्वाभाविक परम्परा है।

मानव में अभिव्यक्ति का एक स्वाभाविक प्रेरणा मान सकते हैं। वह जिन पदार्थों को देखता है अथवा जिनसे उसकी आत्मा तृप्त होती है ऐसे

[1] सौन्दर्य शास्त्र पृ० ७१

पदार्थों से उसे आनन्द की अनुभूति होती है। वह इस आनन्द को सौन्दर्य के भोग और रूप तत्वों के आधार पर व्यक्त करता है। स्वाभाविक प्रेरणा से इसकी अभिव्यक्ति होने पर यह स्वयं म सुन्दर हो जाती है। यदि भावनाओं को व्यक्त न करें, तो मन में एक अव्यवस्था हो जाती है। अत इसी व्यवस्था को लाने के लिये अदृश्य प्रवृत्तियाँ, भावनाओं तथा प्राकृतिक और मानवीय या अन्य दृश्यों को हम रूप देते हैं। यह रूप देना ही 'कला है। इससे जिस सौन्दय की सृष्टि होती है उसे कलात्मक सौन्दय कहेंगे।

इस सौन्दय के लिये माध्यम को सुरुचिपूर्ण होना चाहिए। कभी-कभी अप्रिय माध्यम भी अभिव्यक्ति की सुन्दरता से प्रिय हो जाता है। भय, क्रोध करुण, रौद्र आदि भाव सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त होने से ही 'रस कहे जाते हैं। अभिव्यक्ति के ढंग से ही रसानुभूति होती है। इस अभिव्यक्ति के नियम की यदि कठोरता से पालन करें तो कलाओं में एक निर्जीवता आ जाने की सम्भावना भी बनी रहती है तथा इसकी अवहेलना से विद्रूपता आ जाती है।

अभिव्यक्ति म नियम और भावों का स्वच्छन्द प्रवाह कला में निखार लाता है। कलाकार की उत्पादक प्रतिभा रूप को सुन्दर बना देती है तथा अरूप को रूप दे देता है। इसके गुणों म ओज, प्रासाद और माधुय मन की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का सूचित करते हैं। संस्कृत साहित्य में कई आचार्यों ने अभिव्यक्ति पक्ष पर ही अधिक बल दिया है। आचाय वामन दण्डक, उद्भट, जयदेव कुन्तक आदि के काव्य निरूपण में इसी पक्ष पर अधिक बल दिया गया है।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों के मत से अभिव्यक्ति का माध्यम सुरूप होने पर स्वयं अभिव्यक्ति भी सुन्दर हो जाती है। पाश्चात्य देशों में तो कला के लिये ही कला की सृष्टि मानते हैं। इटलियन विद्वान क्राचे ने अभिव्यक्ति को ही सुन्दर माना है। इस अभिव्यक्ति के द्वारा अदृश्य, अव्यक्त और आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी व्यक्त हो जाती हैं।

साहित्य में वर्णित नौ स्थायी भावों में से रौद्र भयानक आदि से जो एक आनन्ददायक अनुभूति होती है उसका मूल कारण अभिव्यक्ति का सौन्दय ही है। यदि ऐसा न हो तो यथाय जगत म विकर्षण उत्पन्न करने वाले य भाव काव्य जगत् म कभी भी आकर्षण के कारण नहीं बन पाते। अभिव्यक्ति म उसके विशेष नियम और कवि की स्वच्छन्दता इन दोनों के समुचित समन्वय म ही सौन्दर्य मुखर हो जाता है। केवल नियम का पालन काव्य म नीरसता उत्पन्न कर देता है। कवि की स्वच्छन्द भावना विशेष मानसिक स्थिति म उच्चकोटि अनुभूतियाँ म अभिव्यक्त करती है। यद्यपि कला की सर्जनात्मक

प्रतिभा रुढिया को स्वीकार करने को बाध्य नही होती फिर भी उसकी नूतन आविष्कृत रूपादि नियम के शासन को किसी न किसी रूप म अवश्य ही ग्रहण करते हैं। इस प्रकार दोनो के समन्वय से कला की अभिव्यक्ति सुदर होती है। इसका लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है। इसी बात का समर्थन करते हुए कहा गया है कि, 'सौंदय केवल आत्मिक और आतरिक अनुभूति मात्र नही है, वरन् वह आत्म भाव की भूमिका मे बाह्य माध्यमो द्वारा साकार होने वाली सामाजिक अभिव्यक्ति है।[1]

(४) प्रियता को सौंदय का एक चौथा तत्व मान सकते हैं। इसी प्रियता से वस्तु म आकपण का भाव आता है। एक ही वस्तु एक के लिए सुदर और दूसरे के लिये असुदर हो जाती है। यहा प्रियता रुचि पर निभर है। अत जिन गुणो के कारण वस्तु प्रिय बनता है उन गुणो को सौन्दय कहेंगे।

अन्त म कहा जा सकता है कि सुदर वस्तु के प्रथम तीन तत्वो म विकास का एक क्रम है। इनमे से किसी एक की प्रधानता होती है। भोग के सग रूप और अभिव्यक्ति की अस्पष्टता बनी रहती है। प्रकृति के कुछ पदार्थों म भोग और रूप दो पक्षो की प्रबलता होती है। मानव म भोग और रूप के साथ चेतनता का अस्तित्व भी बराबर बना रहता है। इसी स एक शिशु तथा युवती म भोग्य पदार्थों क समुचित विन्यास से रूप की पराकाष्ठा और सौन्दय के आकपण क साथ चेतन अश क समावेश तथा मानसिक वृत्तियो उत्साह, आकाक्षा की प्रियता भी वतमान रहती है। यदि य तीनो ही तत्व एक ही स्थल पर समन्वित हो जाय तो उनमे उत्पन्न होन वाला सौंदय लोकोत्तर हो जाता है। वह अपनी प्रियता के कारण आकपक रूप म प्रियता का बोध कराता है। अत कहा जा सकता है कि भोग और रूप के साथ अभिव्यक्ति का सौंदय महत्वपूण हो जाता है। मानवीय स्तर पर अभिव्यक्ति आत्मगत एव बाह्य सौंदय साधक उपकरणो स पूणता को प्राप्त होती है। इससे रूप और अधिक आकपक और सुदर होकर आकृष्ट करन वाला बन जाता है। इसी रूप और सौंदय की अभिव्यञ्जना का व्यावहारिक पक्ष इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। अत इसे ही इसकी सीमा मानगे।

---

[1] सत्य शिव सुन्दरम् भूमिका पृ० १७ डा० रामानन्द तिवारी

रूप-सौन्दर्य—अभिव्यक्ति-निर्वचन

(१) कलात्मक-सौन्दर्य
(२) कलात्मक-सौन्दर्य के भेद
(३) मानवीय सौन्दर्य
(४) सौन्दर्य साधक उपकरण
- (क) आत्मगत उपकरण
  - (१) गुणगत
  - (२) चेष्टागत
- (ख) बाह्य उपकरण
  - (१) प्रसाधनगत
  - (२) तटस्थ

मानव की बोध वृत्ति क्रमश तीन दिशाओं म सचरण करती हुई विकसित होती है। इसे जिज्ञासा, चिकीर्षा और सौन्दर्यानुराग कहते हैं। इन तीनो वृत्तियो की तृप्ति के लिये मानव क्रमश ज्ञान कम और उपासना का आधार लेता है। सौन्दर्यानुभव की अभिलाषा मानव मात्र म रहती है। यह आनन्द का अनुभव कराने वाली वृत्ति है। सौन्दर्यानुभूति मे मानव अपनी ही तन्मयता एव अनुराग का बाह्य वस्तु के माध्यम से भोग करता है। अत इसमें वस्तु की सत्ता और व्यक्ति की अनुभूतियो का महत्व रहता है।

ज्ञान से जिज्ञासा वृत्ति की तृप्ति और आत्म-तत्व का बोध होता है। यह बोध चिन्तन अथवा प्रातिभ ज्ञान से होता है। इस ज्ञान की सीमा म सत्य दशन का विषय हो जाता है, परन्तु अनुभूति की परिधि म यही सत्य 'सुन्दर बनकर प्रस्तुत होता है और 'सुन्दर' कम के आश्रय से कल्याणकारी और मङ्गलमय बन जाता है। इस प्रकार मानसिक रूप मे सत्य सुन्दर की अनुभूति कराता है। अत सौन्दय मे मानसिक अनुभूति और लोक हित मे आचरण सम्बन्धी कार्यों की महत्ता रहती है। काव्य म मानसिक अनुभूति एव तज्ज य सौन्दर्यानुराग की महत्ता रहती है। इसी से सौन्दय वणन म काव्य सदव सचेष्ट रहता है। इस वणन मे वह मानव को आधार बनाकर उसकी मुख्यता का प्रतिपादन करता है। इसमे अपनी योग्यता के प्रदशन म वह जिस ढग और कलात्मक प्रतिभा का सहारा लेता है, उससे अभिव्यञ्जनागत सुन्दरता की अभिव्यक्ति होती है। निम्नलिखित पक्तियो मे सौन्दय के इन्ही दो रूपो का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। वे दोनो कलात्मक और मानवीय सौन्दय के नाम से अभिहित किये जा सकते हैं।

कलात्मक सौन्दय —

बाह्य रूप की आन्तरिक अनुभूतियाँ ही अपनी विशेष प्रक्रिया से कलात्मक सौन्दय का अधिष्ठान बनती हैं। मनोजगत को बाह्य जगत की दृश्य ऐन्द्रिय वस्तुओ का साक्षात्कार होने पर अन्त करण की सक्रियता उस बाह्य रूप मे एक नवीन भावना का समावेश कर देती है। इस प्रकार वस्तु की अभिव्यक्ति कलात्मक हो जाती है। यहा वस्तु का स्थूलतत्व मानस की सूक्ष्म सत्ता का साहाय्य पाकर विभिन्न कलाओ के रूप मे स्फुरित हो जाता है। मूल सामग्री ही भावना सवलित होकर व्यापक रूप मे अभिव्यक्त हो जाती है। अभिव्यक्ति के कारण उत्पन्न होने वाले सौन्दय को कलात्मक सौन्दय कहते हैं।

कला का यह सौंदय कलाकार की सजनात्मक शक्ति के ऊपर निभर रहता है। उसकी अभिव्यञ्जना म व्यक्तिगत विशेषताओं का समावेश होता है। कवि अपनी अनुभूतियों या युग वशिष्ट्य के आधार पर कभी सहजभाव से और कभी सचेष्ट होकर अभिव्यक्त करने म भावों अथवा नाना युक्ति आदि का सहारा लेता है। इसमे कवि द्वारा अपनाया गया शिल्प जिस सौन्दर्य का विधान करता है, वही कलात्मक सौन्दर्य कहा जाता है। इसे ही अभिव्यञ्जनागत सौंदय भी कह सकते हैं।

इस सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण अन्य चाक्षुष विषयों के प्रत्यक्षीकरण की भांति सम्भव नहीं है बल्कि अनुभूति का विषय है। काव्य सहृदय के अनुकूल होता हुआ उसे भावमग्न कर देने की क्षमता रखता है। काव्य म वर्णित वस्तु यथार्थ जगत म हम प्रतिदिन कर ला म कई बार प्रत्यक्ष हो जाती है, परन्तु वही बाह्य रूप रंग शब्द ध्वनि आदि म बधकर रसानुभूति कराने लग जाती है। यही कलाकार की क्षमता है। वह अपनी क्षमता से रसानुभूति कराता हुआ स्थूल और कुरूप को भी सूक्ष्म और सुन्दर बना देता है। इससे आविर्भूत होने वाले सौन्दर्य द्वारा कलाकार अनुभूतियों के सम्बल प्रतिभा और कल्पना के साहाय्य और चित्र विधायिनी शक्ति से सहृदय के मानस पटल पर सौन्दर्य और रमणीयता की एक अपूर्व छाप छोड़ देता है। सहृदय भी उस कलात्मक सृजन म अपनी ही भावनाओं का प्रतिबिम्ब पाकर रस मग्न हो जाता है। इस प्रकार कवि की प्रतिभा से युक्त बाह्य तत्व या व्यापारादि कलात्मक रूप पाकर कलागत सौंदय कहे जाते हैं। इससे उत्पन्न होने वाली नवीनता मूलक रमणीयता की अनुभूति ही रसानुभूति है। अत काव्यगत सौन्दर्य की कलात्मक मानस अनुभूति ही रस है।

भारतीय काव्य शास्त्र म इस अनुभूति को भिन्न काव्य सम्प्रदायवादियों ने अलग अलग रूप म ग्रहण किया है। विश्वनाथ का रस सम्प्रदाय आनन्द वधन का ध्वनि सम्प्रदाय, दण्डी का अलकार सम्प्रदाय, कुतक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय वामन का रीति-सम्प्रदाय इसी को व्यक्त करने के विभिन्न माग है। क्षेमेन्द्र ने इसका स्पष्टीकरण औचित्य द्वारा किया है आचाय जगन्नाथ शब्द में रमणीयता को पाने का प्रयास करते हैं। मम्मटाचाय शब्द और अथ के समन्वय मे इसे देखते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार गुण अलकार और औचित्य के ध्वनियुक्त शब्दाथ द्वारा समन्वित रूप म सौंदय की अनुभूति होती है। कोई वाच्याथ का महत्व देता है कोई प्रतीयमान अथ में ही रमणी के अंगो मे व्याप्त लावण्य के समान उस सौंदय का अस्तित्व पा लेता है। इससे स्पष्ट है कि

काव्यगत सौन्दय के अस्तित्व को सभी भारतीय किसी न किसी रूप म अवश्य स्वीकार कर लेते हैं।

इस काव्यगत सौन्दय का मूल स्रोत प्रकृति और मानव जगत का वह सम्पूर्ण रूपाकार है जो कल्पना और अनुभूति की रमणीयता प्राप्त करके सुन्दर बन जाता है। मानव एव प्रकृति का जड तत्व कल्पना से ही चेतन बन जाता है। इससे एक विशेष आनन्द मिलता है। इस आनन्द का आधार मानव है। अत इस आनन्द के मूल में स्थित सौन्दय भी मानवीय सौन्दय की अनुभूति हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सृजनात्मक कल्पना की दृष्टि से अनुभावन करने पर सभी वस्तुएँ सुन्दर हो जाती है। यहाँ नव कि प्रकृतिगत सौन्दय म भी वस्तु का गुण, कल्पना की सृजनात्मक चेतना आदि कलात्मक सौन्दय के कारण बन जाते हैं। सजन के इस सौन्दय म प्रदशन की भावना वतमान रहती है।

यह सृजन एकान्त क्षण म सम्भव हो सकता है परन्तु उसका एकान्त भाव सदा बना नही रहता। उसम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सामाजिक चेतना बनी रहती है। इसी से प्रदशन की कलाओ मे श्रोताओ की रुचि का ध्यान बना रहता है। ऐसी कलाओ मे चाक्षुप रूप सौन्दय की महत्ता बनी रहती है। इस रूप पर अवलम्बित होते हुए भी रूपगत सौन्दय और कलात्मक सौन्दय मे अन्तर है।

(१) कलात्मक सौन्दय मनोजगत का सौन्दय है यद्यपि इसकी चयन सामग्री का आधार यही रूपाकार गत प्रकृति एव मानव जगत का क्षेत्र है।

(२) काव्यगत सौन्दय की मानसिक अनुभूति की मान्यता सभी सम्प्रदायो मे हैं।

(३) बाह्य रूप मे ही सौन्दय की अनुभूति होती है। यही रूप रमणीय होकर आकपण का कारण बनता है।

(४) कलात्मक सौन्दय एकान्त, व्यक्तिगत और आन्तरिक अनुभूति एव प्रतिभा का फल है। इसम सजन का एक अपूव भाव रहता है। इससे इसमे अभिव्यञ्जनागत शिल्प का महत्व रहता है। यह अभिव्यञ्जना अनेक रूपों में प्रस्तुत की जाती है।

कलात्मक सौन्दय के भेद

काव्य सृजन म अभिव्यञ्जनागत सौन्दय का महत्व है। व्यक्ति भेद से अभिव्यञ्जना के रूप मे अन्तर आ जाता है। काव्य के सृजन मे कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही विषय वस्तु के समन्वय से एक विशिष्ट शली मे

कला का यह सौंदर्य कलाकार की सर्जनात्मक शक्ति के ऊपर निर्भर रहता है। उसकी अभिव्यञ्जना में व्यक्तिगत विशेषताओं का समावेश होता है। कवि अपनी अनुभूतियों या युग वैशिष्ट्य के आधार पर कभी सहजभाव से और कभी सचेष्ट होकर अभिव्यक्त करने में भावना, अथवा ज्ञान, बुद्धि आदि का सहारा लेता है। इसमें कवि द्वारा अपनाया गया शिल्प जिस सौन्दर्य का विधान करता है वही कलात्मक सौन्दर्य कहा जाता है। इसे ही अभिव्यञ्जनागत सौंदर्य भी कह सकते हैं।

इस सौंदर्य का प्रत्यक्षीकरण अन्य चाक्षुष विषयों के प्रत्यक्षीकरण की भांति सम्भव नहीं है वरन अनुभूति का विषय है। काव्य सहृदय के अनुकूल होता हुआ उसे भावमग्न कर देने की क्षमता रखता है। काव्य में वर्णित वस्तु यथार्थ जगत में हम आरोपित करते तो न में कई बार अक्षम हो जाती है, परन्तु वही वाह्य रूप रंग शब्द ध्वनि आदि में बंधकर रसानुभूति कराने लग जाती है। यही कलाकार की क्षमता है। वह अपनी क्षमता से रसानुभूति कराता हुआ स्थूल और कुरूप को भी सूक्ष्म और सुन्दर बना देता है। इससे आविर्भूत होने वाले सौंदर्य द्वारा कलाकार अनुभूतियों के सम्बल, प्रतिभा और कल्पना के साहाय्य और चित्र विधायिनी शक्ति से सहृदय के मानस पटल पर सौन्दर्य और रमणीयता की एक अपूर्व छाप छोड़ देता है। सहृदय भी उस कलात्मक सृजन में अपनी ही भावनाओं का प्रतिबिम्ब पाकर रस मग्न हो जाता है। इस प्रकार कवि की प्रतिभा से शुष्क वाह्य तत्व या व्यापारादि कलात्मक रूप पाकर कलागत सौंदर्य कहे जाते हैं। इससे उत्पन्न होने वाली नवीनता मूलक रमणीयता की अनुभूति ही रसानुभूति है। अतः काव्यगत सौन्दर्य की कलात्मक मानस अनुभूति ही रस है।

भारतीय काव्य शास्त्र में इस अनुभूति को भिन्न काव्य सम्प्रदायवादियों ने अलग अलग रूप में ग्रहण किया है। विश्वनाथ का रस सम्प्रदाय आनन्द वर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय, दण्डी का अलंकार सम्प्रदाय कुन्तक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय वामन का रीति-सम्प्रदाय इसी को व्यक्त करने के विभिन्न मार्ग हैं। क्षेमेन्द्र ने इसका स्पष्टीकरण औचित्य द्वारा किया है आचार्य जगन्नाथ शब्द में रमणीयता को पाने का प्रयास करते हैं। मम्मटाचार्य शब्द और अर्थ के समन्वय में इसे देखते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार गुण अलंकार और औचित्य के ध्वनियुक्त शब्दार्थ द्वारा समन्वित रूप में सौंदर्य की अनुभूति होती है। कोई वाच्यार्थ को महत्व देता है कोई प्रतीयमान अर्थ में ही रमणी के अंगों में व्याप्त लावण्य के समान उस सौंदर्य का अस्तित्व पा लेता है। इससे स्पष्ट है कि

काव्यगत सौदय के ग्रस्तित्व को सभी भारतीय किसी न किसी रूप मे ग्रवश्य स्वीकार कर लेते ह।

इस काव्यगत सौन्य का मूल स्रोत प्रकृति ग्रौर मानव जगत का वह सम्पूर्ण रूपाकार है जो कल्पना ग्रौर ग्रनुभूति की रमणीयता प्राप्त करके सुन्दर बन जाता है। मानव एव प्रकृति का जड तत्व कल्पना से ही चेतन बन जाता है। इससे एक विशेष ग्रानन्द मिलता है। इस ग्रानन्द का ग्राधार मानव है। ग्रत इस ग्रानन्द के मूल म स्थित सौदय भी मानवीय सौन्दय की ग्रनुभूति हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सृजनात्मक कल्पना की दृष्टि से ग्रनुभावन करन पर सभी वस्तुएँ सुन्दर हो जाती है। यहाँ तक कि प्रकृतिगत सौदय म भी वस्तु का गुण, कल्पना की सृजनात्मक चतना ग्रादि कलात्मक सौन्य के कारण बन जाते है। सजन के इस सौन्य म प्रदशन की भावना वतमान रहती है।

यह सजन एकान्त क्षण मे सम्भव हो सकता है परन्तु उसका एकान्त भाव सदा बना नहीं रहता। उसमे प्रत्यक्ष या ग्रप्रत्यक्ष रूप म सामाजिक चेतना बनी रहती है। इसी से प्रदशन की कलाग्रो म श्रोताग्रों की रुचि का ध्यान बना रहता है। ऐसी कलाग्रों मे चाक्षुष रूप सौदय की महत्ता बनी रहती है। इस रूप पर ग्रवलम्बित होते हुए भी रूपगत सौन्दय ग्रौर कलात्मक सौदय मे ग्रतर है।

(१) कलात्मक सौदय मनोजगत का सौन्दय है यद्यपि इसकी चयन सामग्री का ग्राधार यही रूपाकार गत प्रकृति एव मानव जगत का क्षेत्र है।

(२) काव्यगत सौदय की मानसिक ग्रनुभूति की मान्यता सभी सम्प्रदाया मे हैं।

(३) बाह्य रूप मे ही सौन्दय की ग्रनुभूति होती है। यही रूप रमणीय होकर ग्राकपण का कारण बनता है।

(४) कलात्मक सौदय एकान्त व्यक्तिगत ग्रौर ग्रान्तरिक ग्रनुभूति एव प्रतिभा का फल है। इसम सृजन का एक ग्रपूव भाव रहता है। इससे इसम ग्रभिव्यञ्जनागत शिल्प का महत्व रहता है। यह ग्रभिव्यञ्जना ग्रनेक रूपों म प्रस्तुत की जाती है।

कलात्मक सौन्दय के भेद

काव्य सृजन म ग्रभिव्यञ्जनागत सौन्दय का महत्व है। व्यक्ति भेद से ग्रभिव्यञ्जना मे रूप म ग्रतर ग्रा जाता है। काव्य के सृजन म कवि की व्यक्तिगत ग्रनुभूतियाँ ही विषय वस्तु के समन्वय से एक विशिष्ट शली म

प्राप्त हो जाती है। काल का प्रभाव ना पडता ही है। कवि वस्तु के रूप का आधार लेकर कल्पना एवं अपनी बौद्धिक चेतना से ध्वनि और शब्द के प्रयोग द्वारा अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करता है। इस प्रकार रूप शब्द, ध्वनि और कल्पना के आधार पर काव्य में कलात्मक सौन्दर्य का स्फुरण होता है। इन चारों का स्थूल आधार व्यावहारिक दृष्टि से रूप या उसका आकर्षण ही है। सर्वप्रथम व्यक्ति रूप आकार की स्थूलता का बोध करता है। यही बोध कुछ क्षण बाद ही आकार और रूप से निर्मित उस वस्तु या व्यक्ति के गुण का आन्तरिक विश्लेषण करने में लग जाता है। इस कार्य में पहली क्रिया रूपाकर्षण की स्थूलता की बोधिका और दूसरी क्रिया गुण के आकर्षण और आन्तरिक क्रिया का ज्ञान कराने वाली होती है। व्यावहारिक जीवन में रूपाकर्षण की क्षणिकता के स्थान पर गुणों की चिरन्तनता अधिक महत्वपूर्ण होती है। यही पक्ष काव्य में भाव सौंदर्य बनकर प्रस्तुत होता है। इन दोनों रूप और भाव की सौंदर्याभिव्यक्ति ही काव्य का लक्ष्य है। अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप ही भाव सौंदर्य बनकर आनन्द का कारण होता है। इस भाव-सौंदर्य के सम्यक नियोजन में काव्यकार भावों (स्थायी आदि) वस्तु सौंदर्य (परिस्थिति, वातावरण, देशकाल, परम्परा) और दृश्य सौंदर्य (प्रकृति, मानव और विश्व के चित्र) को उपस्थित करता है। अपने इस सृजन को आकर्षक बनाने के लिए वह अर्थ परिवर्तन शब्द ध्वनि चित्र योजना आदि अनेक तत्वों का सहारा लेता है —

(क) अर्थ परिवर्तन—युग की भावनाओं के अनुसार तथा सतत प्रयोग के कारण अनेक शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। प्रयोग बाहुल्य तथा लौकिक प्रसंगों के समावेश से श्रीकृष्ण शब्द के अर्थ में उत्तर मध्यकाल के साहित्य में गिरावट आ गई। इनका अर्थ सामान्य नायक से लिया जाने लगा। इसी प्रकार के अन्य शब्दों में कन्हैया, साँवलिया, लाल, ललन लली आदि की गणना की जा सकती है। इसी से सम्बन्धित अन्य शब्दों में भी गिरावट आ गई। इससे इन सभी शब्दों का प्रयोग लौकिक अर्थ में होने लगा।

(ख) शब्द ध्वनि—कलात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत शब्द ध्वनियों द्वारा अनुकूल वातावरण की सृष्टि की जाती है। इनसे मानव की मूल संवेदना या भाव प्रकट होता है। शब्दों से उत्पन्न ध्वनि के माध्यम द्वारा चित्रात्मक गूँज वातावरण में फैलती रहती है। इसमें श्रुति-मधुरता और नाद सौंदर्य प्रस्तुत को प्रभावशाली बना देने में समर्थ हो जाता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से अभिव्यञ्जना का कलात्मक सौंदर्य दीप्त पड़ता है। इस सौंदर्य में श्रुति

चित्र महत्वपूर्ण होता है। ध्वनि उत्पन्न करने वाले य शब्द तीन प्रकार के होते हैं।

(१) अनुकरणात्मक (२) रणनात्मक (३) लक्षणात्मक। ऐसे शब्दों का प्रयोग प्राय मिलन प्रसग पर अथवा रति प्रसग पर श्रुति माधुय उत्पन्न करने या भावों को उद्दीप्त करने मे किया गया है।

अनुकरणात्मक शब्दों द्वारा वस्त्रों की फरफराहट का बोध कराया जाता है। ऐसे प्रयुक्त शब्दो द्वारा स्वय ही एक ध्वनि सी निकलती हुई प्रतीत होती है। यथा —

'फहर फहर होत पीतम को पीत-पट,
लहर-लहर होत प्यारी की लहरिया। देव

इसमें प्रयुक्त शब्दो के फरफराहट की आवाज से निर्जीव वस्त्रादि मे भी मिलन-सम्भावना से आनन्द एव उत्साह की अभिव्यञ्जना हुई है।

रणनात्मक शब्दों द्वारा आभूषणों से उत्पन्न ध्वनि के माध्यम से विशेष वातावरण एव प्रसगादि का बोध कराया जाता है। यह ध्वनि मिलन के अवसर पर अपने चमत्कारिक प्रभाव के कारण प्रसिद्ध है। यथा —

'झाभरिया झनकगी खरी खनकगी, चुरी तन की तन तोरै। दास

आभूषणो के इस रणन का तत्काल और सीधा प्रभाव सवेगों पर पडता है। इससे मिलन प्रसग की सुखदता बढ जाती है।

लक्षणात्मक शब्दों मे नाद और अभिव्यक्ति का युगपत् सौन्दय देखने को प्राप्त हो जाता है। यथा "उमड यो परतरूप" जैसे प्रयोगों में लक्षणा द्वारा वाचक शब्द से भिन्न एक ऐसे अन्य अथ का बोध होता है, जो इन्द्रिय ग्राह्य होने के साथ ही रूप-सौन्दर्य के आधिक्य की व्यञ्जना करता है। रूप के उमडने में उसके आकषण पूर्णता और तरलता आदि का बोध होता है। ऐसे चित्रो द्वारा काव्य का आकषण बढ जाता है।

(३) विशेषणों के प्रयोग मे अभिव्यञ्जनात्मक-सौन्दय-वृत्ति स्पष्ट होती है। काव्य एव प्रसगानुकूल विशेषण के प्रयोग से रूप की अद्भुत सृष्टि होती है, जिससे कवि की जीवन दृष्टि एव भावनाओ का ज्ञान होता है। यदि उस शब्द के स्थान पर किसी अन्य पर्याय ध्वनि का प्रयोग करें, तो न तो रूप की अद्भुत सृष्टि ही हो सकेगा और न काव्य-सौन्दय की विलक्षण अभिव्यक्ति ही। अत विशिष्ट विशेषणो के चयन म चित्रोपम सौन्दय एव कवि की भावना इन दोनों का समन्वय रचना के आकषण को बढा देता है। ऐसे विशेषणो का प्रयोग अगो की मधुरता, कोमलता, आकषण आदि की अभि-

व्यक्ति द्वारा उसका रूपचित्र उपस्थित करने म हुआ है। लाक्षणिक शब्दा के प्रयोग वण की महत्ता अग वणन म प्रसगा पर इन शब्दा द्वारा ऐंद्रिय चक्षु चित्र के साथ भाव चित्र रूप और रस का समन्वय भी प्राप्त हो जाता है। जसे अनियारे नयन लाज वसी अगियाँ, उतुङ्ग उरोज, सुरग चूनरी, सघन जघन गदरे देह जगमगे जोवन आदि शब्दा द्वारा यही भाव व्यक्त होता है। इनमे क्रिया मूलक विशेषणों से (ललचौही चलन) मानसिक भावो की अभिव्यक्ति भी होती है। अनेक विशेषणा क प्रयोग से रूपचित्र म एक अन्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है। आकार और कठोरता को व्यक्त करने वाले विशेषण कुचा की उपमा म प्रयुक्त हुए हैं। क्रियात्मक पक्ष के द्योतक विशेषणो से चित्रोल्लेखन एव भावो की क्षमता व्यक्त होती है। ठाढे, उचके कुच म यही पक्ष है। खरे' विशेषण म मासलता की अभिव्यक्ति है। सुरग चूनरी आदि द्वारा चक्षुग्राह्य उत्तेजना मूलक विशेषण का प्रयाग हुआ है। घनानन्द के विशेषणो म विपर्ययनिष्ठता का रग अधिक है, रसखान का रूपचित्र एव देव की ऐंद्रिय भावना प्रधान है। बाद का रचनाओ म प्रयुक्त विशेषणो द्वारा प्रस्तुत विषय मे चमत्कार लाने की चेष्टा की गई है।

(४) मुहावरो के प्रयोग म प्रयोजनवती और रूढ़ि लक्षणा के दशन होते हैं। आरम्भ मे इनका प्रयोग प्रयोजन विशेष मे होता रहा, परन्तु सतत प्रयोग से वे रूढ अर्थों म प्रयुक्त होने लगे हैं। इन्हीं मुहावरा के प्रयोग मे स्वभावोक्ति उपमा उत्प्रेक्षा विरोधाभास आदि कई अलकारों का सौन्दय भी देखा जा सकता है। भावो की अभिवृद्धि और अलकारो के चमत्कार से अभिव्यञ्जना मे निखार आ जाता है। मुहावरा का प्रयोग मुख्यत मन चित आँख आदि के प्रसग पर हुआ है। मतिराम ने 'रसराज' म आँखों के लिये अखिया भर आई (छन्द १६) दग जोर (छद १२७) ननन को फल पायो (छन्द २३८), देव ने सुन्दर विलास म मिले दृग चारो (१२) बक विलोकनि प ही बिकायो (पृ ६ प्रेम चन्द्रिका) और पद्माकर ने जगद्विनोद का प्रयोग किया है। मन के लिये मन भायो न कियो (छन्द १३८ रसराज) गुन औगुन गन नही (छन्द ५३) (जगद्विनोद) आदि का प्रयोग है। कुल कानि गवाए (छन्द १२२ रसराज) तिनतोरत फिरत (सुन्दर विलास पृ ६) आदि अन्य मुहावरो का सौन्दय भी देखा जा सकता है।

मुहावरा के प्रयोग का मूल उद्देश्य शरीरी सौदय की अभिव्यक्ति को हृदय ग्राहक बनाना है। आँख मन और चित्त सम्बन्धी मुहावरो मे क्रमश इनके लडने, बधने और चारी चले जाने म प्रेम भाव का एक क्रमिक

विकास दीख पडता है। रूप लावण्य पर आधारित आँखो के चार होने मे मासल सौंदर्य का आग्रह ही अधिक दीख पडता है।

वैभव मे भिन्न सामान्य गृहस्थ जीवन के दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले मुहावरो मे 'रवा राखत न राई सी' 'ठँग गनौगी' आदि मुहावरो द्वारा अर्थवत्ता लाई गई है। अलकारो के चमत्कार प्रदर्शन मे मुहावरो को देख सकते है। घनानद ने विरोधाभास के लिये मुहावरो का प्रयोग किया है। असगति का चमत्कार बिहारी मे दर्शनीय है।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि मुहावरो के प्रयोग द्वारा भावो मे तीव्रता लाई जाती है। मुहावरे जब कवि के साध्य बन जाते हैं, तो भाव-तीव्रता के स्थान पर चमत्कार का प्रदर्शन अधिक होने लगता है। उचित प्रभाव की व्यञ्जना के लिये मुहावरो का सुविचारित प्रयोग अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करता है।

(५) चित्र-योजना—अभिव्यञ्जना के कलागत सौंदर्य के लिये काव्य चित्रो को उपस्थित करने की परम्परा मध्यकालीन साहित्य मे अत्यधिक रही है। चित्र के माध्यम से ही अनुभूतिया आकार ग्रहण करती हैं। इन काव्य चित्रो के दो भेद—लक्षित चित्र योजना और उपलक्षित चित्र योजना किये जा सकते हैं। पहले मे बाह्य रेखाओ और वर्णों आदि के द्वारा चित्रोपस्थिति का तत्काल ज्ञान हो जाता है और दूसरे मे अप्रस्तुतो एव सादृश्य विधान द्वारा ज्ञान होता है। लक्षित चित्र योजना के दो भेद रेखा चित्र और वर्ण चित्र माने जा सकते हैं। इन दोनो मे क्रमश रेखाओ या वर्णों के द्वारा आलम्बन के रूप को अभिव्यक्त किया जाता है। इस साधन मे कलाकार का चेतन मन सहजतया रेखा या वर्णों द्वारा स्पष्ट हो जाता है। उपलक्षित चित्रो मे सादृश्य-विधान एव अप्रस्तुतो की महत्ता रहती है। चित्र योजना के इन दोनो प्रकारो मे अभिव्यञ्जना का कलात्मक और मानसिक वृत्तियो का सुदर स्वरूप उपस्थित होता है।

(क) लक्षित चित्र योजना के अतर्गत रेखा चित्र द्वारा रूपाकन के साथ ही ज्ञानेंद्रियो के अन्य विषया रस, शब्द, स्पर्श, गध का भाव भी कहीं कही लक्षित होता है। उदाहरणार्थ, रूप मे स्पर्श की भावना से ही आनन्द का उद्बोध होता है। दो या दो से अधिक विषया के समुचित रूप के कारण आकार की महत्ता बढ जाती है। रूप मात्र या अन्य कोई भी एक विषय अपनी नीरस अवस्था मे आनन्द का जनक नही हो पाता। इसीसे नख शिख की रूढिग्रस्त परम्परा नायक-नायिका भेद का घिसा पिटा रूप, अभिसारिका

खण्डितादि के वर्णना की एकरूपता आदि से बौद्धिक सतुष्टि भले हो जाय उनसे रसानुभूति नहीं हो पाती। इससे अभिव्यञ्जनात्मक विविधता स्पष्ट होती है परन्तु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि मध्यकालीन चित्रों में नयनाभिराम रूपों, भाव चित्रों, अनुभावों आदि का सौन्दर्य है ही नहीं। इनको अपने उत्कृष्टतम रूप में मध्यकाल में देखा जा सकता है।

रेखा चित्रों द्वारा नायिका के रूप और उसकी चेष्टा की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है। रूप आकर्षण का प्रमुख साधन है। अनुभावों और चेष्टाओं से प्रेम प्रकट होता है। ये उद्दीपन के उपकरण हो जाते हैं। अत रेखा चित्रों में इन तीनों को आत्मसात् कर लिया जाता है। मतिराम के प्रसिद्ध छन्द कुन्दन को रंगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई में रूढ़िग्रस्त उपमानों के न होने पर भी कुन्द से गोरे वर्ण अंगों के आलस्य और चितवन के विलास द्वारा सौन्दर्य का संश्लिष्ट रूप उपस्थित होता है। यह भावमय व्यञ्जक और मनोरम है। चेष्टा और हावों का सौन्दर्य बिहारी में अधिक है।[1] हावों का सम्बन्ध मन से होने पर मन की विविध दशाओं का ज्ञान इसके द्वारा हो जाता है। इस प्रकार के चित्र-निर्माण की क्षमता मध्यकालीन कवियों में यत्न पाई जाती है।

वर्ण योजना—चित्र निर्माण में रेखाओं द्वारा रूप उपस्थित करने में वर्ण योजना का भी अत्यधिक महत्व है। इससे अभीप्सित भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है। वर्णों द्वारा रूप उपस्थित करने में नायिका की आंगिक वर्ण शोभा एवं प्रसाधन गत शोभा का वर्णन होता है। प्रसाधन वस्तुओं में आकर्षण उत्पन्न करने के लिये वर्ण की अनुरूप योजना वर्ण मिश्रण, प्रतिरूप वर्ण योजना और वर्ण परिवर्तन का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। इन वर्णों के सादृश्य का आधार प्रकृति प्रसाधनगत सामग्री (वस्त्राभूषण), पावक एवं मणिशिखादि है। प्राकृतिक साधनों द्वारा वर्ण योजना में नक्षत्र आकाशादि तथा पुष्पादि का आधार ग्रहण किया गया है। वस्त्राभूषणों में वैभव के उपकरण विभिन्न रत्नों के साथ कामदार साड़ी अंगिया, चोली चूनरी आदि की चर्चा है। दीपशिखा के कथन द्वारा अंग-ज्योति एवं प्रकाश की अभिव्यक्ति सरलतया हो गयी है।

गतिशील वर्ण योजना द्वारा सुकुमारता की अभिव्यक्ति हुई है। 'सुन्दरी तिलक' में बताया गया है कि नायिका के पान करने में रंग की धारा

---

[1] नासा-मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकति हियैं गड़ी कँटीली भौंह। बिहारी।

प्रवाहित होने लगती है, और भीतर से बाहर तक जुन्हाई की धार सी दौड जाती है।[1] लाल और श्वेत रगों द्वारा पावों की स्वाभाविक लालिमा और तन-द्युति का आभास कराया गया है। शारीरिक कोमलता और सुकुमारता की ऐन्द्रिय अनुभूति नायिका के समग्र सौन्दय को व्यक्त कर देती है। अग की फूटनी ज्योति स मूत प्रत्यक्षीकरण सफलता से हो जाता है।

(ख) उपलक्षित चित्र योजना या अप्रस्तुत योजना का सौंदय—उपमेय या रूप उपस्थित करने के लिये कवि उपमान का प्रयोग करता है। यह सादृश्य विधान द्वारा ही अधिक होता है उपमा और रूपक के द्वारा उपमेय के स्वरूप का बोध केवल चक्षु का विषय ही नही रहता है, अपितु भावो के उद्बोध के साथ इनसे एक वातावरण की सृष्टि भी होती है इन अलकारो का आन्तरिक महत्व होना है। यथा 'विपत्ति का समुद्र' कहने से इसकी अनन्तता और भयकरता का वणन किया जाता है। इससे जो वातावरण बनता है वह मानसिक भावो को उद्बुद्ध करता है इन उपमानो के प्रयोग म रुचि, वातावरण और देशकाल का सकेत होना है इससे चित्रयोजना मे कवि की बोधवृत्ति और भाव वृत्ति दोनों का समन्वय होना चाहिए इसम एक विषय होते हुए भी व्यक्तिगत रुचि मे विभेद हो जाता है। रीतिकाल म रूढ उपमाना का प्रयोग नारी के स्थूल अगो के चित्रण के लिये किया गया है और चित्र योजना के लिय ग्रहण किये गये अप्रस्तुतो का क्षेत्र तत्कालीन वातावरण प्रकृति पशु पक्षीजगत शास्त्र ज्ञान और व्यावहारिक जीवन रहा है। जसे सुरतिरण, प्रेम-सरिता मन मृग तिय तिथि हृदय हिंडोल आदि क्रमश इन्ही क्षेत्रों के उदाहरण है।

बिहारी के अप्रस्तुत दरबारी वातावरण से, देव के पशु पक्षीजगत और घरेलू जीवन से ग्राय है। इन अप्रस्तुतों का प्रतीकात्मक अथ कवि की वृति को स्पष्ट करता है। देव न नायिका को 'पिंजरा की चिरी' कह कर पीडा, वेदना, तडफन आदि मानसिक स्थितिया का वणन किया है। घरेलू अप्रस्तुतो म देव ने मन क लिये मोम माखन, घी आदि के प्रयोग से द्रवणशीलता का सकेत किया है। मध्यकाल म अप्रस्तुता के चुनाव मे दो बातो का ध्यान रखा गया है।

---

[1] पाँव धरे अलि ठौर जहाँ तेहि आरते रग की धार सी धावति
भीतर भौनत बाहिर लौं द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति।

सुदरी-तिलक।

(१) रूप और प्रेम को उद्दीप्त करने वाले अप्रस्तुत।

(२) इन प्रस्तुतों का तीन क्षेत्र है (i) सामन्तीय जीवन में वैभव विलास और रूप की आसक्ति दिख पड़ती है। (ii) घरेलू जीवन के अप्रस्तुतों में ग्रहणशीलता है (iii) प्रकृति पशु पक्षी के जीवन से गृहीत अप्रस्तुतों द्वारा नायिका की संयोग वियोग सम्बन्धी मानसिक भावना व दशा का वर्णन किया गया है। इस अप्रस्तुत योजना का आधार सादृश्य है जो तीन रूपों—रूप सादृश्य, धर्म-सादृश्य और प्रभाव सादृश्य में प्रकट होता है।

रूप सादृश्य—सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजना में आकार के साथ वस्तु का भावात्मक बोध भी कराया जाता है। यहां रूपानुभूति की तीव्रता का महत्व अधिक हो जाता है।

रूप साम्य में अप्रस्तुत विधान का लक्ष्य वस्तु चित्रण को रमणीय बना कर उसे उत्कर्ष देना होता है। इससे सहृदय की कल्पना उद्दीप्त होती है। रूप-साम्य से वस्तु चित्रण रमणीय होता है। इस सादृश्य विधान का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य का बोध करना होता है। उपमानों द्वारा वर्ण्य वस्तु का चित्र उपस्थित हो जाता है परन्तु रीतिकाल का रूप-वर्णन नख शिख की सीमा में रूढ़िबद्ध हो गया है। संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त उपमानों का पिष्ट पेषण ही अधिक हुआ है। ऐसे परम्परागत उपमानों से रूपानुभूति में तीव्रता नहीं आती।

धर्म साम्य—का एक अच्छा उदाहरण दास कवि ने दिया है। "हरस मह धरनि को नीर भो री। जियरो मग्न नीर गरो को तुनार भो। इसमें मह ग्मि की विशेषता पानी को सोख लेने में है। इस धर्म के साम्य से रूप के श्रमन विलीन हो जाने की क्रिया को प्रयुक्त किया गया है। धर्म साम्य का यह उदाहरण अनूठा होने से सौन्दर्य को बढ़ाने वाला हो सका है। इसमें उत्पन्न रमणीयता द्वारा वर्णन प्रभाव पूर्ण हो जाता है। यह रूप साम्य की अपेक्षा सादृश्य का सूक्ष्मतर विधान करता है।

प्रभाव साम्य—अप्रस्तुत योजना की इस सीमा में सूक्ष्म तत्व के प्रभाव की व्यञ्जना होती है। इसमें आलम्बन का प्रभाव अधिक पूर्ण होता है। पुरुष-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में प्रभाव साम्य की व्यञ्जना अधिक है क्योंकि उसी के रूपादि से प्रभावित होकर नायिकाओं की विभिन्न स्थितियों का चित्रण होता रहा है। रूप का एक उदाहरण लीजिए —

य अखियाँ सखि आनि [illegible] आय मिलीं अब [illegible] ज्यों कूर में।
[illegible] उरझ न पाय फेरि मना [illegible] रंग राह के रूप में।

श्री कृष्ण के रूप मे य आखें उसी प्रकार जाकर समा गई जैसे जल विन्दु कूप मे समा कर लय हो जाता है। इसमे प्रभाव का साम्य है, जो लय होने के व्यापार द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

सँभावना मूलक सादृश्य-याजना म उत्प्रेक्षा अलकार **लोकानुभूति और कल्पना पर** आधारित होकर अत्यधिक काव्य सौन्दय का सजक बन जाता है, परन्तु रूढियो के निर्वाह म पडकर बहुलता का प्रदशन नीरस हो उठता है। नख-शिख मे दूर की सूझ वाले एसे अप्रस्तुता का प्रयोग होता है। वास्तव मे उत्प्रेक्षा द्वारा चमत्कार पूण लालित्य के आ जाते से काव्य सौन्दय की श्रीवृद्धि हा जाती है। "हार मानि प्यारी विपरीत के विहार लागि, सिथिल सरीर रही साँवरे के तन पर। मानहु मकेलि केलि कनिका कला की करि, थाकी है चलाकी चचला की छार घन पर।" यहा केलि का क्रीडात्मक पक्ष मूर्तिमान हो गया है। इससे रूप की चेतना जाग्रत होती है। भावानुभूति को तीव्र करने वाले अप्रस्तुतो की योजना भी मिलती है। अप्रस्तुता म चमत्कार मूलक और अतिशयमूलक अलकारा के द्वारा भी रूप की या दशा की तीव्रता बताई गई है। निष्कप यह है कि जहा परम्परायुक्त सादृश्य विधान है, वहाँ वह काव्योत्कष म सहायक नही हुआ है परन्तु अन्य स्थला पर ये अप्रस्तुत रूप चेतना और भाव की अनुभूति कराने मे समथ हुए हैं। रूप चेतना की प्रवलता मे तो सदह का स्थान ही नही है देव, घनानन्दादि न भावानुभूति का अधिक ध्यान रखा है। कलागत इन सभी विशिष्टताओ का उद्देश्य मानवीय सौन्दय का उत्कष दिखाना है।

मानवीय सौन्दय—

इस जगत की प्रत्येक वस्तु मानव के आकषण का केन्द्र हो सकती है। मानव वस्तु को देखकर उसे अधिकाधिक सुन्दर ढग से व्यक्त करना चाहता है। वस्तु की प्रथम अनुभूति उसके मन मे जिज्ञासा उत्पन्न करती है। उसकी कलात्मक बुद्धि उसमे सुन्दरता का आधान कर देती है। इससे उस वस्तु के स्वरूप का रसास्वादन करने म तृप्ति होती है। कलाकार के हृदय म आकषक वस्तु के ऐन्द्रिय सन्निकष स आध्यात्मिक सत्व प्रधान *भावनाओं की जागृति होती है यह जागृति उसकी मानसिक अनुभूति है।* इसी को वह कलात्मक ढग से अभिव्यक्त करके उसमे सौन्दय की सृष्टि कर देता है। यहाँ कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को मूत रूप देता है और सहृदय उन मूर्तिमान भावा का आस्वादन करके तृप्त हाता है। या तो कलाकार के अनुभव की यह प्रेरणा उसे जगत की सभी वस्तुओ स मिलती है पर तु मानव उसे सबसे अधिक प्रेरित करता है। इसी से उसने अपनी अनुभूति का आधार मानव

जगत को बनाया और उसके सुन्दरतम रूप की अनुभूति करके चराचर विश्व सौंदय का अनुभव करने लगा। मानव के इसी सौंदय के माध्यम से कलाकार प्रकृति या वस्तु सौंदय की ओर उन्मुख होता है। अत प्रकृति की उपयोगिता अथवा उसके सौंदय का मूल्यांकन मानव भावों की सापक्षता मे है। यह उपयोगिता सौंदय के निर्धारण म सहायक होती है। उपयोगिता के आधार पर वस्तु या व्यक्ति के सौंदय का मूल्य घटता-बढ़ता रहता है। यह उपयोगिता स्थूल दृष्टि से भौतिक तत्वों के उपभोग से तथा सूक्ष्म दृष्टि स मानसिक तृप्ति से आती है। भौतिक तत्वों के उपभोग का प्रमुख साधक माध्यम सौंदय है और मानसिक तृप्ति म आन्तरिक भावनाओं की प्रमुखता होती है। इस शारीरिक सौंदय के उपभोग और तज्जन्य मानसिक आनन्द का प्रमुख आधार मानव है। अत मानव सौंदय तथा उस सौंदय को बढ़ाने वाले साधनों एव अन्य उपकरणों को सौंदय के अन्तगत माना जायगा।

मानव सौंदय की चर्चा करते ही उसकी परिधि या सीमा का ध्यान आ जाता है। या तो इस सौंदय की अनन्तता और असीमता का गुणगान अधिकांश भावुक शृङ्गार कवियों ने किया है परन्तु इस सौंदय वर्णन के आलम्बन की एक सीमा है। वह सीमा नारी और पुरुष के सौन्दय वर्णन की है। इनम से केवल एक का सौंदय वर्णन मानव की सम्पूर्णता की दृष्टि स अपर्याप्त है। मानव के पूर्ण सौन्दय की अभिव्यक्ति स्त्री और पुरुष दोनों को ही आधार बनाकर हो सकती है। स्त्री की शारीरिक कोमलता पुरुष की परुषता स मिलकर मादक बन जाती है। इन दोनों गुणों का अस्तित्व एक दूसरे का पूरक है। पुरुष-सौन्दय वर्णन म उसका पौरुष सत्व आवश्यक होता है और स्त्रियों की रमणीयता हृदय को आवर्जित कर लेती है। पुरुष-वर्णन म उसकी शारीरिक कोमलता आदि का वर्णन भी मिलता है परन्तु नारी-सौन्दय वर्णन की तुलना म इसकी मात्रा कम है। हिन्दी का भक्ति साहित्य बालक के मधुर एव अबोध सौन्दय के अङ्कन म प्रमुख है और रीतिकालीन साहित्य नारी के रमणीय रूप की मधुरता और सौन्दय का अङ्कन करता है। इस प्रकार भक्ति काल म पुरुष सौन्दय और रीतिकाल म नारी-सौन्दय का वर्णन करके मानव-सौन्दय की दृष्टि स सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इन दोनों के सम्मिलित सौन्दय म उत्तम पूर्णता का मानव-सौन्दय की सत्ता प्राप्त है। इस सौन्दय म अन्त निहित लावण्य छवि या कान्ति का रहस्यात्मक जिज्ञासा के प्रति कृष्ण काव्य का मध्यकालीन कवि प्राय मौन है। इसम उसका सौन्दय वर्णन रहस्यात्मक न होकर स्पष्ट हो गया है। यह स्पष्टता स्त्री और पुरुष दोनों के ही वर्णनों म मिल जाता है।

कवि प्राय इन दोनो का वर्णन करता है। वह अपनी विभिन्न अनुभतियो को समाज की सौन्दय चेतना से मिलाकर जिस सौन्दय की अभिव्यक्ति करता है, उसका प्रधान आधार स्त्री और पुरुष को ही बनाता है। यहाँ इन दोना के सौन्दय का स्पष्टीकरण हो जाना आवश्यक है।

कवियो न प्राय पुरुषो के सौन्दय का वणन कम किया है। पुरुष की शारीरिक कठोरता के वणन म उनकी वृत्ति रम नही सकी। अगो की सुकुमारता अथवा रमणीयता जसे गुणो को पुरुष वणन का आधार नही माना गया। इन कवियो की दृष्टि म पुरुष का सौन्दय अवयव के समुचित तथा समानुपातिक निर्माण मे उतना नही है, जितना उसके कम मे है। इसी से पुरुष के अग प्रत्यग वणन मे कवि अपनी रुचि की स्थिरता नही रख पाता। पुरुष का नख शिख उनके वणन का गौण पक्ष है। जहाँ कही ऐसा हुआ है वह बाल रूप वणन के प्रसग पर है। कृष्ण काव्य म गोपियो की रति भावना को उद्बुद्ध करने के लिये भी इस नख शिख का सक्षिप्त वणन मिल जाता है। रीति काल के ग्वाल जसे दो एक कवियो न श्रीकृष्ण के नख शिख वणन म स्वतन्त्र ग्रन्थो का सृजन किया है परन्तु पुरुष वणन की परम्परा प्रचलित न हो सकी। अत पुरुष-सौन्दय का निरूपण अग प्रत्यग वणन के द्वारा न होकर उसके शील और कत्तव्य पालन द्वारा होन लगा।

पुरुषो म कत्तव्य पालन की यह धारणा उसे लोक हित की प्रेरणा देती है। जो व्यक्ति अपने कतव्य पूण करने मे सचेष्ट रहेगा, उसी का व्यक्तित्व आकपक माना जाता है। ऐसे व्यक्तियो का काय क्षेत्र युद्ध और दुष्ट-दमन द्वारा लोक-कल्याण करना है। उसकी सुन्दरता देश रक्षा द्वारा निर्धारित की जाती है। उसका कम सौन्दय दया, क्षमा, आत्म निग्रह कष्ट सहिष्णुता द्वारा निखरता है। पुरुष सौन्दय के इस अश की चर्चा वय प्राप्त व्यक्तियो की दृष्टि से की गई है। कृष्ण साहित्य पुरुष सौन्दय के इस रूप की ओर केवल सकेत मात्र कर सका है।

हिन्दी के कृष्ण कवियो ने पुरुष सौन्दय के बाल एव वय प्राप्त रूपो का ग्रहण किया है। कृष्ण का लोक रक्षक रूप उनकी लोकरजकता मे ही निहित है। कत्तव्य पालन व असुर सहार के कर्मो का सौन्दय दीख पडता है, परतु कवियो ने इस रूप को महत्व नही दिया। उन्होने श्रीकृष्ण के मोहन रूप की ही अवतारणा की है। शिशु सौन्दय की मोहकता एव उल्लास का वणन सूर आदि भक्त कवियो न किया है। उन्होने बालक के स्वभाव की निष्कपटता सरलता और अनाडीपन का अच्छा चित्र अकित किया है। स्व

को वय क्रम से चार अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं —(१) कौमार, (२) पौगण्ड, (३) किशोर, (४) यौवन।

हरि भक्ति रसामृत सिंधु में इन अवस्थाओं का वर्णन है। कौमारावस्था जन्म से पांच वर्ष की अवधि तक मानी गई है छः वर्ष से दश वर्ष तक पौगण्डावस्था, दश वर्ष के पश्चात् सोलह वर्ष तक का समय किशोर और उसके बाद की अवस्था को युवावस्था माना गया है।[1] इनमें उज्ज्वल रस के लिये किशोरावस्था सर्व श्रेष्ठ है। इस अवस्था में वर्ण की उज्ज्वलता नखान्त में चारु छवि आदि प्रकट हो जाती है। रोमावली सघन हो जाती है। प्रसाधना में वैजयन्ती माला, मोर पंख, नटवरवेष, वस्त्र आदि से शोभा बढ़ती है, वंशी की मधुरिमा से व्यक्तित्व का आकर्षण बन जाता है।[2] यही कारण है कि रीतिकालीन कवियों ने पुरुष रूप में श्रीकृष्ण की इसी अवस्था के वर्णन को प्रश्रय दिया है और भक्ति काल में इसके पूर्व की अवस्था को काव्य का विषय बनाया है। इस किशोर रूप की आद्य मध्य और शेष तीन अवस्थाओं की स्पष्ट विभिन्नता इस काव्य में नहीं मिलती परन्तु वर्णनों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि रीतिकाल में किशोर रूप की रसिकता यौवनोन्मुख है। अतः यह किशोर वय के शेष काल का वर्णन है। भक्ति काल का यह वर्णन किशोर वय की शेष दो अवस्थाओं का सूचक माना जा सकता है क्योंकि रीतिकाल जैसी मांसलता एवं कामुक तल्लीनता इस युग में नहीं है फिर भी निश्चयात्मक रूप से एक विभाजक रेखा खींच देना सरल नहीं है। भक्ति काल में बालक रूप में कौमार, पौगण्ड और कैशोर रूप की चर्चा एवं उसके सौंदर्य की अभिव्यञ्जना अधिक हुई है। किशोर रूप का वर्णन चेष्टाओं से श्रीकृष्ण के 'आद्य मध्य

---

[1] "वयः कौमार पौगण्ड कैशोरमिति तत् त्रिधा।
कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।
आषोडशाच्च कैशोरं यौवनं स्यात्ततः परम्।
हरिभक्ति रसामृत सिंधु। कारिका ११६ १२० विभाग विभाग।
प्रथम लहरी। अच्युत ग्रन्थ माला काशी सं० १९८८ वि०।

[2] वर्णस्योज्ज्वलता काऽपि नखान्तं चारुताद्युति।
रोमावली प्रकटता कैशोर प्रथम मति।
वैजयन्ती शिखण्डादि नटवरवेषता।
वंशी मधुरिमा वस्त्र शोभा चात्र परिच्छदः।
वही। पृ० १८८ दृ० १२३ १२४ १२५।

और शेष' इन तीनों अवस्थाओं की सूचना मिल जाती है परन्तु इसके और रीतिकाल के वर्णन मे रशोरावस्था का कौनसा रूप कब प्रकट हो जायगा, यह नहीं जा सकता। अवसर और प्रसग के अनुकूल विभिन्न चेष्टाओं द्वारा इस वय का अनुमान लगाया जा सकता है, फिर भी यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि भक्तिकालीन साहित्य ने किशोर रूप के 'आद्य और 'मध्य' अवस्था के सौन्दय को और रीतिकाल ने इसके शेष अवस्था के सौन्दय को महत्व दिया है। इस सौन्दय के अकन म तथा उसका एक बिम्बात्मक स्वरूप उपस्थित करने मे कवियो ने प्रकृति स अप्रस्तुत योजना म उपमानो को ग्रहण किया है। कवि की अपनी अनुभूतियाँ सौन्दय के साक्षात्कार स नय रूप म प्रकट होती है। कवि के मस्तिष्क मे वतमान बिम्बो म स अप्रस्तुतो का ग्रहण कर सौन्दय का स्फुरण होता रहता है। इन बिम्बो के लिय इन कवियो न 'तटस्थ' शोभा विधायक तत्वो म परम्परागत उपमानो का ग्रहण किया है। य उपमान प्रकृति अथवा व्यावहारिक जीवन की अनुभूतियो का आधार लेकर प्रयुक्त हुए है। मानव जीवन की सापेक्षता मे प्रकृति की इन वस्तुओ को अनुकूल अनुभव करते हुए कवियो ने उनके गुण, क्रिया अथवा रूप का साम्य उपस्थित किया हैं। इससे प्रस्तुत की रमणीयता बढ़ती है और उसम इन्द्रियो की अनुकूल वेदनीयता उत्पन्न होने से वह वस्तु भी सुन्दरता या सुखदता का साधक बन जाती है। इस प्रकार मानवीय सौन्दय के सदभ मे साधक उपकरणो का भी सौन्दय की सत्ता प्राप्त हो जाती है। इन उपकरणो का क्षेत्र असीम विश्व है। विश्व की सभी कोमल सुखद रमणीय, प्रसाधक वस्तुएँ प्रयुक्त होती हैं। इनका प्रयोग किसी न किसी रूप म करके मानव अपने सौन्दय का वद्धन करता है। इस सौन्दय का प्रयोग या उपभोग पुरुष और नारी दोनो ही करते हैं। इनम पुरुष सौन्दय के शिशु बाल आदि अनेक अवस्थाओं का अकन किया गया है। यह सौन्दय नारी सौन्दय के बिना अधूरा है। अत भक्तिकालीन कवियो ने पुरुष के बाल कौमार आदि विभिन्न रूपो का सुन्दर और हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। इस रूप चित्र का पूर्ण विकास रीतिकालीन नायिका चित्रण के सयोग से हो सका है। इस काल मे वय सन्धिकाल की बदलती हुई शारीरिक एव मानसिक परिस्थितियो तथा भावनाओ से आरम्भ करके प्रौढत्व को प्राप्त नायिकाओ की विभिन्न शारीरिक मानसिक परिवर्तनो का सुखद एव शोभा जनक वर्णन मिल जाता है। अत पुरुष और नारी सौन्दय मिल कर पूर्ण मानव सौन्दय को व्यक्त करते हैं। अगली पक्तियो मे मानव सौन्दय के नारी सौन्दय विषयक विचारों का अनुशीलन होगा।

मानवीय सौदय की पूर्णता नारी सौदय वणन से आती है। नारी की कोमलता, सुकुमारता और रमणीयता कविया के रसिक हृदय को आकर्षित कर लेती है। वह नारी क रूप वय, अग चेष्टा आदि को देखकर मुग्ध होता है। उसके प्रति अनुभूतियो की प्रशसात्मक प्रवृत्ति को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है। नारी के रूप की रीझ उसे विभिन्न दृष्टिया स देखने की प्ररणा देती है। यहा कविया के मन मे नारी के प्रति सहज आकपण के कारणा के प्रति जिज्ञासा का उठना स्वाभाविक है। नारी को ही वणन का आधार क्यो माना गया ? पुरुष की महत्ता नारी की तुलना मे कम क्यो है ? इन प्रश्न, का समाधान अपेक्षित है।

विचार करने से प्रतीत होता है कि आलोच्य काल के कविया की दो दृष्टियाँ थी —(१) भक्ति परक दृष्टि—इसम अपने आराध्य अथवा आराध्या को सम्पूर्ण जगत की सुदरता स अधिक सुदर रूप दिया गया है। इस सौदय निरूपण म सोभग सींवा अनत शोभा शोभा सिधु आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है।[1] पुरुष-पक्ष मे इस प्रकार के सौदय-वणन का मूल उद्देश्य नारी के मन म सौदय के इस आलम्बन क प्रति रति भाव उत्पन्न करना है। रति शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। शृङ्गार म अनुकूल प्रकृति के नायक-नायिका के मानसिक भावा एव शारीरिक क्रियाओ आदि की प्रियता के सदभ म एक दूसरे के प्रति आकपण उत्पन्न होता है। इस आकपण का मूल अवयव का सुदर सुगठित और सुन्दर होना है। इसलिए स्त्री पुरुष दोना का सौदय निरूपिण हाता है। पुरुष सौदय निरूपण म आराध्य क सौन्दय की असीमता वर्णित है। इसका उद्देश्य रूप की लीनता है। इसी लीनता से रति भाव का सचार होता है परतु स्त्री सौदय के अभाव म यह लीनता एकागी होगी। रति की पूर्णता के लिए पुरुष के मन मे स्त्री सौदय का आकपण आवश्यक है। भक्ति काल म स्त्री-सौदय के वणन का उद्देश्य पुरुष को रिझाना था। पुरुष स्त्री

---

1 (i) देखो माई सुदरता को सागर। सूर सागर (सभा)
(ii) सोभा सिधु न अत रहा री। , ,
(iii) कृष्णदास प्रभु गोवधनधर, सुभग सींव अभिराम
अष्ट० परि० पृ० २३५
(iv) अरी यह सुदरता को हृद।" गाविन्द स्वामी
अष्ट० परि० पृ० २५६
(v) कुम्भनदास प्रभु सोभा सींवा गिरधर घर सिर मौर। अष्ट० परि०

की अग-सुन्दरता और प्रसाधन से उत्पन्न होने वाले आकर्षण से रीझ सकना है। इस दृष्टि स नारी-सौंदय का वर्णन किया गया है —

'औचक ही देखी तँह राधा, नन विशाल भाल दिये रोरी।
नील वसन फरिया कटि बाधे बेनी रुचिर भाल झकझोरी।
सूर स्याम देखत ही रिझे नन-नन मिलि परी ठगोरी। सूर सागर

इस उद्धरण से शृङ्गार की उपयोगिता मूलक भावना व्यक्त हुई है। भक्ति काल म स्त्री सौंदय एव सौंदय प्रसाधना के वर्णन म यही दृष्टिकोण काय करता है। इस प्रकार का सौंदय वर्णन तीन प्रसगा पर प्राप्त होता है—

१ कृष्ण द्वारा गोपी या राधा क रूप प्रसाधन आदि से उत्पन्न सौन्दय का वर्णन।

२ गोपी द्वारा राधा क सौन्दय, अवयव या प्रसाधनादि का वर्णन।

३ कवि की ओर से सौंदयादि का वर्णन।

इन सभी प्रसगा पर वर्णना का उद्देश्य मन म आराध्य के प्रति भक्ति भाव को उत्पन्न करना था। इन कवियो का रूप-सौंदय वर्णन स्वय म साध्य नहीं था, अपितु प्रिय की महत्ता प्रतिपादित करन म साधन मात्र था। इससे इनका यह वर्णन अपनी सहज और स्वाभाविक सौंदय चेतना स प्रादुर्भूत हुआ है। भविष्यत् रीतिकालीन कवियो के समान वह प्रयत्न साध्य नही है। इसी से इन वर्णना म सच्चाई और वास्तविकता है। रीतिकालीन सौंदय चेतना प्रयत्न साध्य होने हुए भी अनुभूति की सघनता के कारण पूर्ण सजीव एव सचेतन है। यह रीति परक दृष्टि सौंदय को समझन म सहायक हो सकती है।

(२) रीतिपरक दृष्टि—इस काल के सौन्दय वर्णन के उद्देश्य और रूप मे अन्तर आ गया। सामाजिक विलासिता की बनी हुई भोग-परक भावना ने बहु-पत्नीत्व और परकीयात्व की स्थापना कर दी। बाल्य-काल की समाप्ति मे ही कन्याओ के मन म अनग भावना स्फुरित होने लगी। वय क्रम के साथ रूप-लावण्य का निखार एक सीमा तक होता है। यहाँ तक स्त्रियाँ आकर्षण की केन्द्र बिन्दु बनी रहीं परन्तु रूप के ह्रास काल म आकर्षण को बनाये रखन क लिए रूप प्रसाधक उपकरणो का प्रयोग होने लगा। यौवन काल में नायिकाओ के विभिन्न गुण चेष्टा आदि नायक को आकर्षित करन के प्रधान उपकरण थे परन्तु नायक की अत्यधिक रसिकता नायिका के मन म अन्य रमणियो क प्रति स्पर्धा का भाव उत्पन्न कर अपने को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की प्रेरणा देने लगी। स्वय स्त्रिया न भी अनेक पुरुषों से भाग

का समर्थन किया है।[1] यह तभी सम्भव हो सकता था जब स्त्री सुन्दरी और यौवनवती हो। इसके साथ रति भाव को जाग्रत करने वाली चेष्टा प्रसाधन और शृङ्गार से उसकी महत्ता और आकर्षण बढ़ गया हो। इस दृष्टि से नारी रति की मूल प्रेरिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और उसका यह रूप मोहक और आकर्षक हो गया। रीतिकाल की सौन्दर्य चेतना में नारी की प्रधानता का यही कारण है यह प्रधानता सम्पूर्ण काव्य में छाई हुई लक्षित होती है। इसी से स्थान स्थान पर नारी का अंग प्रत्यंग आभूषण एवं अन्य बाह्य साज सज्जा, सात्त्विक शृङ्गार अनुलेपन आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। सौन्दर्य के उपकरणों की साधना के अतिरिक्त नायिका की चेष्टाएँ उसकी अवस्था अवस्थाजन्य शारीरिक एवं मानसिक विकास गुण आदि की महत्ता अस्वीकार नहीं की जा सकती। देखा जाता है कि यौवनवती होती हुई भी रूखे अंगों वाली, अंग कान्ति में शून्य मार्दव सौकुमार्य और माधुर्य रहित, उद्दीपक चेष्टाओं के प्रभाव से अनभिज्ञ नायिका रति भाव का संचार करने में समर्थ नहीं हो पाती है। अतः यौवन में उत्पन्न होने वाले गुणों चेष्टाओं, अलंकारों तथा बाह्य साधना में प्रसाधक उपकरणों और रति भाव को उद्दीप्त करने में प्रस्तुत वातावरण आदि का बहुत महत्व है। इस दृष्टि से नायिका या नायक-रूप आलम्बन के सौन्दर्य के साधक सम्पूर्ण उपकरणों की दो कोटियाँ की जा सकती हैं—

१ आत्मगत उपकरण
२ बाह्य उपकरण

आत्मगत उपकरण—

आलम्बन से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले सौन्दर्य के उत्पादक तत्त्वों को आत्मगत उपकरण कहते हैं। इन उपकरणों का सीधा सम्बन्ध नायक अथवा

---

1 काम के बिबस नारी एक ह्वै पुरुष पागी
  करै हियकमल सगाई मिलिबो करै।
एक ह्वै मवासन ते भरत मन काम ज्वाला
  रमता मा एक रस ह्वै का मिलिबो करै।
[illegible]
  [illegible] मन मन मिलि [illegible] करै।
[illegible]
  [illegible] करै।
    [illegible]। तृतीय [illegible] छन्द ६६

नायिका से रहता है। ये तत्व ग्रालम्बन के शरीर से स्वन प्रकट हो जाते हैं। स्वय-सभूत इन तत्वो म नैर्सगिकता होती है। ये दो रूपो मे प्रकट होते हैं —

१ गुण
२ चेष्टा

गुण—ग्रवस्था विशेप मे नायक या नायिका की शारीरिक एव मानसिक विशेपताग्रो का नाम गुण है। मुख्यत नायिका म इन गुणो का विकास होता है। नायिका ही पुरुप के ग्राकपण की केन्द्र रहती है उसी की रूप-मदिरा ग्रपना मादक प्रभाव उत्पन्न करके पुरुप का ग्रपने पर ग्रासक्त करती है। ग्रासक्ति की यह प्रवृत्ति उत्पन्न करने मे नायिका के गुण सहायक होत हैं। इन गुणा का विभाजन कायिक, मानसिक ग्रौर वाचिक रूप मे किया गया है।

कायिक गुण—शरीर से सम्बधित नायिका के व्यक्तित्व की शोभा को बढाने वाले तथा उसम ग्राकपण उत्पन्न करने वाले तत्वो का कायिक गुण कहते हैं। इन विशेपताग्रो के ग्राविभूत हो जाने पर ग्र गो मे एक नवीनता ग्रा जाती है, व्यक्तित्व का ग्राकपण बढ जाता है ग्रौर नायिका का सुदरी नाम साथक प्रतीत होना है। इन गुणा म वय, रूप लावण्य, ग्रभिरूपता, मादव, सौकुमाय की गणना होती है।

वय—इस शब्द से ग्रायु का ज्ञान होता है। रूप-सौदय के वणन मे ग्रायु का विशेप महत्व है। इसका प्रचलित ग्रथ युवाकाल है। इस काल मे विभिन्न ग्र गा का विकास ग्रौर उसम परिवतन होने लगता है। यह परिवतन रूप का निखार कर नायिका के ग्राकपण का बढा देन म समथ सिद्ध होना है। ग्र गा के परिवतन ग्रौर विकास की दृष्टि से इस यौवन काल को चार वर्गों मे विभाजित करेंगे —

१ वय सधि काल।
२ नव्य-यौवन।
३ व्यक्त-यौवन।
४ पूण-यौवन।

वय सधि काल—इस काल से यौवन का ग्रारम्भ माना गया है। इसमे ग्रबोध ग्रवस्था वाली लज्जाशील किशोरी नायिका का चित्रण होता है। यह यौवन ग्रौर बालपन का सधि काल है। एक ग्रोर नायिका की बालपन की प्रवृत्तियाँ ग्रौर दूसरी ग्रोर ग्रागिक परिवतन। के प्रति जिज्ञासा का भाव रहता है। काम की कथाग्रो के श्रवण म ग्रभिरुचि हो जाती है। सेनापति ने कहा है कि, "काम की कथान को कनाटरी दे सुनन लागी, ग्रौर, ' सेनापति काम भूप

सोवत सो जागत हैं। इनमें प्रथम उदाहरण में वय सन्धिकाल की बदलती हुई मानसिक भावनाओं का और द्वितीय में उस काल की मानस शरीर का वर्णन है। मानसिक भावनाओं की अस्थिरता इस काल की प्रधान विशेषता है। इसका वर्णन अनेक कवियों ने किया है। गग ने मानसिक स्थिति की तरलता और झलक को शीशी मे रखे जल के समान बताया है।[1] सोमनाथ की दृष्टि मे नायिका की स्थिति असतुलित तुला जसी है।[2] मतिराम की नायिका का मन अब गुडियो के खेल म न लगकर सावरे के रग देखने की ओर प्रवृत होने लगा है।[3] इन उदाहरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि वय सन्धिकाल के वर्णन मे कवियों की तीन भावनाएँ थी (१) नायिका की भावनाओं मे परिवर्तन एव मानसिक स्थितियो की अस्थिरता (२) शारीरिक परिवर्तन मे बालपन और युवापन का मिश्रण। इन दोनो के स्पष्टीकरण के लिये कवियो ने सादृश्य विधान द्वारा अप्रस्तुता का उपयोग किया है। (३) इस काल की तीसरी भावना नायिका का अपने अगो के प्रति जिज्ञासा प्रकट करना है जिसका स्पष्ट रूप नव्य यौवन म दीख पडता है।

नव्य यौवन—इसमें नायिका बालपन से छूटकर यौवन काल म पदार्पण करती है। यौवन आगमन के चिह्न अगो म दीख पडने लगत हैं। स्तनो की मुकुलित अवस्था नयनो की चचलता, मन्द मुस्कान और भावो का किञ्चित् स्फुरण होने लगता है।[4] यौवन के नवीन आगमन स शारीरिक परिवर्द्धन के साथ ही अनुभावा म सौन्दय की वृद्धि होने लगती है। वय सन्धिकाल दो अवस्थाओ का मिलन स्थल है। इस काल म बालपन और युवापन दोनो ही

---

[1] सीसी म सलिल जसे सुमन पराग तैसे
सिगुना म झलकति जोबन की झाई सी।
ब्र० सा० का नायिका भेद पृ० २३२

[2] बीती लरिकाई न भई तरुनाई आई
निरख सुहाई अग औरै और अति है।
तुला चल चक्र मन की सी दिन राति कौ,
उघटि बची है न सधि ठीक ठहरति है। वही पृ २३२

[3] बारन कौन भयो सजनी यह मेल लग गुडियान को फीको।
काहे त साँवर अग दवीरा सग नि दृग म नननि नीको। पृ० २३४

[4] दराङ्कुरस्तन किञ्चिच्चला ा मन्दस्मितम्।
मनागपि स्फुरद्भाव नव्य यौवनमुच्यते। उज्ज्वल नीलमणि।

भावनाओं की प्रवलता रहती है। मन कभी बाल नीडाओं की ओर जाता है और कभी 'काम' केलि के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसमे दोनो कालो की झलक रहती है। बिहारी ने इसी से इसकी तुलना 'तापना रग' से की है।[1] नव्य यौवन मे शिशुता समाप्त प्राय होती है। इस काल म शिशुत्व की भावना यौवन की तुलना मे क्षीण हो जाती है। वय सन्धिकाल म दोनो की समान स्थिति और नव्य यौवन म बालपन की क्षीण स्थिति होती है। इसमे कुच कुछ उठने लगते हैं अधरो म मधुरिमा आ जाती है अगो म ज्योति का आविर्भाव होने लगता है।[2]

व्यक्त यौवन—का स्वरूप शारीरिक विकास के आधार पर बताया जा सकता है। नाम से ही स्पष्ट है कि इस काल मे यौवन व्यक्त हो जाता है। इसमे स्तनो की मुकुलित अवस्था म विकास हो जाता है। त्रिवली दीखने लगती है और अग उज्ज्वल हो जाते हैं।[3] इन गुणो का समथन रूप गोस्वामी ने भी किया है। नव्य यौवन और व्यक्त यौवन की मूल भिन्नता यौवन के आरम्भ और विकास की अवस्थाओं मे है। नव्य यौवन मे शिशुताई की झलक बनी रहती है व्यक्त यौवन मे इसका कोई स्थान नहीं है। इस काल मे अगो का उभार व्यक्त हो जाता है, नव्य यौवन म उसका आरम्भ मात्र होता है। यथा —

दौरि चली कुसुम चरन सुकुमारताई, चरन चले हैं गरवाई के पथन को।
गरुवाई छतिया को छतिया ऊँचाई को, ऊचाई चोजरसमय वास अरथन को।
कहे 'हरिकेस सिसुताई के चलाचले म कहा कहीं चलो चित लाजके सथन को।

---

[1] छुटी न शिशुता की झलक झलक्यौ जौबन अग।
दीपति देह दुहुन मिलि दिपति ताफना रग। सतसई

[2] (१) ए अलि! जा वलि के अधरान म आनि चढी कछु माधुरई सी।
ज्यों पद्माकर माधुरी त्यो कुच दोऊन की बढती उनई सी।
ज्यो कुच त्योही नितम्ब बढ कछु त्योही नितम्ब त्यो चातुरईसी।
जानी न ऐसी चढा चढि मे केहि धौं कटि बीच ही लूट लई सी।
ब्रज साहित्य का नायिका भेद पृ० २२८

(ii) कौन रोग दुहु छतियन उकस्यौ आय।
दुखि-दुखि उठत करजवा लगि जनु जाय।। रस रत्नाकर पृ० ११२

[3] वक्ष प्रव्यक्त वक्षोज मध्य च सुवलित्रयम्।
उज्वलानि तथाङ्गानि व्यक्ते स्फुरति यौवने। उज्ज्वल नीलमणि।

लाज चली आंखिनको आंखि चली आननको कान चले चौंवन से चालके वचनको।
ब्र० सा० ना० भेद २२६

इस छन्द में नव्य यौवन और व्यक्त यौवन के सन्धिकाल की अवस्था का वर्णन है। एक ओर सिसुताई का प्रस्थान और दूसरी ओर यौवन में शारीरिक अंगों के विकास का चित्र प्रस्तुत हुआ है। यौवन विकास के साथ अनुभावों या शारीरिक चेष्टाओं में भी स्पष्ट अन्तर आ जाता है। इन चेष्टाओं में विलास मयता दीख पड़ने लग जाती है। अंगों में चारुता और द्युति व्याप्त हो जाती है —

फरकन लागी आँख ढरकन आनन लौं
हरखन लागी लाज पलकैं सुचनी की।
भर लाग्यो परन उरोजन मं 'रघुनाथ
राजी रोमराजी भाँति वल अली सनी की।
कटि लागी घटन पटन लागी मुख-सोभा,
अटन सुवास लागी आस स्वाँस पनी की।
अंगन में द्युति चारु सोने सी जगन लागी
एढिन लगन लागी बनी मृगननी की॥

मानसिक विकास की दृष्टि से अपने अंगों के परिवर्तन एवं विशेष यौवन चेष्टाओं के रहस्य की अज्ञानता एवं सज्ञानता की दो स्थितियाँ होती हैं। यौवन के व्यक्त हो जाने पर भी यह अज्ञानता बनी रहती है। अज्ञानता का एक चित्र देखें —

धनै सग हमारे न खेलिवे का घर का दिए भौहैं मरोरत हैं।
ए बड़ी रहैं मामी। बतार दै तू जा हम लखि यों मुख मोरत हैं।
ब्र० सा० का ना० भे०।

इस चित्र में नायिका की अनभिज्ञता और भोलापन उसके सौन्दर्य को बढ़ा देता है। इन्हीं भावनाओं एवं अंगों का विकास पूर्ण यौवन काल में दीख पड़ता है।

पूर्ण यौवन में नितम्ब एवं स्तनों की पीनता मध्य भाग की कृशता, रम्भा की आभा के समान उन्नुन्न और शरीर की कान्ति में उज्ज्वलता आ जाती है।[1] इस काल में यौवन का पूर्ण विकास हो जाता है। सभी विशेषताएँ

[1] नितम्बा स्तिनी मध्य कृशमङ्ग परद्युति।
पीनौ कुचावुरू रम्भाभूरुग्र यौवन। उ० नील मणि।

क्ट हो जाती हैं।[1]

१ होन लागी कटि अब छटिक छला सी,
 दूँज चन्द की कला सी दिन दीपति बढ़ै लगी। वही पृ० २३०
२ गातन कसे दुरायौ है जात, प्रभात सों जोबन रूप उजेरो।
३ तग होत आँगी ज्यों-ज्यों उरज उतग होत
 प्रकटी अनग काया-कज पखियान म।
 कटि कृशताई औ नितम्ब पीनताई छाई,
 पाँय थिरताई चचलाई, अँखियान मैं।

शारीरिक क्रियाओ मे नवीनता और विलास का वचिन्य आ जाता है। इसकी ओर भी कवियो का ध्यान आकृष्ट हुआ था।

उपयु क्त विचारो के आधार पर यह निष्कष निकाला जा सकता है कि वय क्रम से नायिका के विकास की ये चारो अवस्थाए उसके शारीरिक एव मानसिक परिवतनो की सूचिका है। इनमे क्रमिक विकास का रूप दीख पडता है। अगो की बदलती हुई परिस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन इनके द्वारा उपस्थित होता है। विकास की इस क्रम वद्धता म कवियो की दो दृष्टिया थी —

(१) शरीरगत–परिवतन।
(२) भावगत–परिवतन।

शरीरगत परिवतन मे स्थूल एव सूक्ष्म परिवतनों पर ध्यान दिया गया है। स्थूल परिवतन का तात्पय अवयवो के विकास से लगाया जायगा। इसमे आकार एव गठन की चर्चा होती है। अगो की सुडौलता, समता, समानुपातिकता सापक्षता, सगति सन्तुलन आदि के वणन द्वारा उसका आकषण बढा दिया जाता है। इन सभी वणनो को नख शिख के अन्तगत समेटा जा सकता है। नख शिख म भी अगो की आकारगत विशेषताओ आकषण एव सौंदय का वणन होता है। आकार के अतिरिक्त शरीर मे अय गुणो के विकास से सौंदय की वृद्धि होती है। इन गुणो म अभिरूपता, मादव, सौकुमाय उमाद, शैथिल्य, सुरभि गरूर आदि आते हैं। इन गुणो का सम्बध शरीर से रहता है। ये स्वत सम्भवी गुण है, जो यौवन काल मे अपने आप रूपवती नायिकाओ मे प्रकट हो जाते हैं। अत इसे आगिक सौंदय के अ तगत मानेंगे।

शरीर के सूक्ष्म गुणो म युवाकाल मे आविभू त होने वाले गुणो की गणना होती है। य आकार या अगो मे व्याप्त रहने वाले गुण हैं। इन गुणो

---

[1] व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २२६

की स्वतन्त्र मूत सत्ता न होकर अमूत सत्ता ही है परन्तु इन गुणो से सौन्दय बढ जाता है। इन्हे ही अपने मूलरूप म सौदय का वास्तविक अग मानेंगे। रूप, छवि, ज्योति, उज्ज्वलता, मुख-कान्ति मृदुता, आभिरूप्य सौकुमाय आदि गुण इसके अन्तगत आयेंगे। साहित्य शास्त्र म अयत्नज अलकारो को शोभा का कारण माना है। ये अलकार आगिक सौदय को बनाने वाले स्वाभाविक उपादान हैं। इन उपादानो से नायिका के आकषण की वृद्धि हो जाती है। इनका आविर्भाव स्वत होता है। ये प्रयत्न साध्य नही हैं। इससे इन्हे अयत्नज अलकार' कहते हैं। अलकार शोभा विधायक धम है। इन्ही शोभा विधायक धर्मो से नायिका का रूप नायक के मन म रति भाव का सचार करने म समथ होता है। इन अलकारो मे शोभा कान्ति दीप्ति, माधुय प्रगल्भता, औदाय और धय की गणना होती है।

'शोभा' रूप यौवन लालित्य, सुख भोग आदि से सम्पन्न शरीर की सुन्दरता को कहते हैं। यौवन मे इन गुणो का स्वाभाविक विकास होता है। इस शोभा को देखकर इसके उपभोग की कामना उत्पन्न हो जाती है। शोभा का तत्काल प्रभाव पडता है। शोभा युक्त रमणी का प्रत्यक्ष दशन अनुराग उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है। श्रीकृष्ण राधा की रूप शोभा देखकर ठगे से रह जाते हैं ' सूर श्याम देखत ही रीझ, नन नन मिलि परी ठगोरी।

शोभा, काम भावना से दीप्त होकर कान्ति' कही जाती है। इसमें स्मर विलास से शारीरिक शोभा बढ जाती है। शोभा और कान्ति म अन्तर है। शोभा शारीरिक सौन्दय है इसम काम का विकार नही होता परन्तु कान्ति म स्मर विलास अनिवाय तत्व है। यथा—

१ लालन की लाली अखियन मे दिखाई देत,
अन्तर अनन्तर ही प्रेम सो पची रही।
कुँवरि किसोरी मुख मोरी करैं सखिन सो,
चोरी चोरी चित्त गति रोरी सी रची रहे।[1]

२ विकस अबला अग म काम कला की जोति।
चामी कर से गात की चमक चौगुनी होति।[2]

अत्यधिक मात्रा म बनी हुई कान्ति ही दीप्ति है। अर्थात् स्मर विलास की शोभा जब स्पष्ट रूप के प्रकट होने लगे, तो वहाँ दीप्ति होती है।

---

[1] ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ २२४। देव कृत छन्द।

[2] रस रत्नाकर पृ २१६

दीपावली तन दुति निरखि दवकी सी दिखराति।
विविध जोति उजरी फिरति जरी बीजुरी जाति।[1]

सभी अवस्थाओ म रमणीय लगना 'माधुय' कहा जाता है। इसमे साधक या बाधक प्रत्येक परिस्थिति मे सुदरता बनी रहती है।

'तिरछे चलि लहि वक्ता, करि चचलता मान।
अधिक मधुमयी बनति हैं, ललना की अखियानी।

यहा मान म या नेत्रो की बक्ता प्रत्येक दशा मे आँखो का मधुमयी होना बताया है। औदाय प्रत्येक समय की विनीत अवस्था का द्योतक है। इसम पति के अपराधो को देखकर भी नायिका के मन मे रोष नही आता, अपितु प्रिय के सुख की कामना ही रहती है—

हमको तुम एक अनेक तुम्हें, उन ही के विवेक बनाइ बहौ।
इत चाह तिहारी विहारी, उत सरसाइ कें नेह सदा निबहौ।
अब कीवौ 'मुबारक' सोई करौ, अनुराग लता जिन बोइ दहौ।
घनश्याम ! सुखी रहौ आनन्द सा तुम नीके रहौ, उनही के रहौ।[2]

आत्मश्लाघा से युक्त अचञ्चल स्वाभाविक मनोवृत्ति का नाम 'धैय' है। नायिका के धय की भावना बनी रहती है। "नव प्रसून नावक बने, पावक मलय समीर। परम धीर अनुरागिनी ह्वै है नाहि अधीर," प्राण पुष्प घातक बन जाय या मलय समीर अग्नि बन जाय, परन्तु अनुरागिनी अधीर नही होगी। निभरता का नाम 'प्रगल्भता' है। इसम रति क्रीडा के समय स्वय भी उन्हीं व्यापारो मे सहयोग देकर नायिका प्रियतम को वश मे कर लेती है। यह काम भावना का उद्दीपक तत्व है। इससे शरीर की शोभा नही बढती अपितु रति म तीव्रता आती है।

'केलि कला की तरगन सा हठि मोहन लाल को ज्यौं ललचावति।
अक मे बीति गईं रतियाँ हैं तऊ छतियाँ हिय छोडि न पावति।

रस रत्नाकर पृ २२२

नायिका के उपयु क्त सातो अलकारो के सम्बन्ध मे दो बातें प्रतीत होती हैं (१) शोभा, कान्ति आदि अलकार स्वत उत्पन्न होकर सुदरता के विकास म सहायक होते हैं। इनसे नायिका के अगो मे झलकने वाला विलास उसके रूप का आकपक बना देता है। वह अधिक रमणीय एव सुदर प्रतीत होने

लगती है। इन चारो (शोभा कान्ति दीप्ति, माधुर्य) का सम्बन्ध शरीर की चाक्षुष अनुभूति से है। अतः इन्हें शोभा विधायक गुणों के अन्तर्गत मानेंगे।

(२) धैर्य और औदार्य मानसिक दशा का सकेत करते हैं। ये शरीर के शोभा विधायक धर्म न होकर मानसिक प्रवृत्ति के सूचक धर्म हैं। इनका शरीर से सीधा सम्बन्ध नहीं है। प्रगल्भता क्रियात्मक गुण है। इस दृष्टि से शरीर के शोभा साधक उपकरणों में प्रारम्भिक चार अलकारों की गणना ही होगी। अन्य उपकरणों (औदार्य, धैर्य और प्रगल्भता) का सम्बन्ध आचरण से है। नायिका के ये आचरण नायक के मन में उसके प्रति लगाव उत्पन्न करते हैं। इससे नायक की भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं। भावनाओं को उद्दीप्त करने के कारण इन्हें उद्दीपक गुण कहा जा सकता है। इन सभी गुणों का सम्बन्ध शरीर से बना रहता है। शरीर के ये परिवर्तन भावों के परिवर्तित होने में पृष्ठभूमि का कार्य करते हैं। विकसित शारीरिक अवस्था मानसिक एव भावनाओं के विलास में सहायक होती है। इस प्रकार इस परिवर्तन की आधार भूमि शारीरिक या आंगिक परिवर्तन है। आंगिक परिवर्तनों से उत्पन्न शोभा का वर्णन नख शिख के अन्तर्गत हुआ है। नख शिख वर्णन से ही शोभा की अनुभूति जाग्रत होती है इससे इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

नख शिख सौंदर्य—इसका सकेत आंगिक सौन्दर्य के नाम से किया जा चुका है। सौंदर्याभिव्यक्ति की यह प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है। मानव का सौन्दर्य लोलुप मन अंगों की ओर आकृष्ट होता है। वह अंगों की चाक्षुष प्रत्यक्ष से प्राप्त अनुभूतियों द्वारा तृप्त होता है उनका रसास्वादन करता है और अपनी कलात्मक प्रतिभा से उसे प्रेषणीय बनाता है। इस प्रेषणीयता के लिये रूपात्मक जगत की सुखद वस्तुओं का चयन करता है। उसके चयन का क्षेत्र सम्पूर्ण मानवेतर जगत् है। इस जगत् से मानव सौंदर्य की सापेक्षता में गृहीत वस्तुओं के आकार गुणों और ऐन्द्रिय अनुभूतियों का तादात्म्य स्थापित होता है। यह तादात्म्य अभिव्यञ्जना की कुशलता से कलात्मक सौंदर्य का विधान करता है। इसका मूल आलम्बन मानव ही होता है। मानवेतर जगत् का ग्रहण मानव की विशिष्टता देने में है अर्थात् मानव के सौंदर्य की अभिव्यक्ति में मानवेतर जगत् उपमान का कार्य करता है। मुख्यता मानव जगत् की है। इससे मानव को प्रत्येक दृष्टि बिन्दु से देखने एव परखने की चेष्टा की गई है। इस चेष्टा में सौंदर्य दृष्टि की प्रधानता है यह दृष्टि अपनी सूक्ष्मता के कारण अंग प्रत्यंग की शोभा निरखने में सजग थी। अंग शोभा देखने की सजगता ने आत्मानुभव को प्रेषणीय बनाना चाहा। इसी के फलस्वरूप नख शिख वर्णन की परम्परा का सूत्रपात हुआ।

नग शिख वणन आंगिक सौन्दय या खण्ड-खण्ड रूप चित्र है। इसमे विभिन्न अवयवो के अलग अलग रूप चित्रो से उन अवयवो म वतमान आकपण द्वारा सामूहिक सौन्दय की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक अग की अपनी निजी शोभा है। यही शोभा सभी अवयवा की समष्टिगत एकता एव प्रभाव से सामूहिक सौन्दय की अनुभूति कराना है। नख शिख सज्ञा प्राप्त करने के लिये नख से आरम्भ कर शिख तक के सभी अगा का वणन होना आवश्यक है। एक दो अगा का वणन भी नख शिख की सीमा म आ तो सकता है, परन्तु रूप का सर्वाङ्ग चित्र उसके द्वारा उपस्थित नही होता, वह उसका खण्ड चित्र मात्र होगा और खण्ड चित्र पूण रूप बनाने म असमथ होते हैं। अनेक खण्ड रूप चित्रा द्वारा अखण्ड सौदय की कल्पना सहज म ही हो जाती है। अत नख शिख मे अवयव के अनेक खण्ड-खण्ड रूप चित्रा की अभिव्यक्ति के माध्यम से सर्वाङ्ग का सामूहिक या समष्टिगत रूप-सौन्दय अभियञ्जित होता है। इस दृष्टि से किसी अग का वणन व्यष्टिगत सौन्दर्याभिव्यक्ति है और नख शिख रूप सवाङ्ग का वणन समष्टिगत सौन्दय की अभिव्यक्ति है। एक अग वणन म उस अग की विशेषताओ के निजत्व की एकाकिता होती है और नख शिख वणन म सर्वाङ्ग की समष्टिगत सौदय चेतना होती है। 'नख शिख' शब्द द्वारा सम्पूण शरीर के सौदय का बोध होता है। इसके लिये दो प्रकार की शली अपनाई गइ ह—

१ शिख नख शली।

२ नख शिख शली।

शिख नख शली मे शिख से पद के नखा तक का वणन किया जाता हैं। इस वणन म मानव को आधार बनाकर उसक अग प्रत्यग का वणन होता है। इस वणन के सामूहिक प्रभाव से उत्पन्न सौदय को मानव सौदय की सज्ञा दी जाती हैं।

नख-शिख शली म पर के नख से आरम्भ कर सिर की चोटी तक का वणन किया जाता है। इस शली म ईश्वरीय सौदय की अभिव्यक्ति करने का बात कही गयी है परन्तु प्राप्त ग्रथा के आधार पर इस निणय पर पहुँचा जा सकता है कि 'नख शिख म मानव के अग प्रत्यग का वणन मिलता है। कुछ ही ग्रथो को शिख-नख' नाम दिया गया है।[1] सामान्य रूप म नख शिख द्वारा

---

1 शिखनख'-केशवदास, नागरीदास, रस आनन्द रसिक मनोहर सुजान। सुखदव मिश्र। शिख नख दपण-गोपालकृत। हनुमान शिखनख-खुमानकृत

ईश्वरीय अ ग प्रत्यग का वणन होना चाहिये । इस ढग के ग्रथ भी रीतिकाल म मिल जाते हैं ।[1] अ ग वणन म नख शिख या शिख नख के अतिरिक्त अय नामो से भी अवयवो का वणन मिलता है ।[2] कही कही केवल एक ही अ ग के ऊपर स्वतत्र ग्र थो का निर्माण हुआ है ।[3] इस प्रकार रीतिकाल मे अवयवो का वणन एव नाम के सम्बाध म निम्नलिखित धारणाए काय करती हैं—

१ 'नख शिख या शिख-नख नाम से मानवीय या राधाकृष्ण जैसे ईश्वरीय आलम्बन के अग-प्रत्यग का वणन ।

२ 'नख शिखादि के अतिरिक्त अय नामो से सर्वाङ्ग या अवयवो का वणन ।

३ किसी अग विशेष के वणन म ग्रथो का स्वतत्र सृजन ।

इन तीनो पद्धतियो मे शिख नख म मानवीय 'नख शिख म ईश्वरीय और अय नामों म मानवीय सौन्दय वणन की परम्परा थी परतु यह कोई निश्चित नियम नही था । इसीसे मानवीय अवयवो के वणन म भी नख शिख नाम दिया गया है । मानव के सदभ म इस नाम का समथन निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है ।

---

1 'सीताराम नख शिख प्रेमसखी । जुगल नख शिख-पद्मसिंह १९८२ । नख शिखराधाजू की-गुरुनिधि १७६४ । राधिका मुख वणन शकरदत्त १८३० । श्रीवृन्दावन चन्द्र, शिख ध्यान, म रूप दामोदरदेव (१८६०-१८६४) । नख शिख राधा जू का चदन राई (१८६८) । श्रीकृष्ण चन्द्र का नख शिख-ग्वाल १८८८ । राधा नख शिख-गिरधर भट्ट १८८६ । श्री रामचन्द्र का नख शिख-रूपसहाय । जुगल नख शिख-प्रतापसाहि । शारदा का नख शिख-योगेन्द्र नारायण सिंह ।

2 'राधिका-सुषमा सोमनाथ चौबे (१७६०) । छवि रत्नम्-कालीदास त्रिवेदी (१७४६) । रग विलास-देव १७६६ । अ ग दपण नवी सुन्दरी-तिलक-पुरुषोत्तम शुक्ल । नायिका रूप ध्यान शिवसहाय (लगभग १८८६) श्री राधाकृष्ण प गो का सौन्दय वणन श्रीकृष्ण चन्द्र १९२२ । अ ग चन्द्रिका-सूबेदार शुक्ल (१९२०) श्यामाङ्ग अवयव भूषण-नवनीत १९८० । [illegible]

3 'दसक द शिख [illegible] मुबारक १९ ० । [illegible]-मदन १९१६ । चरण चन्द्रिका रामचन्द्र १८४० । श्री राधा मुख षोडशी-[illegible] १८५० । [illegible] हरि[illegible] १८८६ । श्री राधा मुख षोडशी नदन मजरी, [illegible] चद्रिका १८४३ वि

१ इन ग्रन्थों के निर्माता कवियों द्वारा भी मानव अवयवों के वर्णन म 'नख शिख' नाम ही दिया गया है, 'शिख-नख' नाम की महत्ता नही स्वीकार की जा सकी।

२ भक्तिकाल के राधा कृष्ण या राम ईश्वरीय आलम्बन हैं। उनके अवयवों के वर्णन मे 'नख शिख नाम देना उचित ही था। हो सकता है कि बाद मे इसी नाम का देने की परिपाटी चल पडी हो और कवि ने मानव और ईश्वरीय आलम्बन के भेदो से मुक्त होकर इस नाम को अपना लिया हो। नाम चाहे कोई भी क्या न हो, इसका मूल उद्देश्य अवयवों का आकर्षक वर्णन करना था। इस वर्णन की सम्पूर्णता म उसके सौंदर्य का प्रस्फुटन हो जाता है। सौन्दर्य का यह प्रस्फुटित रूप आस्वादन और तृप्ति का साधन बनता है आनन्दानुभव को मूल स्रोत है और ऐन्द्रिय एव लौकिक जीवन की चरम साधना है। इस साधना की सिद्धि का माध्यम अवयवों का प्रियतामूलक और सुरुचि पूर्ण वर्णन है। इस वर्णन म निम्नलिखित धारणाए एव दृष्टिकोण काय-शील थे—

१ आकार वर्णन–चाक्षुष दृष्टिकोण।
२ रूप–लावण्यादि का वर्णन और उसका प्रभाव।
३ ऐन्द्रिय अनुभूतियों का वर्णन।

आकार वर्णन—'नख शिख वर्णन म नारी का सौन्दर्य प्रस्तुत करते हुए उन अंगों की बनावट का ध्यान रखा जाता है। अंगों का उचित संयोजन प्रिय लगता है बनावट की दृष्टि से शरीर के चार गुण सापक्षता, समता, संगति और सन्तुलन होते हैं। सापेक्षता अवयवों की सम्पूर्णता की भूमिका म उचित विन्यास कहा जायगा। यह अंगों का ऐसा संयोजन है, जिससे रूप' का आविर्भाव होता है। शरीर का प्रत्येक अंग निरपेक्ष और असम्बद्ध न होकर सापेक्ष और सम्बद्ध होता है। अर्थात् अंगों के खण्ड रूप चित्र सर्वाङ्ग म अपना निश्चित और सुव्यवस्थित स्थान रखते हैं। यह सुव्यवस्था ही अन्य अंगों के साथ विन्यास की दृष्टि से 'सापेक्षता' है। 'समता' अंगों का पारस्परिक अनुपात व्यक्त करता है। किसी अवयव की तुलना म दूसरा अंग बनावट आकारादि की दृष्टि स देखा जाता है। प्रत्येक अंग का बडापन या छोटापन एक दूसरे अंग के सन्दर्भ म ही देखा जाता है। उदाहरणार्थ शरीर की लम्बाई चौडाई के अनुसार ही आँख, नाक कान आदि अंग होने चाहिए। यदि लम्बे चौडे शरीर म आँखें बहुत छोटी हो, तो समता का अभाव माना जायगा। संगति द्वारा रूप' म विरोध का शमन होता है। इससे आकार म एकता उत्पन्न होती है। 'सन्तुलन

मे अनेक तत्व एक योजना म आबद्ध होकर एक दूसरे को क्षति न पहुँचाते हुए सौंदर्योत्कर्ष के कारण होते हैं। इसम प्रत्येक अवयव अपने प्रधान या सर्वाङ्ग के अतगत उसकी रक्षा और सवद्ध न करता है। इन चारो गुणा की महत्ता सम्पूर्ण की दृष्टि से है। यह अगा के पारस्परिक सदभ को व्यक्त करता है। बनावट की दृष्टि से अगो का यह समष्टिगत गुण है, व्यष्टिगत गुणो म अगा का अलग अलग वणन होता है। वणन की यह दृष्टि मध्यकालीन साहित्य मे व्यापक थी। कवियो ने इस दृष्टि से नख शिख के शताधिक ग्रन्थो का निर्माण किया है।

अग वणन की व्यष्टिगत दृष्टि—मध्यकालीन ग्रन्था म अग प्रत्यग के वणन की परम्परा प्रचलित थी। प्रत्येक कवि प्रसगत या स्वतन्त्र रूप से अवयव का वणन करता था। रीतिबद्ध कविया ने अग वणन को प्रधानता दी थी। इस वणन मे अगो के आकार प्रकार, सुडौलता सुढरता आदि की चर्चा होती थी। बनावट की दृष्टि से इसका विचार प्रधान कविकम था। सभी कवियो ने इस पर अपने भाव व्यक्त किये है। यह अभिव्यक्ति दो दृष्टिया से की गई प्रतीत होती है। (१) काम सहायक अगा की बनावट आदि का वणन और (२) अन्य अगो का वणन। इस वणन म अग के गुणा आकार आदि पर ध्यान केन्द्रित रहता है। अगों म स्त्रिया के अग को ही चर्चा का माध्यम बनाया गया है। ऐसा वणन शृगार के अवसर पर हुआ है। इससे स्त्रिया के बाह्य रूपाकार की ही सौन्दर्याभिव्यक्ति हुई है आन्तरिक शील आदि गुणो का वणन नही हो सका है। उनका यह बाह्य रूप वणन निम्नलिखित रूपा म किया गया है—

१ दीघ अग—केश, अगुली नयन, ग्रीवा, शरीर बाल, हाथ।
२ लघु अग—दशन, कुच ललाट, नाभि, कान, पर।
३ भरे हुए अग—कपाल, नितम्ब जघा कलाई पयोधर।
४ पतले अग—नाक कटि पेट अधर।

उपयु क्त अगा को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि काम सहायक अग एव अन्य अगो का वणन आकार की दृष्टि स हुआ है। इनम काम सहायक अग रति भाव को उद्बुद्ध करने म प्रमुख है। एमे अगा म मुख अधर कपोल स्तनादि के वणन का विस्तार अधिक हुआ है। इन अगा क भरपन और उभार आदि के प्रति कविया की दृष्टि सदव सजग थी। एस अगा क वणन म उनके मन की रति भावना जागरूक रहती थी। इसी से इनका वणन मादक, मोहक और आकषक बन गया है। इसकी प्रधान विशेषता मासलता है। इस मांसलता मे रूप की एक बडी ज्वाला का आभास मिल जाता है इसम कवि की

अनुभूतियाँ मिलकर इसे सचेतन बना देती हैं। यह अनुभव दो रूपो मे प्रकट हुआ है —

(१) स्पार्शिक सुखानुभूति।

(२) चाक्षुष सुखानुभूति।

स्पार्शिक सुखानुभूति—इसम स्पश से उत्पन्न होने वाले गुणो का वणन है। इन गुणो म कोमलता, मृदुलता, चिक्नापन, मादव, सौकुमार्यादि की गणना होगी। विश्लेषण करने से ऐसा लगता है कि अगा के स्पश से दो प्रकार की अनुभूति होती है —

१ त्वचा का आत्मिक गुण।

२ ताप से सम्बन्धित गुण।

इन दोनो मे से मादव, सौकुमाय आदि त्वचा के गुण हैं और शीतलता उष्णतादि द्वारा शारीरिक स्पश जन्य ताप का अनुभव होता है। सम्पूण शरीर की शीतलता आनन्द दायक हाती है। जाघ आदि के वणन म शीतलता का यही गुण देखा गया है। इसी से जघा की उपमा केले के स्वाभाविक शीतल खम्भो से दी गई है। इस प्रकार के उपमाना का उद्देश्य स्पश से उत्पन्न सुख की अनुभूति कराना है। ऐसे उपमान अपने उद्देश्य को वहन करने म समथ हैं। ऋतु के अनुकूल शरीर की स्पश सुखदता एव अनुभूति म अन्तर बताया गया है। ग्रीष्म ऋतु के शीतल अग शीत ऋतु म उष्णता का अनुभव कराते हैं। स्तनो एव वक्ष का स्पश, आलिगनादि से उष्णता की अनुभूति का वणन है। *रीतिकालीन कवियो ने बाला के सम्पक से ही शीतलता के नष्ट हो जाने की बात कही है।*[1] बाला के उष्ण अगा के साथ अन्य भी बहुत से पदार्थों का

[1] (i) 'लाल बलबीर जू के पाला को कसाला कहा
आय आय लागत नवीन उर बाला है।
पृ० २३५ ब्रज भाषा साहित्य का ऋतु सौदय

(ii) मदन मसाला हैं विसाला जे दुसाला आला
पाला सम लागैं, बाला बिन सीत काला है। वही पृ १३५

(iii) 'लाल बलबीर' व्यापै हिम की न पीर बीर,
प्रेम रनधीर पिएँ, रूप रस प्याला है।
देखि छबि आला, बाला हान है निहाला
सग राज प्रतिपाला, राधे छल नन्द लाला ह। २३४ वही

(iv) निपट रगीले लाला सिसिर के सीत भीत,
अग लावैं लाम्लीका, अनिहि भमकि कैं। २३३ वही

सेवन करके शीतलता को भगाने की चेष्टा की जाती है। नारी के अग ही शीतलता या उष्णता प्रदान करन वाल बन जाते हैं, उन अगो की स्पश सुखदता बढ जाती है और वे हमारी भावनाओं की तृप्ति के साधन बन जाते हैं। नारी अग के ये गुण पुरुष के मन म ललक और भोग की भावना उत्पन्न करते हैं। आकषण बढाते है और रूप के आमन्त्रित करने वाले भाव या गुण को उत्पन्न करते हैं। ताप का अनुभव कराने वाले इन गुणो के अतिरिक्त स्पश जन्य अन्य अनेक गुणो की चर्चा हुई है। इनम मादव या सौकुमाय का सकेत ऊपर किया जा चुका है। यहा उसका स्पष्टीकरण अपेक्षित है।

सौकुमाय—मादव अथवा सुकुमारता कोमल वस्तु के भी स्पश की असहनीयता को कहते हैं।[1] नारी के मृदुल अग ससार म प्रसिद्ध कोमल वस्तु के स्पश को सहने म भी असमथ होते हैं। अगो की यह कोमलता ज म जात होती है जिसे अनुलेपनादि के सतत प्रयोग से स्थिर रखने का प्रयास होता है। यह कोमलता सौंदय की अभिवृद्धि करने वाली होती है। इसके तीन भेद उत्तम मध्यम और कनिष्ठ होते हैं। उत्तम सुकुमारता कोमलतम वस्तुओ के सस्पश की असहनीयता से आती है। इसमें गुलाब आदि पुष्पो के स्पश को असहनीय बताया जाता है। विहारी ने इसी प्रकार की मृदुता का वणन किया है।[2] मध्यम सुकुमारता अपेक्षाकृत अधिक भारी पदार्थों के धारण की असहनीयता है। ऐसे पदार्थों म वस्त्रादि के धारण करने के भार स शरीर के रक्तिम हो जाने की चर्चा है अथवा कुसुमहारादि के भार स लक के लचक जाने का वणन होता है।[3] धूप लगने से अथवा उसम चलने पर स्वेद कणो का आ जाना अधम सुकुमारता को व्यक्त करता है। इसम भी असहनीयता का भाव है परन्तु भार से उत्पन्न असहनीयता न होकर ताप के स्पश से उत्पन्न असहनीयता है। इन

---

1 मादव कोमलस्यापि सस्पर्शासहनोच्यते।
उत्तम मध्यम प्रोक्त कनिष्ठ चेतितत्रिधा।
उज्ज्वल नील मणि उद्दीपन प्रकरण छन्द ५५ पृ० २७५

2 मैं बरजी कै बार तू, इत कत लेत करौंट।
पखुरी लगे गुलाब की, परिहैं गात खरौंट। सतसई
(ii) भिभकति हिय गुलाब का भवा भवयन पाय।
[illegible] के डरनि सक न गात छुवाय।

3 पानि के भार न सभारत न गात-सर लचि लचि जाति
[illegible] भार न [illegible]। [illegible] पृ० १५० रीति काव्य सग्रह।

तीनो प्रकार की गात्र सम्बन्धी असहनीयता से सुकुमारता का ज्ञान होता है। इस गुण से समन्वित नायिका रति का उत्तम आधार बनती है।

नायिका की यह सुकुमारता दो आधारो को लेकर चलती है। १ मन की सुकुमारता २ शारीरिक। सुकुमारता मन की सुकुमारता मुग्धावस्था म अधिक दीख पडती है। इस अवस्था मे विपरीत भाव की आशका मात्र भी कष्टकारक हो जाती है।[1] वय के विकास के साथ पिय के सम्पक का भय क्रमश कम होता चला जाता है। मन की कोमलता भावनाओ के प्रौढत्व म बदल जाती है, परन्तु शारीरिक कोमलता इतनी शीघ्रता से परिवर्तित नही होती। यह कोमलता आकषण को बढाने म समथ होती है। कवियो का ध्यान शरीर की इस कोमलता की ओर अधिक गया है।

शारीरिक-कोमलता—स्पश और असहनीयता उत्तम सुकुमारता को बताने वाली है। असहनीयता का अनुभव कराने वाले पदाथ दो प्रकार के हो सकते हैं—

(१) अमूत पदाथ

(२) मूत पदाथ

अमूत पदार्थों मे रूप, छवि, शोभा पानिप आदि के स्पश का न सहन कर सकने का वणन है। इसमे किसी प्रकार का भार शरीर पर नही पडता। केवल तत्वो की भावात्मक स्थिति होती है। ऐसे अमूत या भाव (Abstract) पदार्थों से उत्पन्न असहनीयता कोमलता की चरम उत्तम कोटि को व्यक्त करती है। इस प्रकार का वणन रीतिकालीन साहित्य म अधिक मिलता है। इन तत्वो की भौतिक सत्ता न होते हुए भी इनके प्रभाव जन्य प्रतिक्रिया का वणन किया गया है। दृष्टिभार की वास्तविक सत्ता नही है परन्तु पिय की दृष्टि का स्पश करने की अक्षमता नायिका की कोमलता बतान वाली है।[2]

मूत पदार्थों के सम्पक से कोमलता की अभिव्यक्ति करने म अनेक कवियो ने अपनी अभिव्यञ्जनात्मक निपुणता का परिचय दिया है। इससे

---

[1] आवन का नाम सुनि सावन कियो है नैना आवन कहै,
सु कसे आइ जाई छीजिए। बरवस बस करिब को मरो बस नहीं,
ऐसी बेस कहो काह! कसे बस कीजिये।

[2] (i) नवला मुरि वठनि चितै, यह मन होति विचार।
कोमल मुख सहि ना सकत पिय चितवनि को भार। रस प्र रसलीन।
(ii) कहा वा तन सुकुमारि तरि, दरपन पयन नीठि।
दीठि परति यो तरफरनि मानो लागी दीठि। भ ग-दपण॥

कोमलता की जो व्यञ्जना होती है वह अभिधेय न होकर लक्षणा या व्यञ्जना द्वारा व्यञ्जित है। ऐसे वर्णनों का कलात्मक सौन्दर्य उच्चकोटिक होता है। ऐसे ही सौन्दर्य अथवा अभिव्यञ्जनात्मक निपुणता के कारण कवियों का शिल्प प्रशंसनीय बनता है। कोमलता की यह अभिव्यञ्जना स्पर्श की असहनीयता से व्यञ्जित हुई है। ऐसे पद्यों में गुलाब की पंखुड़ियाँ चूड़ियों का स्पर्श[1] दृष्टि का स्पर्श और उष्णता के स्पर्श का वर्णन है।[2]

भार की असहनीयता से भी कोमलता का ज्ञान होता है। रीतिकालीन नायिका कोमलतम वस्तुओं तक के भार को सहन करने में अपने को असमर्थ पाती है। जावक भार से उसके पैर बोझिल हो जाते हैं जावक के भार पग धरत धरा पै मंद गंधभार कुचन परीं छुटि अलक। बरुनि के भार से दृग अधखुले हो जाते हैं। दृष्टिभार की असहनीयता से नायिका मुख फेर लेती है। इस असहनीयता की संभावना से कोमलता को व्यक्त किया गया है। बिन्दुओं के भार से रंग सा चूने लगता है। अंग राग के भार के डर से उसका लगाना ही छोड़ दिया गया है।[3] पग की लालिमा में तद्रूप हो गया महावर का रंग ज्ञात नहीं हो पाता परन्तु इसके भार से नायिका को इसका बोध हो जाता है।[4] कच और कुच के भार से लंक लच जाती है।

भार की यह असहनीयता मूर्त एवं अमूर्त दोनों ही प्रकार के पदार्थों से व्यञ्जित है। शारीरिक सुकुमारता के साथ भावों की सुकुमारता का संकेत किया गया है। इस प्रकार का वर्णन शरीर की मृदुता बढ़ाकर नायिका के सौन्दर्य को बढ़ा देता है। कोमल और मृदुल वस्तुओं के स्पर्श से भावनाओं के विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। नायिका के अंग के इस गुण से उसके व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ता है। व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षक बनाने

---

1 कंप मूरी के छुरै गिरत कर बार सी पातरी जो मैं चबाऊँ।
छाड़िहौं गौर बबा का मौं म पर चूरी न ह्या पाहिरावन आऊँ।
रीति का स पृ २६१

2 यह गोनो मो मग सुगन्ध भरा कहीं बसे क आग के आँच सह।
रीति का स पृ २६६ मडन

3 धरन पर न भूमि [illegible] जहाँ
पुर पुनि पुनि [illegible] परजर है।
भार के डरनि गहुनारि धार मगनि मैं
करति न अगराग कु कुम का पक है। मतिराम,

4 मृदु [illegible] जानि पर पग वाम है भारी। दास

वाले इन स्पाशिक गुणो के अतिरिक्त चाक्षुष सुखानुभूति का वणन भी हुआ है।

चाक्षुष सुखानुभूति—अगो का देखकर नेत्रा के सुख की अनुभूति कराने वाले शारीरिक गुणो मे चाक्षुष सुखानुभूति हाती है। शरार का यह गुण रूप' है। रूप देखने से मन खिच जाता है और आखो को सुख मिलता है। सुडौल, सुदर रूप आकषक होता है। शरीर की मधुरता का सम्बध भी रूप से ही होता है। अनिवचनीय रूप ही माधुय नाम से जाना जाता है।[1] यह रूप दो प्रकार का हो सकता है —

१ अनिवचनीय रूप
२ वाच्य-रूप

वणन कर सकन योग्य गुणशाली रूप अनिवचनीय होना है। इसकी अनुभूति तो होती है परतु वह अकथ्य बना रहता है। अगो को देखकर अनुभव होता है कि उसम छवि रूप म अनिवचनीय कुछ' है जो आखो को सुख देता है। यह रूप लावण्य, छवि, ज्योति, चमक आदि अनेक रूपो मे प्रकट होना है। इन सभी प्रकारा का अस्तित्व है जो अगो मे ही रहता है। उमसे अलग होकर उसकी सत्ता नही रह पाती है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। शरीर म व्याप्त उसके सौदय की अभिवृद्धि करने वाला यह ऐसा स्वाभाविक तत्व है, जो युवाकाल म अपन आप ही आविभूत हो जाता है। यह सम्पूण शरीर मे व्याप्त रहने वाला गुण है। इस गुण का कथन अग-ज्योति, दीप्ति, शोभा आदि द्वारा किया गया है। इस गुण की इयत्ता नही हाती। इसे सभी कवियों न स्वीकार किया है।[2]

चाक्षुष अनुभूति म रूप का दूसरा गुण उसकी नित-नवीनता है। छवि की इस नवीनता के कारण बिहारी की नायिका का चित्र ससार के चतुर चितेरे भी नही खीच पात हैं।[3] भक्तिकाल मे इसी नवीनता से छवि स्थिर नही रह पाती है इससे गोपिया का मन उनस पहचान नही मानता —

---

1 रूप किमप्यनिर्वाच्य तनोमाधुयमुच्यते। उज्वल नीलमणि पृ २७५

2 सोभा सिधु न अन्त रही री—सूरसागर

(ii) कुम्भनदास प्रभु सोभग, सीवा, गिरधर धर सिरमोर।

(iii) कृष्णदास प्रभु गोवधन धर सुभग सीव अभिराम।

(iv) जो कोऊ कोटि कलप लगि जीव, रसना कोटिक पाव।
तऊ रुचिर वदनारविद की शोभा कहत न आवे। हित-हरि वश।

3 लिखन बैठि जाकी सबिहि गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर

स्याम गो चाहे की पहिचानि।
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि रति कीज जहि मानि।

छवि की ऐसी कल्पना कम मिलती है। इससे रूप का उत्कर्ष होता है।
इस छवि के वर्णन में दो दृष्टिकोण दीख पड़ता है।

(१) गत्यात्मक छवि वर्णन।
(२) स्थिर छवि-वर्णन।

गत्यात्मक छवि वर्णन में ज्योति अंग दीप्ति आदि की गतिशीलता का बोध होता है। यह बोध लक्षणा या व्यञ्जना व्यापार द्वारा हो पाता है। इसके लिये प्रयुक्त वाक्यांशों में छवि का चू पड़ना लावण्य का उफान जगर मगर ज्योति जुन्हाई की धार सी दौर पन्ना तरंग का उठना आदि शब्दावलियों का प्रयोग कवियों ने किया है।[1] इन वाक्यांशों के प्रयोग द्वारा रूप की अनिवर्च नीयता को मूर्तरूप देने की चेष्टा की गई है। इससे उत्पन्न होने वाले बिम्ब विधान द्वारा प्रस्तुत का सौन्दर्य बढ़ जाता है और रूप की अतिशयता की अनुभूति होने लगती है। रूप का यह अनिवर्चनीय पक्ष है। इसका एक ऐसा पक्ष भी होता है जिसका प्रत्यक्ष बोध होता रहता है यह उसका कथ्य पक्ष है।

रूप की वाच्यता—अंगों में व्याप्त रूप लावण्य के कथन के लिये कवियों ने रंग का सहारा लिया है। इन रंगों में श्वेत, श्याम और लाल रंगों का कथन है। शरीर के अनेक अंगों में ये गुण वर्तमान रहते हैं और इन्हीं से इनकी महत्ता एवं सौन्दर्य बढ़ पाती है। रसलीन ने एक दोहे में नेत्रों के रंग एवं उसके प्रभाव को व्यक्त किया है।[2] शरीर के अन्य अंगों में भी रंग का यह आकर्षक वैचित्र्य दीख पड़ेगा। इस दृष्टि से रंगों की विशेषता से युक्त निम्नलिखित अंगों का वर्णन विशेष रूप से होता है।

१ श्वेतरंग युक्त अंग—चर्म दाँत और हाथ। यहाँ सफेदी का अर्थ चर्म और हाथ के संदर्भ में गोराई से है। गोरी बाँहें आकर्षक होती हैं।

---

[1] अंग अंग तरंग उठै द्युति की परिहैं मनौ रूप अब धर च्वै।
(ii) बगर-बगर अरु डगर डगर वह जगर मगर चारयो ओर द्युति ह्वै रही।
(iii) अंग अंग उच्छलित रूप छटा कोटि मदन उपजत तन सोभा-सो दा
(iv) भीतर भौन ते बाहिर लौं द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति।

[2] अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परति, जेहि चितवति इक बार।—रसलीन

२ श्याम रग युक्त अग-प्रांग, बरौनियाँ, भौंह केश ।

३ लाल रग वाले अग-ओठ, कपाल, नाखूना की लालिमा ।

वण के गुण मे युत इन अगा म सहज सौदय दीख पडता है। रक्तिम अधरो एव कपोला की शाभा बरबस ही ध्यान को आकृष्ट कर लेती है। इससे सौदय का मादक एव मोहक रूप उपस्थित हाता है इस रूप के प्रभाव की अभिव्यक्ति कवियो ने का है।

रूप का प्रभाव व्यापक होना है। इनसे चर अचल सभी मुग्ध हो जाते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण के सौदय को निरखकर देह एव गृह की सुधि भूल जाती हैं। इस आत्म निस्मृति द्वारा तमयता का भाव व्यक्त होता है। प्रेम की तीव्र अनुभूति मे इस प्रकार की आत्मलीनता दीख पडती है। ऐसा वणन मध्यकालीन कविया ने बहुत अधिक किया है। जड-तत्वा म इस रूप से चेतनता आ जाती है। मोहन की त्रिभगी मूर्ति देखकर यमुना भी थिर' हो जाती है, वायु का चलना रुक जाना है, खग मृग सभी आकर्षित हो जात हैं। इस प्रकार अखिल विश्व को प्रभावित करन वाले रूप की कल्पना इन कविया ने की है। रूपाकार के अय गुणा म 'आभिरूप्य का कथन हुआ है।

आभिरूप्य— सौन्दय के उपकारक उद्दीपक गुणो म आभिरूप्य शरीर का गुण है। जब काई वस्तु आत्मीय गुणो के उत्कप से निकट स्थित अय वस्तु को अपनी उत्कपता मे आत्मसात् कर ले, तो उसे आभिरूप्य कहते हैं।

यदात्मीय गुणोत्कर्षैवस्तवयनिकट स्थितम् ।
सारूप्य नयति प्राज्ञैराभिरूप्य तदुच्यते ।

उज्वल नील मणि । उद्दीपन प्रकरण ।

इस गुण मे रग या भावनाओ का तादूप्य वर्णित होता है। यह गुण 'तद्गुण अलकार जैसा है। इस अलकार म न्यून गुण वाली वस्तु दूसरी उत्कप गुण वाली वस्तु के सम्पक से उस गुण को ग्रहण कर लेती है।[1] इसमे अधिक गुण वाली वस्तु की विशेषता वर्णित होती है। दोनो वस्तुएँ अलग अलग गुण वाली होती हैं परतु एक वस्तु अपनी विशेषता के कारण दूसरी वस्तु के गुण को अपने म मिला लेती है। आभिरूप्य मे दोनो वस्तुआ का भिन्न गुण होना आवश्यक नहीं है। दोना वस्तुएँ एक ही रग या गुण की हो

---

[1] स्वगुण त्यक्त्वा प्रगुणस्व समीपगम् ।
तस्यव गुणमादत्ते यद्वस्तु स्यात् स तद्गुण ।
अलकार कौस्तुभ-कणपूर-अष्टम किरण का० ३१३

सकती हैं परन्तु एक वस्तु दूसरी वस्तु म मिलकर एक रूप हो जाती है। इस गुण के द्वारा ग्रन्थ वर्णन म नायिका के शरीर के रंगों आदि की चर्चा होती है। ऐसा वर्णन विशेषतया रीतिकालीन साहित्य म अधिक मिलता है। भक्ति साहित्य म भी इस प्रकार का वर्णन है परन्तु उसम शारीरिक पक्ष की प्रबलता न होकर मानसिक पक्ष की प्रबलता है। इस दृष्टि से साभिरूप्य की दो आधार भूमियाँ हो जाती हैं—

(१) मानसिक भावनात्मक तादूप्य।
(२) शारीरिक गुणगत तादूप्य।

भावनात्मक तादूप्य म आलम्बन या आश्रय दूसरे के ध्यान म लीन होकर अपने अस्तित्व को अपने प्रिय म मिला देता है। वह प्रिय रूप हो जाता है उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रिय के व्यक्तित्व मे विलीनीकरण हो जाता है। विद्यापति और सूर की राधा रात दिन श्रीकृष्ण का स्मरण करती हुई कृष्ण रूप हो जाती है। कृष्ण रूप होकर राधा की स्मृतियाँ उसे आन्दोलित कर देती हैं और वह पुन राधा रूप म आ जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व की दोलायमान तद्रूपता म वह काठ के मध्य म पडे ऐसे कीट के समान हो जाती है जिसके दोनो सिरो पर अग्नि जल रही हो।[1] सूर की राधा मोहन के रग मे रम जाती है।[2] देव न राधाकृष्ण दोनो को एक दूसरे के प्रेम मे कृष्ण और राधा मय बना दिया है—

दोउन को रूप गुन दोऊ बरनत फिर
घर ना थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयौ राधामय
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई मई। देव

---

[1] अनुखन माधव माधव रटतई, सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई।
माधव से जब पुनि तार्ई राधा राधा सँय जब माधव।
दारुन पेम तबहि नहि छूटत बाढत बिरह क बाधा।
दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगदह आकुल कीट परान।
ऐसन वल्लभ हरि सुधामुखी कवि विद्यापति भान। विद्यापति पदावली।

[2] राधा माधव भेंट भई।
माधव राधा के रग राच, राधा माधव रग रई। सूर सागर।

शारीरिक गुणगत तादूरूप्य मे एक के गुण से दूसरा अभिभूत हो जाता है। बिहारी की नायिका के पाँव और महावरी के रग की समता से नाइन एडी को ही बार बार मलने लगती है।[1] गोपी कृष्ण के साँवरे रग के स्पश से साँवरी हो जाती है। उसकी 'गुराई' श्यामता म मिल जाती है। उसे भय है कि उसकी गुराई रह नही पायेगी "छैल छबीले छुम्रोग जो मोहि, तो गातन मेरे गोराई न रह।"

इससे हम इस निणय पर पहुँचते हैं कि आभिरूप्य का तात्पय शारीरिक गुण अथवा शरीर के रग से है। इसमे दूसरी वस्तु को अपने गुण मे मिलाकर एक रूप कर दने की भावना रहती है। यह एकरूपता मानसिक भावो से अथवा शारीरिक गुणा से होती है इसका वणन मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे अधिक है। इन सभी गुणा का नायिक गुण के अन्तगत मानेंगे। ये गुण शरीर से सम्बन्धित हैं तथा आलम्बन के व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाने मे समथ होते हैं। इनमे आकार की महत्ता इस रूप म है कि सौन्दय का मूल आधार यही है। आकार मे अगा के बनावट का स्थूल रूप और छवि उज्ज्वलता कान्ति आदि का सूक्ष्म रूप रहता है। इन दोना के सम्मिलित वणन मे रूप की वास्तविकता की अनुभूति होती है। केवल आकार और अग दीप्ति ही सौन्दय के आदश रूप को व्यक्त नही करते। इसी से शारीरिक अन्य गुणा की विशिष्टता भी आवश्यक प्रतीत हुई। इन गुणा म स्पश या दृश्य अनुभूतियो के शारीरिक आधार का वणन हुआ है। इनमे शरीर की मृदुलता, कोमलता, आभिरूप्य, सुकुमारता आदि के महत्व को स्पशानुभूति के रूप मे स्वीकार किया गया है। चाक्षुप अनुभूतिया की सुखदता के लिये रग की उज्ज्वलता और शरीर की गोराई आदि से नेत्र सुख की कल्पना की गई। शरीर के विशिष्ट अग म एक विशेष रग की चमक आकपक मानी गई। जैसे अधर कपोल आदि की लालिमा, केश भौंह बरौनियो आदि की श्यामता सौन्दय साधक हो गयी। बाला बरौ नियो आदि की सघनता म रूप लोभी मन उलझने लगा। भरावदार, पुष्ट अगा मे सौन्दय का स्रोत दिखाई पडा। वय की उठान के साथ भावनाओ का विकास रसिक मन का उद्दीप्त करने लगा। सहज हास युक्त मुख मण्डल, शथिल्य सूचक अगडाई, तारुण्य नेत्रो की उन्मादक प्रवृत्ति अगा की ताजगी एव टटकापन, रूप, शील प्रेम, कुल, तेज, चातुय आदि निमत्रण देने लगे।

---

[1] पाँय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एडी मीडति जाय।

स्वभाव का अलबेलापन उन्मत्त यौवन, तारुण्य दीप्ति में कवियों का मन खोने लगा। अंगों के स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में मन इतना उलझा कि इसी को कवियों ने 'मुक्ति' मान लिया। रति रस में डूबे लोगों का जीवन सार्थक होने लगा। इसकी प्रेरणा नायिका के एस रूप सौन्दर्य वर्णन से मिलती थी जो अननुभूत, अश्रुतपूर्व अनिर्वचनीय और आनन्दमय था। उसके शरीर के अनास्वादित रस में कविगण इतने डूबने लगे कि वहीं तक उनका संसार सीमित हो गया। इन सबका सम्बन्ध शारीरिक गुणों से है। ये गुण ही उद्दीपक बनकर रसिक हृदय को रिझाने लगे। शरीर के उद्दीपक गुणों में ऐन्द्रिय आकर्षण उत्पन्न करने वाले गुण, अंग प्रत्यंग वर्णन की मोहकता, रूप लावण्यादि की चर्चा हो सकती है। इन सभी से युक्त गुण कायिक गुणों के अन्तर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त मानसिक एवं वाचिक गुणों से भी सौन्दर्य की वृद्धि मानी जा सकती है।

मानसिक गुणों से तात्पर्य मन में उत्पन्न होने वाली भावनाओं से है। जिसका प्रत्यक्ष रूप आंगिक चेष्टाओं या अनुभावों द्वारा दीख पड़ता है। वाचिक गुणों में मधुर वचनों की श्रुति सुखदता है। वचन की मधुरता, उसका लालित्य सुखद होता है। इससे उत्पन्न वचनों की ध्वनि से नायक का मन तृप्ति का अनुभव करता है और नायिका के सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो जाता है। अतः कायिक, मानसिक और वाचिक गुणों से युक्त नायिका रति भाव की वास्तविक आलम्बन बनती है। ये गुण नायिका के शरीर से सम्बन्धित होने के कारण सौन्दर्य को बढ़ाने वाले उपकरण हैं। इन आलम्बगत उपकरणों में अभी तक गुण का विवेचन किया गया, परन्तु केवल गुण ही रस को उद्दीप्त नहीं करते अपितु नायिका की चेष्टाएँ भी महत्वपूर्ण होती हैं।

चेष्टागत सौंदर्य —

आलम्बन के आत्म-परक सौन्दर्य साधक उपकरण के अन्तर्गत चेष्टा मानसिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति है। आलम्बन की प्रत्येक क्रिया का मूल प्रेरक मन होता है। मन ही वस्तु के प्रत्यक्ष या स्मृति दर्शन से भावों के आन्दोलित होने का कारण है। विभिन्न दृश्यों या रूपों को देखकर मानसिक आलोड़न विलोड़न या प्रियता क्षोभ आदि भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। ये भावनाएँ उत्पन्न होकर नहीं रह जातीं अपितु इनकी बाह्य अभिव्यक्ति भी होती है। इस अभिव्यक्ति के अभाव में मानसिक कुण्ठाओं का जन्म होता है। इससे बचने के लिये मन विराम चाहता है। भावों की चेष्टापरक इस अभिव्यक्ति का कारण मन का तनाव दूर कर इन भावों विराम की मन की अभिलाषा है। यह अभिलाषा ही रूपों में प्रकट होती है।

१ विक्षपक चेष्टाग्रा द्वारा।

२ ग्राक्षक चेष्टाग्रो द्वारा।

इन दोना चेष्टाग्रो म प्रस्तुत प्रसग की सीमा के अन्तगत केवल ग्राकपक चेष्टाएँ ही ग्राती हैं। ये चेष्टाएँ भावो के स्पन्दन से शारीरिक विकार या विकास की क्रियाएँ हैं। इनका मूल सम्बध शृङ्गार भाव से है। यह शृङ्गार भाव शीलगत गुणो के अन्तगत ग्राभिजात्य का सूचक होता है। इससे कामुकता का बोध न होकर मानसिक भावा की स्वस्थ अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति का तात्पय युग की प्रचलित सम्मान्य मर्यादाग्रो एव परम्पराग्रा के अनुकूल भावो का प्रकाशन है। प्रकाशन का यह ढग सयमित होने पर कुल ललनाग्रो के सौदय का उपकरण ग्रौर उनके रूप का उत्कपक होता है। यह उत्कप चेष्टाग्रा पर निभर है।

चेष्टाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं (१) सयोग की ग्रवस्था में रति भाव को उद्बुद्ध करने वाली ग्राह्लाद मूलक चेष्टाएँ (२) वियोग मे दुख मूलक चेष्टाएँ। यहा पर केवल ग्राह्लाद मूलक चेष्टाग्रों से ही ग्रपना ग्रभिप्राय सिद्ध होता है। शालीनता से उत्पन्न होने वाली ये चेष्टाएँ विशेष ग्राकपक हो जाती हैं। इनको दो वर्गों म विभाजित करेंगे—

(१) विशेष चेष्टाएँ

(२) सामान्य चेष्टाएँ

विशेष चेष्टाग्रा मे ग्रनुभावों की गणना होगी। ग्रनुभाव भाव ससूचना त्मक शारीरिक विकार हैं।[1] इन विकारो की उत्पत्ति के पश्चात् सत्व सूचक ग्रागिक सचालनो को ग्रनुभाव कहते हैं ग्रर्थात् चित्त मे ग्राविभूत भावों का ग्रनुमान कराने वाली वाह्य शारीरिक क्रियाएँ ग्रनुभाव कही जाती हैं। इन क्रियाग्रो को देखकर मन म उत्पन्न होने वाली रत्यादि भावनाग्रो का बोध दशक को होता है। साहित्य दपणकार ने इसका समथन किया है कि ग्रालम्बन या उद्दीपनादि कारणो से हृदय मे जाग्रत रति भावना को प्रकाशित करने वाली चेष्टाएँ ग्रनुभाव हैं।[2] ग्रनुभावो के सात्विक, कायिक, मानसिक ग्रौर ग्राहाय ये चार भेद होते हैं। इन भेदा मे कायिक ग्रौर मानसिक ग्रनुभाव ग्रालम्बन के

---

[1] ग्रनुभावो विकारस्तु भाव ससूचनात्मक।

[2] "उद्बुद्ध करण स्वैं स्वैबहिर्भाव प्रकाशयत्।
लोके य काय रूप सोऽनुभाव"—साहित्य दपण

सौंदय को बढ़ाने वाले होते हैं। इन्ही अनुभावो से आश्रय की भावना उद्दीप्त होती है। अन य अनुभाव सौंदय के उत्कष होने से साधक चेष्टाओ के अतगत आयेंगे। इन्ही दोनो का विचार होगा।

कायिक अनुभाव—चेष्टामूलक इन अनुभावा का सम्बन्ध कायिक क्रियाओ से है। इनमे मुसकान चितवन कटाक्षपात अ ग सचालन पद निक्षेप अल्हडता गति आदि द्वारा उत्पन्न चेष्टाओ क सौंदय से रतिभाव का प्रकाशन होता है। मध्यकाल में मुसकान वणन म अनेक विशेपणा का प्रयोग हुआ है। मृदु लजीली मीठी हुलास भरी फीकी कुटिल शुभ आदि अनक प्रकार के मुसकान का वणन है। इसम अधरा का विकास और कपोलो म दीप्ति आ जाती है। सहज और स्वाभाविक मुस्कान मोहक शक्ति है। इन मोहकता स नायिका का आकपण बढता है। यथा—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह कर भौंहनि हँस दन कहै नटि जाय।

सयोग के अवसर पर मुसकान उद्दीपक बन जाता है। इसके प्रभाव उत्पन्न करने वाली शक्ति का कथन हुआ है। इसके प्रयुक्त विशेपण दो प्रकार के हो सकते हैं (१) क्रियामूलक विशेपणा म लजीली हुलास भरी आदि हैं (२) गुणमूलक विशेपण म मृदुता मिठास शुभ्रतादि का वणन है। इस मुसकान का सम्बन्ध चितवन और कटाक्षपात स बना रहता है।

कविया न मुसकान क सग भ्रू निक्षेपादि का वणन भी किया है। चितवन की यह चेष्टा नायिका के सौन्दय को बढाने वाली होती है। तीखी कटीली, लजीली चचल आदि विशेपणा से आँखा क मार करने वाले प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है इस दृष्टि से चितवन क दो भेद हो सकते है—

(१) मादक प्रभाव उत्पन्न करने वाली चितवन म नत्रों की रसालता अर्धोन्मीलित दशा मतवालापन आदि होता है।

(२) तीक्ष्णता युक्त चितवन बक, घातक दाँव न चूकने वाली और पैनी होती है। इन दोनो प्रकार क चितवनो स व्यक्तित्व म आकपण उत्पन्न हो जाता है।

चितवन के अतिरिक्त नत्रा की तन्द्रिल अवस्था विशेप मुद्रा की सूचिका है। यह मादक मोहक और आकपक होती है। उनीन्दी आँखें बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं। तन्द्रा का वणन प्राय दो अवसरो पर हो सकता है (१) मन में मादक भावों के उत्पन्न होने पर अथवा रति सुख हो जाने क उपरान्त

सुरत सुख से आप्लावित होन की अवस्था मे (२) आलस्य, निद्रादि के अवसर पर। इन दोना ही अवस्थाओ का वणन काव्य म मिलता है।[1]

अगा के सचालन गति, पद, निपेधादि से हृदयगत भावा का ज्ञान होना है। इन भावा का कायिक चेष्टाओ द्वारा व्यक्त करके नायिका का रूप मोहक बन जाता है।[2] ये सभी चेष्टाएँ कायिक अनुभाव के अन्तगत आती हैं। गिनाये गये इन चेष्टाओ के अतिरिक्त अन्य भी कायिक चेष्टाए हो सकती है। इन सभी चेष्टाओ का मूल उद्देश्य मोहकता बढाना है। इस मोहकता से ही आलम्बन का सौंदय बढ जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ चेष्टायें मानसिक भावो को प्रकाशित करती है। इन चेष्टाओ का मानसिक अनुभाव कहते हैं।

मानसिक अनुभाव—अन्तःकरण की भावना के अनुसार मन मे उठने वाली तरगे हास, परिहास, आमोद प्रमादादि के रूप म प्रकट होती रहती हैं। यह भी एक प्रकार की चेष्टा ही है जो मानसिक भावा का प्रकाशन करती है। इसमे स्वर माधुय शालीनताजन्य लज्जा निषेध, चचलता, हास-परिहास छेड छाड, वचनवैदग्ध्य आदि की गणना हो सकता है। इनम स्वर माधुर्य वाचिक चेष्टा है। इससे प्रेम भाव की सघनता और सान्द्रता का ज्ञान हाता है। मीठे वचना म अलौकिक आनन्द रहता है।

निषेध स्वीकृति मूलक वाह्य अस्वीकृति है। इसम वचन एव सिर सचालन के द्वारा अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति नायिकाएँ करती हैं। स्वीकृति पूण इस निषेध म माधुय हाता है। इस अस्वीकृति के वाद अभिलाष का व्यक्त करने का उचित अवसर माना जाता है। यह मानसिक भाव का सूचक होता है। इस निषेध मे स्वीकार की भावना के कारण नायिका के प्रति मन का आकषण बढ जाता है। हाँ मूलक निषेध से मोहकता उत्पन्न होती है नायिका की अभिलाषा व्यक्त होती है, और नायक के मन मे नायिका के सौंदय पान करने की ललक उत्पन्न हो जाती है। यह एक शालीनता की

---

1 रतनारी हो थारी आखडियाँ।
प्रेम छकी रसबस अलसानी, जानि कमल की पाखुडिया।
बनी ठनी जी पृ० १६६ मध्य का० हि० कवियि० से।

2 (i) नन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयो खेलन होला। पद्माकर।
(ii) भौंहनि त्रासति, मुख नटनि, आखिन सा लपटाति।
ऐंचि छुडावनि कर ईंची, आगे आवति जाति। विहारी

भावना है। इस भावना द्वारा नायिका के मन मे स्थिर लज्जा का ज्ञान होता है।

लज्जा शालीनता की स्पष्ट स्थिति है। शालीनता मानसिक भावो का सम्पृक्त रूप है। इससे नारी का आकर्षण बढता है और नायक के मन मे रति भाव के उद्दीप्त होने का अवसर मिल जाता है। नारी की आयु के अनुसार इस शालीनता मे अन्तर आता रहता है। वय सन्धिकाल मे इसका विकास प्रारम्भ हो जाता है और युवाकाल मे इसका पूर्ण रूप दीख पडता है। इसका सम्बन्ध यौन-भावना से होने के कारण यह रति मूलक चेष्टा है। वय सन्धिकाल की ऋतुमती नायिकाओ मे लज्जा विशेष रूप से देखने को मिल जाती है। इसके द्वारा काम की भावना नियन्त्रित रहती है। यह नारी के स्वभाव का अनिवार्य तत्व है। इसका वास्तविक विकास स्वकीया नायिका मे ही देखा जा सकता है। इससे उसका सौंदर्य बढ जाता है।[1] इसका आभास मुख की अरुणिमा से होता है। समाज के विधि निषेधो के कारण यह संस्कार बन गया है जो *पुरुष के समक्ष होते ही आरक्तिम मुख द्वारा व्यक्त हो जाता है।* इसके चार लक्षण है—

(१) नेत्रो का नत हो जाना (२) मुख की अरुणिमा (३) घूँघट आदि द्वारा मुख को ढक लेना (४) वचन कार्पण्य। इन चारो लक्षणो से नायिका की शालीनता और लज्जामूलक चेष्टाओ का ज्ञान होता है। यह चेष्टा स्त्रियो की सुंदरता के लिये आभूषणो का काम करती है। इससे उनकी आकर्षण शक्ति बढती है।

अन्य चेष्टाओ मे हास परिहास और छेड छाड रतिभाव को उद्दीप्त करते हैं। प्रगल्भ नायिकाओ मे छेडछाड की यह प्रवृत्ति दीख पडती है।[2]

---

[1] कनक बरन सुढार सुन्दरि सकुचि मुख मुसकयाइ।
स्यामा प्यारी नैन राँच अति विशाल चलाइ। सूरसागर।

[2] लागि प्रेम डोरि खोरि साकरी ह्वै कढी आई
नेह सो निहोरि जोरि आली मनमानता।
उतते उताल 'देव' आये नन्दलाल, इत
साहै भई बाल, नवलाल सुख सानती।
काहू कह्यौ टेरिकै कहा ते आई को हो तुम,
लागति हमारे जान कोई पहिचानती।
प्यारी कह्यौ फेरि मुख हरिजू चनेइ जाहु
हमैं तुम जानत, तुम्हैं हू हम जानती। देव

इनका समुचित वर्णन मध्यकालीन साहित्य में हैं। इससे प्रेम की सान्द्रता प्रकट होती है। रह केलि में माधुर्य बढ़ जाता है वचन भंगिमा से वक्ता का गूढ़ अभिप्राय प्रकट होता है। प्रेम के अतिशय का विश्वास उत्पन्न होता है। इसीसे व्यंग्य वचनों का प्रयोग भी उद्दीपक ही होता है—

ऐसी करी करतूति कलाय रयों नीकी, बड़ाई लहौ जग जाते।
आई नई तरुनाई निहारी हौ, ऐसे ह्वै चितवौ दिन राते।
लीजिए दान हौ दीजिए जान तिहारी सबै हम जानति घात।
जानौ हम जनि वै बनिता, जिनमा तुम एसी करौ बलि बात।

मतिराम

मानसिक भावों को व्यक्त करने वाली ये विशेष चेष्टाएं हैं। इनकी गणना अनुभवों में होती है। इनमें नायिका और मानसिक अनुभावों का संकेत किया गया। इनके अतिरिक्त भावों को उद्दीप्त करने वाली कुछ अन्य सामान्य चेष्टाएं हैं, जिन्हें नायिका के अलंकार रूप में मानते हैं।

सत्व से उत्पन्न नायिका के अनेक अलंकारों का वर्णन हुआ है। इन अलंकारों की संख्या बीस या अठाइस मानी गई है। साहित्य दर्पणकार अट्ठाइस के पक्ष में है[1] धनञ्जय ने बीस अलंकारों को स्वीकार किया है।[2] रस-तरंगिणीकार सभी गात्रज अलंकारों का 'हाव' के अन्तर्गत मान लेता है।[3] मतिराम और देव ने भी भानुदत्त का ही अनुसरण किया है। देव ने दश हावों का समर्थन किया है।[4] विश्वनाथ द्वारा बताये गये अन्य अतिरिक्त अलंकारों के नाम मद तपन मौग्ध्य, विक्षेप कुतूहल हसित, चकित और केलि है। इन सभी अलंकारों को तीन वर्गों में बांटा गया है।

१ अंगज
२ अयत्नज
३ स्वभावज

इन तीनों में अयत्नज अलंकार शरीर के ऐसे विशेष गुण हैं जो स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें चेष्टागत व्यापार की प्रवृत्ति कम दीख पड़ती है। इससे ये शोभा विधायक अलंकार ही हैं चेष्टा नहीं है। इनका वर्णन गुणों के

---

1 यौवन सत्वजास्तासाष्टाविंशतिसंख्या—साहित्य दर्पण ३।८९
2 यौवने सत्वजा स्त्रीणामलंकारास्तु विंशति।—दशरूपक ३/८९
3 निर्णय सागर काव्यमाला पंचमा गुच्छक —पृ० १५८
4 यहि विधि दश विधि हाव कवि बरनत मन प्राचीन। देव

अन्तर्गत किया जा चुका है। अंगज और स्वभावज में चेष्टा वर्तमान रहती है। इनका संकेत कर देना समीचीन है।

अंगज अलंकार—नायिका की शोभा बढ़ाने वाले आंगिक विकारों को अंगज अलंकार कहते हैं। यह तीन रूपों में प्रकट होता है। इन्हें भाव, हाव हेला कहते हैं।

निर्विकार चित्त में उत्पन्न होने वाली विकृति को 'भाव' कहते हैं यह विकृति वाणी, मुख, अंग अभिनय आदि के द्वारा प्रकट होती है। यह मानसिक विकार है। भृकुटि या नेत्रादि के विलक्षण व्यापारों से संभोग की इच्छा को प्रकाशित करने वाले भाव ईषत् लक्षित होकर 'हाव' कहे जाते हैं। रति काल में यह नायिका की स्वाभाविक भाव भंगि है। भाव मानसिक व्यापार है और हाव क्रियाओं द्वारा स्पष्ट हो जाने वाला व्यापार है। यह भ्रू निक्षेपादि द्वारा प्रकट होता है। हाव ही सुव्यक्त होकर 'हेला' हो जाता है।

सौंदर्यपरक दृष्टि से देखने पर ज्ञात हो जाता है कि भाव हाव और हेला में क्रियाओं के उत्तरोत्तर विकास का एक क्रम है। ये तीनों ही क्रियाएँ मन के काम विषयक भावना की अभिव्यक्ति करती हैं। 'भाव' मानसिक अभिव्यक्ति और हाव तथा हेला कायिक अभिव्यक्ति है। इन चेष्टाओं से एक ओर जहाँ नायिका की आकर्षण एवं मोहकता बढ़ती है वहीं दूसरी ओर नायक के मन में रति भाव का आविर्भाव और उसका विकास होता है। उद्बुद्ध रति भावना के कारण नायिका अपनी इन चेष्टाओं के साथ और अधिक सुन्दर बन जाती है। अतः ये चेष्टाएँ सुन्दरता को बढ़ाने वाली क्रियाओं में हैं।

इन आंगिक चेष्टाओं के अतिरिक्त स्वभावज अलंकारों की शोभा नायिका के व्यक्तित्व के आकर्षण को बढ़ाने वाली होती है। अंगज और अयत्नज अलंकारों से स्वभावज का प्रमुख अंतर यह है कि आरम्भ के दो अलंकार पुरुषों में भी पाये जाते हैं। इनसे पुरुष किशोर या तरुण के सौन्दर्य एवं आकर्षण की वृद्धि होती है परन्तु स्वभावज अलंकारों की क्रियाओं का सौंदर्य केवल स्त्री में ही मिल सकता है। इससे इन अलंकारों द्वारा स्त्री शोभा का ही विकास होता है।

इन अलंकारों में लीला, विलास विच्छित्ति विब्बोक किलकिंचित विभ्रम ललित, मोट्टायित कुट्टमित विहृत मद तपन, मौग्ध्य विक्षेप कुतूहल हसित चकित केलि की गणना होती है। इन अलंकारों की विभिन्न चेष्टाओं को देख कर ऐसा ज्ञात होता है कि इनमें मानसिक विचारों का विकास

होता है। यह विकास विभिन्न चेष्टाओ से व्यक्त हो जाता है। ये चेष्टाएँ निम्नलिखित ढग से समझाई जा सकती ह —

(१) त्वरामूलक चेष्टा म विभ्रम का नाम लेंगे।
(२) अनुकरण मूलक मे लीला।
(३) प्रसाधन मूलक चेष्टा मे विच्छित्ति, ललित और विक्षेप।
(४) अभिव्यक्तिमूलक चेष्टा मे कुट्टमित विब्बोक विहृत, हसित, चकित।
(५) मानसिक विकास से सम्बन्धित अलकारा मे विलास किलकिञ्चित मोट्टायित कुतूहल, मौग्ध्य।
(६) कामसूलक चेष्टा—तपन, केलि।

इस वर्गीकरण म विभिन्न चेष्टाओ की मानसिक स्थिति का ध्यान रखा गया है। प्रत्येक चेष्टा मे किसी न किसी भाव की प्रधानता है। उदाहरणार्थ 'विभ्रम म प्रियमिलन की जल्दबाजी है। इससे इसे त्वरामूलक चेष्टा माना गया। विलासादि मे मानसिक प्रसन्नता से मन का विकास हो जाता है यही विकास चेष्टाओ द्वारा प्रकट होता है। इससे इन अलकारो को मानसिक विकास से सम्बन्धित अलकार माना गया। यह वर्गीकरण विषय को सरल करने के लिये किया गया, परन्तु इनका मूल उद्देश्य नायिका की चेष्टाओ से उत्पन्न मोहकता का बोध कराना ही है इसी दृष्टि से इनका अध्ययन होगा।

उपर्युक्त विचारो के आधार पर इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि अनुभावमूलक और अलकार मूलक दोनो ही प्रकार की चेष्टाओ से हृद्गत भावनाओ का प्रकाशन होता है। यह प्रकाशन इतना आकर्षक और मोहक होता है कि इन्ही चेष्टाओ से आलम्बन के सौदय की वृद्धि हो जाती है। अत सौदय के साधक उपकरणो म इन चेष्टाओ का बडा महत्व है। इसमे कुछ चेष्टाएँ पुरुषो से सम्बन्धित, कुछ केवल स्त्रियो से सम्बन्धित और कुछ स्त्री पुरुष दोनो से सम्बन्धित होती हैं। इन दोना के सम्मिलित रूप से ही मानव सौदय की पूर्णता की कल्पना की जा सकती है। यह सम्पूर्ण चेष्टा एव गुण गत सौदय आत्मपरक उपकरण है जो बाह्य सौदय साधक उपकरणो से मिलकर आलम्बन के रूप सौदय को वर्णन म समर्थ होता है।

सौन्दर्य-साधक बाह्य-उपकरण

सौदय की वृद्धि करने वाला प्रसाधना म आत्मगत उपकरणो का—

संकेत हो चुका है। इसके अन्तर्गत नायक अथवा नायिका के गुण और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हुआ है। गुण शारीरिक अथवा मानसिक धर्म है और चेष्टाओं से मनोगत भावनाओं का स्फुरण होता है। इन दोनों तत्वों का सीधा सम्बन्ध आलम्बन से होता है। इस कारण इन्हें आत्मगत सौन्दर्य-साधक उपकरण कहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के उपकरणों का वर्णन मिलता है। ये उपकरण आलम्बन के गुण अथवा चेष्टाओं से सौन्दर्य वृद्धि के साधक नहीं होते, अपितु बाहरी साधनों द्वारा रूप का आकर्षण बढ़ाते हैं। ऐसे साधनों को बाह्य उपकरण की संज्ञा दी जाती है।

सौन्दर्य को बढ़ाने वाले आलम्बन के शरीर से भिन्न अन्य प्रसाधनों को बाह्य सौन्दर्य साधक उपकरण मानते हैं। इन उपकरणों की दो कोटियाँ हो जाती हैं—

(१) प्रसाधनगत उपकरण।
(२) तटस्थ-उपकरण—

प्रसाधनगत उपकरण

आलम्बन से भिन्न रूप की उत्कर्षक वस्तुएं प्रसाधन के अन्तर्गत आती हैं। इन प्रसाधनों का शरीर से अलग स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अपनी इस स्वतन्त्र सत्ता में इनका निजी महत्व है। आत्मगत और प्रसाधनगत उपकरणों में मूल अन्तर यही है कि आत्मगत उपकरण आलम्बन से अलग होकर स्वतन्त्र अस्तित्व वाला नहीं हो सकता है जबकि प्रसाधनगत उपकरणों का स्वतन्त्र अस्तित्व ही होता है। इनकी महत्ता उपयोग मूलक है। ऐसे प्रसाधनों को दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

(१) लगाये जाने वाले उपकरण।
(२) धारण किये जाने वाले उपकरण।

इन दोनों को ही षोडश शृंगार के अन्तर्गत मानते हैं।

षोडश-शृंगार—शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य साधक उपकरणों में उबटन मंजन, मिस्सी स्नान केश विन्यास माँग भरना अंजन महावर, बिन्दी तिल मेंहदी, सुगन्धित द्रव्य और पान रचाने की गणना होती है। धारण किये जाने वाले उपकरण वस्त्र आभूषण माल्य हैं। इन दोनों की सोलह संख्या होने से इन्हें षोडश शृंगार के अन्तर्गत माना जाता है। विभिन्न शास्त्रकारों के मत से इनके नामों में कुछ अन्तर मिलता है। वल्लभ देव ने मंजन धोर हार तिलक अञ्जन कुण्डल नासामोती, केश रचना, कञ्चुक

नूपुर, सुगधि, मेखला, ताम्बूलादि का वणन किया है।[1] इस वणन म आभूषणों का नाम ही अधिक गिनाया गया है शृ गार के सभी अगो पर दृष्टि नहीं गई है। रूप गोस्वामी ने नासामोती पट वेणी, फूल, पद्महस्त, ताम्बूलादि का वणन किया है।[2] प्रामाणिक हिन्दी काश मे उपटन, मजन, मिस्सी, स्नान, सुबसन केश वियास, माग, अजन, महावर विन्दी, ठोढीपर तिल, मेहदी, गध द्रव्य, आभूषण फूल माला और पान रचाने को पोडश शृ गार कहा गया है।[3] केशवदास ने स्नान, अमलबास, जावक, केश पास का सुधारना अगराग दपण, आभूषण, मुखबास, काजल, आदि का वणन किया है।[4] सरदार कवि ने इस ग्रथ की टीका में परम्परा का अनुसरण किया है। बलभद्र के मत से दत धावन, उबटन, मज्जन, तिलक आदि सोलह शृङ्गार हैं।[5] इन शृङ्गारा का विश्लेपण करने से नात हो जाता है कि इनका मुख्य उद्देश्य सौदय को

---

[1] आदौ मज्जनचीर हारतिलक नेत्राञ्जन कुण्डले।
नासा मौक्तिक केशपाश रचनासत्कञ्चुक नूपुरौ।
सौगन्ध्य कर कङ्कण चरणयो रागो रणमेखला।
ताम्बूल कर दपण चतुरता शृङ्गारका पाडशा। बल्लभदेव।

[2] स्नाता नासाग्रजाग्रमणी रसित पटासूत्रिणि वद्धवेणि।
सोत्त सा चर्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।
ताम्बूलास्यारु बिन्दुस्तबकित चिवुका कज्जलाक्षी सुचित्रा।
राधालक्तोज्वलाङ्घ्रि स्फुरति तिलकिनी पोडशा कल्पनीयम्।
उज्ज्वलनीलमणि पृ ७७ निणय सागर।

[3] प्रामाणिक हिन्दी कोश-सभा पृ० ४७ स० १९८० वि०—रामचन्द्र वर्मा।

[4] प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास, जावक सुदेश केशपासको सुधारिबो।
अगराग भूपणविविध मुखबास राग, कजल कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हँसनि मृदुचातुरी चितौनी चारु पलपल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
केसोदास सविलास करहु कुँवरि राधे इहिविधि सोरहशृङ्गारनि सिगारिबो
रसिकप्रियाछद ४३, विश्वनाथप्रसाद द्वारा सम्पादित केशवग्रन्थावलीभाग १

[5] कर दत धोवनउबटन अग मजन के अग अगुछान अगुछाई है। करके तिलक मैन पाटीपार बलभद्र' भाल भली वदन की बिन्दुका बनाई है मजन द नैन देख दरप्पन चिवुक चिह्न अधर तम्बोरकी अधिक छवि छाई है। मेंहदी करन मदि भाई दै महावर की सोलह सिगार की मूरचतुराई है।
—पृ २५९९-१४ पूनाविश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति।

बढाना ही था। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये अगो को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की चेष्टा की गई। यह चेष्टा सयोग के लिये अगो के सजाने म दीख पडती है सयोग के प्रसग पर विकर्षण उत्पन्न करने वाली दो बातें होती हैं (१) शरीर या मुख की मलीनता गन्दगी, दुर्गंध आदि। (२) मुखादि अगो का अनाकर्षक होना। सोलह शृंगार इन दोनो ही कमियो को दूर करने का साधन है। इनसे त्रुटिया दूर हो जाती हैं और मुख का आकर्षण बढ़ जाता है।

सयोग के अवसर पर आकर्षण का प्रथम और मुख्य अग मुख है। मुख को ही देख कर भावनाएँ केंद्रित होती है। मुख ही आमन्त्रित करता है। इससे मुख एव अन्य ऊर्ध्वाङ्गो का आकर्षक होना आवश्यक माना गया। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये इन शृङ्गारो की कल्पना की गई। ऊर्ध्वाङ्गो को रुचि के अनुकूल बनाने एव आकर्षण लाने के लिये इन शृङ्गारो का तीन रूपो म उपयोग किया गया है —

(१) मुख को सुवासित करके मलीनता दूर करने वाले शृङ्गार साधनो मे उबटन स्नान, गन्ध द्रव्य एव पान रचना गिना जायगा, क्योकि उबटनादि से शरीर म निखार आ जाता है।

(२) मुख एव अन्य अनावृत्त अगो को प्रसाधित करने के लिये मिस्सी केश विन्यास, माँग, अजन महावर, बिन्दी तिल मेंहदी गन्ध द्रव्य, आदि का प्रयोग होता है।

(३) सम्पूर्ण अगो की शोभा बढाने वाले शृङ्गार म स्नान, मजन, उबटन बसन, आभूषण गन्ध द्रव्य फूलमाला की गणना हो सकती है। मेंहदी से हस्त एव पग का आकर्षण बढता है। इससे सर्वाङ्ग मे सुन्दरता आ जाती है।

इन शृङ्गारो का व्यावहारिक दृष्टिकोण सूक्ष्म एव मनोवैज्ञानिक है। प्राय आलम्बन के सभी अग वस्त्रादि से ढके रहते हैं। इससे उन अगो की अनावृत अवस्था की ओर दृष्टि नही जाने पाती। ढके हुए अगो के प्रसाधित हुए बिना भी उनका आकर्षण बना रह सकता है। कभी-कभी तो ढके अथवा अधखुले अग कौतूहल एव जिज्ञासा की वृद्धि ही करते हैं। ऐसे अगो का आकर्षण बडा तीव्र होता है इसी कारण जयशकर प्रसाद का मन 'कामायनी' के अधखुले अगो की आकर्षण शक्ति म उलझ जाता है। उन्हें वे अग 'बिजली के फूल जैसे प्रतीत होते हैं।[3] खुले हुए अगो म मुख, अन्य ऊर्ध्वाङ्ग तथा

---

[3] प्रसाद—कामायनी।

हाथ और पग हैं। इससे इन अगो को सजाने और आकर्षक बनाने की भावना का विकास हो गया होगा। इसका क्रियात्मक पक्ष प्रसाधन सामग्री और आभूषणों के धारण करने मे दीख पडता है। लोक व्यवहार मे इन्ही अगो के आभूषणो की सख्या अधिक है। यह प्रवृत्ति निरर्थक नही मानी जा सकती है इसका मनोवैज्ञानिक कारण अपने प्रसाधित रूप के आकर्षण का प्रदर्शन करना ही है। इन खुले अगो म हाथ पग मे महन्दी रचाना आज भी मान्य है। मुख तो सम्पूर्ण शृङ्गार का केन्द्र स्थल ही है। इसी से मुख के प्रसाधनो की सख्या सबसे अधिक है। उबटन स्नानादि से सम्पूर्ण शरीर की कोमलता और स्वच्छता बढती है। इस आधार पर यह निर्णय हो जाता है कि ये प्रसाधन अपने आप म स्वय साध्य नही है, अपितु शरीर के आकर्षण को बढाने मे साधन के रूप मे ही प्रयुक्त होते हैं। व्यक्ति के नैसर्गिक सौन्दर्य के रहने पर ही ये प्रसाधन आकर्षण के उत्कर्ष मे सहायक हो सकते हैं। इसके अभाव में उनकी महत्व हीनता उसी प्रकार स्पष्ट हो जाती है जैसे शव पर लेप किया गया चन्दनादि। अत इन प्रसाधनो का शोभा स्वय मे नही है, अपितु उचित आलम्बन को प्राप्त कर लेने पर ये शोभा के विधायक हो जाते हैं। प्रसाधन सहज सौन्दर्य को बढाने वाले होते हैं। इन प्रसाधनो के अभाव मे भी सहज सौन्दर्य का अपना आकर्षण तो रहता ही है। सस्कृत साहित्य म इस प्रकार के सौन्दर्य एव प्रसाधनो का वर्णन अधिक मिलता है। यहा प्रसाधनो का निम्नलिखित प्रकार से वर्णन मिलता है —

(१) नैसर्गिक शोभा से युक्त रमणी मे कोई भी प्रसाधन रम्य हो जाता है।

(२) नायिका की इस शोभा से प्रसाधनो म भी एक कान्ति आ जाती है।

(३) ये प्रसाधन सहज सौन्दर्य को विकृत कर देने वाले होते हैं।

(४) ये सौन्दर्य के उपकारक भी हो जाते हैं।

आभूषणो से सहज सौन्दर्य की वृद्धि ही अधिक होती है। पार्वती परिणय में कहा गया है कि लोक मे यह प्रसिद्ध है कि भूषण अगो को शोभित करते हैं परन्तु यहाँ अग ही भूषणो की सुषमा को उत्पन्न करते हैं।[1] कालिदास ने सहज-सौन्दर्य को प्रत्येक दशा मे प्रकाशमान बनाया है।[2] भवभूति ने मालती

---

[1] अङ्गभूषणनिकरो भूषयतीरयेव लौकिको वाद । अङ्गानि भूषणाना मामपि सुषमामजीजनैस्तस्या —पार्वती परिणय पृ ३९

[2] अभिज्ञान-शाकुन्तलम्

के सौन्दर्य को भी इसी प्रकार का बताया है।[1] नागानन्द की नायिका अपनी कोमलता और मसृणता के कारण स्तन के भार को भी खेद उत्पन्न करने वाली जानती है पाद युगल का भार वहन करने म समर्थ नहीं हो पाती। अत नूपुर और हार जैसे प्रसाधनों को धारण करने पर भी यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि वह उस भार को सहन कर सकती है या नहीं। इस नाटक का नायक नायिका से कहता है कि तुम व्यर्थ म अंगो म भूषणों को केवल क्लेश का अनुभव करने के लिये धारण करती हो अन्यथा तुम्हारे अंग स्वत ही भूषण हैं[2] भाव के विचार से स्वभाव से रमणीय सौन्दर्य को ये प्रसाधन और भी अधिक रमणीय बना देते हैं।[3] यहाँ सहज सौन्दर्य की महत्ता स्वीकार की गई है। मण्डन रमणीयता म योग देते हैं, परन्तु आलम्बन के सौन्दर्ययुक्त होने पर ही उनकी उपादेयता सम्भव है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् म प्रियम्वदा शकुन्तला से कहती है कि आश्रम म सुगमता से प्राप्त होने वाले प्रसाधनो से उसका सौन्दर्य विकृत ही होता है।[4] इस स्थल पर नागरिक-सौन्दर्य प्रसाधनों की महत्ता आश्रम सुलभ प्रसाधनो की अपेक्षा अधिक स्वीकार की गई है। इससे सहज सौन्दर्य का उत्कर्ष होता है परन्तु आश्रम मे प्राप्त सौन्दर्य प्रसाधन सहज सौन्दर्य को विकसित नहीं करते हैं। विप्रकायते का अर्थ सौन्दर्य को मुखरित न होने देने से है उसे बिगाड़ने से नहीं है। यह बात दूसरी है कि नागरिक अलंकारों के अभाव म शोभा बढ़ नहीं पाती है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य म प्रसाधनो द्वारा सौन्दर्य वृद्धि को स्वीकार किया गया है यद्यपि कहीं कहीं सहज सौन्दर्य की महत्ता भी स्वीकार की गई है। कालिदास ने सौन्दर्य की उपयोगिता पर भी ध्यान दिया है। उन्होंने सौन्दर्य को प्रिय के सौभाग्य देने वाला माना है[5] शृङ्गार की सफलता भी इसी मे है कि प्रिय उसे

---

1 मालती माधवम् ६।१।६१ भवभूति।

2 खेदायस्तनभार एव किमु ते मध्यस्य हारोऽपर।
श्रीमत्पूरुयुग नितम्बभरत काञ्चानया किं पुन।
शक्तिपाद्युगस्य नोरुयुगल वोढुं कुतो नूपुरौ।
स्वाङ्ग रेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम्।

नागानन्द। ३।३७ हर्ष।

3 स्वभावरमणीयानि मण्डितानि अति रमणीय भवन्ति। भास ना च ४७

4 आभरणोचित रूपमाश्रमसुलभ प्रसाधनविप्रकायते।

कालिदास ग्रन्थावली-पृ ४८ द्वितीय खण्ड

5 प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता। ५।१ कुमारसम्भवम्।

स्निग्ध दृष्टि से देखे[1] इसीसे प्रिय के आगमन पर किया गया मण्डन अधिक महत्वपूर्ण होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेष रचना के मूल मे आकपण की यही प्रवृत्ति कायशील रहती है। सहज सौदय के साथ ही प्रसाधन प्रिय को रिझाने की क्षमता धारण करते है।

शृङ्गार प्रसाधनो की व्यावहारिक उपयोगिता को हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियो ने भी स्वीकार किया है। गग कवि ने राधा का शृङ्गार कृष्ण के लिये ही बताया है।[2] पद्माकर की नायिका का शृङ्गार करते हुए सखी श्याम के पसन्द का ध्यान रखती है।[3] शृङ्गार की यह उपयोगिता प्रिय को ध्यान मे रख कर वर्णित की गई है। अन्य स्थलो पर दो भिन्न दृष्टिया दीख पडती हैं। प्रथम दृष्टि म प्रसाधनों द्वारा रूप के सवाई बढ जाने की चर्चा है, परन्तु इसका भी अन्ततोगत्वा उद्देश्य प्रिय को रिझाना ही है। दास कवि का मत है कि विमलगात मे आभरण रूप को बढा देते है।[4] बिहारी ने सहज सौदय को ही अधिक महत्व दिया है। उनके विचार से आभूषण तो सहज सौदय मे वैसे ही दीख पडते हैं जसे दपण मे लगा हुआ मोरचा। अत आभूषणो के द्वारा ही सौन्दय वृद्धि का विचार इनको पसन्द नही है।

इन आभूषणो और वस्त्रों के धारण से दो बातो का ज्ञान होता है। प्रथम आत्म प्रदशन की भोग मूलक भावना और दूसरे अगो के आकषक प्रदशन से रति भाव का सचार करना। अपने वैभव एव ऐश्वय की विज्ञप्ति की ओर भी ध्यान रहा है। यह भाव मुख्यत रीतिकाल म दीख पडता है, परन्तु भक्तिकाल मे भी सूर की गोपी बडे अभिमान के साथ कहती हैं कि मैं आज जितने आभूषण पहन कर आई हू घर पर इससे दूने आभरण हैं।[5] ये मूल्यवान प्रसाधन नायक को आकर्षित करते हैं तथा नायिकाएँ इसी के माध्यम से मानसिक उल्लास एव राग की अभिव्यक्ति करती हैं। इनके द्वारा आभूषणो के प्रति मोह और समृद्धि की स्थिति का ज्ञान होता है। अत सौदय के ये

---

1 आत्मानमालोक्य च शोभामानमादश बिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणा प्रियालोक फलो हि वेष। कु सु ७।२२

2 श्री नन्दलाल गोपाल के कारण, कीन्हें शृगार जो राधे बनाई।
सुन्दरी तिलक ६।६८७ गग।

3 त्यो पद्माकर या बिधि और हू साजि शृगार जो श्याम को भावै।

4 लागत विमल गात रूपन के आभरण।
बढ़ि जात रूप जातरूप मे सवाई है। दास–शृगार निर्णय पृ ६

5 जितनी पहिरि आज हम आई घर है याते दूनो। सूरसागर पद १५४१

प्रसाधन सामाजिक स्थिति की वभव सम्पन्नता और जन सामान्य म इनकी अप्राप्तता का बोध कराते हैं। इन प्रसाधनो का उद्देश्य रूप विन्यास द्वारा सौन्दय को बढाना और प्रिय को रिझाना है।

तटस्थ सौन्दय—

मानव की प्रमुख प्रवृत्ति सौन्दय मूलक है। वह जड चेतन सभी वस्तुओं मे इसी सौन्दय को पा लेने का अभिलाषी है। उसकी सौन्दय मूलक यह भावना सम्पूर्ण जगत को अपना अधिष्ठान बनाती हैं। अपनी इसी वृत्ति द्वारा वह स्वय इसका अनुभव करके दूसरो के लिये भी प्रेषणीय बनाता है। चेतन जगत् के अतिरिक्त जड पदार्थों मे सुन्दरता देखने का कारण मनुष्य की रागात्मकता है। प्रत्येक वस्तु यदि किसी को सुन्दर दीखती है तो उसका कारण उसका मानव-सापेक्ष होना है। मानव अपनी भावनाओं का आरोप करके वस्तु मे सुदरता का सायुज्य उत्पन्न कर देता है। यदि वह वस्तु मानव भावनाओं की कोमल परिधि मे नही आती, तो ऐसी स्थिति म उसम सुदरता का आभास नही हो पाता है अपितु वह वस्तु उसे उदासीन प्रतीत होता है। उदासीनता का अथ उस वस्तु की अपने आप म एक रूपता है। वह वस्तु जसी है वैसी ही रहेगी। मानव के आकषण अथवा विकषण का साधन नही बन सकती है। ऐसी स्थिति मे वस्तु का तटस्थ रूप मानव की अनुभूति के क्षेत्र म नही आ सकेगा। मानव सापक्ष होकर ही उसम चेतनता और सुन्दरता आ जाती है। अत सिद्ध होता है कि प्रकृतिगत या प्राकृतिक पदार्थों की सुन्दरता तभी होगी, जब उसम मानव भावना का योग हो जाय।

प्रकृति-गत पदार्थों के मानव सापेक्ष होने के साथ उसका निसग सिद्ध सौन्दय भी होता है। वसन्तकालीन पुष्प गन्धा से युक्त मलयानिल का प्रवाह ग्रीष्म की प्रचण्डता चन्द्र की शीतलता तारक खचित आकाश कल निनादिनी सरिताएँ उत्तुग पवत शिखर पक्षियो के मधुर कलरव प्रकृति का रूप, वृक्ष वाटिकादि सभी म सौन्दय लक्षित होता रहता है। इन पदार्थों के सौन्दय का आन्तरिक महत्व होता है। सुवासित मन्द मन्थर गति से प्रवाहित होने वाला वायु किसको आकर्षित नही कर लेगा। कोयल की कूक को सुन कौन रसिक आनन्दित नही होगा, पपीहे की पुकार म अपने 'पी' की स्मृति किस प्रोषित पतिका को न हो सकेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृति के उपकरणों मे हृदय को आवर्जित कर लेने की एक महान् शक्ति है। इस शक्ति का ज्ञान सवेदनशील हृदय का होता है। वह अपनी सवेदनशीलता की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के अनुसार ही प्रकृति म सौन्दय अथवा विरूपक प्रवृत्ति को पाता है। यदि प्रकृति के पदाथ उसके नित्य अनुकूल हैं तो वे सौन्दय वृत्ति के विधायक

होने के साथ भावनाओं को प्रियता की ओर मोड देने मे सहायक होंगे और प्रतिकूल होने पर प्रकृति या तो भावनाओं को दु ख मूलक बना देगी या पुन उसके प्रति विकषण उत्पन्न कर देगी। इस दृष्टि से प्रकृति उद्दीपक हो जाती है।

उज्ज्वल नीलमणिकार ने इन उद्दीपक गुणो का सकेत किया है। उन्होंने बताया है कि गुण, चेष्टा, अलकृति और तटस्थ ये चार उद्दीपक गुण हैं। इनसे आलम्बन की शोभा बढती है, इससे इनकी गणना सौन्दय के उपकरणो मे से है। इन चारो मे तीन का सम्बन्ध नायक अथवा नायिका से साक्षात् रूप मे बना रहता है। रूप लावण्य और चेष्टा नायक या नायिका के शरीरादि से सबन्धित सौन्दय के उपकरण है। प्रसाधन शरीर का भाग न होने पर भी सुन्दरता बढाने म मुख्य है। इससे छिपी शोभा विकसित होती है। प्रकृति, दूती आदि द्वारा भावनाओं मे सौन्दय की अभिवृद्धि शरीर से सम्बन्धित कारण न होकर बाह्य कारण है। इससे इसे तटस्थ सौन्दर्य की सज्ञा प्राप्त है। इसमे कोई सदेह नही कि वन उपवनादि की शोभा से मन प्रभावित होता हैं, वह सौन्दय की ओर ललकता है और उसके उपभोग की कामना प्रकट करता है। सस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक देखें —

य कौमारहर स एवहि वरस्ता एव चैत्रक्षपा ।
ते चोमीलित मालती सुरभय प्रौढा कदम्बानिला ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापार लीलाविधौ ।
रेवा रोधसि वेतसी तरुतले चेत समुत्कण्ठ्यते । का० प्र०

इस तटस्थ सौन्दय का वणन कवियो ने मुख्यत निम्नलिखित दृष्टि कोणो से किया है —

१ मानव भावनाओ की सापेक्षता मे।
२ मानव सौन्दय को स्पष्ट करने के लिये अप्रस्तुत विधान मे।
३ यथातथ्य रूप मे।

मानव भावनाओं की सापेक्षता मे—प्रकृति का सौन्दय प्रतिक्षण बदलता रहता है। यह मानव निरपेक्ष होकर अपने दिव्य एव यथातथ्य रूप मे प्रकट हो जाता है, परन्तु मानव भावो की सापेक्षता से उसमे विद्रूपता अथवा आकषण का अनुभव होने लगता है। प्रकृति स्वय तो दुःख सुखादि भावों का अनुभव नहीं करती, परन्तु हमारी भावनाओ के आरोप से वह ऐसा करती हुई सी प्रतीत होती है। इस प्रकार का वणन मानव भावनाओ की सापेक्षता से ही माना

जायगा। हम प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर अपनी एक धारणा बना लेते हैं और काव्य सृजन के अवसर पर उन्हीं मानस प्रतिबिम्बों का सहारा लेते हैं।

दूसरी बात यह है कि मानव सौंदर्य का मुख्य आधार प्रकृति ही है। मानव प्रकृति से रस का संग्रह करता है और उसी से उसके सौन्दर्य को रूप मिलता है। इसका यह कारण है कि मानव सौंदर्य की एक सीमा होती है जहाँ पहुँच कर उसके सौन्दर्य का उतार आरम्भ हो जाता है परन्तु प्रकृति सौंदर्य में शाश्वतता रहती है। यह सौन्दर्य सदैव आनन्द दायक ही होता है। मानव की मानसिक स्थिति की विपरीतता में इस प्राकृतिक सौन्दर्य की विद्रूपता प्रकट होने लग जाती है। सूर की गोपियों ने इसी से कालिंदी को काली देखा है पपीहा उन्हें दुख दाई प्रतीत होता है और हरे भरे मधुबन को देख कर उन्हें आश्चर्य होता है।[1] यहाँ न तो कालिंदी काली हो गई है और न पपीहा दुख देने वाला ही हो गया है परन्तु मानव भावों की सापेक्षता में ऐसा प्रतीत होने लगा है। यह बात दूसरी है कि गोपियाँ अपने दुख का प्रतिबिम्ब उसमें पाकर उसके काली होने के हेतु की कल्पना कर लेती हैं। इससे स्पष्ट है कि मानव सौंदर्य की अभिव्यक्ति में प्रकृति का महत् योग है। अनुभूतिकर्ता मानव के कारण ही यह चराचर जगत् सुन्दर प्रतीत होता है और इस सुन्दरता से मानव इतना अभिभूत हो उठता है कि अपने शारीरिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति को अप्रस्तुत रूप में ग्रहण करता है।

प्रकृति सौन्दर्य मानव भावनाओं की सापेक्षता में न आवे तो ऐसी स्थिति में उसका आलम्बन गत रूप ही प्रस्तुत होगा। परन्तु मानव-सापेक्ष होकर वही उद्दीपक हो जाता है। प्रकृति स्वयं सुख या दुख का अनुभव नहीं करती। उसका अस्तित्व तो एक रस है उसे मानव की अपेक्षा भी नहीं रहती परन्तु मानव अपनी शोभा और सौन्दर्य को बढ़ाने में प्रकृति की सहायता लेता है। इसी दृष्टि से मानवीय सौन्दर्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह मानव सौन्दर्य का पोषक है। प्रकृति का रूप पक्ष उसका

1—(i) देखियत कालिन्दी अति कारी। सूरसागर

(ii) हौं तो मोहन की बिरह जरी, तू कत जारत।
रे पक्षी तू पापी पपीहा पिउ पिउ कत अधिरात पुकारत।
सूरसागर

(iii) मधुबन तुम कत रहत हरे।
बिरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे। सूरसागर

वास्तविक आधार है, जिसे ग्रहण कर मानव अपनी भावनाओं के अनुकूल उसे ढाल लेता है। इस दृष्टि से प्रकृति सौन्दर्य दो बातों पर निर्भर है—

(१) प्रकृति का आत्मपरक गुण—यह उसका रूपपक्ष है, जिसमें स्पर्श और दृश्य आदि को मानव इन्द्रिय सुखदता रहती है। यह मूल आधार है।

(२) प्रकृति के विभिन्न गुणों को ग्रहण करने की रागात्मक अनुभूति। प्रकृति का यह भोग पक्ष है अर्थात् यह पक्ष प्रकृति की मानव जीवन गत उपयोगिता का आधार स्तम्भ है। इसमें कलाकार का संवेग संकुल हृदय विभिन्न परिस्थितियों आदि से सम्पन्न होकर प्रकृति के पूर्वानुभूत प्रस्तुत संदर्भ को कल्पना द्वारा अप्रस्तुत रूप में लाकर अनेक मार्मिक छवियों का अंकन करता है। इस प्रकार अप्रस्तुत रूप में लाये गये प्राकृतिक उपकरणों को मानव-भावनाओं के योग से सुन्दर बनाकर वस्तु की प्रस्तुति (Presentation) आकर्षक बिम्ब विधान द्वारा की जाती है। इसमें पूर्व अनुभव, उसका सौन्दर्य परक कल्पनात्मक रूप और प्रत्यक्ष अनुभूति इन तीनों का योग रहता है। इनमें प्रकृति का मूक सहयोग मानव भाव एवं चेतना के अनुकूल ही परिवर्तित होता रहता है। यदि प्रकृति में निज का सौन्दर्य न हो, तो वह आकर्षण का साधन ही नहीं बन सकती है उसका यह अपनत्व अपनी आकर्षण की प्रबलता के कारण मानव-मन को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। ऐसी स्थिति में जब मानव के विचार एवं भावनाएं उस प्रकृति से सम्बद्ध हो जाती हैं तो प्रकृति की सौन्दर्य परक आत्मलीनता सुन्दर दीख पड़ती है। सच तो यह है कि हमारा स्वत्व इतना प्रबल होता है कि प्रकृति के आत्मपरक रूप की यथार्थता बहुत कम दीखती है। वह हमारी अन्तर्दशा एवं मनोवृत्तियों के अनुकूल कभी सुन्दर और प्रिय तथा कभी असुन्दर कुरूप या विपरीत दुखद भावों की जनक बन जाती है। यदि ऐसा न होता तो रास के समय सुखद रूप में वर्णित वही यमुना, कुंज चांदनी आदि कृष्ण के वियोग में काली, प्रतिकूल और साँपिन सी प्रतीत नहीं होती।[1] इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति के निसर्गगत सौन्दर्य में तो कोई अन्तर नहीं आता, परन्तु मानव मन की संवेदनशीलता के अनुकूल या प्रतिकूल होने पर हमारी स्वयं की सौन्दर्यानुभूति प्रकृति में तदनुकूल भावनाओं का बिम्ब पा लेती है। मानव की प्रकृति-सम्बद्ध ये भावनाएँ निम्नलिखित रूप में प्रकट होती हैं—

---

1 पिया बिनु साँपिन काली राति।
कबहुँक जामिनी होति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति।' सूरसागर

(१) प्रकृति की अनन्तता विशालता और व्यापकता से उसके महत् रूप का अनुभव एवं वर्णन।

(२) प्रकृति की संवेदनात्मक अनुभूति से युक्त उसका ऐन्द्रिय रूप। यही रूप मध्यकालीन साहित्य में ग्राह्य है।

प्रकृति का यह संवेदनात्मक रूप अनुकूलवेदनीयता और प्रतिकूल वेदनीयता से दो प्रकार का हो जाता है। प्रकृति की रमणीयता हमारी संवेदनाओं से प्रतिबिम्बित होकर समक्ष आती है जब प्रकृति में हमारे भावों का सुख प्रतिबिम्ब पड़ता है तो प्रकृति सुन्दर सहायक और सहचारिणी के रूप में दीख पड़ती है। उसकी रमणीयता हमारे भावों के अनुसार ही परिवर्तित होती रहती है परन्तु मन के क्षुब्ध या दुखी रहने से प्रकृति भी उदास दीख पड़ती है। प्रकृति सुख और दुःख दोनों ही अवस्थाओं में भावों को उद्दीप्त करती है। अन्तर यही है कि सुख की या संयोग की अवस्था में प्रकृति हमें रमणीय लगती है, हमारे भावों में सौंदर्य भोग की उद्भावना करती है और उससे हमें सुन्दरता की अनुभूति होती है। इस दृष्टि से वह उद्दीपक हो जाती है परन्तु वियोग की अवस्था में वही प्रकृति दुःखदायिनी हो जाती है। इस प्रकृति को समझने एवं अपने सौंदर्य वृत्ति को स्पष्ट करने के लिये मानव उसकी सुन्दरता का चयन करता है उसके गुणों का विश्लेषण करता है और उन्हीं गुणों को मानव अंगों या क्रियाओं आदि का उत्कर्ष दिखाने के लिये उपमान रूप में ग्रहण करता है। प्रकृति के इस रूप का ग्रहण अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत आता है।

अप्रस्तुत रूप में प्रकृति के ग्रहण करने की भावना का एक क्रमबद्ध विकास है। आरम्भिक युग में प्रकृति के प्रति मानव की भय मिश्रित श्रद्धा की भावना थी। यहाँ प्रकृति के उदात्त रूप की महत्ता थी क्रमशः प्रकृति के सतत साहचर्य से यह श्रद्धामूलक भावना सामाजिक चेतना में बदलने लगी। मानव अपने चतुर्दिक बिखरे हुए प्रकृति के विभिन्न अंगों को अपने सचेतन सम्बन्धों के समान ही सहचर, साथी सम सुख दुःख भोगी समझने लगा। उससे निकटता बढ़ने लगी उसमें उसे सौन्दर्य दीख पड़ा और उसकी यह सौंदर्य चेतना इतनी बढ़ी कि अपनी प्रत्येक सौंदर्याभिव्यक्ति के लिये उसे प्रकृति का सहारा लेना पड़ा। वह अपने कोमल साथी को देखकर उसकी कोमलता का वर्णन करना चाहता था परन्तु वह असहाय था। अतः प्रकृति ही आगे बढ़ी और पुष्पों की कोमलता उसकी कल्पना में बिखर गई। वह उसका स्पार्शिक अनुभव करने लगा। उसने पाया कि प्रकृति तो बड़ी ही कोमल सहृदय आकर्षक और रूप

यती है। चाक्षुप अनुभव से प्रकृति की रम्यता और उसके वर्णों की रमणीयता का रहस्य खुल गया। उसे अपन सौन्दय-चेतना को व्यक्त करने का एक सबल आधार मिल गया। उसकी वाणी जहाँ भी मानवीय सौन्दय के वर्णन में रुकती जान पडी, वही उसने तत्काल प्रकृति को उपमान वनाया और अपनी भावनाओं को सन्तुष्ट किया। हिन्दी के कवियों न मानव की प्रत्येक स्थिति मे प्रकृति का अवलम्व लिया है। सयोग वियोग म पेड, पौद, पक्षी, पशु उपस्थित रहने लगे। धीरे धीरे उपमान रूप मे इनकी गणना होन लगी। नायक नायिका के सौन्दय को व्यक्त करने मे इन कवियो ने अपनी सूक्ष्म कल्पना शक्ति का परिचय दिया। नायिका के रग के लिये चम्पा, केतकी, कान्ति के लिये जुन्हाई, किरण-कतार, मुख के लिये कमल, नेत्र के लिये खजन, मीन, मृगज, चकोर कमल आदि, अधर के लिये बधूक मूगा आदि, दाता के लिये कुन्द कली, नासिका के लिय शुक, बाहो के लिय मृणाल नाल, वक्ष के लिये चक्रवाक श्रीफल, घट, पवत आदि, उरु के लिये कदली खम्भ, नाभि के लिये कुण्ड, लालिमा के लिये ईगुर आदि उपमानो का प्रयोग करके कवियो ने इन पदार्थों के सौन्दय परक भाव की ही अभिव्यन्जना की है। प्रकृति के अधिकाश उपमानो द्वारा नारी सौन्दय की अभिव्यक्ति ही हुई है, कही कही इन्ही उपमानो से पुरुप के सौन्दय को भी अभिव्यक्त किया गया है। मानव बुद्धि प्रकृति से सौन्दय का चयन करती है कलाकार का मानस इसका अनुभावन करता है। वह अपनी ग्राहिका शक्ति द्वारा उस प्रकृति सौन्दय को सवेदना म वाधकर उसकी प्रत्यक्षानुभूति कराता है।

प्रकृति मे भाव पक्ष की प्रधानता होने से वह मानव सापेक्ष बनती है, परन्तु उसके 'रूप' पक्ष की अवहेलना नही की जा सकती है। रूप सौन्दय का आधार है और इस रूप की महत्ता तभी मानी जायगी, जब उसे मानव-सौन्दय चेतना की स्वीकृति प्राप्त हो जाय। प्रकृति का रूप पक्ष मानव की भाव प्रक्रिया और अनुभूतियो का सम्बल पाकर सौन्दय का साधन बन जाता है। इससे प्रकृति का रूप पक्ष और मानव की अनुभूतियाँ इन दोनो का युगपत् महत्व है। इन अनुभूतियो के अभाव म प्रकृति के उपमान रूप की अप्रस्तुत योजना सफल नही हो पाती है। उसकी सफलता मानव के ऊपर निभर है, उसका रूप मानव भावो के अनुकूल बनता विगडता है उसका सौन्दय अचिर है, शाश्वत है, आवश्यकता कवल इस बात की है कि इस सौन्दय का अनुभव करने वाला सवेदनशील हृदय हो। एस सहृदय के सम्पक से प्रकृति का सौन्दय खुल जाता है और उसकी रमणीयता शत शत रूपो म विश्व म फल जाती है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम इस निणय पर पहुँचते है कि मानव के रूप सौदय की निभरता अनेक बाता पर रहती है। यह सौन्दय स्वय म साध्य नही है अपितु यह अपने हृदय की तृप्ति अथवा प्रिय के रिझाने का एक साधन है। यह तृप्ति तभी सम्भव है जब व्यक्ति स्वय अपने रूप पर रीझ जाय परन्तु स्वय रीझकर रूप सौदय की प्रशसा क दना सामाजिक उपयोगिता नही रखता। इसके लिये दूसरो का रीझना आवश्यक है। इससे सौदय की उपभोग मूलक भावना को प्रश्रय मिलता है रूप का आकषण बढ़ता है और अपने प्रिय के मन पर रूप सौदय का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के लिये रूपाकार का नसगिक-सौदय प्रसाधक साधना से कई गुना बढ़ जाता है। प्रसाधन सौदय को प्रस्फुटित करते हैं उसे रमणीय बनाते हैं। इन प्रसाधनो के साथ व्यक्तिगत गुण चेष्टा आदि से रूप की मोहकता बढ़ जाती है। आल म्बन की इस मोहकता रूपाकषण और सौदयानुभूति से आश्रय इतना प्रभा वित होता है कि उसकी भावनाए आलम्बन के रूप सौदय-जन्य अपनी अनुभूतियो को दूसरो के लिये प्रेषणीय बनाने की अभिलाषा से प्रकृति के कोमल, सुखद, मधुर आकषक और सुन्दरतम पदार्थों का सग्रह उपमान रूप म कर लेती है। यही सग्रह अभिव्यञ्जनात्मक शिल्प का स्पश पाकर अप्रस्तुत विधान के रूप म तटस्थ सौन्दय का कारण बन जाता है। अत रूप-सौन्दय की मोहकता और आकषण व्यक्ति आलम्बन के गुण और चेष्टाओ पर निभर है। गुण और चेष्टाओ के अभाव मे सौदय का अनुभव नही हो पाता। नसगिक गुणो के रहने पर प्रसाधन गत उपकरण उस सौदय को बढ़ा देते हैं और प्राकृतिक सौदय से मानव-सौदय को स्थिति और सत्ता मिल जाती है। इन्ही सौदर्योत्कषक तत्वो के आधार पर आगे के अध्यायो म रूप सौदय का विश्लेषण किया जायगा।

भक्ति-काल में रूप-सौन्दर्य

(१) भक्ति मूलक प्रवृत्ति के कारण
(२) राम के रस अधिष्ठाता न होने के कारण।
(३) मधुर रस के अधिष्ठाता रूप में श्रीकृष्ण।
(४) (अ) सौंदर्य के गुण-परक उपादान
        (क) सूक्ष्म गुण
        (ख) स्थूल गुण
    (आ) चेष्टापरक सौंदर्य
        (क) विशेष चेष्टा
        (ख) सामान्य चेष्टा
    (इ) प्रसाधनगत सौंदर्य
        (क) धारण किये जाने वाले प्रसाधन
        (ख) लगाये जाने वाले प्रसाधन
        (ग) अन्य उपकरण
    (ई) तटस्थ सौंदर्य
(५) निष्कर्ष।

भक्ति-काल मे रूप सौन्दर्य

प्रत्येक रचना अपने युग की प्रवृत्तियो और रचनाकार की मनोवृत्ति के अनुसार अपना रूप ग्रहण करती है। उसका वर्ण्य विषय युग की सापेक्षता मे रचनाकार की आत्मानुभूति से सचालित होती है। वह युग के विचार प्रकाश में प्राचीन परम्पराओ से अनुप्राणित होता हुआ अपनी विशेष प्रवृत्ति और अनुभूति के कारण समकालीनो से भिन्न अस्तित्व रखता है। उसका यह अस्तित्व रचना को रूप और दिशा देता है। रचना का रूप, उसका वर्ण्य विषय आदि व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण भिन्न होता हुआ भी युग की *सर्वांङ्गीण और व्यापक भावनाओ का प्रतिबिम्ब है। युग का यह प्रतिबिम्ब* प्रत्येक साहित्य के प्रत्येक काल की रचना म दीख पडता है। भक्ति काल मे युग भावनाओ की यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह प्रवृत्ति प्राचीन एव निकट अतीत की साहित्यिक पृष्ठभूमि का अवलम्ब लेकर प्रचलित विचारो एव भावनाओ मे फलती एव विकसित होती आई है। इस विकास के दो प्रमुख कारण माने जा सकते हैं—

१ मनोवैज्ञानिक कारण।

२ समसामयिक प्रवृत्ति मूलक कारण।

मनोवैज्ञानिक कारण—आलोच्य काल की भक्ति के विकास मूलक प्रवृत्तिया का परिवतन एक दिन की घटना नही है। यह वर्षों से चली आती हुई विचारधारा का एक सशक्त अनुभूति पूर्ण और सुव्यवस्थित स्वरूप है। भक्तिकाल के पूव की साहित्यिक अव्यवस्था और भावनाओ की अस्थिरता से इस कथन की सत्यता प्रकट हो जाती है। इस काल के पहले की घटनाओ एव राजनतिक आक्रमणो से धार्मिक अस्थिरता आ गई थी। सगुण के प्रति अनास्था के भाव का उदय होना स्वाभाविक था। बौद्ध धम की क्षीणावस्था अपनी अन्तिम सीमाओ मे प्रदशन के चमत्कार का सम्बल लेकर नाश के कगार पर स्थित किसी सबल धार्मिक आन्दोलन के एक धक्के की बाट देख रही थी। दूसरी ओर *नाथपथी और ज्ञान-मार्गियो का* प्रबल वेग अपने प्रवाह म सबको बहा ले जाना चाहता था। इस प्रकार दो धार्मिक विचार धाराएँ सगुण भक्ति के पूव काय कर रही थी।

इनम बौद्ध धम की उपासना पद्धति को युग प्रवृत्तियो मे ढाल कर उसे व्यावहारिक, आकपक एव मोहक रूप दे दिया गया था। तत्र सम्प्रदाय म

मोहन, वशीकरण का प्राबल्य बना। भरवी चक्र-साधना ने नारी विनाश को प्रश्रय दिया महा सुख की कल्पना यथार्थ जीवन की साकारता पाने लगी। प्रवृत्ति मूलक यह धर्म पद्धति जन-सामान्य का ध्यान सांसारिक अनुरक्ति की ओर आकृष्ट करने लगी। भोग और धर्म दोनों वृत्तियों की तृप्ति का अपूर्व अवसर मिल गया। धर्म के क्षेत्र में मन को आकर्षित कर लेने वाली भावनाएँ सजगता पर थी। साधकों का ध्यान रूप के आकर्षण और चमत्कार पर केंद्रित होने लगा। पूर्व वर्णित कारण के विकास से भी यही पता चलता है कि उनमें इन गुणों की प्रतिष्ठा पहले ही हो चुकी थी। अतः यह कहा जा सकता है कि सामयिक सन्दर्भ में इनकी और भी उपयोगिता जान पड़ने के कारण कृष्ण भक्तों ने उनका रूप प्रस्तुत किया। इन्होंने लोगों की प्रवृत्ति एवं राग मूलक भावनाओं की पहचान कर उनकी मानसिक भाव भूमि के अनुकूल ही उपासना पद्धति के लिये सुन्दर ललित शोभा आदि गुणों से सम्पन्न ऐसा आराध्य प्रस्तुत किया जिसके रूप सौन्दर्य चेष्टाओं, क्रियाओं आदि में दैनिक जीवन की अनुभूति मय प्रवृत्ति मूलकता दीख पड़ी। उनका आलम्बन सौन्दर्य का अतुलित पुञ्ज था, आकर्षण का केन्द्र था तथा लावण्य एवं छवि धारा को प्रवाहित करने वाला था। ऐसे सौन्दर्य पुञ्ज आलम्बन कृष्ण को प्रस्तुत करने में भक्तिकालीन कवियों ने अवसर एवं मानसिक अन्तश्चेतना का पूरा-पूरा लाभ उठाया। यही कारण था कि इन कवियों द्वारा वर्णित कृष्ण के रूप सौन्दर्य वर्णन जैसा सौन्दर्य अन्य स्थलों पर प्राप्त नहीं होता।

कृष्ण परक साहित्य की रचना का दूसरा प्रेरक कारण ज्ञान मार्गियों की साधना पद्धति थी। इस साधना में अलौकिक सामान्य चमत्कार का वर्णन होता था। नाड़ियों एवं चक्रों का वर्णन लोगों के लिये अग्राह्य था, उलट वासियों की बौद्धिक गुत्थियाँ सुलझाये नहीं सुलझती थी। 'गगन मण्डल के' 'शून्य महल' में पिया की 'अरूप झाँकी' पकड़ में नहीं आ पाती थी। अरूप और वायवीय 'तेज' मन को स्थिर नहीं कर पाता था। यही कारण था कि साधकों का मन अरूप में बहुत काल तक टिक न सका। भौतिक नाम रूप जगत का प्राणी ऐसे आराध्य को ढूँढने लगा जिसका रूप और नाम साधकों जैसा ही हो जिसके कार्य उन्हीं जैसे हों और जो उन जैसा ही सुख-दुःख का अनुभव करने वाला हो। लोगों की इस प्रवृत्ति को कृष्ण भक्तों ने पहचाना और उसे अपनी भावनाओं के अनुकूल पाकर उनकी उस पिपासा को श्रीकृष्ण की रूप माधुरी की धारावार वर्षा करके शान्त किया सगुण के प्रति आस्था और ललक की इस भावना का मान्यदान का सफल प्रयास किया और इस

प्रयास की प्रेरणा वैष्णव आचार्यों एव बगाली भक्तो ने इन कवियो को दी। इस प्रकार श्रीकृष्ण के इस रूप की स्थापना म समसामयिक प्रवृत्तियाँ भी काय कर रही थी।

समसामयिक प्रवृत्तिया—जगद्गुरु शकराचाय का ब्रह्म निरूपण और मायावाद सामान्य लोगो के लिये अग्राह्य बना रहा। समाज शक्ति, शील और सौदय युक्त ऐसे मानव वपु धारी भगवान को देखना चाहता था, जिसम उन्हीं की भावनाएँ विकास पा रही हो। ऐसे भगवान की स्थापना के लिये रामानुजाचाय प्रयत्नशील हो चुके थे निम्बार्काचाय ने राधाकृष्ण की सम्मिलित उपासना पर बल दिया था मध्वाचाय का द्वैतवाद नवधाभक्ति का समथक बना। भक्ति के इन प्रकारो मे सख्य भाव और आत्मनिवदन रूप कान्तासक्ति ने शृङ्गारिक भावनाओ और रति वणन को प्रश्रय दिया। सख्य भाव से भक्त भगवान के गूढतम और एकान्त लीलाओ मे भी सहचर या सहचरी रूप मे उपस्थित रहने लगा, उन लीलाओ का सयोजक बना, राधा के रूप या नख शिखादि का वणन करके कृष्ण के मन म प्रेम भाव को जाग्रत किया, राधा से अभिसार कराया खण्डिता प्रसगो की चर्चा की। इन सब प्रसगो मे गोपी-भाव की प्रतिष्ठा हुइ। भक्त नित्य विहार म गोपीभाव से सम्मिलित होने की आकाक्षा करन लगे। इस आकाक्षा का बहुमुखी विकास श्री वल्लभाचाय के माधुय या वात्सल्य रति विषयक साधना स हुआ। चैतन्य न अनुराग और रूप का आस्वादन 'राधाभाव' से किया। उन्ही के पद चिन्हो पर चलकर अनेक भक्त व्यावहारिक जीवन म राधा रूप म श्रीकृष्ण के प्रेम सौदय का आस्वादन करन लगे। इसस मधुर रस की स्थापना हुई। 'उज्जवल नील मणि' और 'भक्तिरसामृत सिन्धु' म मधुर या उज्ज्वल रस का पूण विवेचन प्रस्तुत किया गया। सम्पूण उत्तरी भारत म मधुराभक्ति का प्रचार हो गया। सहजिया पथ का प्रेममूलक परकीया भावना से समाज की रसिक प्रवृत्ति मेल खाती थी। इस भावना का ग्रहण मधुरा भक्ति मे कर लिया गया। इसकी सम्पूर्णता के लिये ब्रह्म ववत्य पुराणकार ने श्रीकृष्ण के साथ राधा का आविभाव किया। उन्हे कृष्ण की चिर सहचरी माना। इन दानो के साहचय म जिस युगल-स्वरूप की स्थापना हुई वह अपने सम्पूण माधुय, सौदय, रूप आदि म अश्रुत पूव और अतुलनीय था। युगल रूप के रूप सौदय की यह अनुपमता कालान्तर मे साहित्य की मूल भावना के रूप मे विकसित हुइ। इस सौदय पुञ्ज की प्राप्ति के लिये प्रियतम के रूप मे श्रीकृष्ण की मान्यता बढी, प्रिया रूप म अपने को प्रस्तुत करने की कामना जाग्रत हुई, प्रेम का निवेदन किया गया और प्रेम की यही अनुभूति मधुर रस के रूप म समक्ष आई।

मधुर-रस में रागानुगा-भक्ति का प्रचार अधिक मादक और मोहक था। इसमें माधुर्य की प्रबलता के कारण लोगों को उसमें अपनी ही अनुरक्ति दीख पड़ने लगा। गौड़ीय सम्प्रदाय के मधुर भाव में रागात्मकता अधिक थी। इसी मधुरता का गान जयदेव विद्यापति और चंडीदास ने किया। जयदेव का गीत गोविन्द विहार-वर्णन से ही प्रारम्भ होता है 'हरिरिह विहरति सरस वसन्ते' विद्यापति राधा रूप की असीमता में बह जाते हैं। राधा के नाना रूप चित्रों का इतना सरस मधुर और हृद्य भावज चित्र अन्यत्र नहीं मिलता। इन्होंने [illegible] सम्बन्धी शृङ्गार रसपूर्ण साहित्य का सृजन किया। वैष्णव रसशास्त्र के व्याख्याता सनातन रूपगोस्वामी जीवगोस्वामी आदि के ग्रंथ प्रकाश में आ चुके थे। इन ग्रंथों की नवीन धारणा और विट्ठलनाथ जी की सेवा-पद्धति से अष्टछाप के कवियों ने राधा-कृष्ण का सौन्दर्य परक रूप उप-स्थित करके शृङ्गार को रस राजत्व स्थापित कर दिया। इस रस के आलम्बन रूप में राधा-कृष्ण को स्वीकार किया गया। श्रीकृष्ण रसेश्वर और राधा

(१) व्यक्तित्व का लोक रक्षक रूप ।
(२) व्यक्तित्व का लोक रजक रूप ।

लोक रक्षक रूप म लोक कल्याण की भावना रहती है । समाज की सत्ता और स्थिति बनाये रखने के लिये मगलमय कार्यों और आदर्शपरक चरित्र की उद्भावना करनी पडती है । यह चरित्र अपने दनिक व्यवहारो एव क्रियाओ से ऐसे नियम और आदर्श स्थापित कर देता है जिनका अनुसरण करने से दूसरो के हित पर आघात नही पहुँचता उसके बाह्य व्यापारो मे अवरोध उपस्थित नही होता और समाज के प्रत्यक मानव के स्वतत्र विकास को बल प्राप्त होता है । ऐसे मार्ग दर्शक चरित्र के प्रति जनसाधारण लोक जीवन श्रद्धा से अवनत हो जाता है, उसको पूजनीय मानता है और अपनी विनत भावो की पुष्पाञ्जलि को उसके महत् चरण पर चढाकर असीम आत्म-तृप्ति का अनुभव करता है । भगवान का श्रद्धास्पद यह प्रेरक रूप साधक की चचल प्रवृतियों को मर्यादित कर देती है । वह उसके समक्ष आत्म-लघुता की भावना से युक्त होकर उसकी महानता स सदा दूरी का अनुभव करता है । उसके गूढ व्यक्तिगत जीवन की चर्चा सीमा का अतिक्रमण मानता है । वह उसका सहचर बनकर उसके सग नही रह सकता । उसकी महत्ता की तुलना मे अपनी लघुता के कारण उसकी दास्य भक्ति की भावना ही समक्ष आती है अन्य कोई भावना नहीं । यदि दूसरी भावना को प्रश्रय दिया जाय, तो मर्यादा के कारण बनी हुई सीमा रेखा का उल्लघन हो जायगा । इसीसे ऐसे शीलयुक्त आराध्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना कठिन माना जाता है । इस तादात्म्य के अभाव मे मानव का हृदय पूर्ण रूप स स्पष्ट नही हो पाता, उसकी भावनाएँ अपने आप मे ही रह जाती है । वह केवल दास्य भक्ति सम्बन्धी विचारो को ही एक विशेष सीमा तक निवेदन के रूप म प्रस्तुत कर सकता है । निवेदन के ऐसे स्थलो पर बनाई गई लक्ष्मण रेखा साधक को नियन्त्रित करती है । वह डरते-डरते केवल उद्धार सम्बन्धी प्रार्थनाएँ ही कर पाता है, अन्य किसी प्रकार का विचार ही उसके मन म नही आता । ऐसे स्थलो पर आराध्य की तारक शक्ति की प्रशसा की जाती है उसकी महत्ता का गुणगान होता है, और उसके शील परक गुणो के समक्ष आत्म विस्मय का भाव व्यक्त किया जाता है । इस भाव की गहनता से साध्य का चारित्रिक मनोबल, शील और शक्ति, उसके कर्म का सौंदर्य आदि सभी उदात्त रूप मे वर्णित होते हैं । इस उदात्तता के समक्ष साधक की भावनाएँ सेवक-सेव्य के रूप मे आती हैं । भक्तिकाल म ऐसा उदात्त रूप 'राम' का था ।

राम के चरित्र म भगवान के दो गुणा शक्ति और शील का वरणन है। सौदय वरणन का पूरा विकास नहा है। इसके कई कारण हैं।

(१) राम-साहित्य म राम के अवतार का मुख्य कारण दुष्टा का नाश करके धम की पुन स्थापना करना है। धम सस्थापनाथ अवतरित भग वान म शक्ति की ही प्रबलता होनी चाहिए। इसके अभाव म दुष्टो का दलन नहीं हो पाता। शक्ति के समक्ष दुष्टो की उद्दण्डता स्वत भी दब जाती है। इस शक्ति के स्पष्टीकरण के लिय प्रस्तुत की गई अन्तकथाओं म भी ऐसी चर्चाए हाती है जिनमे उनकी-आराध्य की-शक्ति मूलक प्रवृतियां ही लक्षित हा।

(२) लोक कल्याणकारी भगवान दूसरो के हित म ही लगा रहता है। उसकी व्यक्तिगत समस्याएँ और चिन्ताएँ बहुत महत्वपूरण नही होती हैं। इसी से वह पारिवारिक जीवन तक म भी लोक मगल का ध्यान रखता है। राम का राज्य त्याग और पत्नी सीता का बनवास उनके इसी लोकमगल की साधना है।

(३) लोक मगलकारी अवतार का चरित्र बहुत ऊँचा होता है। शील अनुकरणीय माना जाता है। उसके जीवन म सब कुछ लोक सस्थापनाथ होता है। इसलिए शीलपरक किसी प्रकार की चपलता वण्य विषय नही बन पाती। यह चपलता शृङ्गार वरणन के प्रसग पर ही देखी जा सकती है। शृङ्गार की पूरा रसात्मकता के लिये रूप-सौदय रति-क्रीडा, चेष्टाओं आदि का वरणन होता है। यदि इस प्रकार का वरणन कर दिया जाय तो आराध्य का शील अनुकरणीय नही रह जायगा उसका चरित्र सामान्य रसिक प्राणियो जसा हा जायगा। अत राम जसे आराध्य के जीवन मे न तो शृङ्गार के लिये कोई स्थान है और न शृङ्गार साधक अन्य उपकरणो के लिये। शरीर के रूप लावण्य या नख शिख म विभिन्न अवयवो का आकार प्रकार आदि वरणन तो कल्पना की वस्तु है। दाम्पत्य रति का कामोत्तेजक वरणन राम के चरित्र म स्पृहणीय नही माना जा सकता था। इसी से राम के जीवन म रूप सौदय वरणन का प्राय अभाव है।

(४) राम मर्यादावादी थ। जीवन के प्रत्यक क्षेत्र म मर्यादा की स्था पना उनके चरित्र का ध्यय था। इस मर्यादा के लिए व्यक्तिगत जीवन तक को उत्सग कर देन म भी उनके मन म कभी विचार-विभ्रम उत्पन्न नहीं हुआ। वाल्मीकि रामायण उत्तर रामचरित्र और रामचरित मानस के अनेक प्रसगो से यह बात स्पष्ट हा जायगी। राम द्वारा विमाता की आज्ञा का पालन, भरत के लिय राज्य छोड़कर आत्म-स्वाथ का विसजन, एक सामान्य व्यक्ति के कहने

से अपनी धर्म पत्नी सीता का निष्कासन आदि प्रसग इसी मर्यादा की पुष्टता को व्यक्त करते हैं। ऐसे मर्यादावादी व्यक्ति के लिए रूप का महत्व ही क्या होगा ? जो चरित्र श्रृङ्गार और सौन्दर्य के प्रमुख आलम्बन नारी तत्व की चिन्ता नही करता, जो भौतिक सुख भोग से उपराम ग्रहण कर लेता है, जिनकी इन्द्रिया विषयो से विरत हैं, जो धर्म के अतिरिक्त कुछ जानता ही नहीं ऐसे चरित्र के जीवन मे रूप-सौन्दर्य की समुचित कल्पना दुराशा मात्र ही है।

(५) मध्यकाल के पूर्व प्राप्त राम साहित्य मे श्रृङ्गारिक परम्परा का अभाव है। राम सम्बन्धी प्रत्येक ग्रन्थ का रचनाकार इतना सजग था कि उसने श्रृगार रस का महत्व नही दिया। उत्तर रामचरित्र मे श्रृङ्गार से पुष्ट करुण रस है परन्तु वहा भी रूप सौन्दर्य न होकर पूर्व स्मृतियो से उत्पन्न अनुभूतियो का ही वर्णन है। ऐसी स्थिति म राम के जिस अलौकिक चरित्र की स्थापना हो चुकी थी, उसके विपरीत जाकर मर्यादा का उल्लघन करने का साहस कैसे किया जा सकता था।

(६) राम के प्रति साधको की भक्ति सेवक-सेव्य भाव की थी। सेवक अपने सेव्य का श्रृङ्गार वर्णन करने का अधिकार नही रखता। फिर राम की सीता जैसी पत्नी का श्रृङ्गार वर्णन बडे साहस का कार्य था। शालीनता के वातावरण मे पली हुई अपनी सामान्य भावनाओ की अभिव्यक्ति मे भी जिस सीता के मन म सकोच हो वह अनुभाव मूलक और सौन्दर्यवर्द्धक श्रृङ्गार चेष्टाओ का आचरण कैसे कर सकती थी। चेष्टाओ के आकर्षण के अभाव मे रूप की मोहकता के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता। अग वर्णन उसके बनावट का विश्लेषण उसका मादक और उद्दीपक प्रदर्शन चेष्टाओ द्वारा श्रृङ्गार मूलक अभिमत का प्रकाशन आदि बातें ऐसे चरित्र के जीवन मे महत्व नही रखता। यदि भूल से या अनजान मे कवि की सहृदयता के कारण ऐसे प्रसगो का अवतरण हो भी जाता है तो कवि की मर्यादित प्रवृत्ति उसे आगे बढने से रोक लेती है। उसकी अन्तश्चेतना का नियन्त्रण ऐसे वर्णनो मे बाधक हो जाता है। यह श्रृङ्गार की पूर्ण निष्पत्ति करने के पूर्व ही चेतन होकर आराध्य की विराटता और उदात्तता का सकेत कर देता है। फल यह होता है कि पूर्णरस निष्पत्ति न होकर रसाभास मात्र होकर रह जाता है। राम-साहित्य मे रूप-सौन्दर्य वर्णन और श्रृङ्गार-विवेचन के क्रमिक विकास के न होने का यही कारण है अन्यथा राम के जीवन म ऐसे अवसरो की कमी नही है जहाँ पहुँचकर कवि को श्रृङ्गार एवं रूप-सौन्दर्य वर्णन का प्रसग न प्राप्त हो सकता था।

राम के चरित्र म रूप सौन्दर्य वर्णन के अनेक प्रसग आ सकते थे। प्रारम्भ में बाल रूप 'सूर' के समान मादक बनाने का प्रयास किया जा सकता

था यद्यपि उस बाल रूप का सूर के कृष्ण के समान उन्मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण नहीं बन पाता। राम राजपुत्र थे, कृष्ण गोप पुत्र थे। दोनों की स्थिति और मर्यादा में अन्तर था। कृष्ण अपने घर की चहारदीवारी के परे प्रकृति के खुले प्रांगण में अपनी मधुरता, अपना रूप, अपनी मोहकता को बिखेर सकते थे सखाओं से क्रीड़ा कर सकते थे गोपियों के आकर्षण का केन्द्र बन सकते थे, अपने रूपाकर्षण से सबको मुग्ध कर सकते थे छेड़ छाड़ हास परिहास से वातावरण को मृदुल मादक और मादक बना सकते थे और ये सारे काम उन्होंने किये भी, परन्तु राम का राजपुत्रत्व इसमें बाधक बना हुआ था। तुलसी ने 'कवितावली' में एक दो स्थलों पर ऐसा वर्णन किया भी[1] है परन्तु वह बलपूर्वक जोड़ा हुआ लगता है क्योंकि राजमर्यादा में पला बालक है अन्य लड़कों के साथ सरयू के तट चौराहा बाजारों में डोलता फिरे, इसे तार्किक बुद्धि स्वीकार नहीं कर पाती। राम की पारिवारिक स्थिति के सन्दर्भ में यह वर्णन बाल्य चापल्य मात्र है परिस्थिति के अनुरोध से नहीं। कृष्णभक्त कवियों के समक्ष ऐसे नियन्त्रण का कोई प्रश्न ही नहीं था। श्रीकृष्ण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्मुक्त थे। एक मुक्त विहग की भाँति उनकी उड़ान भी निर्द्वन्द्व होकर चलती रहती थी। इसीसे वे इसके आलम्बन बने। वात्सल्य और शृङ्गारादि सभी क्षेत्रों में उनका आदर रूप एक समान है। राम-काव्य में अवसर थे, परन्तु वर्णन का अभाव है। यदि कहीं वर्णन है भी तो वह मर्यादित है। यथा –

'सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी।"

यहाँ गौरी या सीता के सौन्दर्य वर्णन में कवि की लेखनी रुक जाती है। तब भी है जिस रूप को देख कर राम का सहज पुनीत मन भी क्षुभित हो जाता है वह सौन्दर्य वर्णन की परिधि में नहीं आ सकता है। तुलसी इस अलौकिक सौन्दर्य के साथ उसकी सहजता का ध्यान भी रखते हैं "सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ।' वे सरलता से अपनी बात कह देते हैं कि सीता के सृजन में–

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगट देखाई।
सुंदरता कहु सुन्दर करई। छबिगृह दीप सिखा जनु बरई।।"

इस वर्णन में शोभाशिखा सी सीता की चमत्कृति साकार हो जाती है। इसीसे कवियों को उपमा ही नहीं मिलती, "सब उपमा कवि रहे जुठारी। —पुन

---

[1] लरिका सब सनतझालत हैं सरयूतट चौहट, हाट, हिये–'कवितावली'

'जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मदर सिंगारू। मथ पानि पकज निज मारू।
एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुदरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत सब, कहहि सीय समतूल"

इन सभी उद्धरणो से स्पष्ट है कि सीता के सौन्दय-वणन मे चित्र योजना का नितान्त अभाव है। रूप' के समुचित प्रभाव के लिये चित्र विधान की परम्परा मान्य रही है परन्तु इस स्थल पर तुलसी ने रूप चित्र उपस्थित न करके केवल कथन द्वारा उसका वणन किया है। कोरे कथन मे रसात्मकता का अभाव होता है। यही कारण कि तुलसी के इस रूप-वणन मे हृदय रम नही पाता। कवि का प्रयास उसके बौद्धिक उडान मे खो जाता है और मर्यादा का नियन्त्रण रूप का यथाथ चित्र प्रस्तुत करने म बाधा उपस्थित कर देता है।

राम के शृङ्गार और उनके रूप सौन्दय की मोहकता का वणन जनकपुर तथा वन माग आदि प्रसगो पर हो सकता था और हुआ भी, परन्तु रसकी शुद्ध भूमि पर नही। राम का देवत्व अपनी 'उदातता' से साथ इन कवियो के मस्तिष्क मे सदा बना रहा। फल यह हुआ कि रूप का आकषण 'सौन्दय के आश्रय के प्रति न होकर उन्नत्त' के आश्रय के प्रति हुआ। इससे श्रीकृष्ण के रूप सौन्दय जसी मादकता राम काव्य मे नही आ सकी। 'बरवै रामायण' मे सीता की सखिया राम के रूप का परिहास सीता के रूप की तुलना मे करती हुई कहती हैं "गरब करहु रघुनन्दन जनि जीय माहि। देखहु आपनी मूरति सिय की छाँह।' इस बरव मे रूप-वणन का एक आभास मात्र है। इससे बिम्ब विधान नही होता। इसके अभाव मे यह उत्तम काव्य की कोटि मे नही आता।

वन माग म सीता की अनुभाव-परक चेष्टाएँ ग्राम बधुओ के माध्यम से प्रकट हुई है, साक्षात् रूप मे राम के समक्ष नही आती हैं क्योकि सीता राम की प्रियतमा अथवा प्रेमिका की भाव सघनता के सग वर्णित न की जा कर एक दासी की आत्म समपण की भावना से आप्लावित होती हुई प्रस्तुत की गई हैं। सीता के लिये राम' 'नाथ हैं। ऐसे 'नाथ' जिनके समक्ष अपनी कोई अभिलाषा नही, कोई रुचि नही और कोई व्यक्तित्व नहीं। यहाँ सेव्य राम म अपने व्यक्तित्व का सम्पूण विलय आत्मापण तो है परन्तु लौकिक दृष्टि से शृङ्गार रस का साधक नही है। अन रम निणय पर पहुँच सकते हैं कि

राम-काव्य म साधका की दास्य भक्ति परक भावना के कारण शृङ्गार रस का सर्वाङ्गीण स्फुरण नही हो पाता। शृङ्गार रस की पूर्ण निष्पत्ति के अभाव म उस रस के साधक उपकरणा का वर्णन सम्भव नहीं हो पाता। आलम्बन के उद्दीपक गुण और चेष्टाओं को अवरुद्ध करने म मर्यादा नियन्त्रण का काय करती है। रूप सौंदय, नख शिख आदि का वर्णन दास्य भक्ति की दृष्टि से निरथक और अनधिकार चेष्टा है। आयु एव विकसित होती हुई भावनाओं का ताल मेल बठाना अनावश्यक माना जाता है। वय सन्धिकाल की विभिन्न चेष्टाए और युवावस्था के अनुभाव काम सकेत की परिधि मे आते हैं। नायिका भेद और विभिन्न नायिकाओं की क्रियाओं, चेष्टाओं आदि का वर्णन कामुकता का प्रदशन माना जाता है। रमणी का रूप निन्द्य, अनावश्यक हाड माँस का बाह्य सयोजन कहा गया है। उस रूप की अग्राह्यता की प्रतिष्ठा की गई। उसे नरक म ले जाने का साधन माना गया। उसे ताडना के योग्य माना गया। विचार करने की बात है कि जिस राम-साहित्य म नारी और उसके रूप की यह दशा थी, शृङ्गार के उद्दीपक जिस आलम्बन के अस्तित्व की स्वीकार की भावना पर ही कुठाराघात किया गया था, ऐसे राम साहित्य का सृजनकर्ता कवि नारी या पुरुष के रूप-सौंदय का वर्णन क्यो करता? उसकी उपयोगिता क्या होती? रूप-सौंदय तो रीझने या रिझाने के लिये होता है। इस रीझ की उपभोग मूलक भावना सर्वविदित ही है। उपभोग का आकर्षण शारीरिक होने से काम प्रधान हो जाता है। काम राम-काव्य की दृष्टि म गहणीय है और काम की साधक नारी त्याज्य है। अत राम काव्य म रूप सौंदय के सचित कोष नारी की मधुरिमा मोहकता लावण्य छवि आदि के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता। इस वर्णन के अभाव म शृङ्गार की महत्ता राम काव्य म नही हो सकी। वहाँ कवि राम की शक्ति और शील वर्णन की इयत्ता म ही बँधा रहा। इससे उसका आराध्य अनुकरणीय और आदश रूप वाला होगया उसके दुष्ट दलन जसे कार्यों मे कम-सौंदय और उत्साह नामक भाव तो मिल जाता है, परन्तु वह रति भाव का आश्रय नही बन सका। रति स्थायी भाव के वर्णन की महत्ता और प्रमुखता न रहने से शृङ्गार रस का पूर्ण स्फुरण नही हो सका। शृङ्गार ही रसराज माना जाता है। राम के जीवन म इस रस को उचित स्थान नहीं मिला। इमस वे इस रस के अधिष्ठाता रूप मे ग्राह्य नहीं हुए। इनकी तुलना म श्रीकृष्ण के समक्ष इस प्रकार की सीमा रेखाएँ नही थी। इसीस उनकी मान्यता रस के अधिष्ठाता के रूप म हुई। राम की तुलना मे श्रीकृष्ण के रस अधिष्ठातृ रूप म कारणो पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

मधुर रस-अधिष्ठाता के रूप मे श्रीकृष्ण—

राम और श्रीकृष्ण के जीवन के मूल दृष्टिकोण मे प्रमुख अन्तर यह है कि राम ने लोक मर्यादा के लिये नारी का त्याग किया और श्रीकृष्ण ने आत्म-मर्यादा के लिये नारी को ग्रहण किया। नारी के इस त्याग और ग्रहण मे ही दोनो के चरित्र का विकास होता है। राम की मर्यादा मे लोक-सग्रह है और कृष्ण की मर्यादा म आत्म-सग्रह है। राम की दृष्टि मे समष्टि चेतना है और कृष्ण की दृष्टि मे आत्मचेतना। इसी आत्म चेतना के कारण श्रीकृष्ण के चरित्र का आरम्भ उस बिन्दु से है, जहा राम के चरित्र की समाप्ति हो जाती है अर्थात् राम मर्यादा को स्थापित करके जीवन के उद्देश्य को पूण कर लेत हैं और कृष्ण उसी मर्यादा को तोडकर जीवन को आरम्भ करते हैं। राम के जीवन म नियन्त्रण है सीमा है, कृष्ण का जीवन स्वच्छन्द और असीम है। राम के जीवन का आरम्भिक काय क्षेत्र अयोध्या के राजमहल हैं और श्रीकृष्ण का सम्पूण ब्रज प्रान्त। इससे श्रीकृष्ण का चरित्र उन्मुक्त और रस पूण बन गया। उनकी इसी रसवत्ता के कारण उन्हें शृङ्गार रस के अधिष्ठाता के रूप में स्वीकार किया गया। इस रूप म यह स्वाभाविक था कि उनके रूप सौन्दय का वणन प्रत्येक अवसर एव प्रसग पर किया जाता। श्रीकृष्ण के चरित्र म सौन्दर्यानुभूति की इस व्यापकता के कारण कवियो ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाया और उन्हे ऐसे रूप मे प्रस्तुत किया कि वे सौन्दय के एक मात्र प्रतिष्ठाता बन गये।

श्रीकृष्ण सोलह कला पूण अवतार हैं। वे लीला पुरुष हैं उनकी लीला के लिये ही सम्पूण ब्रज का विस्तार है। इस लीला मे आकषण है माधुय है। इसी माधुय का रसास्वादन उनकी ब्रजलीला का चरम ध्येय है। अपनी सुन्दरता की अखिल मोहकता के कारण उन्हे इस ध्यय की प्राप्ति हो जाती है। उनके चरित्र प्रसग मे केवल श्रीकृष्ण ही नही, अपितु गोपियो को भी सौन्दय की अनुभूति और उपभाग के पर्याप्त अवसर मिल जाते हैं अर्थात् आलम्बन और आश्रय दोनो ही सौन्दय के आगार हैं उन्ह सौन्दर्यानुभूति होती है और दोनो ही एक दूसरे के रूप गुण की परख करते हैं। इस प्रकार सम्पूण कृष्ण काव्य ही सरस और मधुर बन जाता है। इस काव्य के मधुर होने के अन्य भी अनेक कारण हैं —

(१) कृष्ण काव्य मे वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा की गई है। बाल-रूप मे श्रीकृष्ण की अनेक क्रीडाओ का वणन है। उनकी रूप-माधुरी सदा से सबको आकर्षित करती थी। उनके अग मे लावण्य है। उनकी आँख, दाँत,

मुख छवि आदि को देखकर यशोदा फूली नही समाती है। कृष्ण का धूल धूसरित रूप, उनका रेंगना मीठे वचन, कुञ्चित घुँघराले केशराशि कठ माल, वघ-नख मक्खन लगा मुख आदि इतने रूप चित्र हैं कि बाल रूप का अनुपम सौंदय प्रकट हो जाता है उनकी सुदरताई का वर्णन हो ही नही पाता है। प्रसाधना आदि म कुलही लटकती हुई लटुरिया नील, शेत और लालमणियो की लटकन आदि से शोभा बन जाती है। इस शोभा का वर्णन दो दृष्टिकोण से किया गया है —

(क) यशोदा की दृष्टि से 'लाला रूप म श्रीकृष्ण के रूप-सौंदय का वर्णन।

(ख) गोपियो और कवि की दृष्टि म कौमार पौगण्ड और किशोर रूप का वर्णन।

इन दोनो ही दृष्टिकोणो मे श्रीकृष्ण के रूप सौंदय का वर्णन ही अधिक मिलेगा। कही पर किसी भी प्रसग म श्रीकृष्ण का सौंदय ही वर्णित हैं।

(२) श्रीकृष्ण का क्रीडा-क्षेत्र विस्तृत था। उनके जीवन म ऋतु और उत्सवो के अनेक अवसर थे। प्रकृति यमुना वन कुज वशीवट आदि अनेक स्थल थे। कदम और करील के कुञ्जो म विहार क्रीडा का आमन्त्रण था। ऐसे मादक एव उद्दीपक वातावरण को पाकर कौन रूप रसिक इसकी उपेक्षा कर सकेगा।

(३) श्रीकृष्ण की मुरली का नाद-सौन्दय उनकी रसिकता का द्योतक था। मुरली के माध्यम से गोपियो का नाम लेकर उनका आह्वान उनके रूप प्रेमी हृदय का द्योतक था। ऐसे प्रसगो पर रूप-वर्णन और रूप के आस्वादन का सकेत है।

(४) श्रीकृष्ण के जीवन मे मर्यादा की जटिलता नही थी। व स्वच्छन्द थे और उनकी क्रियाओ म भी यही स्वच्छन्दता वर्तमान थी। राम का जीवन मर्यादा के बंधनो म जकडा हुआ था। वह न तो कृष्ण के समान घूम सकते थे और न अन्य किसी नारी से छेड छाड ही कर सकते थे। रूप का वर्णन, उसकी प्रशसा, उसका आकर्षण सब वृद्ध राम के लिये त्याज्य था। एक वाक्य में यह कह सकते हैं कि राम के जीवन में शृङ्गार के रस राजत्व को स्थापित करने की न तो क्षमता थी और न साहित्यिक परम्परा ही। कृष्ण का अवतार ही इसीलिये हुआ था कि गोप-ललनाओ की दाम्पत्य रति विषयक भावनाओ की तृप्ति के लिये अपनी सम्पूर्ण मादकता और सौन्दय ब्रज की वीथियों म बिखर दें। इसी कारण शृङ्गार के आश्रय श्रीकृष्ण बने, राम नहीं।

(५) राम और कृष्ण मे प्रकृति का एक अन्तर और है। राम आरम्भ से ही गभीर थे। उनकी यह गभीरता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दिखाई पडती है। उनका व्यक्तित्व अनुभवो से पुष्ट लगता है। वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण और सीता स की गई उनकी वार्ता उनके अनुभव की गुरुता और महत्व को व्यक्त करती है। उनका प्रत्येक कदम सुविचारित था। उनका दार्शनिक विवेचन प्रौढ मस्तिष्क की उपज थी। ऐसे राम के जीवन मे गभीरता हो सकती थी, चपलता नही। अत रूप-सौन्दर्य के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता है। बिना आकर्षण के सात्विक रति भाव का आविर्भाव नही होता। रति के अभाव म यक्ति रस का अधिष्ठाता नही बन सकता और न शृ ङ्गार का आश्रय हो। इसी से राम शृ ङ्गार के आश्रय नही बन सके। वह गौरव श्रीकृष्ण को प्राप्त हुआ।

(६) श्रीकृष्ण का जीवन आरम्भ से ही चपल था। उनकी 'लरकाई सब कही दीख पडती है। वे नटखट शरारती, उद्दण्ड, चोर चपल, रसिक और लँगराई करने वाले हैं। इन सबका उद्देश्य दूसरा को दु ख देना नही था अपितु उन्हें प्रसन्न करना था। लोग उनकी इन क्रियाओ से रीझते थे। उनका उद्दीपन होता था। इसी से गोपिया चाहती थी कि कृष्ण उनसे छेड छाड कर। उलाहना तो एक दिखावा था। बालको की चपलता स्त्रियो के लिये मोहक होती ही है। श्रीकृष्ण के दुहरे व्यक्तित्व स गोपियाँ और भी अधिक प्रभावित होती थी। वे यशोदा के समक्ष बालक और गोपियो के समक्ष एक रसिक किशोर थे। उनकी यही रसिकता उन्हे रस का अधिष्ठाता बनाती थी। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

> "जबहिं सरोज धर्यौ श्री फल पर, तब जमुमति तहँ आई।
> तब छन रुदन करत मन मोहन, मन म बुधि उपजाइ।
> देखो ढीठ देत नहिं माता, राख्यो गेंद चुराई।" सूरसागर

इस उदाहरण म श्रीकृष्ण का बाल एव तरुण रूप दोनो एक साथ वर्णित है। उनकी चतुराई प्रशसनीय है। अवसर के अनुकूल बात का बना लेने की क्षमता है। वे यशोदा के समक्ष बाल चपलता का प्रदर्शन करते हैं। यशोदा इस भोलेपन पर न्योछावर हो जाती रही होगी, परन्तु गोपी के लिय उनका यह रूप उद्दीपक रहा होगा। राम के जीवन म कोई कवि एसे रूप चित्रण की कल्पना भी नही कर सकता था। चपलता के प्रति आकर्षण नारी की एक स्वाभाविक कमजोरी है। इस दृष्टि से कृष्ण की लँगराई उनका आकर्षक गुण बन गया था। यह गुण रति भाव को उद्बुद्ध करने म पूर्ण समर्थ

था। अतः नारी विचारों एवं प्रकृति के सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर शृङ्गार रस के आश्रय और अधिष्ठाता श्रीकृष्ण ही हो सकते थे, राम नहीं।

ब्रज में होली झूला, रास, गोवर्धन-पूजन आदि प्रसंगों पर भावनाओं की अभिव्यक्ति की खुली छूट है। ऐसे अवसरों पर द्वन्द्वात्मक या हास-परिहास के पर्याप्त कारण उपस्थित हो जाते हैं। होली में एक दूसरे पर रंग डालना, मुख मोड़कर अनिच्छा प्रकट करना आदि अनुभावों का चित्रण अच्छा हुआ है रस को उद्दीप्त करने वाले ऐसे प्रसंगों का राम के जीवन में सर्वथा अभाव था।

विद्यापति, जयदेव और चण्डीदास ने राधाकृष्ण के शृङ्गार रूप का पर्याप्त वर्णन कर दिया था। पृष्ठभूमि तैयार थी उसको विकसित करना मात्र शेष था। इसमें भक्त कवियों ने योग दिया और रीतिकालीन कवियों ने उसका विकास किया। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य की परम्परा परिस्थिति आदि सभी उनके रस के अधिष्ठाता होने के पक्ष में थी परन्तु राम-काव्य की पृष्ठभूमि इस रूप में नहीं थी। वाल्मिकीय और आध्यात्म रामायण में उनके आलोक सामान्य स्वरूप की चर्चा हुई थी। भक्तिकाल के रामकाव्य में ये दोनों ग्रन्थ उसके प्रमुख उपजीव्य थे। इन दोनों में से किसी में भी रामरूप का रस दृष्टि से ऐसा वर्णन नहीं था कि उनको शृङ्गार का अधिष्ठाता होने में सहायता मिलती। फल यह हुआ कि राम काव्य आदर्शोन्मुख हो गया और कृष्ण-काव्य अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता और भावपक्ष के साथ ग्राह्य होने लगा। इसी से श्रीकृष्ण को शृङ्गार रस का अधिष्ठाता मानकर उनके रूप सौन्दर्य का अनुपम और अतुलनीय चित्र सम्पूर्ण मध्यकालीन कृष्ण काव्य में अंकित किया गया। इसी रूप सौन्दर्य का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

सौन्दर्य के गुण परक उपादान—

सौन्दर्य की आध्यात्मिक चेतना क्रमशः भौतिक चिन्तन में परिवर्तित हो गई। ब्रह्म के सौन्दर्य निरूपण में ज्योति को सारे विश्व के सौन्दर्य का मूल स्रोत माना गया था परन्तु परवर्ती साहित्य में सौन्दर्य के ऐन्द्रिय रूप की प्रधानता होती चली गई और इस वर्णन का आलम्बन मानव अथवा मानव के रूप में ईश्वर होने लगा। ऐसे आलम्बन का चित्र भौतिक दृष्टि से होने के कारण मानवीय सम्बन्ध के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इन सम्बन्धों में अपत्य स्नेह और कान्ता प्रेम की महत्ता ही सर्वोपरि रही है। दोनों में रति भावना है जिसे वात्सल्य रति और दाम्पत्य रति की संज्ञा प्रदान की गई है। शृङ्गार का प्रधान आलम्बन स्त्री रूप का सौन्दर्य है। यों तो पुरुष सौन्दर्य को

भी वणन का आधार बनाया गया है, परन्तु स्त्री सौंदय की प्रधानता है। दोना का सौंदय मिलकर मानवीय सौंदय की पूणता का आभास कराते हैं। इस सौंदय के वणन म कविया की दो दृष्टिया काम करती रही हैं (१) मानवीय सौंदय म पुरुष की अपक्षा स्त्री के रूप सौन्दय के चित्रण मे अधिक रुचि का प्रदशन (२) इस सौन्दय के स्पष्टीकरण के लिए प्रकृतिगत सौन्दय का ग्रहण। प्रकृति का सौंदय मानव के लिए आदश का काय करता रहा है। मानवीय रूप-सौंदय को स्पष्ट करने के लिए रूप मे स्थित कतिपय गुणो की अवस्थिति मानी जा सकती है। ये गुण दो प्रकार के हो सकते हैं (१) भौतिक स्थूल गुण (२) सूक्ष्म एव प्रभावोत्पादक गुण।

(१) भौतिक स्थूल गुण—स्थूल गुण आकारादि की स्थूलता को व्यक्त करता हैं। आचाय क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य' शब्द के अन्तगत इसे समेट लिया है। शरीर के प्रत्येक अग का औचित्य शरीर को सुन्दर बना देता है। पाश्चात्य सौंदय शास्त्र की दृष्टि से यही औचित्य वस्तु की सापेक्षता, सगति, सन्तुलन, समता और सानुपातता म है। इस आधार पर वस्तु का सौंदय अग प्रत्यग के सुश्लिष्ट यथोचित सन्निवश पर निभर करता है। नख शिख का सौंदय इसी धारणा की पुष्टि करता है। इसम अगा क गठन, आकार, मृदुता, कोमलता आदि गुणा का निरूपण होता है। शरीर की समग्रता का निर्माण अगा से ही होता है। अत अगा का सुन्दर होना आवश्यक है, क्योंकि कुरूप अगो की समग्रता स सौंदय व्युत्पन्न नही हो सकता। नख शिख म अगा के ग्रहण का दूसरा कारण यह है कि नाम रूपात्मक जगत का भौतिक प्राणी स्थूल आकार को ग्रहण करके ही सौंदय का स्वरूप निरूपित कर सकता है। इस स्थूलता के प्रति कवियो का मोह था। इसी कारण अप्रस्तुत-योजना मे भी उसकी कल्पना नितान्त वायवीय न होकर स्थूल जगत का आधार लेती थी।

इस स्थूल जगत के चित्रण म नारी-सौन्दय के प्रति विशेष आग्रह दीख पडता है। इस आग्रह मे पुरुष कविया की आकषण मूलक प्रवृत्ति काय करती है। वह नारी क मासल सौंदय की ओर आकृष्ट होकर उसके अग प्रत्यग के वणन म रुचि व्यक्त करता है। इसी कारण भारतीय नख शिख वणन परम्परा के प्रति कविया का आग्रह रहा है। इस वणन म अगो के सुश्लिष्ट सचिकणयुक्त सन्निवेश की महत्ता है।

(२) अप्रस्तुता की स्थूलता—भारतीय कविया ने सौंदय की कल्पना म मानवीय धरातल का आधार लेकर उसे अलौकिकता प्रदान की है। उसका अप्रस्तुत विधान मानव कृत न होकर ईश्वर या प्रकृति-कृत है। सौंदय सम्बन्धी उनकी उच्च दृष्टि प्राकृतिक उपकरणा क सयोग म अतिमानवीय तत्त्वा की

खोज कर लेती है। वह चन्द्रमा, सूय, नक्षत्र, कल्प वृक्ष, अमृत सुधा जुन्हाई देवता कमलनाल आदि के माध्यम से स्वर्गीय तत्वो को ढूँढ लेता है। सौंदय की समग्रता के लिए उमा, रमा उवशी लक्ष्मी आदि को अप्रस्तुत बनाता है। इनके माध्यम से भौतिक सौंदय को व्यञ्जित करता है। प्रकृति का अपना आधार बनाता है और उसकी पूर्णता से अपनी पूर्णता का प्राप्त करना चाहता है। इन वस्तुओ के समुच्चय मे स्त्री सौन्य विषयक उसकी धारणा स्पष्ट हो जाती है।

(१) सूक्ष्म-तत्व—सौंदय निरूपण के सूक्ष्म तत्वो का आकार नहीं होता परन्तु उसमे निहित शक्ति की प्रभावोत्पादकता अपरिहाय है। नारी का मासल सौंदय कामोद्दीपक गुणो से सयुक्त है। जो नारी जिस मात्रा में इन्द्रियो को क्षुभित करती है, उसका सौन्य उतना ही अधिक है। अभिनव गुप्त ने नारी की वीय विक्षोभन शक्ति को ही उसके रूप की कसौटी स्वीकार किया है। इस प्रकार इनके सौंदय चितन म काम रस को प्रधानता दी गई है और इसी आधार पर सौन्दय का निर्धारण किया गया है।

(२) सौंदय का दूसरा सूक्ष्म गुण लावण्य है। लावण्य मोती की आभ्यतर छाया की तरलता की भाति अगा म चमकने वाला गुण विशेष है। अपने आप म प्रकाशित होने वाले इस गुण स शाभा की वृद्धि हो जाती है। मध्यकालीन कवियो न सौन्य निरूपण म श्रीकृष्ण को लावण्य-निधि माना है।

(३) माधुय की गणना सौन्य के अन्य गुणा म है। सभी अव स्थाओ म रमणीयता को धारण करना माधुय' कहा जाता है। जो वास्तव मे सुन्दर हैं वे प्रत्यक अवस्था म रमणीय लगते हैं। विपरीत परिस्थिति मे भी यह सौन्दय घटता नहीं। सस्कृत कवियो म कालिदास की सूक्ष्म सौन्य चेतना इस गुण की ओर बार-बार आकृष्ट होती रही है। उन्हाने बताया है कि जटा धारण कर लने पर भी पावती का सौंदय वसा ही बना रहा जसा वेणी धारण करन पर बना रहता है। यथा प्रसिद्ध मधर शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवम-भूत्ननम्। यह सौन्य किसी अवस्था म विकार-ग्रस्त न होने से अलौकिक कहा जायगा।

(४) *बाह्य प्रसाधना के अभाव म सौन्दय का भासित होना उसके* 'स्वनिभरत्व गुण का व्यक्त करता है। जो सौंदय प्रसाधन उपकरणो की अपेक्षा नहीं करता वह अपने आप म पूर्ण माना जाता है। ऐसा पूर्ण सौन्य आत्म निभर रहता है। सुरूपवान् के लिए इन बाहरी वस्तुओ की कोई आव श्यकता भी नहीं रहती।

(५) रमणीय रूप की प्रधान विशेपता प्रतिक्षण की नवीनता है। रूप की महत्ता इसी म है कि वह प्रतिक्षण, बार बार दशक के हृदय को आक पित एव आवर्जित कर ले। भावक उसे मन्ना नये रूप मे दखे। वह सौन्य पकड म न आ सके, उसे रूपाकार या रगादि मे बाधा न जा सके। ऐसा रूप सदा स्पृहणीह माना जायगा। श्रीकृष्ण का रूप इसी प्रकार का था। प्रतिक्षण की इस नवीनता और परिवतन शीलता क कारण उस रूप से 'रति नही की जा सकती। गोपी कहती है कि 'स्याम सो काहे की पहिचानि। निमिष निमिप वह रूप न वह छवि, रनि कीजै जेहि आनि।"

उपयु क्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दय की स्थूल एव सूक्ष्म विशेपताओ की ओर कवियो का ध्यान गया है। आकार, वि यामादि स्थूलता के बोधक हैं और नवीनता, आत्म निभरता, लावण्य, रमणीयता आदि से सौदय के सूक्ष्म गुणा का नान होता है। इन गुणा से सयुक्त होकर सौदय पूण हो जाता है। अन सौदय विवेचन म य गुण उसके प्रधान तत्व होंगे। इन सभी गुणा का प्रादुर्भाव युवा काल मे होता है। इससे युवा काल के गुणा मे इनका आधार लिया जायगा। इसे वय-सौदय के अन्तगत स्पष्ट किया जा रहा है।

वय सौदय—सौदय के दा विभाग 'स्थूल और सूक्ष्म' किय जा चुके है। इनम स्थूल सौन्य भौतिक उपादाना या आधारो का लेकर चलन वाला होता है। सूक्ष्म सौदय म शोभा, कान्ति जम तत्वा का ग्रहण होता है। इन तत्वा के ग्रहण से मानव सौदय की अभि यक्ति की जाती है। मानव का यह सौदय वय क्रम की दृष्टि से उसकी अवस्था पर निभर रहता है। *बाल्यावस्था* का सौदय, बालक की चपलता, क्रीडा आदि म व्यक्त होता है किशोरावस्था म अगो के विकास गठन, शोभा आदि से इस सौन्य की प्रतीति होती है और प्रौढावस्था मे यही सौदय गभीरता और गुरुता आदि के द्वारा प्रकट होता है। भक्तिकालीन रचना म बाल और किशोर अवस्था से सौदय का ही वणन है।

भक्त कविया ने अवस्था की दृष्टि से आलम्बन के रूप सौदय, क्रिया चेष्टाओ आदि के क्रमिक परिवतन का वणन किया है। मानव की इन अवस्थाओ म पुरुप एव नारी दोनो के सौदय का वणन हो सका है। पुरुष रूप मे श्रीकृष्ण के सौदय का अकन ज मकाल से आरम्भ कर दिया गया था। राधा-वल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कविया ने राधा बाल वणन का भी काय मे उचित स्थान दिया है। राधा और कृष्ण दोनो की चेष्टाओ और शृङ्गारिक प्रवृत्तिया म इनकी दृष्टि रमी है। ऐसे ही प्रसगो पर उनकी अवस्थाओ का

संकेत मिल जाता है। गोपी द्वारा श्रीकृष्ण की 'अचगरी' का उलाहन देने पर यशोदा कहती है कि मेरा कुवर तो अभी पांच ही बरस का है और अभी भी रातर दूध मांगता है। अत वह इन बातों को कैसे जानता होगा।[1] एक अन्य स्थल पर ऐसे ही प्रसंग में श्रीकृष्ण को दस वर्ष का बताया गया है।[2] गारुडि प्रसंग पर उनकी आठ बरस की अवस्था का कथन है आठ बरस को कुँवर कन्हैया, कहा कहति तुम ताही।[3] इस अवस्था में ही उनकी बुद्धि विकसित हो चुकी थी। यशोदा भी इस विकास पर आश्चर्य प्रकट करती है।[4] ऐसे ही स्थल पर राधा को सात बरस का बताया गया है।[5] इस सभी उद्धरणों से प्रकट हो जाता है कि श्रीकृष्ण की शृङ्गार लीलाओं का आरम्भ उनकी पौगण्डावस्था से हो जाता है। यह पांच वर्ष से लेकर दस वर्ष की अवस्था है। यहां कवि की दृष्टि में श्रीकृष्ण के दोहरे व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। वे यशोदा के समक्ष बाल भाव से और गोपियों के समक्ष तरुण भाव से आते हैं। गोपियां उनकी इस लीला को जानती हैं और उन्हें तन्त्र मन्त्र का ज्ञाता समझती हैं।[6]

श्रीकृष्ण के किशोर वय में उनकी शोभा अधिक वर्णित है। इस वय में युवतियों का मोह लेने वाले गुणों का विकास होता है। इसके लिए उनका द्वादश वर्ष की अवस्था का वर्णन अनेक पदों में मिल जाता है।

गये स्याम तहि ग्वालिन के घर।
तब भए स्याम बरस द्वादस के रिझ लई जुवति ता छवि पर।

सूरसागर पद ६१६

---

1 कहाँ मेरे कुँवर पाँच ही बरस के रोई अजहूँ सु पय पान मांग।
तूँ कहाँ ढीठ जोबन प्रमत्त सुंदरी, फिरनि इठलाति गोपाल आग।
सूरसागर। पद ६२५

2 मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम री जोबन मद उमगानी।
लाज नहीं आवति इन लगरनि, कैसे धौं कहि आवति बानी।
सूरसागर। पद २१०८

3 सूरसागर। पद १३७१

4 आठ बरस को कुँवर-कन्हैया इतनी बुद्धि कहाँ ते पायो।
माता सं दाहनी कर दीन्हीं तब हरि हँसत कहत का धायो। सू १२८५

5 भई बरस सात की सुभ घरी आन की प्यारी गौउ आन की, बची भारी।
सूरसागर १३१७

6 हरि जानत हैं तन्त्र-मन्त्र सीख्यौ कछु टोना।
बन में तरुन कन्हाई धर्म भावन नहु दौना।

\

युगल शोभा या युगल केलि मे राधा और कृष्ण दोनो की अवस्था बारह वर्ष की बताई गई है।[1] इसी अवस्था मे समागम और अनुराग का पूर्ण और सफल कथन हो सका है। राधा की इस अवस्था का सूर ने स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया है।[2] इस कथन मे द्वादस वरस को 'भारि' विशेषण से व्यक्त किया गया है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि यही अवस्था विशेष गुरुत्व और महत्ता की होती है। इसे शास्त्रीय दृष्टि से वय सन्धि की अवस्था मानते हैं।

शृङ्गार की विकसित होती हुई भावनाओं का यह प्रथम काल है। इसी से कवियो ने पूर्ण तन्मयता के साथ इस काल के रूप-सौन्दर्य एवं लावण्यादि का सफल चित्रण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियो की दृष्टि मे वय सन्धि के सुख की बहुत महत्ता है। गोपियां इसी भाव का व्यक्त करती हैं।[3] नारी के वय सौन्दर्य की दृष्टि से इसे युवाकाल मे मानते हैं जिसके चार विभाग वय सन्धि, नव्य यौवन, व्यक्त यौवन और पूर्ण यौवन किये गये हैं। भक्त-कवियो की दृष्टि मे केवल वय सन्धि और नव्य यौवन काल की शोभा ही अधिक रमणीय प्रतीत होती है। राधा के रूप-सौन्दर्य के अंकन में इसी काल पर दृष्टि केन्द्रित रही है। अन्य गोपियो की अवस्था विभिन्न कालो की थी।

राधा की अवस्था के इस काल का यह सकेत उसके लिये प्रयुक्त विशेषणो द्वारा कराया गया है। वयस की उठान, थोड़े दिनन की राधा मानो छोटे दिनन की राधा का चित्र प्रस्तुत किया गया।[4] इन विशेषणो से उसके वय सन्धि काल की ही व्यञ्जना होती है। यहाँ वयो मुग्धा और नवल

---

1 (i) द्वादश काह्ह द्वादसी आपुन, वह निसि वह हरि राधा जोग।
वह रसकी झलकनि, वह महिमा, वह मुसुकनि, वसो सयोग। सू २६४८
(ii) जसो स्याम नारि यह तसी, सुदर जोरी सोहै।
वह द्वादस वहऊ दश द्वै की, ब्रज जुवतिनि मन मोहै। पद २४२१

2 अग अग अवलोकि सोभा मनहि देखि विचारि।
सूर मुख पट देति काहे न, वरस द्वादश भारि। २३३१ सूरसागर

3 वस-सन्धि सुख तज्यौ सूर हरि गये मधुपुरी माँहि। सूरसागर ४४६६

4 तुम्हें कोऊ टेरत है जू काह।
भोरी सी गोरी थोड़े दिनन्ह की, वारी वैस उठान। सूरसागर।
(ii) उठत वस को इहै दाँव री। पद ३२१५
(iii) जुवति इक जमुना जल को आई।
सहज सिंगार उठत जोवन तन विधि निज हाथ बनाई। पद २०६५

अनगा नायिका का सौन्दय वर्णित है। नई और थोडे दिना की राधा म चतुराई आगई है।[1] उसकी चेष्टाओ म आवपण उत्पन्न हो गया है। एक गोपी कहती है कि तुम राधा को थोडे दिना की मत समझो। उसके अग अग म चतुराई भरी हुई है उसे पूर्ण ज्ञान है और वह बुद्धि की मोटी नही है। इसी से वह सखियो से भी चतुराई करने लग जाती है। राधा की यह चतुराई उसके वय सधिकाल से ही आरम्भ हो जाती है। यही काल विकसित होकर नव यौवन मे परिवर्तित हो जाता है।

भक्त कवियो न राधा-कृष्ण-केलि के अनेक प्रसगा पर नवल और नवली शब्द का प्रयोग किया है। इसीके साथ किशोर और किशोरी शब्द क प्रयोग से युवाकाल की आरम्भिक अवस्था का ज्ञान होता है। किशोरी राधा' के नये अग की नई सुषमा है।[2] अग म सोलह शृङ्गार से शोभा बहुत बढ जाती है। एसी राधा रसिक गोपाल को अच्छी लगती है।[3] वह 'कोक गुन मे प्रवीन एव सब रस म सुदर है।[4] किशोर अवस्था तारुण्य की अवस्था है। इसे अनेक कवियो ने नवल शब्द के द्वारा व्यक्त किया है। नवल किशोर और नवल किशोरी का प्रयोग युगल स्वरूप के लिय किया गया है —

१ तोहि किन रुठब सिखई प्यारी।
नवल बस नव नागरि स्यामा, वै नागर गिरधारी। सूरसागर

२ नयौ नेह नयौ गह नयौ रस, नवल कु वरि वृपभानु किशोरी।
सूरदास प्रभु नवरस विलसन, नवल राधिका जोबन भोरी। सू०

---

1 (i) सूर स्याम प्रभु प्यारी राधा, चतुर दिननि की छोटी। पद २५७८
(ii) सुनरी राधा अबहि नइ।
बान कहा बनावती मो सो हमहू त तू चतुर भई। पद २३६०
(iii) तुम जानति राधा है छोटी।
चतुराई अग अग भरी है, पूरन ज्ञान न बुधि की मोटी। पद २५१६

2 सुन्दरता की रासि किसोरी, नव सत साज सिंगार सुभग तन।
कुम्भनदास अष्टछाप परिचय पृ० ११३ पद ४१

3 राधा रसिक गोपालहि भाव।
सब गुन निपुन नवल अग सुदर प्रेम मुदित कोकिल स्वर गावें।

4 सब रस सुन्दरी नवल किसोरी, कोक कला गुन पानी।
परमानन्द दास–अष्ट० परि० पृ० १६७ पद ७०

विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इस 'नवल' शब्द का प्रयोग या तो केवल राधा के लिये अथवा राधाकृष्ण दोनो के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस नवीन जोडी के सभी साधन अगो म भी यही नवीनता दीख पडती है। इससे हृदय के उल्लास का बोध होता है। युगल स्वरूप के लिय प्रयुक्त इस शब्द मे वय की नवीनता का अथ व्यक्त होता है—

१ (i) आजु निकुंज मंजु मे खेलत नवल किशोर नवीन किसोरी।
हित चौरासी पद ७

(ii) नवल नागरि नवनागर किशोर मिली,
कुंज कोमल कमल दलनि सिज्जा रची। पद ५०, वही

२ नवल घनश्याम नवल वर राधिका,
नवल नव कुंज नव केलि ठानी।
नवल कुसुमावली नवल सिज्या रची,
नवल कोकिल कीरभृग गानी।[1]

उपयु क्त उदाहरणों मे युगल स्वरूप की नवीनता के प्रति आग्रह है। इस शब्द के द्वारा यह ध्वनित होता है कि राधा और कृष्ण दोनो की अवस्था अभी कम है।

श्रीकृष्ण और राधा की अवस्था की नवीनता का वर्णन व्यष्टि रूप में भी हुआ है। राधा के नवल वयस को शृङ्गारस का प्रमुख आधार माना है। यही सम्पूर्ण रस साधना की मुख्य अवस्था है और चढत वस का यही दाँव हैं।" राधा की इस अवस्था का वर्णन अनेक कवियो ने अनेक स्थलो पर किया है।[2] शृगार रस की उत्तम अभिव्यक्ति के लिय नायक-नायिका दोनो का समान वय होना आवश्यक हैं। अवस्था की अत्यधिक भिन्नता रस मे बाधक हो जाती है। इसलिये कवियो ने श्रीकृष्ण की नवीनता या नवल वयस का प्रतिपादन दो रूपा मे किया है (१) बाल्यभाव म भी गोपियो के समक्ष तारुण्य आचरण का प्रदर्शन। इसम श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के दो पहलू स्पष्ट होते हैं। (२) उनके नवीन 'वयस' का शब्दत कथन।

---

[1] राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० २५८

[2] नयो नेह नयो गेह नयो रस, नवल कुंवरि वृषभानु किसोरी।
सूरदास प्रभु नवरस विलसत, नवल राधिका जोवन भोरी। सूरसागर
(ii) नवल नवेली अलवेली सुकुमारी जू की,
रूप पिय प्राननि को सहज अहार री। ध्रुवदास

श्री कृष्ण की यह नई अवस्था सबके आकर्षण की केन्द्र थी। गोपियों की भावनाओं को उद्दीप्त करने का प्रधान कारण थी। इसीसे इस अवस्था के वर्णन में कवियों का विशेष आग्रह दीख पडता है—

१ देखो मेरे भाग्य की सुभ घडी।
नवल रूप किसोर मूरति कंठ लै भुजधरी।[1]

२ नवल रंगीले लाल रस में रसीले अति,
छवि सो छबीले दोऊ उर धुर लागे हैं।[2]

३ विहरत नवल रसिक राधा संग।
रचित कुसुम सयनीय भामिनी कमल विमल हरि अंग।[3]

उपर्युक्त विचारों से अवस्था की नवीनता के प्रति तीन प्रकार की दृष्टियाँ व्यक्त होती हैं—

(१) युवावस्था के विभिन्न विकसित होते हुए आंगिक परिवर्तनों का सूक्ष्म और विभेदक वर्णन शास्त्रीय दृष्टि से भक्त कवियों ने नहीं किया है। अत नारी अवस्था के चारों भेद—वय संधि, नव्य, व्यक्त और पूर्ण यौवन का अलग अलग ज्ञान नहीं हो पाता है। इन अवस्थाओं का एक क्षीण आभास मात्र हो जाता है। पुरुष वर्णन में वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों की दृष्टि राधा वर्णन की अपेक्षा अधिक रमी है। इसीसे इन कवियों के वर्णन में श्रीकृष्ण के बाल पौगण्ड और किशोर तीनों ही अवस्थाओं का सम्पूर्ण सार गृहीत हो जाता है। विभिन्न अवस्थाओं में सौन्दर्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने की सफल चेष्टा की गई है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण का रूप सौन्दर्य अष्टछाप के कवियों में आकर्षक बन गया है। इस वर्णन की तुलना में राधा का सौन्दर्य उनकी विभिन्न अवस्थाओं के सम्पूर्ण विश्लेषण के साथ सम्भव नहीं हो सका है। राधा के लावण्यादि के वर्णन में उसकी कृष्णपरक उपयोगिता का ध्यान बराबर बना रहा। इसके विपरीत राधावल्लभी सम्प्रदाय में राधा के रूप-सौन्दर्य की प्रधानता है और कृष्ण का रूप आनुषंगिक रूप में अथवा राधा के साहचर्य के कारण वर्णित है। सौन्दर्यसम्पन्ना राधा के अभिन्न कृष्ण की शोभा भी अवर्णनीय हो होनी चाहिए। अत युगल स्वरूप के सौन्दर्य वर्णन में कवियों ने दोनों की विशेषताओं का उल्लेख समान स्तर पर किया है।

---

[1] सूर सागर

[2] रस मुक्तावली-न० १४६ ध्रुवदास

[3] हरिराम व्यास-'व्यास-वाणी' उत्तरार्द्ध पद स० २७४ पृ० ३८०

(२) अवस्थापरक सौंदर्य की व्यन्जना न होकर उसका अभिधा से कथन है। ऐसे स्थलों पर शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण न करते हुए हृदय की तन्मयता के आधार पर अवस्था आदि का संकेत है। यह संकेत साक्षात् कथन द्वारा हुआ है। कवि या तो स्पष्ट रूप से अवस्था को बता देता है या 'नवल' शब्द के विशेषण से इसे प्रकट करता है। राधा और कृष्ण व्यष्टि रूप से 'नवल' हैं और समष्टि रूप मे भी उन दोनों की अवस्था उनकी केलि, शृंगार, सखिया, निकुंज आदि मे यही नवलता वर्तमान है। इस शब्द द्वारा उनके तारुण्य आगमन का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इस तारुण्य मे अंगो के सूक्ष्म गुणो रूप लावण्यादि का वर्णन होना है।

(३) विशेषण के प्रयोग से राधा और कृष्ण की अवस्था का संकेत किया गया है। भक्त कवियों ने प्राय तीन प्रकार की विभिन्न अवस्थाओ का संकेत विशेषणो द्वारा किया है। दिनन की थाडी, वैस की उठान, बारी वैस, उठत जौवन आदि शब्दो से वय सन्धिकाल का संकेत मिलता है। नायिका भेद की दृष्टि से वयोमुग्धा और नवल अनगा नायिका के रूपादि का चित्रण मिलता है। 'नवल' शब्द मे किशोरावस्था और किशोर व किशोरी शब्द द्वारा युवावस्था के आरम्भिक काल का वर्णन किया गया है। अवस्था के इस निर्धारण के उपरान्त नायक अथवा नायिका के रूप सौंदर्यादि का वर्णन होता है। इस रूपादि का उत्कर्ष वय सन्धिकाल से आरम्भ होकर तारुण्य मे अपना चरम विकास पा लेता है। गुणो म रूप लावण्य रूप की नवीनता, छवि एव ज्योति आदि द्वारा रूप सौंदर्य स्फुरित होता है। अन्त इन्ही गुणो के आधार पर रूपोत्कर्ष को व्यक्त किया जायगा।

रूप-लावण्य – क्षण-क्षण मे नवीनता का धारण करने वाला रूप रमणीय कहा जाता है। रमणीयता की छवि परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन मे सौंदर्य निहित रहता है। इसी कारण रूप पकड मे नहीं आ पाता। किसी विशेष क्षण म अनुभव मे आया हुआ रूप उस क्षण तो अपना एक निश्चित और स्थिर प्रभाव उत्पन्न करता है परन्तु दूसरे ही क्षण नवीनता के कारण वह अग्राह्य हो जाता है। इसी से रूप आकर्षक होता है और हमारी पूर्ण तृप्ति का साधन नहीं बन पाता। इस रूप मे अंगो म वर्तमान तरलता ही लावण्य का मूल है।[1] छवि, अग दीप्ति, शोभा ज्योति आदि इसके आवश्यक अंग हैं। बोलचाल की भाषा म रूप, सौंदर्य का समानार्थक माना गया है

---

[1] मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्य तदिहोच्यते। उद्दीपन प्रकरण २६

परन्तु तात्विक दृष्टि से रूप में आकार की महत्ता होती है सौन्दर्य उस आकार के समुचित विन्यास से उत्पन्न होने वाला उसी में स्थित कान्ति को व्यक्त करता है। रूप म आकार की शोभा प्रतिभासित होती है सौन्दर्य अंगो के विन्यास से उत्पन्न होता है और लावण्य अंगो का एक ऐसा बहुमूल्य तत्व है, जो उसी प्रकार उसके महत्व को बढ़ा देता है जैसे मोती में वर्तमान आब मोती के मूल्य की वृद्धि कर देता है। रूप के प्रसंग म प्रतिभासित शब्द महत्वपूर्ण है। इसका यह तात्पर्य होगा कि वस्तु म आभूषण की स्थिति न होते हुए भी उसके धारण करने से उत्पन्न शोभा का आभास होता है, परन्तु लावण्य में तरलता या आब की स्थिति का आभास मात्र ही नही होता अपितु उसकी स्थिति भी होती है। रूप और लावण्य के तत्व एवं गुणो मे अनस्तित्व या अस्तित्व का भेद होता है। रूप म आकार है, भूषण नही है परन्तु अंग शोभा भूषण धारण वत् प्रतीत होता है, लावण्य मे तरलत्व और आब दोनो की स्थिति है। इस दृष्टि से लावण्य का आन्तरिक मूल्य अधिक है और रूप का आभास जन्य मूल्य ही है। रूप और लावण्य के द्वारा अंगो म हृदय को आवर्जित कर लेने का गुण उत्पन्न हो जाता है आलम्बन मे एक अनोखापन आ जाता है उसमें आव पण की एक ऐसी क्रियता उत्पन्न हो जाती है कि आश्रय उसे देखकर मन्त्र मुग्ध हो जाता है उसे आन्तरिक तृप्ति का अनुभव होता है। इसी से भक्ति काल के साधक भक्त कवियो ने अपने आलम्बन के रूप और लावण्य के चित्रण म पूर्ण तन्मयता प्रदर्शित की है। यह निम्नलिखित रूपों मे व्यक्त हुआ है—

नवीनता—भक्त कवियो ने अपने आलम्बन के रूप-लावण्य म रमणीयता को प्रथम तत्व स्वीकार किया है। उनके आलम्बन की शोभा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है। उसम स्थिरता नही है।[1] बालकृष्ण के वर्णन मे लावण्य के

---

1 (i) सखी री सुन्दरता को अंग।
छिन छिन माँहि परत छबि औरे कमल नयन के अंग।"
अष्टछाप परिचय सूर १२८५

(ii) गोवधन धारी नित नवरंग। कृष्णदास विद्या विभाग कांकरौली—
स २०१६ स ब्रजभूषण शर्मा।

(iii) कृष्णश्याम वलि अलि अंग अंग पर
प्रति छिनु नवरंग नन्दकुँवर की। कृष्णदास पद १५

(iv) कृष्ण दास प्रभु नवरंग गिरधर, बोलत बचन रसाल। पद ३०

(v) गिरधर नवरंग रंग मग, रंग मगी पाग केसर रंग।

साथ कल्पना की नवीनता भी दशनीय है। हँसते हुए कृष्ण का रूप कमल पर जमी हुई विद्युत् की रेखा के समान हैं या विधु मे उजारी बिजली तुल्य है। दाता की उज्ज्वलता को सुदरता के मदिर म जगमग करती हुई रत्न-ज्योति की उपमा प्राप्त हुई है। आलम्बन के रूप की नवीनता के साथ कल्पना की यह नवीनता उस रूप की कलात्मक अभिव्यञ्जना म समथ हो सकी है। प्रतिक्षण वृद्धिगत होना हुआ यह रूप पकड म नहीं आ पाता। गोपिया जब तक श्रीकृष्ण के रूप को आत्मसात् करने मे तन्मय होती हैं तब तक वह रूप कुछ और ही हो जाता है और उनके पहचान मे कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। सूर ने कहा है कि गोपिया श्रीकृष्ण से पहचान नही मानती हैं क्योकि निमिष निमिष मे वह रूप वह छवि परिवर्तित हो जाती है।[1] रमणीय रूप की ऐसी कल्पना दुष्प्राप्य है। एक ओर रूप का असीम होना और दूसरी ओर लोभ का अतृप्त रह जाना—इन दोना के द्वारा सौन्दय की अतिशयता और परिवतनशील की सफल व्यञ्जना हो सकी है। इस सौन्दय के समक्ष कवि की उन्मुक्त कल्पना भी पगु पड जाती है। नित्य-नूतन और लावण्य की निधि श्रीकृष्ण की शोभा वरबस आकृष्ट कर लेती है। उसे देखकर अनुराग उत्पन्न होता है 'मोहन वदन विलोकत अँखियन उपजत है अनुराग।" उसकी शोभा और अपना सामर्थ्य देख उसके रूप लावण्य के वणन म कवि को लज्जा का अनुभव होने लगता है। 'सुभग सावरे गात की मैं सोभा कहत लजाऊं।'

नवीनता का यह आग्रह सभी भक्त कवियो में दीख पडता है। कुम्भन दास ने श्रीकृष्ण को अपरिमित सौन्दय की निधि माना है। उनके वणन मे श्रीकृष्ण का लावण्य अनुपल नवीन विलक्षण और विकासमान है। कवि प्रत्येक अग की नूतन कान्ति और उसकी परिमिति की इयत्ता व्यक्त करने म अपने

(क) नवकुज वैठे आली री आजु।
नव वसन को बागे पहन, नव कुसुमनि को साजु।
नव मोहन अरु नवल राधिका नव गोपी गावत गाजु।
कृष्ण दास प्रभु की सोभा पर वारौं अति रति राजु। पद १०२

[1] स्याम सो काहे की पहिचानि।
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि रति कीज जेहि आनि।
इत लोभी उत रूप परम निधि कोउ न रहत मिति-मानि।
सूरसागर (सभा) पद २४७०

को असमर्थ पाता है।[1] चत्रभुज क्षण क्षण प्रकृत मन रूप गुणागार की ओर उन्मुख होकर शरण में रहने की अभिलाषा भी व्यक्त करता है।[2] श्रीकृष्ण का रूप आज और कल और प्रतिदिन और प्रतिपल भी और ही और हो जाता है। छवि की तरगें उठती रहती हैं, जिससे सम्पूर्ण विश्व मोहित हो जाता है। ऐसे भुवन मोहन आराध्य की शोभा पर भला कौन ऐसा है जो अपना सब कुछ वार न दे। लावण्य के निधि एसे श्रीकृष्ण को देख छीत स्वामी की गोपिका अपनी सुधि भूल जाती है। मन्द मुसकान का जादू चल जाता है।[3] परमानन्द दास की दृष्टि राधा की प्रत्येक वस्तु की नवीनता की ओर गई है।[4] इस प्रकार नवीनता के प्रति रुचि अधिकाश भक्त कवियों में है। छवि और ज्योति से पुष्ट होकर यह नवीनता सौन्दर्य की ओर बढा देती है।

छवि और ज्योति—क्षण क्षण की इस रमणीयता के साथ लावण्य का दूसरा प्रमुख तत्व छवि का अगो से प्रस्फुटित होना है। जैसे किसी प्रकाश पुञ्ज से प्रकाश की किरणें फूटती रहती हैं उसी प्रकार रूप लावण्य से युक्त अगों से छबि की ज्योति खिलती रहती है। इसमें पुष्पो की ताजगी और किरणो की उज्ज्वलता इन दोनो का युगपत् बोध होता रहता है। अगो में वर्तमान छवि लावण्य निधि हो जाती है। जैसे ध्वनि में प्रयुक्त शब्दों से एक प्रतीयमान अर्थ

---

1 छिनु छिनु बानिक औरहि और।
जब देखो तब नौतन सखी री दृष्ट जू रहति न ठौर।
कहा करौं परिमिति नहिं पावत बहुत करी चित दौर।
कुम्भन दास प्रभु सौभग सीवा गिरधर धर सिर मौर।

2 आज और काल्हि और दिन प्रति और और
देखिये रसिक गिरिराज धरन।
छिन प्रति छिन नव छबि बरनै सो कौन कवि,
नितही सिंगार बागे बरन-बरन।
सोभा सिन्धु अग अग मोहित अनग छवि की तरग विस्व को मन हरन।
चत्रभुज प्रभू गिरधर को सरूप सुधा पीजै जीज रहिये सदा ही सरन।
अष्टछाप परिचय पृ २८४

3 अरी हौं स्याम रूप लुभानी।
मो तन मुरि के जब मुसकाने तब हौ छाकि रही।
छीत स्वामी गिरधर की चितवनि जाति न कछू कही।

4 नवरग कचुकी तन गाती।
नवरग सुरग चूनरी ओढे चन्द्रवधू सी राती। अष्टछाप परि० पृ १६७

उस कथन की शोभा मे वृद्धि करता रहता है, उसी प्रकार छवि द्वारा ग्रालम्बन के लावण्य मे एक गुरुत्व एव ग्राकषण की हृदय ग्राही गम्भीरता ग्रा जाती है। भक्तिकालीन कवियों न इसका सकेत कटाक्ष का तरग, ग्रग रग छबि, जगमग ज्योति, उच्छलित छवि, दीप सा जलना जैसे वाक्याशो से किया है। कुछ उदाहरण दशनीय है।

१ रूप जल मे तरग उठे कटाछनि के,
ग्रग ग्रग भौरनि की ग्रति गहराई है।
ननिनि की प्रतिबिम्ब परयौ है कपोलनि मे,
तेइ भये मीन नहाँ ऐसी उर ग्राई है।
ग्ररुन कमल मुसुकानि मानो फबि रही
थिरकनि बेसरि के मोती की सुहाई है।
भयो है मुदित सखी लाल को मराल मन,
जीवन जुगल ध्रुव एक ठाव पाई है। ध्रुव दास

२ रच्यौ स्याम जमुना जल पर रास।
सग राधिका ग्रग रग छबि,सब गुन रूप निवास।
व्यास वाणी पद २४३

३ कौन मरे ग्राँगन ह्वै जू गयो।
जगमग ज्योति बदन की माई सपनो से जु भयो।
ग्रष्ट० परि०। पृ० १९४ परमानन्द दास

४ कहा कहौं मोहन मुख सोभा।
बदन इन्दु लोचन चकोर मेरे पिवत किरन रस रूप लोभा।
ग्रग ग्रग उच्छलित रूप छटा कोटि मदन उपजत तन गोभा।
गोविन्द प्रभु देखे विवश भई प्यारी, चपल कटाक्ष लग्यौ हृद चोभा।
ग्रष्ट० परि० पृ० २५४

५ कचन के वरन चरन मृदु प्यारी जू के,
जावक सुरग रग मनहि हरत है।
हित ध्रुव रही फबि सुमिलिजैं हरि छबि
नूपुर रतन खचे दीप से बरत है।
रीझि रीझि सुन्दर करनि पर पट धर,
ग्रारसी सी लिय लाल देखिबौ करत है।

उपयुक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि छबि-वणन में सर्वाङ्ग

का चित्रण और अग प्रत्यग का अलग अलग चित्रण मिलता है। जगमग ज्योति के कथन द्वारा अग से निकलन वाली आभा का सकेत किया गया है। वास्तविक लावण्य वही है जहा आभा शरीर म न समाकर उछल पड़ती हो। इस अग छवि के साथ आभूषणो की एक अनग ज्योति ही होती है जिसम अग की शोभा मिलकर रूप म निखार ला देती है। ब्रह्म कवि का छवि वणन सद्य स्नाता को आधार बनाकर प्रकट हुआ है। भीने दुकूल म दीप शिखा सी प्रतिभासित नायिका का सौदय अनुभव का विषय है [1]

उपयु क्त विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण शाखा के भक्तिकालीन कवियों ने रूप-लावण्य के वणन म छवि और रूप की नवीनता को लावण्य का अनिवाय तत्व स्वीकार किया है। रूप के वणन मे नवीनता के तीन कारण लक्षित होते हैं। प्रथम रूप के आतिशय्य की कल्पना द्वितीय कवियो का अपना दृष्टिकोण और तृतीय आलम्बन के प्रति असीम तन्मयता का भाव। इन तीनो के ही कारण आलम्बन सर्वाधिक सुदर बनकर समक्ष आता है। अग प्रत्यग के साथ सश्लिष्ट रूप का चित्रण अनेक विध रूपो म आलम्बन की क्षण-क्षण की नवीनता का प्रतिपादन करता है। प्रत्यग से फूटती हुई छवि हर बार एक नई चेतना व भाव उत्पन्न करती है। उसका ताजापन या टटकापन बना रहता है। इन कवियो की यह सौदय चेतना स्वानुभूति के आत्म तत्व से प्रेरित है। इसी से इनके रूप चित्रो म इतनी सचाई सूक्ष्मता और ताजगी वतमान है। और उनको आलम्बन के रूप म सुदरता की सीमा है। इस सीमा का ध्यान सभी कवियो ने रखा है।

सौदय-सीमा—रूपाकन म सूरदास की तन्मयता अद्वितीय है। बाल कृष्ण के वणन मे छवि की दिव्यता के साथ अपरिसीम सौदय भी है। सौदय के प्रति इसी आकषण के कारण श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला सौन्दर्याभिमुखी है। सूरसागर की कथा को रूप आच्छादित कर लेता है। रूप का यह वणन दो प्रकार का है। (१) सौदय की अनिवचनीयता म कवि स्वय मुग्ध होता है दूसरा गोपियो के माध्यम से रूपासक्त चित्र प्रस्तुत करता है। इसमे पहले प्रकार के चित्रण मे रूप सीमा सोभा-सीमा सुन्दरता की हद आदि शब्दावली के प्रयोग म कवि, अकथनीयता का सकेत कर देता है। कृष्ण की शोभा का वणन नहीं

---

1 ब्रह्म भन नन्दलाल निहारति लागि रही तट लागि मृणा सी।
भीन दुकूल म भाई भलमल, दह दिशा दुति दीप सिखा सी।
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७७

कर पाता[1] क्योंकि उनका अग अग अनूप है।[2] वे सुदरता के सागर है 'देखो भाई सुदरता को सागर।[3] वे अनन्त शोभा से युक्त हैं।[4] यह शोभा नन्द भवन म पूर्ण होकर व्रज की वीथियो म प्रवाहित होने लगती है। सूर के इस कथन म रूप सौदय की अतिशयता और असीमता की अभिव्यञ्जना हुई है। व्रज की बीथियो म शोभा के बहन से यह अभिप्राय है कि नन्द सुवन की अनन्त छवि व्रज म सभी कहीं तरगित हो रही है। इस अनन्तता के प्रति अन्य भी कई कवियो की रुचि दीख पडती है। कुम्भन दास गोविन्द स्वामी हित हरिवशादि की दृष्टि इधर गई है। कुम्भन दास के श्रीकृष्ण अपरमित सौदय के निधि है। प्रतिक्षण की नवीनता के साथ उनका 'सौभग सीवा" रूप उन्हे शोभा मे सिर मौर बना देता है।[5] कृष्णदास के कृष्ण की अभिरामता परम रमणीय है।[6] गोविन्द स्वामी के इस वर्णन का प्रमुख गुण यह है कि रूप सौदय की सीमा केवल कथन म अभिधेय मात्र नहीं है अपितु प्रसाधन सामग्रियो के प्रयोग से अभिवर्धित होती रहती है।

अरी यह सुदरता को हृद।
कुण्डल लाल कपाल विराजत विलसित भुव ज्योति उनमद।
विद्रुम अधर दशन दारयौ दुति, दुलरी कठ हार उर विसद।
गोविन्द प्रभु बन त व्रज आवत, मानहुँ मदन गजराज धरत मद॥
अष्टछाप परिचय पृ० २५५

---

1 सोभा कहत कहे नहि आवै।
अचवत अति आतुर लोचनपुट मन न तृप्ति को पावै। सूरसागर १०६६

2 सजनि निरखि हरि को रूप।
मनसि, वचसि बिचारि देखौ, अग अग अनूप। सूरसागर २४८०

3 सूरसागर (सभा)

4 'शोभा सिन्धु न अन्त रही री।
नन्द भवन भरि पूरी उमग चली, व्रजकी विथिनि फिरति बही री।'सूरसागर

5 (१) छिनु छिनु बानिक औरहि और।
जब देखौ तब नौतन सखी री, दृष्टि जु रहति न ठौर।
कहा करौ परिमित नहीं पावत, बहुत करी चित दौर।
कुम्भन दास प्रभु सौभग सीवा गिरधर धर सिरमौर॥
(११) कुम्भन दास दम्पति सौभग सीवा जानी भली बनी एक सारी।
नव नागरी मनोहर राधे नवल लाल गोवधन धारी।
पृ० १४३ अष्टछाप पदावली

6 कृष्णदास प्रभु गोवधन धर सुभग सीग अभिराम। अष्टछाप परिचय २३५

इस पद में प्रयुक्त शब्द 'अरी' में एक साथ कई प्रवृत्तियों की सम्पृक्त भाव शबलता है। आश्चर्य मिश्रित औत्सुक्य के साथ रूप सौंदर्य की प्रशंसात्मक अभिव्यञ्जना हुई है। कवि मानों उस सौंदर्य की सीमा को व्यक्त करने में अपने को पूर्णतया असमर्थ पाकर भीतर ही भीतर उस अनन्तता का अनुभव करता है, भावनाएँ अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिये प्रबल भाव प्रवाह के सहज उद्रेक में बह जाती हैं और कवि कह उठता है 'अरी यह सुन्दरता को हू'। ऐसा लगता है मानो उसकी सम्पूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति इस एक ही पद में आकर स्थिर हो गई है। यही कारण है कि कृष्णदास को श्रीकृष्ण की प्रत्येक वस्तु मोहक प्रतीत होने लगती है।[1] राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने रूप सौन्दर्य की सीमा का कथन राधा को आलम्बन बना कर किया है। हित हरिवंश ने कहा है कि करोड़ों वर्ष तक जीवित रहकर भी राधा के सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उनके रूप का सहज माधुर्य अतुलनीय है। इसी से उसकी समता किसी अन्य से नहीं की जा सकती है।[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के कवियों ने सौंदर्य की अनन्तता के वर्णन का आधार राधा और कृष्ण दोनों का ही बनाया है। यद्यपि इन दोनों के आलम्बन बनने के पूर्व कवियों के हृदय में कोई विभाजक रेखा नहीं थी फिर भी राधा वल्लभी सम्प्रदाय के कवियों में हित हरिवंश, दामोदर दास, हरिराम व्यास ध्रुवदास आदि कवियों ने राधा को ही प्रमुखता प्रदान की है। इन सभी कवियों के वर्णन की दो प्रणालियाँ रही हैं (१) सर्वाङ्ग वर्णन

---

[1] हरि मोहन को मोहन बानिक।
मोहन रूप मनोहर मूरति, मोहन मोह अचानक।
मोहन बरुहा चंद सिर भूषण मोहन नैन सलोल।
मोहन तिलक भाल मन मोहन मोहन चारु कपोल।
मोहन श्रवण मनोहर कुण्डल, मृदु मोहन के बोल।
कृष्णदास गिरधरन मनोहर नख सिख प्रेमकलोल।

अष्टछाप परिचय पृ० २२६

[2] देखो भाई सुन्दरता की सींवा।
ब्रज जन तरुनि कदम्ब नागरी निरखि करनि अध ग्रीवा।
जो कोऊ कोटि कलप लगि जीव, रसना कोटिक पाव।
ऊ रुचिर वदनारविन्द की शोभा कहत न आव।
देवलोक भू लोक रसातल सुनि सब कवि कुल डरिए।
सहज माधुरी अंग अंग की कहि कासा पट तरिए। हित हरिवंश

म लावण्य निधि का सकेत करते हुए रूप की अनन्तता का वणन अभिधा या व्यग्यात्मक पद्धति पर करना। (२) अग प्रत्यग के वणन या रूप की गहन आसक्ति द्वारा सौदय की असीमता का सकेत करना। यही पर उपमानो की व्यथता का सकेत भी किन्ही स्थलो पर कर दिया जाता है। ऐसे रूप के प्रभाव की भी व्यञ्जना हुई है।

रूप का प्रभाव—अनन्त सौदय के निधि श्रीकृष्ण के रूप का लावण्य असीम है। उसकी असीमता का सकेत सोभग-सीवाँ" के प्रयोग द्वारा किया गया है। इसे देखकर गोपिया अपनी सुधि भूल जाती हैं उनका मन 'रूप के भवर मे उलझ जाता है। राधा का सौदय भी अतुलनीय है। वह तो अपने आप ही छलकता रहता है। राधा उसे छिपा नही पाती। छिपाने मे उसे कठिनाई प्रतीत होती है 'परी है कठिन अति नवल किसोरी जू कौ, छिन छिन नई छवि कहा लौ छिपावही।'[1] उनके इस अप्रतिम रूप लावण्य मे मन पूर्णत लीन हो जाता है। छिन छिन म परिवर्तित होती हुइ रूप की इस नवीनता म अग शोभा स्वय प्रकट हो जाती है। गग ही रूप सौदय की अभिव्यञ्जना स्वय पुकार-पुकार कर कर दते हैं। आलम्बन के ऐसे मोहक रूप को देखकर सभी का मन आसक्त हो जाता है उसका प्रभाव अनन्त सुख का दाता सिद्ध होता है यह प्रभाव भक्तकालीन कवियो की रचनाओ मे दो रूपो मे है।

(१) रूप के प्रति आसक्ति का मानसिक भाव।
(२) आश्रय के विभिन्न अनुभावो का चित्रण।

रूपासक्ति के लिये आलम्बन का सौदय निधि होना आवश्यक है। आलम्बन का अपरिमित सौदय ही आश्रय को आकृष्ट कर सकता है। यह आकषण एक ओर आलम्बन के रूप के उत्कष को बताता है और दूसरी ओर आश्रय की अनेक प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करता है। ये अनुभावगत क्रियाएँ आसक्ति के कारण ही प्रकट हो जाती हैं। यह आसक्ति अनेक रूपो म स्पष्ट होती है—

(क) उत्कृष्ट सौन्दय रस का पान करने की अभिलाषा एव औत्सुक्य प्राय आश्रय के मन म उत्पन्न होता है। भक्ति काल म रूप के प्रति यह औत्सुक्य रूप पान के ललक क रूप म प्रकट होता है। गोपियो सखियो को भी कृष्ण का रूप देखन की प्ररणा देती ह सखी री नन्दनन्दन देखु' देखुरी नदनदन आर, सावरा मन मोहन माई आदि पदो म औत्सुक्य का यही

[1] हित शृङ्गार-ध्रुवदास।

भाव व्यक्त किया गया है।[1] इन उक्तियों द्वारा रूप की अतिशयता व्यञ्जित की गई है। श्रीकृष्ण के रूप का पान कर गोपियाँ अपने मनोगत भावों को दूसरी सखियों के संग मिलकर आनन्द का उपकरण बना लेती हैं। नन्दनन्दन की ओर देखने की प्रेरणा देती हुई गोपी की औत्सुक्य भावना स्वयं प्रकट हो जाती है। इससे रूप की उत्कृष्टता और उसके प्रति आसक्ति तथा प्रशंसात्मक भाव अभिव्यक्त होता है।

(ख) रूपासक्ति का दूसरा प्रभाव आत्म विस्मृति के रूप में प्रकट हो जाता है। श्रीकृष्ण के आकर्षक श्याम अंग को निरख कर गोपियों को आत्म सुधि नहीं रह जाती है उनका मन वहीं उलझ जाता है प्रायः सभी भक्त कवियों ने इस प्रकार का वर्णन किया है। छीत स्वामी ने 'अरी हो स्याम रूप लुभानी'[2] कह कर श्रीकृष्ण की मोहिनी को व्यक्त किया है। श्रीकृष्ण के वदन की ओप का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उस शोभा को देखकर गोपी की गति ही कुछ और हो जाती है। ऐसा लगता है मानो कारे नाग ने उसे डस लिया हो[3]। वह अपनी मुग्धावस्था के कारण कुसुम कली का बीनना छोड़कर वहीं उलझ जाती है।[4] उलाहना देने को आई हुई गोपी की आत्म विस्मृति का भाव चतुर्भुजदास ने सशक्त शब्दों में व्यक्त किया है। वह श्रीकृष्ण को सम्मुख देखकर इतनी प्रभावित होती है कि उलाहना देना भूलकर चित्र लिखी सी बन जाती है।[5] नन्ददास ने लाजमयाना और रूप लोभ इन दोनों के मध्य में पड़ी गोपी की तन्मयावस्था और आत्म विस्मृति का भाव कलात्मक ढंग से अंकित किया है। पनघट पर गई गोपी की सुधि बिसर जाती है नेत्रों से अश्रु-जल प्रवाहित होने लगता है। लाज–लज्जा का सम्पृक्त भाव उसे विवश

1 सूर सागर-सूरदास।

कर देता है।[1] कुम्भनदास की गोपी अपना पट पटवार भी विसर जाती है। उसकी एक मात्र यही आकाक्षा रहती है कि वह नेत्र भर कर नन्द कुमार को देख ले।[2] वह विवश हो जाती है।

(ग) विवशता का यह भाव रूप की अतिशयता से उत्पन्न होता है। आश्रय का मन आलम्बन के रूप को देखकर जितना ही आसक्त होगा, उसी मात्रा मे वह परवश होकर आलम्बन की ओर खिंच जायगा। गोपी इसी परवशता के कारण अपने नेत्रो पर नियन्त्रण नही रख पाती। ये नेत्र सदा लगे ही रहते हैं।[3] गोवर्धनधर के जिस अग पर पड जाते हैं, वही रह जाते हैं।[4] उसकी टकटकी बँध जाती है। नख-शिख तक लाल गिरधर के रूप को देखकर वह उसी मे बह जाते हैं।[5] नेत्रो को ऐसी बान पड गई है कि रूप को देखे बिना घडी पल भी युग के समान प्रतीत होने लगता है नैननि ऐसी बानि पडी। बिनु देखे गिरधरन लाल मुख जुगभर गनत घरी। इस विवशता के कारण बिना काम के भी बार-बार पनघट पर चला आना गोपियो का स्वभाव बन गया है। रूप की आसक्ति के कारण वह कृष्णादरस को वही अटक जाती है लोक-लज्जा को तिलाञ्जलि दे देती है और रूप सुधा के पान मे लीन हो

---

1 जल को गई सुधि बिसराइ, नेह भरिलाइ परी है ए चटपटी दरस की। इत मोहन गात उन गुरुजन त्रास चित्रसो लिखी ठाढी नाऊं करत सखि अरसकी। टूटे हार फाटे चीर नैननि बहत नीर, पनघट भई भीर सुधि न कलस की। नन्ददास ग्र० पृ० ३५२।८०

2 नैन भरि देखौं नन्दकुमार।
तादिन तें सब भूलि गई हौं बिसरयौ पन पटवार।
अष्ट छाप परिचय १०७ पृ० कुम्भनदास

3 अब कहा करौं मेरी आली री अखियन लागई रहत।
अष्ट० परि० पृ० २५५ पद ४२

4 रूप देखि नैननि पलक लाग नही।
गोवर्धन धर अग अग प्रति, जहाँ ही परत रहत तही-तही।
कुम्भनदास-काकरौली पृ० ९५ पद २३२

5 नैननि टकटकी लागिरही।
नख सिख अग लाल गिरधर के देखत रूप बही।
अ० परि० पृ० १०७। पद १३ कुम्भनदास

जाती है।[1] रूप-मदिरा म छककर रूप-सुधा निधि मनमोहन के रूप रस को नयनों म सचित कर लेना रूप एव लावण्य की उत्तमता का व्यक्त करता है। एसे उत्तम रूप सम्पन्न श्रीकृष्ण के अग प्रत्यग की शोभा निरखकर तरुणियाँ उसमे अपने को भूल जाती हैं। तरुनि निरखि हरि प्रति अग। काऊ निरखि नख इन्दु भूली काऊ चरण जुग रग।[2]

(घ) ऐसे रूप का पान करके भी उनका मन तृप्त नही होने पाता। अतृप्ति के इस भावसे रूप के प्रति गहन आसक्ति की व्यञ्जना हो जाती है। श्रीकृष्ण के मुख के सौन्दय को बार बार देख कर भी मन अघा नही पाता है। हरि मुख निरखि-निरखि न अघात। विरहातुर उठि अपने ग्रह त आई सब अल सात।[3] इस रूप को देखकर कोई भी तृप्त नही हो पाता। रूप की उत्तमता का यही लक्षण है कि बार बार देखकर भी मन अतृप्त ही बना रहता है।

कमल मुख देखत कौन अघाई।
सुनिहि सखी लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुभाई।

रूप की सहज आसक्ति के साथ सौन्दय प्रसाधना स युक्त श्रीकृष्ण की शोभा मन को आकृष्ट करने वाली हो जाती है। पनघट प्रसग पर ऐस अनेक आकर्षक चित्र अकित किय गय हैं। इन चित्रो म कृष्ण और गोपी दोनो के ही प्रसाधित सौन्दय का आकर्षण व्यक्त किया गया है।[4] इन चित्र म मन की

---

1 ग्वालिन कृष्ण दास की अटकी।
बार-बार पनघट चली आवति सिर जमुना जल मटकी।
मन मोहन को रूप सुधानिधि पीवत प्रेम रस गटकी।
कृष्णदास धनि धन्य राधिका लोक-लाज धर पटकी।

2 सूरसागर (सभा) १२५२।६

3 गोविन्दस्वामी ११२। पृ० २४०

4 (क) जमुना जल भरन गई देखत जिय सकुच भई,
पनघट पर ठाड़ो आजु नन्द को दुलारो।
सुन्दर स्याम तन सुभग नटवर पिय तरुन वर
मन्द काछ पीतवसन कनक वर टिपारो।
चन्द्र को गोर और अरगजा अग अग, ठाढ़ो
लकुट लिए कर-कमल लागत अति प्यारो।
अष्ट० परि० पृ० २०५

परिवर्तित होती हुई दशा और रूप के प्रभाव का वरान है। रूप की यह प्रभावोत्पादकता प्रसाधनो से और भी बढ जाती है। सहज लावण्य के साथ आभूषण, सुगन्धित दव्यो का प्रयोग, सुरुचिपूरा नटवर वेश, एव साज-सज्जा आदि रूपोद्दीपक तत्वो द्वारा आसक्ति बढ़ जाती है। यह आसक्ति भक्तिकाल म दो रूपा मे व्यक्त हुई है —

(१) आश्रय या आलम्बन की एक दूसरे के प्रति आसक्ति।

(२) गापी भाव से भक्त के मन की आसक्ति।

राधा-कृष्ण या गोपी कृष्ण की पारस्परिक आसक्ति एव मुग्धता का सफल चित्र अनेक कवियो ने अकित किया है। सूर न प्रथम मिलन का हृदय-ग्राही वणन प्रस्तुत किया है। यहा राधा और कृष्ण दानो आश्रय एव आलम्बन बन जाते हैं। श्रीकृष्ण राधा के रूप ठगोरी म उलझकर रह जाते हैं।[1] छीत स्वामी के पद मे श्याम सुन्दर की मोहिनी और उनका मुडकर मुसकाना जादू का प्रभाव उत्पन्न करता है —

१ भई भेंट अचानक आई।
हौं अपने गृह तें चली जमुना व उनतें चले चारन गाई।
निरखत रूप ठगोरी लागी, उलका डगर अलि चल्यो न जाई।
छीत स्वामी गिरधरन कृपा करि मा तन चितए मुरि मुसिकाई।
अष्ट० पदावली २१६

(ख) गोकुल की पनिहारी पनिया भरन चली
बडे बडे नैंन ताम सुभि रह्यो कजरा।
पहिरें कुसुम्भी सारी अग अग छवि भारी,
गोरी-गोरी बहियन ताम मोतिन को गजरा।
सखि सग लिये जात, हँसि-हँसि करत बात,
तनहूँ की सुधि भूली सीस धरे गगरा।
नन्ददास बलिहारी, बीच मिलै गिरधारी
ननिन की सैननि म भूलि गई डगरा।
न० ग्र० पृ० ३५३/पद ८३

1 खलन हरि निकसे ब्रज खारी।
गये स्याम रवि-तनया क तट अग लसति चदन की खारी।
औचक ही दखी तहँ राधा नन विशाल भाल दिये रारी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नन-नन मिलि परी ठगोरी। सूरसागर

छीत स्वामी और सूरदास मे मूल अन्तर यह है कि सूरदास म राधा आलम्बन और कृष्ण आश्रय बनत है पर तु छीत स्वामी म गोपी आश्रय और श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। फिर भी दोना पक्षा की आसक्ति एव रूप का प्रभाव समान स्तर पर एक है। परमानन्द दास ने दोनो को ही आश्रय और आलम्बन बना दिया है। उनकी दृष्टि म प्रथम स्नेह बडा कठिन होता है। प्रथम दशन म ही रूप की गहन आसक्ति और सौन्दय के समक्ष आत्म विस्मरण आदि प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति हुई है।[1] इसी आसक्ति के कारण विपरीत व्यापार करके भी गोपी का ध्यान नही रहता देखो री माई कसी ग्वालिन उलटी रई मथनिया बिलोव।[2]

आश्रय आलम्बन की इस रूपासक्ति के अतिरिक्त कविया न स्वय भी अपनी आसक्ति की भावना को गोपी भाव क रूप म व्यक्त की है। ऐस वणना म श्रीकृष्ण को लावण्य निधि बताते हुए उनके रूप क प्रभाव की व्यञ्जना की है। उनके अनूप नख शिख को बार बार देखकर भी मन तृप्त नही हो पाता।[3] सकल काम प्रद इस रूप स तृप्ति हो भी कस सकती है। भक्त भगवान के रूप का पान उनकी मद्राग्रा स करता है। वह युगल छबि का पान पावस ऋतु म करने की आकाक्षा व्यक्त करता है– भीजत कब देखौ इन नना। दुलहिन जू की सुरग चूनरी मोहन का उपरना। स्यामा स्याम कदम्ब तर ठाढ, जतन कियौ कछु मैं ना। कुम्भन दास प्रभु गोवधन धर जुरि आई जल सना। इस पद म भक्त की भगवान के प्रति आसक्ति के साथ कलात्मक सौन्दय भी वतमान है। 'गोवधन धर' द्वारा पौराणिक सौन्दय वस्त्रादि क कथन से प्रसाधनगत सौन्दय और रग वभव का कथन भी हो सका है। रूप के इस निधि का देखन के लिये गोपियाँ अपनी अन्तदशा को व्यक्त कर देती है। व प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य माध्यम से भी श्रीकृष्ण की शोभा देख लेती है। इसस सामाजिक मान्यता एव नियमा के पालन से मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है।

---

1 प्रथम स्नेह कठिन मेरो माई।
दृष्टि परी वृषभानु नन्दिनी अरुझ नन निरवार न जाई।
चारो नन मिल जब सनमुख नन्दनन्दन का रुचि उपजाई।
परमानन्द दास उहि नागरि, नागर सा मनसा अरुझाई।

2 अष्ट० परि० २५५ पद ८२

3 कमल मुख देखत कौन अघाइ।
इह सुन सखी सुन्दरि जान रही निसा भरि साइ। परमानन्द दास

रूपाशक्ति मे तन्मय होकर गोपिया मर्यादा की रक्षा करने के हेतु बहाने से श्रीकृष्ण को देखती हैं। स्पष्टत श्रीकृष्ण की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने पर लोक वचन का बडा नियत्रण रहता है। इससे दृष्टि बचाकर रूप का पान आसक्ति का ही सूचक है। श्रीकृष्ण दास की गोपी के नत्रो म श्रीकृष्ण की छवि छा जाती है। उस सबत्र उनकी माधुरी मूरति ही दीख पडती है।[1] कौन उस रूप को देखकर अघा सकता है। कमल मुख को देखकर लोचन अलि उसी मे उलझ जाते हैं। कमल मुख देखत कौन अघाई। सुनिहि सखी लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुभाई।' नेत्र कृष्ण की मधुरिमा म डिपक जाते हैं। गोपी बिना देखे रह ही नहीं पाती है। रूप-लावण्य मे आसक्त उसका मन घर जाते हुए शरीर का साथ नहीं देना चाहता नेत्र अनियन्त्रित हो जाते हैं। वह मुड मुडकर देख लेती है। नारी-सुलभ लज्जा, सकोच, आसक्ति दशनोत्कण्ठा आदि अनेक भाव एक साथ उदित हो जाते हैं। देखने के लिये बहाना ढूँढने का माध्यम भी मिल जाता है। आचल को बार बार गिराने और समेटने मे समय और अवसर दोनों ही मिल जाते हैं रूप दशन के लिये इन अनुभावो या चेष्टाओं द्वारा आतरिक भावो की सफल अभिव्यक्ति के साथ सौन्दर्य की उत्तमता का सकेत भी मिलता है। एक पग आगे बढ़ना पुन रुकना मुडकर शोभा को देखने लग जाने आदि चेष्टाओ म रूप की आनशयता और लावण्य की आवश्यकता इन दोनो की पुष्टि हो जाती है।[2]

चत्रभुज दास की रूप पिपासा भी इसी प्रकार की है। कृष्ण का रूप देखे बिना पल युग के समान बीतता है। 'नैननि ऐसी ए बान परी। बिनु देखे गिरधरन लाल मुख जुगभर गनत घरी।'[3] उस अपार शोभा के सिन्धु श्रीकृष्ण

---

[1] नैना मेरे निरखि छबि भूले।
छवि छाई चचल दृगनि म, मतवारे भये भूले।
जित देखौं तित माधुरी मूरति, कालिन्दी के कूले।
कृष्णदास की जीवनी प्यारो, सदा रहौं तिन भूले।
— सगीत अष्टछाप मे सगीत कार्यालय हाथरस

[2] चली जाति उत गेह को मुरि मुरि देखनि इत।
कबहूँ कै इहि मिस ठाढी ह्वै, लावरयाहि सुधारति
कबहूँ आँगनि आँचर बनाई ढिग जित तित।
कृष्णदास प्रभु के रूप गुन मन अरुभयो,
तातैं सुरभि न सकति सकति अकनि हित।

[3] सगीत अष्टछाप स।

को देखकर तन मन सभी कुछ आतुर हो जाता है।[1] रूप का आकर्षण व उसे देखने की उत्सुकता से मन का म थन होन लगता है। वह किसी प्रकार श्रीकृष्ण के रूप लावण्य को देखती ही रहना चाहती है। इसके लिये अपनी मणि माला को तोड कर आँगन म बिखरा देती है और उसे बीनने के बहाने कृष्ण के रूप का पान करती है —

मणि माला आँगन मैं ल न तोरि डारि बगरावैं।
बीनन मिस मोहन अवलोकत यो ही पहर बितावैं। चत्रभुज दास'

अनुभावो के इन चित्रगा म मुग्धा नायिका की सरल चेष्टाओ के सौ दय की अभिव्यक्ति और आलम्बन के रूप का आधिक्य व्यञ्जित है। सामाजिक मर्यादा से ईषद् नान युक्त होकर गोपन की प्रवृत्ति की ओर उ मुख हो जाना आलम्बन के रूप लावण्य की आसक्ति की स्वीकृति ही है इससे मनोगत भावों की अभि यक्ति के साथ ही चेष्टागत सौन्दय का अप्रतिम रूप दीख पडता है। इन क्रियाओ द्वारा आलम्बन के रूप और लावण्य की अन तता असीमता और हृदया वजकता का बोध होता है। यह बोध ही अनुभवो की आधार शिला पर रस का उद्रेक करते हुए उसे भावना जगत् की वस्तु बना देता है। कवि की महत्ता भी इसी म है कि वह अनुभूति के धरातल पर भावों की त मयता मे अपनी सुधि बुधि भूल जाय। भक्त कवियो म इस गुण की प्रबलता के कारण ही उनके आलम्बन का रूप लावण्य इस जगत् की वस्तुओ के समान ग्राह्य होते हुए भी अपनी अन तता और असीमता मे लोकोत्तर एव दिव्य है और यही उनके वणन की सफलता है। इन गुणा के साथ शारीरिक सुकुमाता से व्यक्ति की महत्ता और अधिक बढ जाती है।

सुकुमारता— सिद्धा त निरूपण करते हुए यह बताया जा चुका है कि विभिन्न ज्ञानेन्द्रिया का अपन विषया से अनुकूल, सुखद और प्रिय सम्पक स्थापित होन पर उत्पन्न होन वाली अनुभूतियाँ कोमल और आन दप्रद प्रतीत होती हैं। यह अनुभूति जितनी प्रिय होगी उस विषय मे उतनी ही कोमलता का अनुभव होगा। विभिन्न इन्द्रिया के विषय रूप, रस स्पश, श्रवण और घ्राण हैं। इनम शारीरिक कोमलता का अनुभव रूप एव स्पश से होता है। स्पार्शिक सुख स रूप का आकषण बढता है। शरीर की शोभा बढाने वाले

---

[1] सुन्दर स्याम कमल दल-लोचन सोभा सिन्धु अपार।
ता तिन तैं आतुर भय भगनन चितवन बारम्बार।
अष्टछाप-चत्रभुज दास।

गुणा मे सौकुमाय की गणना होनी है। यह आलम्वन मे स्थित उसके रूप का उत्कर्षक गुण है। सुकुमारता नारी शरीर की एक आकर्षक विशेषता है। यही कारण है कि कलावादी, नायिका-भेद लिखने वाले कवियो ने सौकुमार्यादि का विशेष वणन किया है।

इस सुकुमारता का उद्भव दो कारणो से होता है। प्रथम अभिजात कुल म उत्पन्न होने के कारण स्वाभाविक सुकुमारता और द्वितीय अनुलेपनादि सौदय प्रसाधना से प्राप्त की जाने वाली सुकुमारता। यह सुकुमारता शरीर का एक गुण है जिसमे कोमल वस्तुओ का स्पश भी असहनीय माना जाता है।[1] इस असहनीयता म स्पार्शिक सुख की अनुभूति सुखद होती है। यदि यही अनुभूति दु खद हो जाय तो स्पश का सुख न रह जायगा अपितु कठोरता का अनुभव होगा। इसी कारण सुदर व्यक्तित्व की कल्पना म नायक नायिका या आराध्य और आराध्या की मृदुता का वणन किया जाता रहा है। भक्तिकालीन कवियो की आत्मलीनता अपने आलम्बन के वणन म इस प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति करने की ओर उन्मुख न हो सकी। फिर भी कही-कही ऐसा वणन मिल जाता है।

भक्त कवियो म ध्रुवदास की राधा का सौकुमाय उच्च कोटिक है। वह केवल कोमल वस्तुओ के मूत रूप का ही सहन नही कर पाती है अपितु अमूत का भार भी उसके लिये असहनीय हो जाता है यही कारण है। कि प्रिय के निरखने से उस पर पडने वाले दृष्टि के भार को सहन करने मे भी वह अपने को असमथ पाती है। डीठिहुँ को भार जनि देखत न डीठि भरि, ऐसी सुकुमारी नैन प्रान हू ते प्यारी है।"[2] इस उदाहरण मे वस्तु की स्थूलता का भार न होते हुए भी सूक्ष्मतत्वो द्वारा भार की असहनीयता का वणन करके शारीरिक मृदुता की व्यञ्जना की गई है। ध्रुवदास ने अपने अन्य ग्रथ 'मन-शृङ्गार' मे राधा के सौकुमाय का वणन करके उसके रूप की अतिशयता की व्यञ्जना की है। 'रस हीरावली' म यही भाव व्यक्त किया गया है। छवि भी 'कुँवरि' की सुकुमारता को छूने मे सकोच करती है।[3] इनम व्यञ्जना की कलात्मकता होते हुए भी ऊहात्मक वणन है। इस वणन की यथायता

---

[1] मादव कोमलस्यापि सस्पर्शासहतोच्यते।
उज्ज्वल नीलमणि-उद्दीपन प्रकरण ३५। निणय सागर सन् १९३२

[2] शृङ्गार सत-छन्द ४७ ध्रुवदास।

[3] छुव न सकत अग मृदुताई। अति सुकुमार कुँवरि तन माई।
रस-हीरावली छन्द ६४ ध्रुवदास।

वास्तविक जगत् में नहीं देखी जाती है। यह कल्पना जगत् की वस्तु है फिर भी इससे मृदुता युक्त सौन्दर्य की अतिशयता का बोध होता है। इस दृष्टि से कवि की सफलता असन्दिग्ध है।

सुकुमारता का वर्णन व्यञ्जना की इस प्रणाली के अतिरिक्त अभिधा के स्वशब्द कथन द्वारा भी किया गया है। हरिराम व्यास ने कहा है कि राधा के सभी अंग कोमल हैं [1] परन्तु उनके इस कथन में किसी प्रकार का कोई बिम्ब उपस्थित नहीं होता। अतः यह केवल शुष्क वर्णन मात्र ही रह जाता है। इसमें वाच्यगत वक्रोक्ति का पूर्णतः अभाव है। ऐसे वर्णनों द्वारा कवि के मन की तृप्ति भले ही हो जाय परन्तु इससे वास्तविक सौन्दर्य व्यञ्जित नहीं होता है। अतः कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य में सुकुमारता की व्यञ्जना कम हुई है फिर भी जितना है वह अपने आप में पूर्ण है। इसकी गणना भी रूप-लावण्यादि के समान सूक्ष्म गुणों में होती है। इन सूक्ष्म गुणों के अतिरिक्त स्थूल गुणों द्वारा भी शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

स्थूल-तत्व—सौन्दर्य के विधायक उपकरणों में आत्मगत और बाह्य-तत्वों की चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। वहाँ बताया गया है कि आत्मगत उपकरणों के अन्तर्गत आश्रय आलम्बन के गुणों और चेष्टाओं की गणना होती है तथा बाह्य उपकरणों में अलंकृत (बाह्य प्रसाधन) और तटस्थ वस्तुओं का सहयोग रहता है। आत्म गत गुणों के दो भेद स्थूल और सूक्ष्म बताये गये हैं। सूक्ष्म गुणों में रूप, लावण्य छवि शोभा, कान्ति, दीप्ति, आदि अनेक गुणों की चर्चा हो चुकी है। इन सभी गुणों में अमूर्त तत्वों की महत्ता रहती है। इससे ये गुण आकार में रहकर भी आकार से भिन्न अस्तित्व रखते हैं। आकार के अवलम्बन के बिना इनका अस्तित्व सम्भव नहीं। इसीसे इनकी गणना आत्मगत सूक्ष्म गुणों के अन्तर्गत की गई है।

स्थूल गुणों में आकार की महत्ता रहती है। विभिन्न अंगों के समुचित विन्यास से उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य की चर्चा इसके अन्तर्गत की जाती है। अंगों की बनावट उनके समानुपात आदि से शारीरिक आकर्षक बढ़ जाता है। यही आकर्षण सर्वाङ्ग के समष्टिगत सौन्दर्य को बढ़ाने में सहायक होता है। इसी से अंग प्रत्यंग वर्णन की परम्परा साहित्य में सदा से रही है। इसे नख शिख-वर्णन के नाम से जाना जाता है।

नख-शिख में पैर के नख से आरम्भ करके शिख तक के सभी अंगों के वर्णन की परम्परा रही है। वीर्य-विक्षोभन शक्ति से सम्पन्न काम सहायक

---

[1] सब अंग कोमल उरज कठोर—व्यास पृ० २८२

अगों का वणन अपेक्षाकृत विशेष तन्मयता के साथ किया गया है। इसी से स्तन, नितम्ब, उर-युगल आदि अगो के वणन म कवियो ने अपनी प्रतिभा और कल्पना का पूण उपयोग किया है। यही कारण है कि इन अगो का उन्मादक चित्र स्थान-स्थान पर अनेक शृङ्गारिक प्रसगो पर प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भक्तिकाल के पूव नख शिख की सक्षिप्त परम्परा देते हुए इस काल के नख-शिख का सक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जायगा।

नख शिख की पूव-परम्परा—नारी शृङ्गार का वणन अपनी प्राचीनता के लिये प्रसिद्ध है। आरम्भ से ही कलाकार नारी के अगो को आकषक रूप मे प्रस्तुत करता रहा है। धार्मिक और लौकिक दोनो प्रकार के साहित्यो मे ऐसी प्रवृत्ति दीख पडती है। वद और शतपथ ब्राह्मण[1] मे अगो का वणन है रामायण प्रसाधन सामग्रियो की चर्चा करता है। 'महाभारत मे नारी अगो का सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है। उवशी के सौन्दय का मोहक वणन 'महाभारत' मे है। वहाँ भकुटी, कटाक्ष, कान्ति, स्तनो की पुष्टता, त्रिवली, क्षीण कटि आदि का वणन है। आभूषणो मे मेखला आदि का वणन और वस्त्रो के आकषण की अभिव्यक्ति है।

सस्कृत कवियो और नाटककारो मे सभी ने नारी-सौन्दय की अभिव्यक्ति अग प्रत्यग के आधार पर की है। भास अश्वघोष, हष, भवभूति, कालिदास भतृहरि आदि ने नख शिख परम्परा को प्रसगत बल दिया। इनकी दृष्टि स्थूलता की इयत्ता तक ही सीमित न रहकर नायिका के विभिन्न अगो की सूक्ष्म और आकषक चेष्टाओ तक आगे बढी। इसीसे नेत्रो के चाचल्य, पग गति, मुस्कान भकुटि भगिमा आदि का सजीव रूप चित्र प्रस्तुत किया गया। अपभ्रश काव्यो के जन कवि भी रमणी रूप सौन्दय के समक्ष मुग्ध होकर अग प्रत्यग के विश्लेषण मे प्रवृत्त हो गये।

सस्कृत क इस पृष्ठभूमि के साथ हिन्दी का वीरगाथा कालीन साहित्य भी नारी के शृङ्गार परक रूप सौन्दय की ओर अधिक प्रवृत्त हुआ। सभी रासो ग्रन्थो के मूल म नारी का रूप सौन्दय ही काय करता रहा। यहाँ पर नख शिख की क्षीण होती हुई परम्परा का पुन सूत्रपात हो गया। भक्ति कालीन साहित्य के सूफी शाखा के कवियो के काव्य का आधार नायिका का नख शिख वणन रहा है। उसकी कथावस्तु की गति का मूल कारण नायिका का सौन्दय चित्रण ही है। सभी सूफी कवियो ने रूप चित्रण मे नख शिख का

---

[1] शतपथ ब्राह्मण १/३/५/१६

वर्णन किया है। सौन्दय की अभिव्यक्ति मे प्रति समान रुचि दीख पडती है। सुन्दरतम उपमानो के सचय से यह काय सम्पन्न किया गया है। इस नख शिख मे भौतिक रूप-सौन्दय के साथ आध्यात्मिक सकेत भी मिल जाता है।

ज्ञान की शुष्क प्रधानता वाले हिन्दी काव्य की ज्ञान मार्गी शाखा के कवियो की दृष्टि से भी नख शिख का वर्णन उपेक्षित नही रहा। प्रियतम की सौन्दय कल्पना सत साहित्य में आवश्यक बन पडी है। भगवान के रूप का तेज-पुञ्ज भक्तो को आकर्षित करता है। विभिन्न अगो का उतना वर्णन नही है जितना उस रूप से उत्पन्न होने वाले प्रभाव का चित्रण है। नख शिख की महत्ता सत कवियों की दृष्टि म पहले के काव्यो म वर्णित नख शिख के समान नहीं थी। उसका भोग-परक वर्णन न होकर वराग्यपरक वर्णन किया गया है। वस्तु की स्थिति होते हुए भी वर्णन मे दृष्टिकोण का स्पष्ट अन्तर था। फिर भी अग वर्णन की परिपाटी का पूर्ण लोप नही हो सका और इसकी क्षीण पडती हुई धारा को पुन प्रवाहित करने के लिये भक्तिकालीन कवियो की सगुण चेतना अग्रसर हुई।

मर्यादावादी राम भक्ति साहित्य का दाम्पत्य रति रूप वर्णन के लिये नख शिख की अपेक्षा करने लगा। भक्त तुलसी का रूप वर्णन से सम्बन्धित नख शिख अपनी प्राचीन मान्यताओ का नवीन रूप म पुनरुद्धार है। रामचरित मानस म धनुष यज्ञ के प्रसग पर पुरुष रूप-वर्णन मे श्रीराम के नख शिख का आवश्यक वर्णन है। इस वर्णन मे पुरुष क पौरुष और वीरत्व के साथ सौन्दय का वर्णन है।[1] सीता के नख शिख वर्णन के अनेक स्थल है। वियोग के अव सर पर तो उपमानो का सग्रह प्रस्तुत कर दिया गया है। कही-कहीं राम का सौन्दय वर्णन ऐहिक न होकर आध्यात्मिक ही जाता है। ऐसे स्थलो पर वर्णित रूप 'उदात्त की परिधि मे आ जाता है।[2] इन वर्णनो म सौन्दय का एसा महान् स्वरूप दीख पडता है कि इसकी करपना द्वारा ही अपनी लघुता का भान होने लग जाता है। आलम्बन के विशाल और अलौकिक सौन्दय के समक्ष लघुता का बोध उस आलम्बन के वर्णन को उदात्त कोटि म ले जाता है। भक्त कवियो की इन पृष्ठ भूमियो पर ही कृष्ण भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूव सौन्दय का खण्ड चित्र शताब्दियो से वर्णन का विषय बनता चला आ रहा था। अनुकूल पृष्ठभूमि से इन कवियो को अपने लिए एक सम्बल प्राप्त हो गया

---

1 रामचरित मानस बालकाण्ड।

2 रामचरित मानस लकाकाण्ड।

और उन्होंने श्रीकृष्ण के रूप की एक ऐसी अछूती कल्पना की कि उनका आराध्य सौन्दय की अतिम सीमा हो गया। भक्ति की वल्गा ने उनकी कल्पना तुरगिनी को नख शिख की अश्लीलता तक पहुँचने की छूट नही दी। इससे रूप वणन की मर्यादा अनियन्त्रित नहीं होने पाई। जहाँ कही अगो का सागो पाग वणन अभीष्ट था वहाँ कवि रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग द्वारा मर्यादा की रक्षा करते हुए सौदय का अनिद्य रूप प्रस्तुत करने मे विचार-सशय में नही पडा और आलम्बन का ऐसा रूप चित्र प्रस्तुत किया, जिसके सौन्दय की समता अन्य किसी काल से साहित्य मे उपलब्ध नही होती। यह रूप चित्र नख-शिख का आधार लेकर प्रस्तुत हुआ है।

नख शिख वणन के मूल म कवि की सौदय चेतना काय करती है। कवि किसी पात्र के रूप से प्रभावित होकर अपने मनोगत भाव को वाणी देना चाहता है। वाणी देने के इसी प्रयास म वह अपने आलम्बन को अधिकाधिक सुदर रूप म प्रस्तुत करता है। इसके लिये उसे काव्य परम्परा की एक विशेष शली का आलम्बन लेना पडता है। वह इसी आधार पर आलम्बन के रूप और आकार की विशेषताओ का वणन करता है। यह वणन ही नख शिख के नाम से प्रचलित है।

नख शिख के इस वणन म उसकी कवि दृष्टि और काल्पनिक सचेत नता सदव जागरूक रहती है। वह शरीर के विभिन्न अगो को वण्य विषय बनाकर अप्रस्तुत योजना द्वारा अपने मन की सौदय विषयक चेतना की अभि व्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है (१) परम्परा पाल-नाथ नख शिख का उपमानो के माध्यम स वस्तु परिगणन प्रणाली पर वणन (२) चमत्कारिक वणन मे रूपकातिशयोक्ति या दृष्टिकूट वाली शली अपनाई गई है। इसमे भाव प्रवणता न होकर बौद्धिक चमत्कार का प्रदशन होता है। इससे इसम सौदय का रूप चित्र उपस्थित नही होता, अपितु रूप का शुष्क कथन मात्र ही रह जाता है (३) रूप का भाव प्रवण बिम्बात्मक चित्र मन मे आकषण और प्रियता के भाव को जाग्रत करता है। ऐसे वणनो द्वारा आल-म्बन के रूप एव व्यक्तित्व मे निखार आ जाता है। वह दशक के हृदय एव मन को अपनी ओर खीच लेने म समथ हो जाता है। प्राय रूप का यही वणन मन मे रति का सचार करने म समथ होता है। इसीसे रस सिद्ध कवि के वणन का झुकाव इसी ओर अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इन तीनो प्रणा लियो का आधार लेकर कवियो ने अपनी मानसिक सौदय चेतना की अभि व्यक्ति दो ढग से की है—

(१) अग प्रत्यग का यष्टिगत वरण न इस वरण न के अन्तगत प्रत्येक अग की स्वत सभवी छबि और आभूषणो के माध्यम से बढ जाने वाली छबि का वरण न होना है परन्तु नख शिख का सामान्य अथ विभिन्न अगो के रूप, आकार विस्तार आदि का वरण न करना माना जाता है ।

(२) सर्वाङ्ग का समष्टिगत रूप–इसम किसी अग विशेष का व्यक्तिगत कथन न होकर पूरे अग का सामूहिक वरणन होता है । ऐसा वरणन प्राय अगो के आकार विस्तार आदि का नही होता अपितु अगो म वतमान शोभा का होता है । शोभा की इस अभिव्यक्ति म शारीरिक सूक्ष्म सौदय विधायक तत्वो की चर्चा की जाती है । आकार मे वतमान रहकर आकार से भिन्न इनकी अलग सत्ता नहो रहती है । इससे अमूत तत्वो म इनकी गणना की जाती है । शरीर के सर्वाङ्ग वरणन म ये तत्व लावण्य छबि आदि के रूप म स्पष्ट होते हैं । सात्विक भावो को भी सौदय विधायक गुणो मे माना जा सकता है क्योकि इनका उद्भव यौवन म सत्व स होता है और इनसे मुखादि म एक चमक आ जाती है । इससे नायक अथवा नायिका का सौदय तो बढता ही है आश्रय के मन म ऐसे सौदय को निरखने म पूरा आत्म तृप्ति का अनुभव भी होता है ।

सर्वाङ्ग के सौदय कथन म कवियो का भाव प्रवण भक्त हृदय सदव स्पष्ट होता रहा है । इन कवियो ने मन की भावनाओ को अपने आराध्य के स्वरूप कथन म व्यक्त किया है । इससे उनका आराध्य रूप की राशि 'लावण्य का सदन रूप निधि छवि को तरगित करन वाला और आश्रय का पूरात प्रभावित करने वाला बन जाता है ।[1] एस रूप राशि के समक्ष

---

1 (i) राधे तू रूप की राशि ।
मदन मृग हसि सुरस कौन्हौ रची मोहनि पासि
हँसन दामिनि दसन बीज पगनि मधुर ईषद् हास ।
...मन्द रसिक रिझवत, सुरत रग विलास ।
कृष्णदास पद ४० विद्या विभाग काँकरौली

(ii) सर रूप मम गौर तन्वी मोचो हरि हेरी ।
अग अग लावण्य सदन सगि भ्रू विलास त्रिभुवन श्री सरसी ।
रानि त कछु और विमल छवि जानि त गिरधर पिय देखी ।
कृष्णदास ।

(iii) कृष्णदास स्वामिनी रूप निधि
गिरधर पिय निय जानि और ... । पद ४६ कृष्णदास

सौन्दर्य का देवता कामदेव भी मन में लज्जित हो जाता है। अतः राधा और कृष्ण दोनों में ही सौन्दर्य अपनी सीमा पा लेता है। इस अवर्णनीय सौन्दर्य मे स्वाभाविकता और उसकी गरिमा बनी रहती है। अंग अंग की सहज माधुरी और बदनारविन्द की शोभा का वर्णन नहीं हो पाता है।[1] राधा अपने सहज शृङ्गार एवं भृकुटि भंगिमा से मदन को भी जीत लेती है।[2] ध्रुवदास के वर्णन मे रूप की सीमा और छवि की नवीनता के संयुक्त प्रभाव से भी मन तृप्त नहीं होता है और कामदेव माधुरी छवि तरंग को देखकर लज्जित हो जाता है।[3] इन सभी वर्णनों की शृङ्गार परक भावना के कारण इस रूप चित्र में पूर्ण उल्लास एवं आनन्द दीख पड़ता है।

सर्वाङ्ग वर्णन में अंगों की इस सूक्ष्मता के साथ उसके स्थूल गुणों का भी वर्णन हुआ है। यह वर्णन दो प्रकार से किया गया दीख पड़ता है। (१) रूपातिशयोक्ति द्वारा (२) वस्तु-परिगणन प्रणाली द्वारा।

(iv) छवि-तरंग अगनित सरिता ज्यों
जलनिधि आवत तृपति न माति। पद १५६ कृष्णदास

(v) अंग अंग की छवि कहति न आवे,
मनसिज मनहिं लजानौं। पद ५६॥

(vi) कहा कहा मोहन मुख शोभा।
कहि न जाय मुख परी ठगौरी
रूप देखि मेरा मन लोभा। पद १८३॥

1 देखी माई सुन्दरता की सीवा।
ब्रज नव तरुनि कदम्ब नागरी, निरखि करति अध ग्रीवा। हित चौरासी

2 हित चौरासी पद ६७

3 कोटि-कोटि रसना जो रोम रोम प्रति होइ,
प्यारी जू के रूप को न प्रमाण कह्यो जात है।
अतिहि अगाध सिन्धु पार नहि पावै कोई
थोडी बुद्धि सीप माहि कैसे के समात है।
छिन छिन नई-नई माधुरी तरंग रंग,
देखे नख-चन्द्रिकन चन्द्र हू लजात है।
हित ध्रुव अंग-अंग बरसत रूप-स्वाति
नैना पिय चातक तौ कहू न अघात है।

रूपकातिशयोक्ति म उपमेय का उपमान मे अध्यवसान हो जाता है। ऐसे वर्णन म उपमान के प्रयोगो द्वारा ही उपमेय का सकेत मिल जाता है। इस प्रणाली मे रूप के वर्णन से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है। प्रथम रूप शरीर के विभिन्न अगो की सुन्दरता का स्थूल आकार या गुण-परक ज्ञान होता है और द्वितीय इस स्थूलता म भी अश्लीलत्व नहीं आ पाता है। इससे सामाजिक मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है तथा भक्त और भगवान के बीच सीमा का उल्लघन भी नही होन पाता।

रूपकातिशयोक्ति का यह वर्णन भक्त कवियो द्वारा तीन प्रसगो पर किया गया है (१) *दान प्रसग पर* (२) *मान प्रसग पर दूती के कथन म* (३) रूप-वर्णन के अवसर पर नायक द्वारा नायिका का सौन्दर्य चित्रण। इन तीनो ही प्रसगो पर सर्वाङ्ग वर्णन की रुचि रही है।

दान प्रसग पर एक बार अभिधेय रूप म अपने मनोगत भाव को स्पष्ट करके पुन रूपकातिशयोक्ति द्वारा अग वर्णन किया गया है —

१ जोबन दान लेहुँगो तुम सो।
जाके बल तुम बदत न काहुहि कहा दुरावति हमसो।
कचन-कलस महारस भारे हमहू नेक चखावहु।
सूर सुनहु करि भार मरति कत हमहिं न मोल दिखावहु।

इस उद्धरण म 'कचन कलस' द्वारा स्तनो का सकेत किया है, जो अभिधेय रूप स स्पष्ट नही है अपितु इस प्रयोग से स्तनो की व्यञ्जना होती है।

(२) राधा द्वारा मान किये जाने पर दूती के कथन म अगो का आकर्षक वर्णन हुआ है। उपमानो द्वारा उपमेय रूप राधा के विभिन्न अगो के सौन्दर्य की व्यञ्जना करके श्रीकृष्ण के मन मे राधा के प्रति अनुराग उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है तथा सौन्दर्य के आकर्षण द्वारा दोनो के मन म मिलने की एक भूमिका तयार कर दी जाती है।[1]

(३) नायक या सखी द्वारा राधा के रूप वर्णन पर भी यही प्रकृति लक्षित होती है। इस अवसर पर राधा के उपमानो की अवहेलना करके उन

---

[1] अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरवर गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृगमद काग।

उपमानो के माध्यम से ही शरीर के विभिन्न उपमेय या प्रस्तुत की व्यञ्जना की गई है।[1] व्यासजी ने भी इस प्रकार की पद्धति का अनुसरण किया है —

(क) चन्द्र बिम्ब पर वारिज फूले।
तापर फनि के सिर पर मनि गन, तर मधुकर मधु मद मिलि फूले।
तहा मीन कच्छप सुक खेलत, बसिहि देखि न भये बिकूले।
विद्रुम दारयो मैं पिक बोलत, बेसर नख पल्ल नारि गरूले।
व्यास-वाणी पद ७०

व्यास के इस कथन मे सहजता, अकृत्रिमता आदि पर विशेष बल दिया है। सूर के शब्दो मे 'सहज रूप की रासि राधिका के तन पर भूषण अधिक शोभित हो रहा है। एसे राधा के रूपाङ्कन मे किसी प्रकार की वर्णन पद्धति अपनाई जाय, उस सौन्दय मे कोई व्यवधान नही पडने पाता।

(ख) अतिशयोक्ति मूलक उपयुक्त रूप चित्र के अतिरिक्त सर्वाङ्ग का चित्र प्रस्तुत करने के लिय कवियो ने वस्तु परिगणन प्रणाली मे नख शिख का वर्णन किया है। ऐसा वर्णन विशेषत दरबारी कवियो द्वारा किया गया है। यहाँ पर केवल एक उदाहरण दिया जायगा।

केस पर शेष दृग चला पर खजरी भौंह पर धनुष धरि सुरति सारो।
दसन पर दामिनी कण्ठ पर कोकिला अधर पर बिम्ब रहि रहि मम्हारो।
जघ पर कदली कटि छीन पर केहरी, कुचन पर मेघ महामड हारो।
ज्योति पर ज्योति छबि अग पर गग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारो।
(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७६)

इस वर्णन मे परम्परा पालन का आग्रह अधिक होने से उपमाना का आधार लेकर उपमेयो के गुणो का सकेत किया गया है। ऐसे वर्णनो मे बिम्बात्मक चित्र का अभाव होने के कारण भाव प्रवणता नहा आ पाती है। इसे उपमेय और उपमान का सग्रह कहना अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है। यही

---

1 राधा तेरे रूप की अधिकाइ।
शशि उर घटत, हेम पावक परि, चम्पक कुसुम रह कुम्हिलाइ।
इभ लूटत, अरु अरुन पक मय, विधिना आन बनाइ।
कद्रुज बैठि पाताल दुरे रहि खगपति हरि वाहन भये जाइ।
हस दुरयौ सर दुरयौ, सरोरुह, गज मृग चल पराई।
सूरदास विचारि देखि मन, तार रसन पिक रहीं लजाई।
सूरसागर पृ०

कारण है कि सौंदय का विम्ब विधायी चित्र उपस्थित नहीं हो पाता है। फिर भी कवि की सौंदय परक दृष्टि का ज्ञान हो जाता है।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राधा-कृष्ण के सौन्दय चित्रण में लीला क्रम के बीच अवसर मिलते ही भक्तिकालीन कवियों ने सर्वाङ्ग या अंग विशेष का पूर्ण या खण्ड चित्र उपस्थित किया है। अंगों के आकार, गुणादि के अनुरूप अप्रस्तुतों के विधान द्वारा नख शिख का वर्णन किया गया है। यह वर्णन वस्तु परिगणन रूप रूपकातिशयोक्ति रूप और भाव प्रवण रूप में हुआ है। इन तीनों में दो का विश्लेषण ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। तीसरे प्रकार, भाव प्रवण रूप में विम्ब विधायिनी प्रतिभा द्वारा अंग-वर्णन में मोहक एवं रमणीय चित्र प्रस्तुत कर देना सूरदास जसे रस सिद्ध कवि का ही सामर्थ्य है

भुजा पकरि ठाढे हरि कीन्हे।
बाँह मरोरि जाहुगे कसे, मैं तुम नाके चीन्हे। सूरसागर

इस उदाहरण में राधा द्वारा बाहु पकड लिये जाने पर पारस्परिक प्रेम पूर्ण नोक झोंक का सुखद और आकर्षक चित्र प्रस्तुत हो सका है। इस चित्र में केवल बाहु और भुजा का सामान्य कथन मात्र है फिर भी इससे निर्मित चित्र आकर्षक है। ऐसे चित्रों के अतिरिक्त अंगों के खण्ड चित्र या उनके व्यक्तिगत विशेषताओं आदि का कथन कवियों द्वारा किया गया है। इसमें प्रत्येक अंग का अलग अलग वर्णन अप्रस्तुतों के माध्यम से किया जाता है। अंग की शोभा का निरूपण करने वाली इन दो पद्धतियों-सर्वाङ्ग वर्णन और अंगों का अलग अलग वर्णन-के अतिरिक्त सौन्दय प्रसाधक उपकरणों द्वारा बढे हुए सौंदय का भी वर्णन भक्त कवियों ने किया है। इन प्रसाधनों में आभूषणों और गन्धद्रव्यों का प्रयोग उपयोगिता मूलक दृष्टिकोण से किया गया है। इनके दो उद्देश्य दीख पड़ते हैं (१) सौन्दय की अभिवृद्धि करना और (२) प्रिय को रिझाना। इसी से इनके प्रयोगों में सदैव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शरीर अधिक से अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगे। इस प्रकार स्वत सम्भवी सौंदय और आभूषणों के माध्यम से बढ जाने वाले सौन्दय का महत्व है। अभी तक स्वत सम्भवी सौंदय का निरूपण किया गया। आभूषणों से बढे हुए सौन्दय का भी वर्णन मिलता है।

शोभा विधायक तत्व के रूप में आभूषण—

शरीर पर धारण किये जाने वाले शोभा विधायक उपकरणों को अलंकार के नाम से जानते हैं। इन अलंकारों के धारण करने के दो उद्देश्य

दीख पडते हैं (१) ऐश्वय और वभव का प्रदशन (२) शारीरिक सौन्दय की अभिवृद्धि। इनम अलकारो का प्रयोग विशेषत सौन्दय और आकषण को बढाने के लिये ही किया जाता है। लोक-व्यवहार का व्यवहार भी इस धारणा की पुष्टि होती है। भक्तिकालीन साहित्य म आभूषणा का शोभा विधायक सामग्री के रूप मे ग्रहण करके उससे उत्पन्न या प्राप्त सौन्दय द्वारा प्रिय को रिझाने का प्रथम उद्देश्य था। यह काय दो प्रकार से सिद्ध किया गया है।

(१) स्वय अपना शृ गार करके प्रिय को रिझाने की चेष्टा की गई है। यथा --

"युवति अग सिगार सिगारनि।
वेनी गूँथी माँग मानिन की, सीसफूल सिर धारनि। सूरसागर २११६

(२) श्रीकृष्ण द्वारा शृ गार किया जाना और उसे देखकर स्वय प्रसन्न होने की भावना व्यक्त की गई है। यथा—

'मोहन मोहिनी अग सिंगारति।
वेनी ललित ललित कर गूँथत, सुन्दर मांग सँवारति।
नख सिख सहज सिंगार भाव सौं, जावक चरननि सोहन।
सूर स्याम तिय अग सँवारति, निरखि आपु मन मोहनि॥
सूरसागर पद ३२४६

इन दोनो ही उदाहरणो द्वारा प्रसाधना के माध्यम से रूपोत्कर्ष की अभिव्यक्ति की गई है। दूसरे उदाहरण की अन्तिम पक्ति 'निरखि आपु मन मोहनि' द्वारा सौन्दय की उपयोगिता परक उद्देश्य की सिद्धि हो सकी है। प्रिय द्वारा शृ गार किये जान पर प्रेम की गहनता और प्रेम गव की भावना पुष्ट होती है। इसमे आभूषणा द्वारा बढ जाने वाले सौन्दय का स्पष्ट रूप मे प्रतिपादन किया गया है सोलह शृ गार के अन्तगत इन आभूषणो को शोभा विधायक तत्व के रूप मे अन्य अगो के अप्रस्तुत विधाना के साथ लाकर इनसे उत्पन्न होने वाली अनोखी दीप्ति का आकषक चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1]

आभूषणो के माध्यम से सहज सौन्दय बन जाता है। सूर ने इस विचार

---

1 आजु तेरी अधिक छवि बनी नागरी।
माँग मातिन छटा वदन पर कच लटा,नील पट घन घटा रूप रस आगरी।
कृष्णदास पदावली से

का समर्थन किया है।[1] केवल एक हार के कथन मात्र से अन्य अंगों में धारण किये जाने वाले आभूषणों से अभिवृद्धि को प्राप्त शोभा का संकेत मिलता है।[2] कृष्णदास ने आभूषणों से बढ़े हुए सौंदर्य के पुञ्ज बाल कृष्ण का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है।[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषणों के माध्यम से अपने सौंदर्य को बढ़ाने की चेष्टा करते थे। इसका उपयोगिता मूलक उद्देश्य संदेह से परे है। आभूषणों के इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ अंगों के सहज सौंदर्य के वर्णन की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। अतः इन दोनों के सम्मिलित वर्णन द्वारा रूप का आकर्षण बड़ा तीव्र हो जाता है और नख शिख वर्णन में अनोखापन आ जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कृष्ण काव्य के कवियों ने नख शिख वर्णन की प्राचीन परम्परा का अपने ढंग से उपयोग किया है। उनके इस वर्णन का स्वतन्त्र विकास न हो सका अपितु प्रासंगिक रूप में ही आराध्य के सौन्दर्य वर्णन में इस पद्धति का अनुसरण किया गया। यह वर्णन रीतिकालीन कवियों के वर्णन की भाँति शास्त्रीय सिद्धान्तों में बँधा हुआ न होकर भक्त कवियों के मुक्त हृदय की भावनाओं के अप्रतिहत प्रवाह के रूप में है। प्रेम से प्लावित इन कवियों द्वारा वर्णित शारीरिक सौंदर्य स्पृहा का कारण बन गया। इन्होंने राधा कृष्ण के अनिंद्य सौंदर्य के वर्णन में अपनी उर्वर कल्पना शक्ति का पूर्ण उपयोग किया। इनके निश्चित विचार और संस्कार बड़े प्रबल थे। इसी कारण इस युग में नख शिख वर्णन की स्वतन्त्र परम्परा का विकास न हो सका। इन भक्त कवियों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्होंने रूप की नवीनता आतिशय्य और ज्योति सम्पन्नता नख शिख वर्णन के माध्यम से ही व्यक्त कर दी है। इस वर्णन के द्वारा अपनी आत्म तुष्टि और आराध्य का मोहक चित्र बन पड़ा है। इसी से इनका आलम्बन लावण्य निधि बनकर समक्ष आता है। इनकी चलाई हुई इसी परिपाटी का अवलम्ब होकर रीतिकालीन कवियों ने स्वतन्त्र रूप में नख शिख वर्णन की

---

1 सहज रूप की राशि राधिका, भूषण अधिक विराज। सूरसागर पद २०६३ (सभा)

2 एक हार माहि कहा न्मिरावनि।
नख सिख लौं अंग अंग निहारहु म सब कतहिं दुरावति।
सूरसागर पद २१५८

3 अष्टछाप-परिचय पृ० २२५ सं० प्रभुदयाल मित्तल।

परम्परा का विकास किया। इन्होने भक्ति काल म प्रस्तुत की गई सामग्री का यथेष्ठ उपयोग किया। यह सभी वर्णन आलम्बन के गुण से सम्बन्धित है। यह गुण शारीरिक अथवा मानसिक रहा है। इन गुणो के सग मोहक चेष्टाओं द्वारा व्यक्तित्व का आकर्षण और बढ जाता है। इसस गुण चेष्टा से युक्त होकर आलम्बन की मोहकता बढ़ाने म समर्थ होत हैं।

चेष्टागत सौन्दर्य—

आलम्बन के सौन्दर्य-साधक जिन तत्वो की चर्चा की गई है उनमें चेष्टा प्रमुख परक उपकरण है। यह आलम्बन के आश्रित रहकर रूप-सौन्दर्य की अभिवृद्धि में सहायक होता है। चेष्टा अथवा अनुभावों से हीन रूप सात्विक रति का सचार करने म समर्थ नही होता। चेष्टाओ से भावना उद्दीप्त होती है, रूप का आकर्षण बढ़ता है और उसकी हृदय आवर्जक शक्ति का विकास होता है। चेष्टाए उद्दीपक एव मोहक होती हैं। इनके अभाव म सौन्दर्य निर्जीव और शव-तुल्य हो जाता है उसकी सजीवता रस की आधार भूमि पर चेष्टाओ के ऊपर ही निर्भर रहती है। इन चेष्टाओ से व्यक्तित्व म आकर्षण आ जाता है रूप निखर जाता है उसकी मोहकता बढ जाती है। आश्रय का मन आलम्बन की चेष्टाओ पर रीझकर उसकी ओर ललकने लग जाता है। चेष्टाओ की यही सार्थकता है। इन चेष्टाओ के दो वर्ग हो सकते हैं (१) आलम्बन की चेष्टाएँ (२) आश्रय की चेष्टाएँ।

आलम्बन और आश्रय की चेष्टाएँ हाव, भाव, हेला और अनुभाव कही जाती हैं। इन सबकी गणना कायिक चेष्टाओ के अन्तर्गत हो सकती है, यद्यपि ये मानसिक प्रवृत्तियों की वाहिका होती हैं। इन चेष्टाओ से युवा काल की शोभा बढती है। इसस इन्हें युवा काल के शोभा विधायक गुण मान सकते हैं। इनके दो विभेद किये जा सकते हैं—

(१) सामान्य चेष्टाएँ—इनके अन्तर्गत अलकारो की गणना होगी।

(२) विशेष चेष्टाएँ—इन चेष्टाओ मे आगिक सचालन आदि का महत्व बना रहता है। सम्पूर्ण अनुभावों की गणना इसी के अन्तर्गत होती है। इसके अन्तर्गत मुख विकास, मुसकान भ्रू-भगिमा चितवन, हस्तपदादि का अर्थ-पूर्ण सचालन आदि अनेक चेष्टाओ का समाहार होता है। क्रमश इन दोनो प्रकार की चेष्टाओ का भक्तिकालीन साहित्य म निरूपण होगा।

(क) विशेष चेष्टाएँ—आलम्बन की अनुभावगत चेष्टाओ को विशेष चेष्टा के अन्तर्गत माना गया है। भक्ति काल म इन चेष्टाओ का विश्लेषण करने से ज्ञान होता है कि इनसे दो अभिप्रायो की सिद्धि हुई है—

(१) आन्तरिक भाव का प्रकाशन ।
(२) अभीप्सित प्रभावोत्पादन ।

आन्तरिक भावों के प्रकाशन में सभी अनुभाव सहायक हैं । इसमें मुख्य रूप से नारी की चेष्टाओं का वर्णन होता है, परन्तु भक्ति काल में 'पुरुष रूप श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का मोहक वर्णन हो सका है । अपनी इस मोहकता के कारण ही इन चेष्टाओं की प्रभावोत्पादकता बन जाती है और आलम्बन की आन्तरिक भावनाओं का अनुकूल प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार इन चेष्टाओं का प्रभावमूलक वर्णन ही अधिक हुआ है । इन चेष्टाओं में मुसकान, चितवन आदि की गणना होती है ।

मुसकान—भक्तिकाल में मुसकान के वर्णन में दो प्रकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है। प्रथम केवल मुसकान का वर्णन (२) मुसकान के संग चितवन का संयोग । दोनों ही प्रकार का वर्णन लगभग सभी कवियों में मिल जाता है । विभिन्न अवसरों पर प्रकाशित इस मुसकान को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं ।

१ सामान्य मुसकान वर्णन में श्रीकृष्ण पक्ष में वय की दृष्टि से दो प्रवृत्ति लक्षित होती हैं । (क) प्रथम बाल्यकाल की सरल और स्वाभाविक मुसकान जो अन्तर उल्लास की अभिव्यक्ति करती है । इसके लिए हँसति विहँसति किलकत आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । इस हँसी में किसी प्रकार की काम मूलक भावना नहीं है । अपितु स्वाभाविक मुसकान की सहजता वर्तमान है यथा —

१ किलकि हसति राजति द्वै दतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।
सूरदास, अष्टछाप परिचय पृ० १५५

२ अँगुठा गहि कमल-पानि, मेलत मुख माँही ।
अपनौ प्रतिबिंब देखि, पुनि पुनि मुसुकाँही ।
परमानन्ददास—अष्ट० परि० पृ० १८३

इन उदाहरणों में बाल्यकाल की सहज चेष्टा है, किसी प्रकार की भाव भंगिमा नहीं है ।

(ख) किशोर वय की मुसकान में अर्थवत्ता रहती है । कविगण सहज रूप में इस मुसकान का संकेत करते हैं। ऐसे वर्णन में मुसकान का प्रभाव कपोलों के विकास पर भी दिखाया गया है —

१ चारु मुसकान दसन छवि सुन्दर हँसत कपोल लोल भ्रू भ्रामहिं ।
अष्टछाप पदावली पृ० ४५

२ मृदु मुसकान वक्र अवलोकनि, डगमग चलनि सहज ही सुढारै।
अष्टछाप परिचय पृ० १८३

द्वितीय उदाहरण में मुसकान के संग वक्र अवलोकनि से उसकी महत्ता और बढ़ जाती है। ऐसे मुसकान से सौन्दर्य का बोध एवं सौन्दर्य सृष्टि भी हो जाती है।

१२ भेद भरी मुसकान—श्रीकृष्ण और गोपियों की भेद भरी मुसकान का संकेत अनेक स्थलों पर हुआ है। बहुधा ऐसा शृङ्गार वर्णन प्रसंग पर ही हो सका है। क्रिया विदग्धा या वचन विदग्धा नायिका की क्रियाओं में मुसकान का यह रहस्य छिपा रहता है जो एक विशेष अर्थ या भाव का वाहक है। बहुधा ऐसी नायिकाएँ अपने भावों को अभिव्यक्त करके मुसका उठती हैं। राधा का एक चित्र देखें—

१ तब राधा इक भाव बतावति।
मुसुकाइ संकुचि पुनि सहजहिं चली अनक सुरमावति।
टेरि कह्यो मेरे घर जहौं मैं जमुना तैं आवति।
तब सुख पाइ चले हरि घर कौं, हरि प्रियतमहि मनावति।[1]

२ लेहरिया मेरो भीजैगो वह देखो आवत है मेह
गोविन्द प्रभु पिय हँसि कैहै तो बढि है अधिक सनेह।

इन दोनों ही उदाहरणों में वचन विदग्धा के कथनों में रस रहस्य की भावना है, जो प्रसंग की अनुकूलता में मुसकान से प्रकट हो जाती है। क्रिया विदग्धा की क्रियाओं को देखकर परस्पर मुसकान का यह चेष्टा रस भेद को व्यक्त करने वाली है।[2] इसे केवल राधा कृष्ण ही समझ पाते हैं। अन्य लोगों के लिए यह एक रहस्य ही बना रहता है।

कृष्ण की रसिक चेष्टाओं में इस मुसकान की बड़ी महत्ता है। यशोदा के सामने बालक कृष्ण गोपियों के समक्ष तरुण बन जाते हैं। इसे यशोदा नहीं जान पाती परन्तु कृष्ण एवं गोपी की यह मुसकान एक दूसरे के भावों की वाहिका बन जाती है।

---

1 सूरसागर पद २६४२ (सभा)

2 स्याम अचानक आय गये री।
आपु हँसे उत पाग मसकि के, हरि अन्तरयामी जान लिये री।
लरर कमन अधर परमायौ दमि हरषि पुनि हृदय धर्यौ री।
सूरदास (पृ० २९८ सूर निर्णय—द्वारकाप्रसाद पारीख

१ रहि री ग्वालिन ! जोवन मदमाती ।
मेरे छगन मगन से लालहिं कत ले उछंग लगावति छाती ।
खेलन दे घर जाहु आपने डालनि यहाँ इतो इतराती ।
उठि चली ग्वालि लाल लागे रोवन तब जसुमति लाई बहु भाँति ।
'परमानन्द' ओट दे अंचल फिरि आई ननिनि मुसिकाती ।[1]

(३) आनन्द सम्मोहिता की मुसकान उसकी तृप्ति के भाव को व्यक्त करता है ।[2] ऐसे प्रसंगों पर सखियों द्वारा जान लिये जाने पर यही मुसकान लज्जा की वाहिका बन जाती है ।[3] इस मुसकान में आत्म-सन्तोष का भाव बना रहता है और लज्जा ऐसे मुसकान की साधिका बन जाती है ।

भेद भरी इस मुसकान से सौंदर्य बढ़ जाता है । कहीं-कहीं भेद पूर्ण मुसकान गूढ़ अर्थ का व्यंजक बन जाती है । इससे चरित्र का शीलपरक अंग उभरता है । अनेक स्थलों पर श्रीकृष्ण की ऐसी मुसकान का वर्णन है । यथा—

१ तिय-वचन सुनि गव के पिय मन मुसुकाने । मैं अविगत अज अकल हौं यह मरम न जाने ।[4] रास प्रसंग की इस मुसकान में श्रीकृष्ण का ऐसा ईश्वरत्व प्रकट है जहाँ वे भक्त के अहंकार को बढ़ने नहीं देना चाहते । उनके मुख की मुसकान का यही अर्थ है । इस प्रकार की गूढ़ार्थ व्यञ्जक हँसी का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है । रास प्रसंग, दानलीला, झूलन प्रसंग और मथुरा प्रस्थान करते समय कई अवसरों पर ऐसी ही हँसी है—

१ अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखा कियौ न जाइ ।
सूर श्याम हँसि-हँसि जुवतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ ।
सूरसागर २२३२

यहाँ हँसना केवल भ्रम में डालने के कारण है । दान लेकर चले जाने को कहना स्पष्ट रूप में स्वार्थी प्रवृत्ति को व्यक्त करता है ।

२ तनक हँस हरि मन जुवतिनि कौ निठुर ठगौरी लाइ ।
पद ३६१० सूरसागर ।

---

[1] अष्टछाप–परिचय पृ० १८२
[2] अधर खुले पलक लगन मुख चितवत, मृदु मुसकात हँसि लेत जँभाई ।
अष्ट० परि० पृ० २२८
[3] परमानन्द प्रभु रमी निसा भरि, अब कहि लपटि हँसी मुख मोर ।
अष्ट० परि० पृ० २०१
[4] सूर सागर–पद १७१६

३ विहँसि कह्यो हम तुम नहिं अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
पद ४६१० सूरसागर।

इन दोनो पदो के गूढ़ार्थ के समक्ष भोली गोपियाँ या राधा श्रीकृष्ण की हँसी का रहस्य समझने मे भ्रममय होती हैं, परन्तु श्रीकृष्ण की यह हँसी उनके दोहरे व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देती है।

(४) कही कही पर भक्त कवियो की हँसी में मोहकता का भाव स्पष्ट दीख पडता है। संयोग के अवसर पर ऐसी हँसी से शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखकर 'नागरि' की हँसी मे मन का समस्त उल्लास एव प्रेम प्रकट हो जाता है—

१ नागरि यह सुनि के मुसुकानि।
को जाने पिय महिमा तुम्हरी नननि चित लजानी।
इक सुन्दर दूजे रति नागर तीजे कोक प्रवीन।
सूरदास प्रभु अब हीं तौ तुम जसुमति-सुवन नवीन।[1]

कही कोई श्रीकृष्ण की हँसी देखकर इतनी मुग्ध हो जाती है कि उसकी पूर्व नियोजित सारी व्यवस्था ही भग हो जाती है, वह ठगी सी रह जाती है। ऐसा लगता है मानो किसी ने उसके ऊपर जादू कर दिया हो। अन्त में उस मोहकता के समक्ष उसे अपना सब कुछ दान देना पडता है।[2] दान के प्रसग पर यही मोहकता दीख पडती है। गोपी के दान देने से मना करने पर उसका आँचल पकडकर श्रीकृष्ण की मधुर हँसी उसका मन चोर लेती है--

कमल नैन मुसकाय मद हसि अँचर पकर्यो जब ही कौ।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरधर मन, चोर लियो सब ही कौ।[3]

(५) छेड छाड की भावना—श्रीकृष्ण के दान लीला के अवसर पर हँसी के कई अर्थ हैं। गूढार्थ बोधक भाव व्यञ्जक और छेड़छाड की भावना दीख पडती है। पूर्वराग की अवस्था की यह हँसी विशेष महत्वपूर्ण है।

---

[1] सूर सागर पद २८२५

[2] हौं तकि लागि रही री माई।
जब गृहतें दधि ले के निकस्यौ, तब मैं बाह गही री माई।
हँसि दीन्हा मेरो मुख चितयौ मीठी सी बात कही री माई।
ठगि जु रही चेटक सो लाग्यौ, परि गई प्रीति सही री माई।
परमानन्द सयानी ग्वालिनि, सवस दे निबही री माई।
अष्ट० परि० पृ० १६३

[3] अष्ट छाप-परिचय पृ० २८१

१ स्याम सुन्दर हसि बूझत हैं,
कहियौ मोल या दधि को री ग्वालिन।
गोविन्द प्रभु पीय प्यारी नेह जान्यौ
तब मुसिकयाय ठाढो भई मना-बनी करहिं सब ग्वालनि।[1]

२ अब हौं या ढोटा सो हारी।
गोरस लेत अटक जब कीनी हँसत देत फिर गारी।
अष्ट० परि०–गोविन्दस्वामी पृ० २५१

शृंगार चेष्टा के मूल म इस हसी का महत्व बढ जाता है। विचारो के आदान प्रदान का यह एक अच्छा साधन है।

हसि व्रजनाथ गह्यौ कर पल्लव जस भरि गगरी गिरन न पावैं।
परमानद' ग्वालिनी सयानी', कमल नैन सो तन परसावैं।[2]

(६) प्रभावमूलक व्यञ्जना—मुसकान के अपूर्व प्रभाव की व्यञ्जना इन कवियो ने की है —

१ चले री जात, मुसिकाय मनोहर
हसि कही एक बात अटपटी री।
हौं सुनि श्रवनि भई री अति व्याकुल
परी है हिरद मर मन सटपटी री।
परमानद प्रभु रूप विमोही नदनदन सो प्रीति है जटी री।[3]

२ नेक चित मुसिकयाए जू हरि मेरे प्रान चुराइ लये।
अब तो भई हैं चोप मिलन की बिसरे देह-सिगार ठये।

(७) व्यग्य मूलक मुसकान खण्डिता प्रसग पर देखी जाती है। यह एक विरूपक प्रसग है। रति चिह्नो स युक्त श्रीकृष्ण के शरीर को देखकर अनायास आई हुई हसी म व्यग्य का भाव लक्षित होता है।

लाल न आय री रन गँवाई।
निशि भर क्षीण बोने तमचर खग ग्वालिन तबहिं हसि मुसकाई।
सूरदास

ग्वालिन की इस हँसी म कृष्ण के चरित्र की अथ पूण व्यञ्जना हुई है। भ्रमरगीत प्रसग म हसी का कहीं कहीं इसी प्रसग म ग्रहण किया है।[4]

---

1 अष्ट छाप-परिचय प० २५०

2 वही–प० १६६

3 वही–प० १६८

मूर स्याम जब तुमहिं पठाय, तब नेकहु मुसुकाने। सूरसागर

उपयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति साहित्य म श्रीकृष्ण और राधा आदि की मुसकान मुख्यत आकर्षण उत्पन्न करके सौंदय की मोहकता बढ़ाने वाली है। इससे रूप की आसक्ति उत्पन्न होती है और इसका तत्काल फल मिलता है। इनके अनेक रूपा मे मुसकान के भेद, मोहकता, सहज शृंगार, चेष्टा सम्पन्नता और प्रभाव मूलक मुसकान का उदाहरण दिया गया। यह मुसकान अपने मूल रूप म मोहक ही है और इससे रूप का आकषण बढ़ता है। यही मुसकान चितवन से संयुक्त होकर रूप सौंदय का महत्व बढ़ाने मे सोने म सुहागे का काय करती है।

चितवन—आकषण को बढ़ाने वाले व्यापारो मे चितवन महत्वपूण है। इसका साधक अग नेत्र है। नेत्रों के माध्यम से भावनाओ का प्रेषण होता है। मानसिक प्रवृत्ति के अनुकूल नेत्रों के चालन और उसकी स्थिति मे अन्तर आता चला जाता है। नेत्र भावनाओं के वाहक होते हैं। मन मे शृङ्गार भाव के जागृत होने पर नेत्रो म विलासमूलक अनोखापन आ जाता है। इससे नेत्र-व्यापार म मादकता आ जाती है। यही मादकता क्रियामूलक होकर अपने प्रिय के समक्ष चितवन के रूप म प्रत्यक्ष होती है। इससे रूप-दशन म तीव्रता के साथ खिचाव पैदा हो जाता है और आश्रय आलम्बन दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति ललक और निकटता होती चली जाती है। यह क्रिया उद्दीपक है। इस कारण शृङ्गार काव्य म इसको समुचित स्थान मिला है। हिन्दी के भक्ति साहित्य मे राधा कृष्ण प्रकरण पर चितवन' द्वारा भावो की अभिव्यक्ति का वणन लगभग सभी कवियो ने किया है।

भक्तिकाल मे वर्णित चितवन' के विश्लेषण से उसके द्वारा दो प्रकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है —

(१) सयोग म उद्दीपक रूप।

(२) खण्डिता प्रसग मे व्यंग्यात्मक रूप।

खण्डिता प्रसग पर नायिका द्वारा अनवरत रूप से प्रियतम के मुख को देखते रहने का अथ हृदय की रति का बाह्य प्रकाशन नही है अपितु रति चिह्नों से युक्त प्रिय मुख को देखकर उपहास के भाव का व्यक्त करना है। अनबोले रूप मे लगातार देखते जाने से ऐसे प्रसगा पर हृद्गत आक्रोश का भाव व्यक्त होता है रति का सचार नहीं होता। यथा

(१) प्यारी चित्त रही मुख पिय को।
अजन अधर कपालन बिदन, लाग्यौ काहु तिय को।
तुरत उठी दरपन कर लिन्हो, देखो बदन सुधारो।

प्रात समय मुख देखि आपुनो तब कही अनत सिधारो । सूरसागर ।

मौन प्रतारणा युक्त यह चितवन अनेक वाक्य-बाणो की अपेक्षा अधिक बलशाली है । इसका अनुकूल प्रभाव होता है । कृष्ण का सकोच एव नतमस्तक अपराध की स्वीकृति दे देते हैं । ऐसे प्रसगो पर चितवन' या 'दर्शन' रति भाव को उद्‍बद्ध नही करते अपितु श्री कृष्ण के बहुनायकत्व को प्रकट कर देते हैं । यहा पर इसी बात का ध्यान करा देना उद्देश्य है।

(२) सयोग के अवसर पर चितवन मन म आनन्द का सचार करती है और रति को जगाती है । यह अपने विपरीत लिङ्गी को आकर्षित कर लेने का साधन है । इस चितवन के अनेक प्रभावो की अभिव्यक्ति की गई है —

(क) **काममूलक**—श्रीकृष्ण की चितवन के समक्ष गोपी के कचुकी के बन्द टूट जाते हैं।[1] चितवन की मादकता से काम सहायक अगो म स्फूर्ति आ जाती है। ऐसा वर्णन श्रीकृष्ण से कुछ समयोपरान्त मिलन के पश्चात् किया गया है ।

(ख) प्रतिक्रिया मूलक प्रभाव—श्रीकृष्ण या राधादि गोपियो के चितवन से आनन्द जन्य एक तीव्र प्रतिक्रिया होती है । इस प्रतिक्रिया का अनेक रूपो म वर्णन मिलता है —

(१) लज्जा त्याग—चितवन के समक्ष आत्म--विस्मृति की दशा हो जाती है । श्रीकृष्ण की चितवन से लज्जा की समाप्ति हो जाती है और घूँघट पट भूल जाता है ।[2]

(२) अभिलाषा का उद्‍भव—चितवन के प्रभाव से अनेक गोपियो के मन म अनेक प्रकार की अभिलाषा का उद्‍भव होता है । गोपिया कृष्ण की एक बाकी चितवन के लिये तरसती हैं । उन्हे कृष्ण की मुसकान म 'फगुआ' मिलने का सुख मिलता है।[3] किसी को चितवन चारु-चिन्तामणि[4] किसी के

---

[1] 'कृष्णदास' प्रभु हरि गोवर्धन धारी लाल, चारु चितवनि तोरे कचुकी के बदवा । अष्ट० पदावली पृ० ५०

[2] महाचित चोरयौ नैन की कोर ।
लाज गई घूँघट पट भूल्यौ, जब चितयौ यहि ओर ।
देकर सन मैन सर मारी नागर नन्दकिशोर ।
चत्रभुजदास-अष्ट छाप-परिचय पृ० २८६

[3] यह फगुवा हम पावही हो चितवन मृदु मुसकान । सूरसागर पद ३५००

[4] चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु माधो बना । परमानन्द सागर

लिये मोह लेने वाला मत्र वन जाती है।[1]

चितवन के समक्ष गोपिया अपनी देह सुधि भूल जाती हैं। वे चित्रलिखी सी हो जाती हैं।[2] गोपिया अनुभव के क्षण से ही इसे 'जी' मे बसा लेती हैं, 'चितवनि तेरी जीय बसी।'[3] वे अपने को भूल जाती है 'सावरो वदन देखि भुलानी। चले जात फिरि चितयो मा तन तब ते सग लगानी।'[4] इसके समक्ष मन परवश हो जाता है। चितवन हठपूवक उनके मन को मोह लेती है।[5] गोपियाँ घर को जाती हुई मुड-मुड कर कृष्ण को देखने लग जाती हैं। चितवन से रूप की आसक्ति बढ जाती है। प्रेम म वैचित्र्य आ जाता है। राधा के मन मे तो मिलने के उपरान्त भी विश्वास नही आता और वह रग म पगी हुई बार बार कृष्ण को देखती है –

(१) राधेहि मिलहिं प्रतीति न आवति।
चितवनि चकित रहति चित अन्तर नन निमेष न लावति। सूरदास।

चितवन का व्यापार परस्पर 'सना बनी' के रूप मे भी विकास पाता है। गोपिया सकेत से प्रेम रहस्य को प्रकट कर देती हैं। कृष्ण के विशाल नत्रो की चितवन को गोपिया उसी रूप म उन्ही व्यापारो द्वारा स्पष्ट करके अपने असीम प्रेम की अभिव्यक्ति कर देती हैं।[6] कही परस्पर की सना बनी मे वस्तु को छिपाने का प्रयास किया जाता है।[7] इससे प्रस्तुत प्रसग की मोहकता बढ जाती है। चितवन द्वारा रहस्य का उद्घाटन होता है। "बक चितवनि चित रसिक तन गुपत प्रीति को भेद जनायो।[8]

---

1 चितवनि मोहन मत्र भौंह जनु मन्मथ फाँसी। नन्ददास रासपचाध्यायी।

2 चितवन आपुहि भई चितरो।
मदिर लिखन छाडे हरि अरु वक देखत हैं मुख तेरो।
चत्रभुजदास अष्ट० परि० पृ० २८७

3 अष्ट छाप-परिचय पृ० २८७ चत्रभुजदास

4 परमानन्द सागर

5 i, अरुन विशाल बक अवलोकनि, हठि मन हरत हमारे। परमानन्दसागर
ii नेक चित्तै चलेरी लालन, सखी लजु गयो चितचोर।
गोविन्द स्वामी अष्ट० परि० पृ० २५५

6 अष्ट छाप परिचय पृ० २५० गोविन्द स्वामी पद सख्या २१

7 अष्ट छाप परिचय पृ० २५१ गोविन्द स्वामी पद सख्या २५

8 अष्ट० परि० पृ २३७ पद ८६

उपयुक्त विश्नेषण के आधार पर यह निणय लिया जा सकता है कि चितवन प्रेम को बढ़ाकर परस्पर आकषण की भावना उत्पन्न करने वाला एक रति मूलक व्यापार है। इसके द्वारा हृदय म अनेक प्रकार की भावनाए जागृत होती हैं। प्रिय की ओर आकषण, रति का उद्भव लज्जा त्याग आत्म विस्मृति स्तब्धता, टकटकी बध जाना आदि इसके परिणाम है। चितवन के फल स्वरूप कई प्रतिचेष्टाए होती है। मुड मुड कर देखना, रूप की आसक्ति, कुतूहल प्रेम का प्रकाशन आदि चितवन युक्त रूप की प्रतिक्रियाए हैं। यह चितवन सम व्यापार की जनक है अर्थात् चितवन व्यापार आलम्बन और आश्रय दोनो की तरफ से होता रहा है। परस्पर प्रीति प्रदशन का यह एक विलक्षण व्यापार है। इस सम व्यापार द्वारा सात्विक रति का उदय माना जाता है। नायक और नायिका दोनो ही पक्षो म इसका महत्व है परन्तु नायिका के सदभ म लज्जा से सवलित होकर यह चितवन विलक्षण हो जाती है। इससे उत्पन्न नायिका की मोहक मुद्रा अदा पूण हो जाती है। उसका आकषण बढ जाता है और वह अधिक सुन्दरी प्रतीत होने लगती है।

लज्जा—लज्जा स्त्रियों का आभूषण है। चारीत्रिक उच्चता से उत्पन्न इसका प्रकाशन शील-सकोच के रूप म होता है। इसे कुलवती स्त्रिया का शृङ्गार मानते हैं। यह लज्जा सामान्य रूप से शृङ्गार से सम्बधित है। इसीसे शृङ्गार-प्रसगो पर इससे नायिका के सौन्दय की वृद्धि मानी जाती है। लज्जा के आधार पर ही मुग्धा मध्या और प्रौढा ये तीन भेद नायिकाओ के किये गये हैं। शृङ्गार-रस के प्रसग पर इसकी गणना व्रीडा सचारी भाव के नाम से होती है।

लज्जा के कुछ बाह्य व्यञ्जक तत्व बताये गये हैं। झेंपना, सिर नीचा कर लेना भूमि पर लकीर खीचने लग जाना मुह फेर लेना आदि इस प्रकार के व्यापारमूलक तत्व हैं। लज्जा के उदय होते ही मुख आरक्तिम हो जाता है। रक्त दौडने लगता है। इन सबका सम्बध वय स है। भक्तिकाल मे लज्जा का वणन अधिक हो सका है क्योकि इस काल म वय की सीमा किशोर अवस्था तक पुरुष पक्ष मे और किशोरी या यौवनावस्था तक स्त्री पक्ष म था। वय की इसी सीमा म लज्जा का सबसे अधिक प्रकाशन सम्भव हो पाता है। इससे मुख की आभा म अपूव वृद्धि हो जाती है और सौन्दय का विकास स्वत हो जाता है। आँचल से मुख ढाक लेना तिरछी चितवन से देखना आदि भी इसके अनुभावो म आते हैं। यह आखो की ऐसी मूक भाषा है जिसे रसिक हृदय ही समझ सकता है।

भक्तिकाल म लज्जा व्यापार का वर्णन दो अवसरो पर किया गया है।

(१) श्रीकृष्ण द्वारा अनावृत सौदय को देख लिय जाने पर।

(२) सयोग के अवसर पर।

(१) कुलवधू की शालीनता सदा से मोहक होती है। इस शालीनता की रक्षा के लिये वस्त्रा का आच्छादन आवश्यक है। स्नानादि के अवसर पर कभी कभी उसका सम्पूर्ण शरीर अनावृत हो जाता है। ऐसी स्थिति म किसी द्वारा देख लिये जाने पर लज्जा का स्वाभाविक उदय मनोहर होता है। एक उदाहरण देखें —

(१) न्हान को खोले कचुकी के कसना।
सम्मुख ह्वै पिय भाकि भरोखनि, तब अगुरी दीनी बिच दशना।
लज्जित तन कपित ह्वै धाई, लीन्ह और वसना।
'कुम्मनदास' प्रभु गोवधन धर तबहि लाल लगे हैं हँसना।

इस उदाहरण म लज्जा का बडा अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न अनुभावगत व्यापारा का रूप चित्र हृदय आवजक है। यहाँ श्रीकृष्ण द्वारा अनावृत अग का देख लेना विभाव का काय करता है, इससे सुप्त लज्जा उद्दीप्त हो जाती है। अगुली को दाता के बीच म दे देना, शरीर का कम्पित होना, दौडना और दूसरा वस्त्र ले लेना अनुभाव गत चेष्टाएँ हैं, इन चेष्टाओ से सयुक्त होकर नायक श्रीकृष्ण की रुचि नायिका म बढ जाती है। 'तबहि लाल लगे हसना' के कथन से नायक के मन म नायिका की इस घबडाहट के कारण आनन्द का अनुभव होना है। वह मानो चिढ़ाने के लिय हँस देता है। सद्य स्नाता का ऐसा वर्णन प्राय होना है। विद्यापति की नायिका सरोवर से स्नान करके निकलते समय अपने दाना स्तना को ढक लेती है, क्योकि गीले वस्त्र उसके अगा से चिपक कर उसे अनावृत जसा बना देते हैं।

(२) सयोग के अवसर पर लज्जा का प्रदर्शन आकर्षक बन जाता है। भक्त कविया ने प्राय तीन निम्नलिखित परिस्थितियो मे इस लज्जा का स्वाभाविक उदय दिखाया है।

(क) गुरुजना की उपस्थिति म प्रिय दर्शन से उत्पन्न लज्जा व सकोच।

(ख) पारस्परिक छेड छाड या वार्तालाप के अवसर पर लज्जा का प्रदर्शन।

(ग) रति के अवसर पर लज्जा।

गुरुजन सामिप्य और लज्जा— स्त्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार उनम अपने प्रेम के गोपन की भावना रहती है। यह भावना **वय के**

आरम्भिक काल म अधिक दीख पडती है, जो क्रमश क्षीण होती चली जाती है। इसी कारण स्त्रियाँ दूसरा के समक्ष अपने प्रिय को भी देखकर सकुचित हो जाती हैं। इस सकोच की दो प्रवृत्ति दीख पडती हैं।

(१) बडो की मर्यादा रक्षा और अपनी गोपनीयता।

(२) लोक लज्जा और सामाजिक परम्पराओ का भय।

बडो की मर्यादा की रक्षा शालीनता से होती है। उनके समक्ष चपल आचरण करने से उच्छृङ्खलता बढती है और उनकी मर्यादा नष्ट हो जाती है। इससे बडो के समक्ष प्रिय को देखकर मौन हो जाना या मस्तक का नत जाना इसी सकोच युक्त लज्जा के अनुभाव हैं। यथा—

स्याम अचानक आय गये री।
मैं बठी गुरुजन बिच सजनी, देखत ही मेरे नन नए री।[1]

यहा नेत्रा के नय जाने म लज्जा का मौन अभिनय आकर्षक है। इसस चपलता भी नही होने पाई और गुरुजनो की मर्यादा रक्षा भी हो गई। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण देखे जा सकते है।

समाज के समक्ष प्रेम का प्रदशन लज्जा का जनक होता है। स्त्रियाँ अपनी रहस्य लीला की चर्चा भी दूसरा के समक्ष करने म सकोच का अनुभव करती हैं। इसी से यदि प्रिय द्वारा इसे प्रकट कर दिया जाय तो ऐसी स्थिति मे उनके लज्जा से गड जाने का वणन मिलता है। त्यागी राधा लोक मर्यादा को समझने लगी है। इसी से वह श्याम से कहती है कि—

१ स्यामहि बोलि भयौ ढिग प्यारी।
ऐसी बात प्रकट कहुँ कहियत, सखिन माँझ कत लाजनि मारी।
इक ऐसेहि उपहास करत सब तापर तुम यह बात पसारी।
लाजनि मारति हो कत हमको हाहा करति जानि बलिहारी।[2]

इस अवतरण मे लज्जा अनुभावो से प्रकट नही की गई है परन्तु प्रस्तुत प्रसग म समाज के सन्दभ मे लज्जा का वणन नायिका के मुख स ही किया गया है। कथ्य मात्र स भी लज्जा का सकेत मिलता है।[3] यहाँ शालीनता के कथन से लोक-व्यवहार की भाव भूमि पर सकोच का वणन है।

---

1 सूरसागर पद २४६७
2 सूरसागर पद २१७५
3 ब्रजवसि कोक बोल सहौं।
तुम बिन स्याम और नहिं जानौं सकुचि न तुमहिं कहौं। सूरसागर २३०४

प्रिय को अचानक देखकर निया विदग्धा नायिकाओ के सकोच का वर्णन मिलता है। एक गोपी कृष्ण को देखकर मुस्कराती हुई इसी लज्जा का प्रदर्शन करती है परन्तु दूसरे क्षण वस्तु स्थिति का ध्यान आते ही क्रियाओ के द्वारा अपनी भावनाओ को कृष्ण तक प्रेषित कर देती है।[1] इस प्रकार की लज्जा का प्रदर्शन दूसरे की उपस्थिति मे सम्भव होता है। लोक लज्जा म सामाजिक नियमो के उल्लघन एव निन्दा के भय की प्रधानता रहती है, परन्तु पारस्परिक चर्चाओ आदि म लोक पक्ष सामने नही रहता। अत एकान्त वार्तालापादि से उत्पन्न लज्जा स्त्रियो के सौन्दय का वास्तविक भूषण है।

पारस्परिक मनोविनोदादि मे लज्जा—श्रीकृष्ण और गोपियो आदि के वार्तालाप या छेड छाड म लज्जा का समुचित प्रदर्शन होता है। ऐसा प्राय तीन अवसरो पर हुआ है। दान प्रसग, पनघट प्रसग और राधा कृष्ण के आरम्भिक परिचय के समय यही सकोच जन्य लज्जा दीख पडती है।

दान प्रसग पर कृष्ण की छेड छाड बढ जाती है। वे दही का दान मागते मागते यौवन दान मागने लग जाते है। गोपिया उनकी इस अचगरी को सुनकर लाज से गडी जाती हैं। कृष्ण को तो 'गो रस' चाहिये दूध दही नही।[2] कोई प्रगल्भा गोपी श्रीकृष्ण के अनौचित्य का प्रतिपादन करती है और किसी को अपने यौवन का बडा अभिमान है। एक गोपी कहती है कि 'हमरो जोवन रूप आँखि इनकी गडि लागत।[3] इस कथन म प्रेम की अभिव्यञ्जना एव अपने रूप का गर्व दोनो ही बातें दीख पडती हैं। ऐसे प्रसग पर सकोच का प्रदर्शन दाँतो के बीच अगुली देकर आपसी सैना-बैनी द्वारा और घूँघट के माध्यम से हुआ है। वही पर कृष्ण प्रेम म कोई सखी लोक लाज सकोच सब कुछ छोडकर कृष्ण की चेरी बन जाती है।[3]

---

1 तब राधा इक भाव बतावति।
मुखि मुसुकाइ सकुचि पुनि सहजहि चली अलक सुरभावति।
एक सखी आवनि जल लीन्हे तासो कहति सुनावति।
टेरि कह्यौ मेरे घर जहो, मैं जमुना ते आवति। सूरसागर। सभा २६४२

2 अरी हम दान लहैं, रस गोरस को यही हमारो काज।
हम दानी तिहुँ लोक के, चारो जुग म राज॥ अष्ट० परि० पृ० ११६

3 सूरसागर पद २०७६

4 लोक सकुच कुल कानि तजी
जसे नदी सिन्धु को धावै तसे स्याम भजी। सूरसागर। वे० प्रस पृ २५६

पनघट प्रसग पर कृष्ण की छेड छाड से सकोच भाव का उदय दिखाया है। सामान्य रूप से दूध दुहने जसे प्रसगो पर भी छेडछाड की यही प्रवृत्ति दीख पडती है। वनमाग मे स्त्रिया का सकोच वर्णित है। राधा कृष्ण के प्रथम परिचय पर राधा का लज्जित होना उसकी ब्रीडा की भावना व्यक्त करती है—

'कनक बदन सुढार सुन्दरी सकुचि मुख मुसकाय।
स्यामा प्यारी नन राच अति विशाल चलाय।[1]

वह सकाच पूवक कृष्ण का मुख दखती है। राधा सकुचि स्याम मुख हेरति। चन्द्रावली देख कै आवति, व्रज ही को प्रिय फेरति।"[2]

रति प्रसग मे लज्जा—लज्जा का वणन भक्त कविया ने रति प्रसग पर किया है। रति से सम्बन्धित तीन अवसरो पर लज्जा का वणन मिलता है।

(१) सामान्य रति प्रसग पर।

(२) विपरीत रति प्रसग पर।

(३) खण्डिता प्रसग पर।

सामान्य रति प्रसग पर लज्जा एक सचारी भाव के रूप मे है। यह नव वय की स्वाभाविक चेष्टा के रूप म वर्णित है। आधुनिक काल मे हरिश्चन्द्र का एक पद इसका उपयुक्त उदाहरण है।[3] ऐसे प्रसगा पर राधा का सकोच रति रस का सवद्धन करन म पूण सहायक होता है। विपरीत रति का वणन सूरदास ने एक स्थल पर अच्छा किया है। नागरी विपरीत रति मे सकोच सहित लिपट जाती है।[4] सखिया द्वारा रति सुख प्रसग को जान लिये जाने पर गोपन की प्रवृत्ति म सकोच दीख पडता है—

---

1 सूरसागर

2 सूरसागर पृष्ठ ३१३ वे० प्रेस।

3 प्यारी लाजन सकुची जान।
ज्यों-ज्यो रति प्रतिविम्ब सामुहें आरसी माह लखात।
कहत लाख यहि दूरि राखिये, बलकरि कपत गात।
'हरीचन्द्र रस बढ़ा अधिक अति ज्या-ज्या तीय लजात।
भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ४५८

4 सूर स्याम विपरीत बनाई।
नागरि सकुचि रही लपटाई। पद २२६६ सूरसागर

मोहनलाल कै रसमाती ।
वधू गुपति गोपनि वत मोसो, प्रथम नेह सकुचाती ।
जै श्रीहित हरवश वचन सुनि भामिनि भवन चली मुसुकाती ।
हित चौरासी पृ० २६

रति प्रसग के कुट्टमति अनुभाव पर लज्जा का यही दृश्य मूर्तिमान हो जाता है। सूर की पनी दृष्टि द्वारा व्रीडा का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। रग मे फूले कृष्ण मुख का स्पश करत हैं और प्यारी लज्जा से सकुचित होती जाती है।

१ आजु रग फूले कुँवरि कन्हाई ।
मुख परसत सकुचत सुकुमारी मनहि मन अति भावत ।
तब प्यारी कर गहि मुख टारत, नेकहुँ लाज न आवत । सू ३०७५

प्यारी के इस निषेध और वचनो द्वारा कृष्ण को झिडक देने मे रस का सवद्ध न हाता है और 'प्यारी' का आकषण बढ जाता है। नायक कृष्ण की प्रेम विह्वलता दशनीय हो जाती है। वस्तुत दाम्पत्य का सम्पूर्ण सुख ऐसी ही चेष्टाओ म वतमान रहता है।

नायिका के सकोच से ही इन कवियो की मानसिक तृप्ति नही हुई। अपितु नायक के सकोच का वणन एव चित्र भी उपस्थित किया गया है। अप राधी मनोवृत्ति के कारण प्राय नायक पक्ष म एसे सयोग का वणन मिलता है। नायक कृष्ण की रमणशील वृत्ति अन्य नायिका म आसक्त हो जाती है। व रति भोग के उपरान्त राधा के पास लौटते हैं परन्तु उनके नेत्र नमित हैं, गति मन्थर है और दृष्टि मिलाने का साहस नहीं होता। उनकी इन अनुभावगत चेष्टाओ का वणन खण्डिता प्रसग पर देखा जा सकता है।

१ बलि-बलि जाऊँ रसिक गिरधर प्रिय, नीके आए प्रात तमचुरके बोले ।
इतो सकोच कौन कहो मानत अधिक लजाय रहे बिन बोले ।[1]

२ कौन के भोराये मोर आए हो भवन मेरे
ऊँची दृष्टि क्यों न करो कौन ते लजान हो ।
कृष्णदास प्रभु छोडो अटपटी रट हो लाल,
आज हौं तुम्हें देखि नीके पहचाने हो ।[2]

---

[1] अष्टछाप पदावली-पृ० ६३ कृष्णदास का पद
[2] " " ६७ "

इस उदाहरण म रेखाओ के स्वच्छन्द प्रयोगो द्वारा खण्डिता नायिका व रसिक नायक का अच्छा चित्र प्रस्तुत हुआ है।

उपयुक्त विश्लेषण स प्रकट हो जाता है कि लज्जा स्त्रियो का प्रमुख आभूषण है जो सयोग की अवस्था म रति वद्धक चेष्टा के रूप म प्रकट होना है। प्रिय का प्रत्यक्ष दशन, प्रिय सम्बन्धी रस चर्चा अथवा प्रिय की स्मृति मात्र से इस लज्जा का उन्मेष होता है। इस लज्जा म सामाजिक नियमो की स्वीकृति वतमान रहती है। नय वय म इसका मधुर रूप देखने को मिलता है। यह रूप दो ढग स अपना विकास प्राप्त करता है --

(१) रति मूलक आनन्दवद्धक चेष्टाओ के रूप म।

(२) अनुभाव व कथ्य मान स।

इन दोनो म रति मूलक आनन्द वद्धक चेष्टाओ का महत्व रस की दृष्टि से अधिक है। इन चेष्टाओ के विभिन्न शारीरिक परिवतनो एव अनुभावो का सक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। सयोग के अवसर पर इन चेष्टाओ म निषेध से रस बढता है नायक की लालसा म वृद्धि होती है और नायिका आकर्षक प्रतीत होने लगती है।

"निषेध परक सौन्दय"--निषेध अस्वीकृति का बाहरी दिखावा है। इसके मूल मे मानसिक स्वीकृति मूलक सम्मति होती है परन्तु सयोग प्रसग मे स्पष्टत अपनी स्वीकृति दे देना शालीनता के विपरीत है सौन्दय एव आकषण का बाधक है। मुग्धा की कमनीयता, उसका आकषण इसी निषध म छिपा रहता है। नायक की रुचि को बढाने का यह एक अमोघ अस्त्र है जिससे एक ओर नायिका के प्रति नायक ललकता है और दूसरी ओर सयोग सुख मे महजता और रस की सान्द्रता बढ जाती है। यही सान्द्रता और व्यक्तित्व का पूण निलय सयोग का वास्तविक सुख है। अनुभावो से शून्य और स्वीकृति गभ निषेध से रहित नायिका का सौन्दय पूण तन्मयता उत्पन्न करने मे समथ नही हो पाता। यही कारण है कि प्रौढा या प्रगल्भा की तुलना म मुग्धा का निषेधात्मक अनुभाव नायक के मन मे रस भाव का सचार करने म अधिक समथ होना है। इसी से सयाग के प्रसग पर भक्त कवियो ने मुग्धा के निषेधात्मक सौन्दय को अपन काव्य का विषय बनाया है। रस का वास्तविक स्फुरण और उद्दीप्ति निषेध के माध्यम स ही सम्भव है।

सयोग के अवसर पर यह निषेध नायिका पक्ष का आभूषण बनता है। नायक-पक्ष म निषेध का वणन साहित्य म नही किया गया है क्योकि नायक

भोक्ता और नायिका भोग्या मानी जाती है। इस निषेध के दो रूप दीख पडती हैं।

(१) चेष्टा या अनुभावगत निषेध।

(२) वचनगत निषेध।

निषेध के इन दोनो रूपो म कोई प्रत्यक्ष विभाजक रेखा नही है। एक के सग दूसर की स्थिति प्राय बनी रहती है। वचनगत निषेध म सिर सचालन आदि आगिक क्रियाओ का योग रहना ही है। अनुभावगत निषेध मे अत्यधिक शालीनता मुग्धा को मौन रहने की प्रेरणा देती है। आगिक चेष्टाओ के साथ वचन या वाणी का स्फुरण हो भी सकता है और नही भी होता है। कवियो ने प्राय प्रत्येक स्थिति मे इसका वर्णन किया है।

अनुभावगत निषेध—सयोग या रति प्रसग पर मुग्धा नायिकाएँ अपनी स्वीकृति निषेध का आगिक चेष्टाओ द्वारा व्यक्त कर देती हैं। यह निषेध छेड छाड के प्रसग पर या रति प्रसग पर दीख पडता है—

अलक सवारन व्याज मैं परस्यौ चहत कपोल।
मृदुल करनि डारति झटकि रसमय कलह कलोल। ध्रुवदास

यहाँ कृष्ण द्वारा कपोल स्पर्श करने की इच्छा और नायिका की अनिच्छा व्यक्त की गई है। यह अनिच्छा आगिक चेष्टा द्वारा स्पष्ट है। 'मृदुल करनि डारति झटकि" कोमल करो से प्रिय के हाथो को झटक देने मे क्रोध की व्यञ्जना न होकर निषेध मूलक प्रेम की ही व्यञ्जना है। इससे रसमय कलह आकर्षित करने वाला बन जाता है और मन भाव अधिक रसमय बन जाता है। यह निषेध स्वीकार की तुलना मे अधिक आकर्षण उत्पन्न करता है।

राधा का निषेध भाव अपने अग का दृष्टि स्पर्श भी नही करने देता है। कृष्ण जिस अग को देखना चाहते हैं राधा उसे छिपाकर इसी निषेधात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करती हैं--

जो अग चाहत रसिक प्रिय, इन ननिनि सा छ्वाई।
सा ठा सुदरि पहिले ही राखति बसन दुराई।

रस रत्नावली पद ४० ध्रुवदास

वसन से अगो को छिपा देना निषेध की अनुभावगत या चेष्टागत क्रिया है। इस प्रकार की चेष्टाएँ कई स्थलो पर दीख पडती है। कभी नेत्र मूँदने मे, कभी अगो के स्पर्श मे यह निषेध दीख पडता है —

१ मूदि रहे पिय प्यारी लोचन।

मन हरखित मुख खिझत सखिन कहि चतुर चतुरई भाव। सूरसागर

यहा मुख से खीझने म अस्वीकार न होकर प्रेम का प्रदशन है इसी से मन की प्रसन्नता व्यक्त की गई है। मन हरखित' का यही रहस्य है। मुख से खीजना तो एक दिखावा मात्र है।

अगों के स्पश करने म निषेध का भाव व्यक्त किया गया है। प्यारी सकोच करती हुई इसका निवारण करना चाहती है। कृष्ण के मुख को अपने हाथो से हटाती हुई इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गय हैं —

कबहुँक कुच कर परस कठिन अति तहा बदन परसावत।
मुख निरखति सकुचति सुकुमारी, मनहि मन अति भावत।
तब प्यारी कर गहि मुख टारत, नकु लाज नहिं आवत।

सूरसागर ३०७५

यहा मुख हटाने म लज्जा और निषेध के दोनो ही भाव लक्षित हो जाते हैं। यह निषेध करो द्वारा व्यक्त किया गया है। हरिराम व्यास ने ऐसे प्रसग के उद्घाटन पर नेत्रो का सहारा लिया है।

"स्याम काम बस चोली खोलत, आतुर निसि के भोरे।
डाँडी छाडि करत परिरम्भन चुम्बन देत निहोर।
सननि बरजति पियहिं किसोरी, द कुच कोर अकोर।

वचन निषेध——दनिक जीवन की छेड़ छाड मूलक विभिन्न क्रियाओं म नायिका द्वारा वचन निषेध आवश्यक हो जाता है। दान प्रसग पर इस प्रकार के निषेध का वणन प्राय किया गया है। एक गोपी कहती है कि कृष्ण आज प्रात काल स ही झगडा कर रहे हैं। वस तो मैं दही नही दे सकती परन्तु वे छीन कर चाहे सम्पूण दही ले लें। उसके इस वचन निषेध मे भी उसका मन कृष्ण म अटका रहता है और उसका पग आग बढता ही नही है।[1] इस पद्य म

[1] भोरहि ते काहे करत मो सा झगरो।
औरनि छाँडि परे हठ हमसा दिन प्रति कलह करत नहिं डगरो।
अनबोहिनी तनक नहिं दहौं, एसे हि छीनि लेहु बरु सगरो।
अचल खैंचि-खैंचि रातति हौ जान देहु अब होत है दगरो।
मुख घूमनि हँसि कठ लगावनि आपुहि कहनि न लाल अचगरो।
सूर सनह ग्वारि मन अटक्यो, छाडहु दियो परत नहिं पगरो।
परम मगन है रही चित मुरा सजने भाग याहि को अगरो।

सूरसागर

ऐसेहि छीनि लेहु वरु सगरो' कहने से दही के छीन लिए जाने पर सुख की अनुभूति और तदथ स्वीकृति की पूर्ण व्यञ्जना है। कृष्ण द्वारा किये जाने वाले आलिंगन का गोपियाँ निवारण करना चाहती हैं। इस निषेध से उनके मिलन की इच्छा अधिक प्रबलता से व्यक्त हो जाती है। ऐसे दान के प्रसगो पर निषेध के दिये गये कारणो से मन की अभिलाषा ही व्यक्त होती है। इस दृष्टि से निवारण तो इच्छा पूर्ति का माध्यम है। इसमे कृत्रिमता अथवा बनावटी पन नही दीख पडता है अपितु अन्त करण की सम्पूर्ण लयता के साथ गोपी के मन की समस्त चेतना कृष्ण को सुखानुभूति म अपने जीवन की साथकता पा लेती है। निषेध तो मिलन का एक बहाना मात्र है जिसके अभाव मे सयोग सुख म फीकापन आ जाता है।

दान लीला प्रसग पर गोपिया कृष्ण की क्रियाओ के अनौचित्य का प्रतिपादन करती हैं। उनका कथन है कि हमारे यौवन म इनकी आँख क्यो गडती है 'हमरो जोबन रूप आखि इनकी गडि लागत'। वे नाना प्रकार से कृष्ण की विनती करती हैं उन्हें छोड देने को कहती हैं, परन्तु मन में सान्निध्य लाभ की लालसा बनी रहती है।[1] कृष्ण के अग-स्पश करने पर मना करती हैं।[2] गोपिया चाहती हैं कि कृष्ण चले जाय परन्तु उनका हाथ नही छोडती। इस निवारण का अपना महत्व है।[3] वचन द्वारा इस निषेध मे हृदय की

---

[1] मटुकी ल जु उतार धरी।
इन मोहन मेरो अँचरा पकरयौ, तब हौ बहुत डरी।
मोहि को तुम गहि जू रह्यौ हो सग की गइ सगरी।
पैया लागि करत हौं बिनती दुहूँ कर जारि खरी।
परमानन्द प्रभु दधि बचन की बिरिया जान टरी।

अष्ट० परि० पृ० १९२

[2] (i) मोहन मनमथ मार, परसत कुच नीवी विहार।
वेपथु युत नेति नेति वदति भामिनी।
(ii) वध कपट हठि वाप कहत कल नेति-नेति मधु बोल। हित हरिवश
(iii) स्याम काम बस तारि कचुरी, कर जनि गहि कुच कोर।
स्यामा मुच मुच कह खण्डित भय अघर की ओर॥

पृ० ३८५ पद २८० उत्तरार्द्ध

[3] राधा सकुचि श्याम मुख हरनि,
जाहु जाहु मुख ते कहि भापत करते कर नहि छूटत।

सूरसागर। वें० प्रेस पृ० ३१३

सम्पूर्ण कोमलता अभिव्यक्त हो जाती है। छेड़ छाड़ के प्रसंगों पर इस प्रकार की निषेधात्मक उक्ति दीख पड़ती है। एक गोपी कृष्ण के अचगरी करने पर उसे मना करती हुई कहती है कि हे नन्द के लाल इस प्रकार की बातें न करो, मेरा अंचल छोड़ दो, अन्यथा बहुत जंजाल में पड़ जावोगे। अभी तो तुम्हारी अवस्था भी नहीं आई है। तरुनई तो आ जाने दो और मेरे उर से अपना हाथ उठालो अन्यथा मोतियों की यह माला टूट जायगी —

> ऐसे जनि बोलहु नन्दलाला।
> छाडि देहु अँचरा मेरो नीके, जानत और सी बाला।
> बारम्बार मैं तुम्हहिं कहत हौं परिहौ बहु जंजाला।
> जोबन रूप देखि ललचानो अबही त ये ख्याला।
> तरुनाई तन आवन दीजै कत जिय होत बिहाला।
> सूर स्याम उरते कर टारहु, टूटै मोतिन माला।

इन पंक्तियों में निषेध का अनोखा सौंदर्य है। निषेध और स्वीकृति इन दोनों का मिश्रित भाव भी कहीं कहीं देखने को मिल जाता है। परमानन्द दास ने इसी प्रकार का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके वर्णन में गोपी एक ओर बाँह पकड़ने से मना करती है और दूसरी ओर कदम्ब की छाया में बैठकर कृष्ण से वार्तालाप भी करना चाहती है। वह कहती है कि तुम बड़े व्यक्ति के पुत्र हो। अतः तुम्हारी बात का अस्वीकार भी तो नहीं कर सकती हूँ—

> न गहौ बाँह कोमल मेरी बहियाँ।
> सुन्दर स्याम छबीले ढोटा हौं नहिं आऊं या बन मंडियाँ।
> ब्रज बसि बास बड़े को ढोटा करि न सकति तुम सौं फिर नहियाँ।
> परमानन्द प्रभु कहि निबहौं कछु बैठहु नेकु कदम्ब की छहियाँ।

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो गया कि शृङ्गार के संयोग पक्ष में निषेध का स्वीकारात्मक चमत्कार अनेक रूपों में वर्णित है। वचन निषेध और क्रिया निषेध द्वारा मन की झूठी अनिच्छा बताई गई है। इससे नायक का नायिका के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है। वह अपनी चेष्टाओं के कारण मोहक प्रतीत होने लगती है। यह मोहकता रूप सौन्दर्य का साधक बन जाता है। इसी से रस की सिद्धि होती है। अतः आकर्षण को बढ़ाकर मन में रति का संचार करने में इन चेष्टाओं की अनिवार्यता स्वीकार्य है। इन विशेष चेष्टाओं के साथ अलंकार मूलक सामान्य चेष्टाओं से भी रूप का आकर्षण बढ़ जाता है।

(ख) सामान्य-चेष्टा—चेष्टा द्वारा आलम्बन की सौन्दर्य-वृद्धि की

स्पष्ट करने के लिये उसे विशेष और सामान्य चेष्टाओं में विभाजित किया गया था। सामान्य चेष्टा के अन्तर्गत अलंकारों का सकेत किया जा चुका है। यौवन में ये अलंकार नायिका के सौन्दर्य को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इनके कारण शरीर में मोहकता एवं आकर्षण का आविर्भाव होता है। इन अलंकारों की तीन कोटियाँ—अगज, अयत्नज और स्वभावज-बताई गई हैं। इनमें अयत्नज अलंकार चेष्टापरक न होकर गुण-परक है क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं हैं, अपितु स्वतः ही गुणों के रूप में इनका उद्भव होता है। स्वभावज अलंकार स्वभाव सिद्ध होते हुए भी कृति की अपेक्षा रखते हैं। अगज अलंकारों में भी शारीरिक व्यापार ही भावों के वहन किये जाने का प्रधान साधन बनता है। इससे केवल अगज और स्वभावज अलंकारों को ही चेष्टा के अन्तर्गत मानेंगे। अगज अलंकार के अन्तर्गत, हाव, भाव और हेला की गणना होती है। निर्विकार चित्त में उत्पन्न प्रथम काम विकार की 'भाव' संज्ञा है। 'हाव' में यही भाव भृकुटि नेत्रादि के विलक्षण व्यापारों द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। इन दोनों में हाव में शारीरिक-व्यापार की प्रधानता होती है और 'भाव में मानसिक वृत्तियों में एक परिवर्तन आ जाता है। दोनों के एक एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है —

१ खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिशाल भाल दिये रोरी।
सूर-स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।

सूरसागर १२९०

२ राधा को मैं तबहि जानी।
अपने कर सों माँग सँवारि, रचि रचि बेनी बानी।
मुख भरि पान मुकुर ले देखति, तासों कहति अपानी।
लोचन आँजि सुधारति कर जनि छाँह निरखि मुसकानी।
बार-बार उरजनि अवलोकनि वा तैं कौन सयानी।
सूरदास जैसी है राधा, तैसी मैं पहचानी।

सूरसागर २६७०

इन उदाहरणों में से प्रथम में श्रीकृष्ण के चित्त में राधा को देखकर रीझने का भाव उत्पन्न हो गया और दूसरे में राधा की विभिन्न चेष्टाएँ उसकी सम्भोगेच्छा को प्रकाशित कर देती हैं। इन चेष्टाओं में लोचनों को आँजना, उरज को देखना आदि काम मूलक चेष्टाएँ हैं। यही चेष्टा सुव्यक्त होकर 'हेला' कही जाती है।

१ देखि सखी मोहन मन चोरत ।
नन कटाच्छ विलोकनि मधुरी, सुभग भृकुटि बिबि मोरत ।
सूरसागर पद २४३२

स्पष्ट हो जाता है कि अगज अलकारो के द्वारा मोहकता बढाने की चेष्टा की जाती है । इन अलकारा से काम मूलक विलास चेष्टाओ का ज्ञान हो जाता है ।

स्वभावज अलकारा म चष्टापरक केवल दश अलकारा की ही गणना की गई है । इ हे उनकी चेष्टा की प्रवृत्ति के अनुसार अनेक भागों मे बाँट दिया गया है ।

त्वरा से युक्त चेष्टा म विभ्रम' की गणना होगी । इसमे प्रिय आगमन के समाचार को सुनकर भूषणो का अ य अगो म पहन लेने की क्रिया सम्पन्न होती है ।

निसिबन को जुवती सबधाई ।
उलटे अग अभूषन ठ ई । सूरसागर १६०७

(२) विच्छित्ति,[1] और ललित[2] म प्रसाधन गत चेष्टा वतमान रहती है । अल्प रचना स शरीर शाभा का बढ जाना विच्छित्ति तथा सयोग के समय अग वि यास आदि आगिक चेष्टा से मोहकता को बढा लेना ललित' कहा जाता है । यथा—

१ धनि वृषभानु-सुता बड भागिन ।
कहा निहारति अग अग छबि धन्य स्याम अनुरागिनि ।
और तिया नख सिख सिगार सजि, तेरे सहज न पूरैं ।
रति रभा उरबसी, रमा सी ताहि निरखि मन झूरं ।
सूरसागर ३०६२

इस उदाहरण म जिस सौन्दय को अ य ललनाएँ प्रसाधनादि से प्राप्त करती हैं उसे वृषभानुसुता सहज म ही उपलब्ध कर लेती है ।

---

[1] आयो मुख नीलाम्बर मा ढकि बिथुरी अलकैं साहे ।
ज्यो दिसा मनु मकर चाँदनी घन बिजुरी मन मोहै । सूरसागर २८०६

[2] मना गिरवर त आवनि गगा ।
गौर गात दुति बिमल बारि बिधि कटि तट त्रिवली तरल तरगा ।
रोम राजि मना जमुन मिलि अध भँवर परत मानो भ्रू भगा ।।
सूरसागर ३०७२

(३) लीला के अतगत रम्य-वेश, त्रिया और प्रेमपूण वचनो से पारस्परिक अनुकरण की प्रवृत्ति रहती है। इसमे नायक-नायिकाग्रा मे नकल या अनुकरण की चेष्टा का वणन होता है।[1] इस अनुकरण के द्वारा प्रेम की प्रगाढता का आभास मिल जाता है।

(४) अभिव्यक्ति मूलक चेष्टा मे 'कुट्टमित मे निषेध का सौदय, विब्बोक मे गव और अभिमान के कारण प्रिय के अनादर से उत्पन्न प्रेम भाव की मान्द्रता और विहृत' म समय के अनुकूल अपने भावो को प्रकट न कर सकने के कारण लज्जागत सौदय होता है। यथा —

(क) आजु रग फूल कुँवर कन्हाई।
कबहूँक अधर दशन भर खण्डिल, चाखत सुधा मिठाई।
कबहूँक कुच कर परस कठिन अति तहा बदन परसावत।
मुख निरखति सकुचति सुकुमारी मनहि मन अति भावत।
तब प्यारी कर गहि मुख टारति, नैकु लाज नहि आवत।
सूरदास प्रभु काम सिरोमणि, कोक कला दिखरावत।
सूरसागर ३०७५

(ख) बरज्यौ नहि मानत तुम नैकहूँ उलझत फिरत काहू घर ही घर।
मिस ही मिस देखत जु फिरत हौ जुवतिनि बदन कहौ काव वर।
सूरसागर २६६१

इन दोना उदाहरणा म त्रमश कुट्टमित और विब्बोक के भाव को व्यक्त किया गया है।

विशेष प्रकार की चेष्टाग्रा से इन भावो की अभिव्यक्ति हो जाती है। विहृत म अपन भावा की अभिव्यक्ति ही नहीं हो पाती है। प्रिय मिलन के अवसर पर लज्जादि के कारण अभिलाषाए अतृप्त ही रह जाती हैं।

१ कहत कछु नहि आजु बनी।
हरि आय हौं रही ठगी सी जसे चित्त धनी। सूरसागर

---

1 तिहारी लाल मुरली नेक बजाऊं।
जा जिय हाति प्रीति कहिबे की, सो धरि अधर सुनाऊं।

तुम बठा दृढ मान साजि क मैं गहि चरन मनाऊं।
तुम राधे हो, मैं हा माधो, ऐसी प्रीति जगाऊं। सूरसागर २७५६

(५) विलास किलकिञ्चित और मोट्टायित का सम्बन्ध प्रिय के सदर्भ में बना रहता है। विलास' प्रिय दर्शनादि से उत्पन्न वशिष्ट्य का बोधक है। यह शारीरिक चेष्टा या प्रेम के मधुर प्रदर्शन द्वारा व्यक्त होता है। भक्ति काल में स्त्री और पुरुष दोनो ही पक्षो में विलास की यह भावना व्यक्त की गई है।[1]

किलकिञ्चित् में विपरीत एव भिन्न भिन्न भावो की सबलता रहती है। इसमें प्रसन्नता, दु ख आदि अनेक भाव एक साथ व्यक्त किये जाते हैं। इन क्रियाओं से प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना होती है।[2] प्रिय वार्ता प्रसग पर उसके प्रति अयमनस्कता दिखाना मोट्टायित कहा जाता है।[3]

चेष्टापरक इन सभी अलकारो से स्पष्ट है कि इनके मूल में प्रेमाधिक्य और सयोग सुख की भावना वर्तमान रहती है। इनसे शारीरिक आकर्षण एव मोहकता की वृद्धि होती है। नायिका की इन अनुकूल चेष्टाओं से मन में उल्लास और प्रसन्नता होती है नर्सर्गिक शोभा में मादकता आती है और व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ जाता है। अत आलम्बन की गुणगत और चेष्टापरक विशेषताओ द्वारा उसके सौन्दर्य की वृद्धि होती है। इन चेष्टाओं आदि के साथ बाह्य प्रसाधक उपकरणो से भी रूप का आकर्षण बढ़ जाता है।

---

1 सखियन बीच नागरी आव।
छवि निरखत रिझ्यो नन्दनन्दन प्यारी मनहिं रिझाव।
कबहुँक आगे कबहुँक पीछे, नाना भाव बनाव।
राधा मन अनुमान कर, हरि मेरे चितहि चुराव।
सूरसागर २०५८

(ii) नागरि नागरि सग पनघट त घनी की आव।
ग्रीवा डारनि लोचन सारनि हरि के चितहि चुराव।
ठाढ़नि चरन मरोरि मुख मोरि बकट भौंह चलाव।
सूरसागर २०५९

2 ग्राप परयो मन राधिका कछु कह्यो न जाव।
कछु हरख कछु दुख करै मन मोद बढ़ाव।
कबहुँ बिचारत निठुर ह्, गनि उनार बनाव। सूरसागर २६६२

3 सुनि री निठुर प्यारी मनभावन।
कहि निज बनी उर परगासन बढ़ित भुजा समाधन।
मन हर्षित मुख निरखि गर्भित कहि चतुर चतुरई भाव।
सूर स्याम मन कम्पित कै चार सूझ्यो है दुहिं दाव।

प्रसाधनगत सौन्दर्य —

रूप और सौन्दय के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार करते हुए बताया जा चुका है कि सौन्दय साधक सम्पूर्ण उपकरणो की दो कोटियाँ हो जाती हैं। उन्हें आत्मगत और वाह्य उपकरणो के रूप मे स्पष्ट किया जा चुका है। आत्मगत उपकरणो मे अन्तगत गुण और चेष्टा तथा वाह्य उपकरण म 'अलंकृति' एव 'तटस्थ' साधना की चर्चा की गई है।

पात्र के शरीर से भिन्न सौन्दय साधक अन्य उपकरणो को वाह्य उपकरण की सज्ञा दी जाती है। ऐसे उपकरणो मे प्रसाधनगत उपकरणो द्वारा सौन्दय म निखार आ जाता है और छिपा हुआ सौन्दय प्रकट और स्पष्ट हो जाता है। इसीसे प्रसाधन सामग्री द्वारा सौन्दय को वढाने का प्रयास सदा से होता आया है। वाह्य उपकरणो के माध्यम से सौन्दय को बढाने के लिए प्रयोग मे लाये गये शृङ्गार प्रसाधनो की सख्या सोलह मानी गई है। उवटन, मजन मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश विन्यास, माग भरना, अजन, महावर, बिन्दी, तिल लगाना मेहदी, गन्ध द्रव्य, आभूषण पुष्पमाला और पान रचाना। विश्लेषण करने से ज्ञात हो जाता है कि इन सभी उपकरणो को तीन कोटियों मे बाँटा जा सकता है —

१ शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण इन उपकरणो का स्वतत्र अस्तित्व होता है। उवटन मजन मिस्सी, माग भरना, अजन, महावर, बिन्दी, तिल, मेहदी और सुगन्धित द्रव्यो की गणना इनके अन्तगत होती है।

२ शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरण-इनके अन्तगत वस्त्र, धातु एव रत्नो से निर्मित आभूषण और फूल मालादि का प्रयोग होता रहा है।

३ अन्य उपकरणो म स्नान, केश विन्यास और पान की गणना होगी। इनम स्नान से शारीरिक निमलता और स्वच्छता आती है, केश विन्यास से सजावट वढती है और पान द्वारा मुख का सौन्दय वृद्धि पाता है।

उपयुक्त सभी उपकरणो के सामूहिक प्रयोग से रूप खिल उठता है और व्यक्तित्व का आकषण बढ जाता है। यही कारण है कि इनके प्रयोग की परम्परा विशेषत स्त्रियो मे ही रही। पुरुषो ने इन सभी सोलह प्रसाधनो का प्रयोग नहीं किया है। पुरुष पक्ष म केवल उवटन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, माल्यादि और पान का ही वणन मिलता है। शरीर की रक्षा और शोभा बढाने वाले साधनो म धारण किये जाने वाले उपकरणो की महत्ता अधिक होती है। महत्ता के इस क्रम के आधार पर पहले इन्ही का वणन किया जायगा —

(क) धारण किये जाने वाले सौंदय के उपकरण—इनमें वस्त्र आभूषण और फूल मालादि को स्थान मिला है। प्राप्ति के मूल स्रोत के आधार पर धारण किये जाने वाले सौंदय प्रसाधना के तीन वर्ग हो सकते हैं (१) वस्त्रादि जिसका निर्माण मनुष्य द्वारा होता है। (२) खनिज पदार्थ अर्थात् धातुओं (स्वर्णादि) से बनाये जाने वाले आभूषण आदि (३) प्रकृति से प्राप्त होने वाले सौंदय-साधक उपकरणों में फूलमाला आदि द्वारा आकर्षण को बढ़ाया जाता है। इन तीनों प्रकार के उपकरणों में वस्त्रों की प्राथमिकता सर्वमान्य है। अतः सबसे पहले इन्ही का वर्णन किया गया है।

वस्त्र—वस्त्र मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन वस्त्रों के प्रयोग में ऋतु, काल, स्थान एवं पद का ध्यान रखा जाता है। भक्तिकालीन वस्त्रों के वर्णन में कवियों की दो दृष्टियाँ हैं। (१) दैनिक प्रयोग के वस्त्र (२) विशेष ऋतु और पर्व या उत्सवादि पर प्रयोग में लाये जाने वाले वस्त्र। इन दोनों ही प्रकार के वस्त्रों की चर्चा भक्तिकालीन साहित्य में मनोयोगपूर्वक की गयी है। वस्त्रों में तनसुख, ताफ्ता और खासा आदि वस्त्रों का वर्णन है इन्हें अम्बर चीर पट, वसन आदि के नाम से वर्णित किया गया है। अवस्था और लिंग के अनुसार वस्त्रों में परिवर्तन होता रहा है।

बालकों का शृङ्गार कुलह कुलही, पाग पगा आदि से होता था। शरीर के अन्य अंगों में काछनी चोलना, झगुली पटुका पिछौरा पिताम्बर, बागा और सूथनादि धारण करते थे। श्री कृष्ण के पीत और नीले वस्त्र का वर्णन है। श्रीकृष्ण का पीताम्बर युक्त शरीर विशेष सुन्दर हो जाता है। धोती के स्थान पर काछनी का प्रयोग किया गया है। उपरना और पिछौरा द्वारा ओढ़ने का काम लिया जाता था। पाग द्वारा सिर की शोभा बढ़ाते थे "बलि कुंतल बलि पाग लटपटी" "लटपटी पाग पर जावक की छवि लाल।" कुलह और पनही का प्रयोग होता था "पहिर पिताम्बर चरन पावरी ब्रज बीथिन में जात।" पुरुषों के वस्त्रों में धोती और पिछौरा का वर्णन मिल जाता है "यह कहि नन्द गए जमुना तट ले धोती भारी विधि कमट।"

सूरसागर १०४४

स्त्रियों के वस्त्रों में भक्त कवियों ने अवस्था का ध्यान रखा है। इस दृष्टि से इन वस्त्रों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। (१) बालिकाओं के वस्त्र (२) स्त्रियों के वस्त्र।

बालिकाओं के वस्त्र में शरीर के वर्ण का ध्यान रखा गया है। गोरे शरीर पर नील वसन और कटि में फरिया का वर्णन मिलता है "नील वसन

फरिया वटि वाथे वरी रचिर भात भारी।'[1] भूषन, नारावद, ओढनी और चूनरी का वरणन मिलता है।[2] ध्यान रह कि इन कविया ने सामान्यतया वय प्राप्त बालिकाओ के वस्त्रा का ही ध्यान रखा है। किशोरी ललनाओ के प्रति इनकी अधिक रुचि रही है। इनके ओढने वाले वस्त्रा म चूनरी का अधिक प्रयोग हुआ है।[3]

स्त्रिया क वस्त्रा का वणन और उससे उत्पन्न होने वाली शोभा को सभी भक्त कवियो ने प्रमुखता प्रदान की है। वस्त्रो क इस वणन म कविया की दो दृष्टियाँ दीख पडती हैं —

(१) वस्त्रा की सामग्री, बनावट रगादि की चर्चा।

(२) अवस्था और परिस्थिति के अनुसार वस्त्रो म परिवतन और उनकी आकषक याजना।

इन दानो दृष्टिया म कविया की प्रभावक प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित हो जाती है। इस काल के प्रयोग किय जान वाले वस्त्रा म दुकूल, बसन, अम्बर, परिधान, कापर चीर वस्त्र पट आदि का व्यवहार किया गया है। सूती और रशमी दोना प्रकार के वस्त्रा का चर्चा है। वस्त्रा क रग-साम्य और वषम्य द्वारा गोरे बदन के रूप का आकषण बढाया गया है। अवस्था के अनुकूल किशोरी और तरुणी के वस्त्रो की बनावट आदि म अन्तर ला दिया गया है। कही कही दोनो के लिय समान वस्त्र का प्रयाग है। किशारा राधा की चूनरी का वरणन और स्त्रिया की चूनरी का वणन भी है। फिर भी दाना क वस्त्रा म भिन्नता है।

स्त्रियो क प्रमुख वस्त्रा म लहगा साडी, कचुकी और ओढनी आदि का वणन भक्त कविया की रचनाओ म मिलता है। इन सभी वस्त्रा की सजावट का ध्यान सदा रखा गया है। एम आकषक वस्त्रादि का उपयोगिता मूलक प्रयोग वणित किया गया है। इनका मूल उद्देश्य प्रिय को रिझाना था 'त गोपाल हेतु कुसभी कचुकी रगाय लई। '[4] वस्त्रा के रग आदि का विशेष ध्यान रखा जाता था। सुरग, पचरग साडी, तन सुख की साडी, झूमक साडी, रशम की साडी और पटोरी की चर्चा की गई है —

---

[1] सूरसागर १०५७

[2] सूथन जघन बाधि नाराबद,
परिया दइ फारि नवसारी। सूरसागर ७०८
आजु तेरी चूनरी अधिक बनी। परमानन्द ३७६

[3] (i) सुरग चुनरिया भिजाइ मरो, भीज्यो पिछौरा। चतुरभुज दास २५
(ii) नालाम्बर पाटम्बर सारी, सत पीत 'चुनरी' अनारीर सूर० ७८४

[4] कृष्णदास पृ० ४४ अष्टछाप पदावली-स० सामनाथ

१ तसिये सुरंग सारी पहिरे अंग । चतुर्भुज १२६
२ पगनि जेहरि, लाल लँहगा अंग पचरंग सारी । सूर १०४६
३ चुनरी चोली बनी, चुनरी की सारी । चतुर्भुज दास ३६५
४ तन सुख सारी पहिरि भानी । चतुर्भुज दास २०२
५ लँहगा लाल झूमकी सारी, बसू भी बरन पिय हेत रंगाई ।

धुम्मन दास ३१६

६ अंग मरगजी 'पटोरी' राजति । सागर वेंकटेश्वर प्रेस १३३२

आंगी अंगिया और कचुकी को आकर्षक बनाने के लिये कटावदार जड़ाऊ और रत्न जटित चोली का वर्णन है । कंचन के सूत से या रत्नों के धागे से बनी आँगी का वर्णन है ।[1] इसमें विभिन्न रंगों के प्रयोग से आकर्षण उत्पन्न किया गया है । नील आँगी के साथ लाल मांडनि (तिकोना साज) का रंग-संयोग अच्छा बन पड़ा है 'अंगिया नील माडनी राती ।[2] गोविन्द स्वामी ने पीली माडनि का महत्व वर्णित किया है । चंपक तन कंचुकी खुली स्याम सुदेश सुढारी हो । माडनि पिय पट पीत की ता ऊपर मोतिन हारी हो ।[3] यहाँ चम्पक वरण तन के साथ आंगी और मोती के हार का रंग-वैषम्य रूप को और अधिक निखार कर आकर्षण का कारण बना देता है । कंचुकी पर कसीदा काढ़ कर उसका आकर्षण बढ़ाया गया है । कंचुकी सोभित कसीदा सुंदर ।[4]

विभिन्न अवसरों एवं पर्वों पर बन ठन कर सोलह शृंगार से युक्त होली खेलने का वर्णन है । गोपियों की सुरंग सारी, कसी हुई कंचुकी नैनों का काजल रूप को आकर्षण बना देता है ।

१ सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकी काजर दै दै नैन ।
बनि-बनि निकसि निकसि भई ठाढ़ी सुनि माधव के बैन ।

सूरसागर २६८०

२ उनत सब सुन्दरि जुरि आईं, करि करि अपनौ ठाठ । नन्ददास
३ सकल सिंगार कियौ व्रजबनिता, नख सिख लौं मन ठानि ।

सू० सा० २८६१

---

[1] देहों व्रजनाथ हमारी आंगी ।
सकल सूत कंचन के लागे बीच रतनन की धागी । परमानन्द सागर २०१

[2] सूरसागर

[3] गोविन्द स्वामी पद १३५

[4] गोविन्द स्वामी पद ४२

४ ग्राइ बनि ठनि सकल घोष की सुन्दरि,
तजि अभिमान चली वृदावन । कुमनदास ७१

५ जुवती जन समूह सोभित तहा पहिरे भूषन नाना भेस ।
चतुर्भुजदास ७१

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि वस्त्रो के कढावदार और रत्न जटित होने के मूल मे इनका प्रयोग करने वालो की सौन्दर्य वृत्ति ही है। स्वर्ण के तार युक्त वस्त्रो का आकर्षण धारण करने वाली गोपियो मे भी आकर्षण का विकास कर देता है। ऐसे वर्णनो मे वैभव का प्रदर्शन भी होता है। वैभव सम्पन्न वस्त्रो का प्रयोग बहुधा होली या सावन के विभिन्न उत्सवो पर ही हुआ है। चतुर्भुजदास द्वारा प्रस्तुत रूप चित्रो मे वैभव की यही सम्पन्नता दीख पडती है।[1] वस्त्रो के वैभव, डिजाइन रग साम्य और वैषम्य द्वारा व्यक्तित्व मे भी आकर्षण उत्पन्न किया गया है। इनका उद्देश्य सामान्य 'रति' का उद्दीपन न होकर अपने आराध्य के रूप सौन्दर्य को अधिक से अधिक रमणीय बनाना है। यही कारण है कि वस्त्रो के रगादि का विशेष ध्यान रखा गया है।

रग सौन्दर्य—अवसर के अनुकूल वस्त्रो के रूप मे अन्तर आ गया है। शृङ्गार करते समय तनसुख की साड़ी का प्रयोग हुआ है।[2] होली के अवसर पर वस्त्रो के रगो मे निरालापन आ जाता है। झूलन प्रसग पर भी यही दृष्टिकोण दीख पडता है।

१ झूलन आइ रग हिंडोल ।
पचरग वरन कसुभी सारी कचुकी साथ वारै। सू० सा० ३४५६

२ वाम भाग वृषभानु नन्दिनी, पहिरै कसुभी सारी ।
चतुर्भुजदास पृ (२६६—अष्ट० परिचय से)

३ स्याम अग कसुभी नई सारी। सू० ३४१७

४ सावर तन कसुभी सारी। „ २७८३

नन्ददास ने शृंगार प्रसाधन और रगो के आकर्षण के साथ रूप

[1] चतुर्भुजदास पृ ४२/पद ७८

[2] ह्या तो तरल तरयौना कान, अरु तनसुख की सारी। सूरसागर ४४३५
(ii) जुवती अग सिंगार-सवारति ।
छुद्रघटिका कटि लहगा रग, तन तनसुख की सारी। सू २११६

सौंदय का वणन भी किया है।[1] चत्रभुजदास ने हिंडोला प्रसग पर प्रकृति की पृष्ठभूमि मे रग-वभव को दिखाया है।[2] झूलन के इस प्रसग पर युगल रूप का चित्र एव श्रीकृष्ण के सौंदय का वणन मिलता है। इस स्थला पर रगो द्वारा रूप चित्रण और वातावरण का निर्माण हो सका है।[3] कवियो का सौंदय चित्र यहाँ पर दो रूपा म प्रकट हुआ है। (१) स्त्री का सौंदय चित्र (२) श्रीकृष्ण का सौन्दय चित्र।

श्रीकृष्ण के रूप सौन्दय का वणन करने म अनुरूप एव प्रतिरूप वण योजना की सहायता ली गई है। स्वण दाम के अनुरूप रग पीत काछनी और प्रतिरूप रग नील वण की सुदर योजना कृष्णदास न की है।

कटि तट सोहनि हेमनि दाम।
पीत काछ पर अधिक विराजत, ताइ लजावत काम।
तेरे नील पट ओढ रसिक वर, अधिक विराजत जाम।
अष्ट० परि० पृ २३५/ ८ कृष्णदास

चत्रभुजदास ने प्रतिरूप वण योजना द्वारा फहराते हुए नील पट पर लाल पाग का सौंदय देखा है।[4] छीत स्वामी ने वेष भूषा और प्रकृति चित्रण मे इसी रग-योजना का सहारा लिया है।[5] कुम्भनदास जी न अनुकूल वण योजना द्वारा श्याम और पीत रगो की सगति बठाई है।[6] कृष्णदास ने वर्णों

---

1. गोकुल की पनिहारी पनियाँ भरन चली
बडे-बडे नयना ताम खुभि रह्यौ कजरा।
पहिर कुसुभी सारी, अग अग छबिभारी,
गोरी गोरी बहियन ताम मोतिन को गजरा।
2. छबीले लाल के सग ललना झूलत सुरग हिंडारे।
सोभित तन गोरे स्याम पीरो पटु कसुमी सारी।
तसिय हरित भूमि, तसिये थोरी थोरी बूँदें।
चत्रभुजदास–पृ ७४ पद १२२ काँकरौली।
3. झूलत सुरग हिंडार, मुकुटधर बठे हैं नन्दलाल।
लाल काछनि कटिपर बाधे, उर सोभित बनमाल। अष्ट० परि० २२६/१४
4. आजु भाई पिताम्बर फहरात।
कुडल लाल कपोल विराजत, लाल पाग फहरात। चत्रभुजदास ११२/२०५
5. छ० ४१/६२ कांकरौली
6. कनक-कुनित चारु चन्द कुडल, तन चदन की खोरी।
माथे कनक वरन को न्पारो, ओढ़े पीत पिछौरी। कु० ७६/२०८

का कही-कही ध्वनि द्वारा निर्देश किया है।[1] इनके मन मे रगो का विशेष मोह दीख पडता है। गोपी या राधा के वस्त्रो के विभिन्न रगो द्वारा प्रिय को रिझाने की चेष्टा की गई है—

लहगा लाल झूमक की सारी, पचरग सिर ओढनी बनाई।
नवरग उर तन सुख की चोली, कसुभी वरन पिय हेतु रगाई।

कृष्णदास पृ १६ कांकरौली।

ध्रुवदास ने गोरे शरीर पर हरी साडी द्वारा रूप को निखारने का प्रयास किया है। प्रसाधन के रूप मे राधा की साडी, कचुकी, वेनी आदि का वर्णन है। वस्त्र और आभूषण इन दोनो के युगपत् प्रयोग द्वारा राधा की रूप माधुरी व्यक्त की गई है—

सारी हरी ने हरयौ मन लाल का, मोहिनी माहिनी के तन सोहै।
अगिया लाल सुरग बनी, लहि गातनि रग खरो मन मोहै।

'शृगार सत' कवित्त १५४ ध्रुवदास

छीत स्वामी ने नील पट क बीच पीत कचुकी के रग वैपम्य द्वारा आकर्षण उत्पन्न किया है।

'राधे रूप निधान गुन आगरी नदनदन सग खेली।
नील पट तन लसे पीत कचुकी कसे सकल अग भुवननि रूप रली।

गापी या राधा और श्रीकृष्ण रूप म स्त्री और पुरुष दोना के वस्त्रो का प्रसाधन रूप म समुचित प्रभाव उत्पन्न करन के लिये कवियो ने वस्त्रो के वर्णन म अपनी रग सम्बन्धी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। स्त्रियो के वस्त्रो द्वारा रूप को आकर्षक बनान का प्रयास अधिक किया गया है। सूरदास का रग विधान आकर्षक था। सारी के लिये लाल और पीले रग का वर्णन है। चूनरी के अनेक रग के होने का वर्णन है। 'नीलाम्बर पाटम्बर सारी, सेत पीत चुनरी अरुनाए।[2] 'पहिरे राती चूनरी सेत उपरना सोहे हो। पचरग साडी का सकेत है। कुसुभी रग के अतिरिक्त नील, लाल, पीला आदि विभिन्न रगो द्वारा आकर्षण उत्पन्न किया गया है। श्रीकृष्ण के नवरगी स्वरूप का वर्णन है। 'आजु बनो नवरग पियारो।[3] आजु बन नवरग छबीले[4] अनेक रगों से युक्त वस्त्रो का प्रयोग भी वर्णित है पहिरे वसन अनेक वरन तन, नील

---

1 अष्ट० परि० पृ० २२६ पद १
2 सूरसागर १४०२।
3 सूरसागर ३२६३।
4 सूरसागर २२६४

अरुन सित पीत पट"[1], "नय वसन आभूषण पहिरत अरुन सत पाटम्बर कोरी ।[2] बहुरंगी चूनरी[3] और श्रीकृष्ण के पीत पट की शोभा सभी कवियों को आकृष्ट करने में समर्थ रही है ।[4] इसके अनेक रंग के होने का वर्णन है। चूनरी के गाढ़ेपन को व्यक्त करने के लिये चुह-चुही और डह डही जैसे शब्दों का प्रयोग है।

कंचुकी और लहंगा के लाल पीले और नीले रंग बताये गये हैं। कहीं कहीं श्वेत अंगियों का वर्णन है ।[5] पाग जावक रंग में रंगी गयी है। 'लटपटी पाग महावर पागी। इन रंगों को चमत्कार पूर्ण बनाने के लिये प्रकृति से उपमानों को ग्रहण किया गया है। नीले, पीले और श्वेत रंगों के लिये बादल, दामिनि स्वर्ण रेखा बक-पंक्ति आदि का साम्य उपस्थित किया गया है। फूलों के रंगों में केसर कुमकुमा और टेसू के रंग का संकेत है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाधन के रूप में प्रयुक्त वस्त्रों के धारण करने में अवस्था परिस्थिति और पर्व आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। विभिन्न अंगों में भिन्न भिन्न वस्त्र धारण किये जाने की परम्परा थी। स्त्री, पुरुष बालक और बालिकाओं के वस्त्रों में भी भिन्नता और अवस्था के अनुसार उनकी सजावट और कटाव कसीदाकारी आदि होता रहा है। कई वस्त्र स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे। उपरना ऐसा ही वस्त्र है। लहँगा का प्रयोग स्त्री और किशोरी कन्याएं भी करती थीं। किशोरी के प्रयुक्त वस्त्र के लिये 'फरिया' का प्रयोग हुआ है।[6] गोपी या राधा के वस्त्रों के रंगों का गाढ़ापन उनके व्यक्तित्व को निखार देता है। नील पचरंग कुसुंभी लाल, सतरंग आदि से गोरा रंग और अधिक खिल जाता है। पुरुष व बालकों के वस्त्रों में भी भिन्नता है। श्रीकृष्ण का पाग गोपियों को आकृष्ट कर लेता

---

1 सूरसागर ३४८७।

2 वही ३५२६

3 चूही-चूही चूनरी बहुरंगना ३४४८।
(ii) रंग रंग बहु भांति के गोपिन पहिराए। ३६६०

4 (i) भीजेगो पियरो पट आवत है मेहरा ३१६५
(ii) नील-पीत दुकूल स्यामल गौर अंग विकार। सूरसागर

5 सूरसागर ३४४६

6 नील वसन फरिया कटि बांधे बेनी रुचिर पीठ भकभोरी। सूरसागर

है।[1] उनकी श्याम लहरिया आकर्षक है।[2] अतः स्पष्ट हो जाता है कि रूप के आकर्षण मे सिले या बिना सिले हुए वस्त्रों का महत्व है। इनके रंगो के साम्य या वैषम्य द्वारा व्यक्तित्व को आकर्षक बनाया जाता है। रूप-सौंदर्य के वर्णन में वस्त्रों का प्रयोग अवस्था के अनुसार ही हुआ है। प्रसाधनों द्वारा रूप के प्रभाव की भी व्यञ्जना की गई है। सौंदर्य की अभिव्यक्ति के साथ प्रसाधनगत उपकरण, नख-शिख और अंग विशेष का चित्रण हो सका है। कोमल, सुकुमार और आकर्षक व्यक्तित्व द्वारा सौंदर्य का उत्कर्ष वर्णित है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण के वीर कर्म के उपरान्त तत्काल भक्तिकालीन कवि की दृष्टि मे उनका कोमल और मधुर व्यक्तित्व उभर आता है और वह पीताम्बर धारी श्रीकृष्ण के आकर्षक रूप का वर्णन करने लग जाता है। उनका वीर रूप अधिक काल तक भक्त कवियों को नहीं रमा पाता। ऐसे वीर और मधुर रूप का वर्णन लीला सौंदर्य के अंतर्गत माना जा सकता है जिसमें विभिन्न लीलाओं के उपरान्त उनका प्रसाधित सौंदर्य वर्णित है। ऐसे स्थलों पर वस्त्रों के साथ प्रसाधन रूप में आभूषणों के प्रयोग से सौंदर्य बढ़ जाता है। अतः आभूषणों को प्रधान और मुख्य सौंदर्य प्रसाधक उपकरण माना जाता है। वस्त्रों के साथ आभूषणों का समुचित सहयोग सौंदर्य को बढ़ा देता है। यही कारण है कि भक्तिकालीन कवियों ने आभूषणों द्वारा सौन्दर्य वृद्धि का प्रयास किया है।

आभूषण—सौंदर्य साधक उपकरणों में आभूषणों का मोह सदा रहा है। इसकी गणना शरीर पर धारण किये जाने वाले सौंदर्य प्रसाधनों में होती है। धातु रत्नों से निर्मित अलंकार शोभा बढ़ाने के पर्याप्त साधन हो जाते हैं। इनकी प्राप्ति के दो स्रोत होते हैं। (१) खनिज पदार्थों के रूप में जमीन से प्राप्त होने वाले धातु एवं रत्न (२) प्राणियों से प्राप्त होने वाले उपकरणों में मोती की गणना होती है। इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों के प्रयोग का वर्णन भक्ति कालीन साहित्य में मिलता है।

आभूषणों द्वारा व्यक्ति के सामाजिक स्तर और स्थिति का ज्ञान होता है। इससे उसकी आर्थिक स्थिति भी स्पष्ट हो जाती है। इसी से स्त्री और

---

1 ता दिन ते मोहि अधिक चटपटी।
जा दिन ते देखे इन नैननि, गिरधर बांधे पाग लटपटी।
परमानन्द प्रभु रूप विमोही, या ढोटा सो प्रीति अति जटी।

2 आजु अति शोभित हैं नन्द लाल।
श्याम लहरिया की पाग बनी है तसाई पिछौरा लाल।
कृष्ण दास पृ० ११ पद ३० कांकरौली।

पहुँटा, कंकन बाजूबंद, क्षुद्रघण्टिका नूपुर, बिछिया आदि का वर्णन कराया है।[1] इन आभूषणों के सम्बन्ध में भक्तकवियों में मतक्य नहीं है। थोड़े अन्तर के साथ इनकी संख्या अधिक हो जाती है। आभूषणों के प्रति सहज रुचि और उसके प्रदर्शन के माध्यम से समृद्ध वर्ग का भान होता है। गोपियाँ बड़े अभिमान के साथ कहती हैं कि तू एक ही हार मुझे क्या दिखलाती है। तेरे तो नख में शिख तक आभूषण विराज रहे हैं इन्हें क्या छिपा रही है ?[2] समृद्धि का यह प्रदर्शन दो रूपों में हो सका है (१) दूसरे गोपी द्वारा आभूषणों की गणना वाले पदों से (२) स्वयं गोपियों की अपनी उक्ति द्वारा आभूषणों का कथन और उससे उत्कर्ष को प्राप्त होने वाली शोभा का संकेत। एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि अभी क्या देखती हो ? मैं आज जितने आभूषण पहन कर आई हूँ घर पर अभी इससे दूने आभूषण हैं, 'जितनो पहिरि आजु हम आई, घर है यात दूनौ।'[3]

आभूषणों के माध्यम से समृद्धि की अभिव्यक्ति करने और आत्मतुष्टि के लिये एक एक अंग में अनेक आभूषण धारण किये जाते थे तथा प्रत्येक अंग में अलग अलग आभूषण धारण करने की परम्परा थी। ये आभूषण विभिन्न अंगों की शोभा बढ़ाते थे। टीका शीशफूल, मांगपाटी, चन्द्रिका और मोती की लड़ से मांगों की शोभा बढ़ाई गई है।[4] शीश पर बनी या बेना धारण करके नवोन्मेषाएँ आज भी अपना सौन्दर्य एवं आकर्षण बढ़ाती हुई दीख पड़ती हैं 'बेनी गुही बिज माँग सँवारी सीसफूल लटकारी।[5]

भक्तिकालीन साहित्य के अनुसार ब्रजांगनाएं कानों में अवतंस, करणफूल खुटला झुमका तरकी तरिवन, तरयौना, ताटंक आदि धारण करती थीं।

(i) कनक करनफूल' मकुटि गनि मोहत, कोटि अनंग।

चतुर्भुजदास १०८

---

[1] सूरसागर १५४०।

[2] सूरसागर २१५८।

[3] सूरसागर १५४१।

[4] (i) बना गुहा बिच माग सवारी सीसफूल लटकारी।

गोविन्दस्वामी २०४

(ii) मांगिन मांग बिथुरी मनि मुग पर। कुम्भनदास ३०५

[5] गोविन्द स्वामी २०४

(ii) खुटिला खुँभी जराय की मृगमद आड सुदेश।
गोविन्द स्वामी कीतन सग्रह भाग २ पृ १३०

(iii) करनफूल 'झूमका' गज मोतिनि, बिथुरि रहे लपटाने।
चतुभु जदास ३६६

(iv) फूलन के 'तरौना' कु डल फूलन किंकिनी सरस सँवारी
नन्ददास पृ ३७८

(v) स्रवन पास ताटक साहत, माना रवि ससि जुगल परे मन फद।
कृष्ण० सोम० पत्रावली-पृ० ५४

तरकी धारण करने की परम्परा आज भी बनी हुई है। प्राय हीरे की तरकी पहनी जाती है। नाक के आभूषणा म बसर, बुलाक, नथ, नथिया आदि पहनते हैं।

गले मे पहने जाने वाले आभूषणो की सख्या सबसे अधिक है। हार, कठश्री, चौकी, टीक, माला, मुक्तावली, हमल दुलरी तिलरी, मोतिसिरि आदि द्वारा शोभा बढाई जाती थी। हाथा मे बाजूबन्द टाड और बहूँटा, कलाई पर कगन, कडा चूरा, चूरी, पहुँची, वलय, अँगुलिया मे मुदरी अँगूठी, कटि मे करधनी, क्षुद्रघटिका, दाम काची मेखला रसना, पैरा मे अनवट विछिया, पैजनी, नूपुर पायल, घुँघरू, जेहरि आदि आभूषण पहने जाते थे।

उपयु क्त आभूषणा की अधिक सख्या और अगा मे उसके विन्यास द्वारा सामाजिक समृद्धि के साथ आत्म प्रदशन की प्रवृत्ति भी दीख पडती है। धारण किये जाने वाले सौन्दय प्रसाधना म आभूषणा का महत्व निर्विवाद है। इन आभूषणा का धारण करके सामाजिक स्थिति का ऐश्वयपरक रूप चित्र प्रस्तुत किया गया है। अपने का सजाना ता इसका प्रमुख उद्देश्य है ही। इन्हीं आभूषणों से सहज रूप और भी अधिक खिल उठता है।[1] स्वय 'मोहन' आभूषणो से सिगार' करके 'मोहिनी' की शोभा को बढा देते हैं। 'नागरी की

[1] सहज रूप की रासि राधिका भूषन अधिक विराज। सूरसागर २०६३
(ii) बनी व्रजनारी सोभा भारि।
पगनि जेहरि लाल लहगा, अग पचरग सारी। सूरसागर १६६१
(iii) जुवती अग सिगार सवारति।
बनी गूथ माग मोतिनि की सीसफूल सिर धारति। सू० २११६
(iv) मोहन मोहिनि अग सिगारति।

शोभा अनोखी हो जाती है उसकी छवि बढ जाती है। सौन्दर्य वृद्धि म सहायक इन आभूषणों की उपादेयता भी कम नही रहती है। धातु एव रत्ना के अति रिक्त प्रकृति द्वारा प्राप्त होने वाले सुगंधित पदार्थों को भी सौन्दय प्रसाधनो के रूप म धारण करने की परम्परा आजतक बनी हुई है। ऐसे पदार्थों म फूल माला आदि की गणना होती है।

प्रकृति सुलभ सौन्दय के उपकरण—शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दय प्रसाधनो मे प्रकृति से प्राप्त होने वाले पदार्थों का महत्व निर्विवाद है। ऐसे पदार्थों म ऐश्वय का प्रदशन न होकर मुक्त प्रकृति के साधना का प्रयोग होता है। इसम नागरिक जीवन का वभव न होकर स्वच्छन्द नैसर्गिक जीवन का उन्मुक्त उपभोग करने के लिये प्राप्त साधना का प्रयोग होता है। ऐसे साधनो की दो कोटिया होती हैं (१) पशुओ से प्राप्त पदाथ म मोर चन्द्रिका और लगाये जाने वाले साधनो मे कस्तूरी का वणन किया गया है (२) वनस्पतियो से प्राप्त होने वाले पदार्थों मे फूल गुजा, वनमाल, तुलसी आदि का प्रयोग वर्णित है।

मोर चन्द्रिका और गुजा माल को धारण करके श्रीकृष्ण की शोभा बढाई गई है। श्रीकृष्ण का शृंगार मोर चन्द्रिका के बिना अधूरा रह जाता है। सभी भक्त कवियो ने इस साधन द्वारा श्रीकृष्ण के शृंगार का वणन किया है।[1] नील नलिन श्याम तन पर मोर चन्द्रिका शोभित है। सोभित सुमन मयूर

बेनी ललित ललित कर गूथत सुन्दर माग सवारति।
नख सिख सजत सिंगार भाव सौं जावक चरननि सोहति।
सूर स्याम तिय अग सवारति निरखि आपु मन मोहति।
पद ३२४६ सूरसागर

(४) आजु तेरी छवि अधिक बनी नागरी।
माग मोतिन छटा बदन पर कच लटा
नील पट धन घटा रूप रग आगरी।　　कृष्णदास

1 (i) मुख मुरली सिर मोर पखौवा वन वन धेनु चराई। सूर० ३७७२
(ii) बरही मुकुट इन्द्रधनु मानहु तडित दसन छवि लाजति १२५६
(iii) सिखी सिखण्ड सीस मुख मुरली बन्यौ तिलक उर चदन। १०६४
(iv) देख सखी चन्दा मोर क।
आजु बन सिर सावरे पियके पीत छबीली छोर के।
अष्ट० परि० पृ० ३२४ नन्ददास

चद्रिका नीन नलिन तनु स्याम' या मनिमय जटित मनोहर कुण्डल, सिखी चद्रिका सीस रही फबि।'[1] मोर पख के बीच के भाग को चद्रिका कहते हैं। श्रीकृष्ण के रूप और सौदय से सम्बन्धित सभी पदा मे पीत-पट के साथ मोर चद्रिका की शोभा वर्णित है।[2] आज भी वल्लभ सम्प्रदाय के मदिरो मे तीन या पाच चद्रिका का मोर मुकुट विशेष उत्सवा या पर्वों पर पहनाया जाता है।

वनस्पति और फूलो मे भी श्रीकृष्ण एव गोपियो के शृगार का वणन है। शृगार प्रसाधना के रूप म फूल की महत्ता सदा से है। फूलो के व्यापक प्रयोग की बात प्राय सभी कविया ने की है। ग्रीष्मकाल मे ता 'फूलो की मण्डली' नाम से एक उत्सव भी मनाया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण और राधा का सम्पूर्ण शृगार फूल से होता है। सम्पूर्ण वातावरण, सभी साधन आदि फूलमय हो जाते हैं। फूल के हिंडोले पर फूल के खम्भे, डांडी, चौकी आदि सभी म फूल की निराली जगमगाहट रहती है।[3] श्रीकृष्ण फूल के पाग, बागा, आभूपण और श्रीराधा फूल की चोली तथा ककन आदि आभूपण धारण करती है।[4] इस प्रकार फूला का शृगार करके प्रिया प्रियतम फूला की सेज पर

---

1 सूरसागर पद ७७२ और २८३७

2 (i) करि सिंगार सब फूलन ही को। सूरसागर २८६२
(ii) कुसुमनि के आभूपण, कुसुमनि के परदा। गोविन्द स्वामी १४६

3 (i) माई फूलन के हिंडौरा बयो भूलि रही जमुना।
फूलन के खभ दोऊ फूलन की डाडी चार,
फूलन की चौकी बनी, हीरा जगमगा।
फूले अति बशीवट, फूले हैं जमुनातट,
सब सखी मिल गावैं, मन भयौ मगना। अष्ट० परि० ३२६ नन्ददास
(ii) फूलन की गेंद कली टपकत उर छिऐं
हँसत लसत हिल मिल सब सकल गुन निधान। अष्ट० परि० २६७

4 (i) फूलन की पाग फूलन की चोलना, फूलन पटुकाधारी।
फूलन के लँहगा सारा मधि फूलन अगिया कारी।
गोविन्द स्वामी पद सग्रह ३ कांकरौली
(ii) फूलनि की चोली फूलनि के चोलना। परमानन्द ७७०
(iii) फूलनि के वसन आभूपण बिराज, फूलनि के फोदा फूल उरहार है।
मद० परि० ४५
(iv) फलनि क बागा अरु भूपण फूलनि ही की पाग सँवारी। चतु०१०४

फूलों का तकिया लगाए फूलों के ही भवन में शोभा पा रहे हैं। "फूलनि के मडली मनोहर बठे तहाँ रसिक पिय प्यारी। सोभित सबै साज नाना विधि फूलन को भवन, परम रुचिकारी। फूल के थभ फूल की चौसटि, फूलन बनी है सुदेश तिवारी। फूलनि के झूमका भरोखा फूलनि के छाजें छवि भारी। सघन फूल चहुँ ओर कगूरनि फूलनि बदनवार सँवारि। फूलन के कलसा अतिशोभित फूलनि सजि विचित्र चित्रसारी। फूल की सज गेंदुवा तकिया फूलन की माला मनुहारी। चत्रभुज दास प्रफुलित राधा रस फूले गोवधनधारी।

अष्टछाप परिचय पृ० २६६

फूलो के ऐसे व्यापक उपयोग से स्पष्ट हो जाता है कि फूल सी सुकुमारी राधा फूल से श्याम के सग फूलो का शृंगार करके फूल सी ही खिली पडती है। फूलो के इस प्रयोग के कई उद्देश्य दीख पडते हैं (१) अपने रूप सौन्दय को विकसित करना (२) प्रिय को रिझाना (३) चक्षु एव घ्राणेन्द्रिया को तृप्त करना। इन तीनो उद्देश्यो मे भक्तिकाल का कवि सफल हुआ है। इसी से शृंगार साधन मे सँवार सवार कर उसका उपयोग किया गया है। इससे उत्कर्ष को प्राप्त सौन्दय प्रिय को रिझाने म समथ हो जाता है।' फूल सिंगार प्यारी तन साहत मदन गोपाल रीझिबे काजे। [1] फूलो की सुगन्धि द्वारा वातावरण का सुखद निर्माण होता है। इन्द्रियो की तृप्ति होती है और भावनाओ म अनुकूल वेदनीयता उत्पन्न होती है। विभिन्न फूलो की सुगन्धि मन के लिये रुचिकर प्रतीत होती है।[2]

फूलो के अतिरिक्त गुजामाल तुलसीमाल और जवारा धारण करने का वणन मिलता है। गुजा का दूसरा नाम घुघची' भी है। इसका रग लाल और मुख पर काला होता है। इसे श्रीकृष्ण गले म धारण करते थे।[3] तुलसी की माला धारण करने का वणन भी मिलता है।[4] कमल की माल उनके सौन्दय प्रसाधना म है।[5] शुभलक्षण सूचक 'जवारा बाधने की चर्चा मिलती है। जवारा दशहरे के पुनीत पव पर धारण किया जाता है।[6]

---

1 छीत स्वामी ६१

2 जूही जई केवरो केतकी सौरभ सरस धरम रुचिकारी। चतुर्भुजदास १००

3 केसरि की खौरि किये, गुजा बनमाल हिय।

4 स्याम देह दुकूल दुति मिलि लसति तुलसी माल।

5 कठ-कठुला नील मणि अभोज माल सँवारि। सूरसागर १०१६६

6 आज दशहरा शुभ दिन नीको।
गिरधरलाल जवारे बाधत, बन्यो है माथे कुकुम को टीको।

कीतन सग्रह भाग २ पृ० २६३

भक्तिकाल मे शरीर पर धारण किये जाने वाले इन सभी सौदर्य प्रसाधना से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में नर नारियो की सौदय चेतना सदव जागरूक रहती थी। इससे एक समृद्ध परिवार एव समाज का ज्ञान होता था। इन साधना की तीन कोटिया का वरणन है (१) मनुष्यनिर्मित वस्त्रादि प्रसाधन–इसम वस्त्रा क कटाव उनकी सिलाई, कटाई, कढाई और कसीदाकारी आदि द्वारा उसे आकषक बनाकर मानव शरीर को सजाने की चेष्टा की जाती है। (२) खनिज पदार्थों म बहुमूल्य धातुओ, रत्नो और समुद्र से प्राप्त मोती आदि के आभूषणो का धारण करके शरीर की कान्ति बढाई जाती है। अपने वभव का प्रदशन और आत्मतुष्टि इनका मुख्य उद्देश्य है। (३) प्रकृति सुलभ सुगंधित फूल आदि मे अपने का सजाने की प्रवृत्ति रही हैं। इनमे फूल, माला, तुलसी, बनमाला आदि धारण किया जाता है। इन पदार्थों से प्रकृति प्रियता, सौदय वद्धन और इन्द्रियो की तृप्ति होती है। शरीर पर धारण किये जाने वाले इन पदार्थों के अतिरिक्त श्रृगार प्रसाधनो म अन्य ऐसे पदार्थों की चर्चा होती है, जिसे शरीर पर लगाकर या सजाकर सौन्दय की श्री वृद्धि की जाती है।

(ख) लगाये जाने वाले सौदय साधक उपकरण—श्रृगार के सोलह अगो म वस्त्रा आभूषण और फूलमालादि के उपरान्त शरीर पर लगाये जाने वाले सौदय प्रसाधना का चर्चा होती है। इन उपकरणो म उबटन, मिस्सी अजन, सिन्दूर महावर, मेहदी तिल बिन्दी, अगराग आदि की महत्ता है। शरीर पर इन तत्वा क लगाये जाने के कई उद्देश्य प्रतीत होते हैं—

(१) शरीर म मादव और सौकुमाय के विकास के उपकरण–उबटन

(२) शारीरिक सान्दय की अभिवृद्धि करने वाले उपकरण–मिस्सी, अजन महावर मेहदी, तिल आदि।

(३) सौभाग्य सूचक उपकरण–सिन्दूर का प्रयोग, माँग भरना, बिन्दी और तिलक।

मृदुता उत्पन्न करने वाले उपकरण—श्रृगार के उपयुक्त सोलह अगो मे से स्त्रिया सभी का उपयाग करती हैं।[1] परन्तु पुरुष पक्ष म इन सभी के

---

[1] नवसत सजे माधुरी अग अग। सूरसागर ३२२६

(ii) स्यामा नवसत सजि सखि ल, कियौ बरसाने तै आवनौ।

सूरसागर ३४५०

(iii) सजे श्रृगार नवसत जगमगि रहे अगभूपन। „ १६७०

(iv) पट दस सहित सिंगार करति है, अग अग निरखि सवारति २११५

उपयोग का वर्णन भक्तिकाल में नही मिलता है। उबटन का वर्णन अनेक स्थलो पर किया गया है। इन प्रसाधनों का मूल उद्देश्य शारीरिक आकर्षण को बढ़ाना है। इससे सर्वप्रथम स्पर्श सुख के लिये शरीर का सुकुमार होना आवश्यक माना गया है। इसके लिये उबटन का प्रयोग होता है।

भक्तिकालीन साहित्य मे उबटन को महत्वपूर्ण प्रसाधक सामग्री मानते थे। शरीर में स्पर्श की सुखदता लाने के लिये हल्दी, सरसों तेल चिरौंजी केशर, अन्य गन्ध द्रव्य या सन्तरे के छिलके आदि को दूध में पीसकर लगाया जाता था।[1] लोबान, गुलाब अर्क बहार अगर चन्दन कस्तूरी और सेव आदि के उबटन भी बनाते थे। उबटन का प्रयोग स्त्री पुरुष दोनो करते थे। श्रीकृष्ण तो 'ताते जल और 'उबटन' को देखकर तत्काल भाग जाते थे।[2] बालक बालिकाओं को आरम्भ से ही उबटन लगाया जाता था। भक्तिकाल मे राधा के उबटन लगाये जाने का वर्णन अनेक पदों में है।[3] इस उबटन के तीन उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं (१) *शरीर के मैल को छुड़ा देना।*[4] (२) शरीर मे मार्दव और सुकुमारता को उत्पन्न करना (३) शरीर की सुगन्धि द्वारा[5] घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति और मन को आकर्षित करना।

उबटन और स्नान के उपरान्त गोपांगनायें सुगन्धित द्रव्यो से शरीर को सुवासित करती थी। इन सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग उबटन के साथ या गन्ध द्रव्य के रूप में होता था। सौन्दर्य प्रसाधन की यह एक प्राचीन परम्परा

---

1 कुमकुम उबटि कनक तन गोरी। अग अंग सुगध चढाई किसोरी।
(ii) प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरधर सुत को उबटि न्हवावति।
अष्ट० परि० पृ० २७४ गोविन्द स्वामी
(iii) अतिहि सुगंध फुलेल उबटनो विविध भांति की सौंज धर।
अ० परि० पृ० २६५ छीतस्वामी
(iv) अमिन सुगंध सुवास अंग करि उबटन' गुन गाऊँ री।
परमानन्द ६०८
(v) तेल उबटनौ लै आगे धरि लालहि चोटत पोटत री। सा १० १८६

2 तातो जल अरु तेल उबटनौ देखत ही भज जात। सूरसागर

3 इत उबटि खोरि सिंगार सखियन कुँवरि चोरी आनियो। सू सा १०७२

4 केसरि को उबटनौ बनाऊँ रचि रचि मैल छुडाऊँ। सूरसागर १०/१८८

5 केसर मोंयो घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायो री। परमानन्द ०२०७

रही है। इन द्रव्यों मे केशर, कस्तूरी, अगरु, अगरजा, कपूर, मृगमद, चोवा, कुमकुम आदि का प्रयोग होता था।[1] इनका प्रयोग प्राय होली के अवसर पर अधिक वर्णित है। बसन्त पचमी से आरम्भ करके होली तक इन द्रव्यों का प्रयोग आज भी मन्दिरो म होता है। भक्तिकाल मे ऐसा वर्णन सभी कवियो ने किया है।[2]

सौंदर्योत्कर्षक उपकरण—व्यक्तित्व के सौंदय की अभिवृद्धि म 'अजन' आलम्बन को आकर्षित कर लेने का प्रमुख प्रसाधन है। इसमे सम्पूर्ण शरीर की शोभा का विकास होता है। इससे नेत्र कटीले और नुकीले हो जाते हैं। नयन कोरो मे वतमान अजन की एक क्षीण रेखा अनियारे दृगो की शोभा वर्णन म पूर्ण समय हो जाती हैं। काजल के प्रयोग के दो उद्देश्य दीख पडते हैं (१) प्रिय को रिझाना (२) प्रिय की रसिकता का ज्ञान प्राप्त कर लेना। इनमे सौंदय की वृद्धि द्वारा रूप म निखार लाना तथा इसी के माध्यम से

---

[1] मृगमद मलय कपूर कुमकुमा केसर भलिए साज। सूरसागर ३६१७

(ii) चोवा चदन और अगरचा जा सुख म हम राजी „ ३६०१

[2] चद वदन पर चोवा छिरकत, उडत अबीर गुलाल।

नन्ददास अष्ट० परि० ३२६

(ii) चोवा का ढोवा कर राख्या कमर कीच घनी। ८६

(iii) चोवा चदन अगर कुमकुमा विविध रग बरसाय।

चत्रभुजदास „ ३२६

(iv) मृगमद अगर कपूर कुमकुमा, मिले अगरजा देह चढाऊँ।

कृष्णदास „ २३३

(v) तेल फुलेल अगरजा चोवा, कु कुम रस गगरी सिर ढोरी।

परमानन्द दास „ ३३३

(vi) उडत गुलाल कुमकुमा चदन, परसत चारु कपोल। कुम्भनदास ८०

(vii) चोवा चन्दन वूका वदन, अबीर गुलाल उडाए। चत्रभुजदास ७४

(viii) मोहन प्रात ही खेलत होरी।

चोवा चदन अगर कुमकुमा केसरि अबीर लिए भरि भोरी।

छीतस्वामी–अ परि ५८

(ix) चोवा चन्दन अगर कुमकुमा उडत गुलाल अबीर।

गोविन्द स्वामी–अ० परि० १०६

प्रिय को रिझाने का उद्देश्य प्रथम है।[1] सयोग के अवसर पर प्रिय की प्रसन्नता का साधन है। काजर की एक रेखा वशीकरण मत्र के समान है,[2] जिसके समक्ष गोपिया आत्म समपण कर देती हैं। यह उनके हृदय म गड जाता है।[3] काजल की इसी उपयोगिता के कारण गोपिया श्रीकृष्ण के अभाव म काजल लगाना छोड देती हैं। उनके पुन मिलने पर ही इस लगाने की बात कहती है।[4]

काजल प्रिय की रसिकता और उनक भ्रमर वृत्ति को बतान के साधन के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। ऐसे स्थलो पर काजल का प्रयाग नेत्रो म न होकर मुख के अन्य किसी भाग पर होता है। यह अनायास ही हा जाता है। प्राय अधरो पर काजल की रेखा देखकर प्रिय की इस रसिकता का नान हाना है।[5] ऐसा वणन सभी भक्त कवियो ने किया है।

'तिल' लगाने का उपयोग सौन्दय मूलक है। यह कपाल या चिबुक पर लगाया जाता है। तिल या तो नसर्गिक रूप म स्वय वतमान रहत है या प्रसाधन रूप म इनकी रचना कर ली जाती है। भक्तिकाल म नसर्गिक एव कृत्रिम दोनो प्रकार के तिलो का वणन है। सूर आदि सभी कविया की ऐसी प्रवृत्ति है।[6] तिल के सम्ब ध म कविया की उद्भावनाएँ मौलिक, नवीन और सौन्दय मूलक हैं।

---

1 काजल की रेख बनी ननिनि म प्रीतम चित चार।
कृष्णदास-अष्ट० परि० पृ २२८

2 बसीकरण रस सा भिजो रचि रचि अजन रेख बनाई। परमानन्ददास ६१६

3 चिबुक बिन्दु बर सु भी नन अजन धरिक अब जोहै। चतुर्भुजदास १६६

4 तादिन काजल दहा सखी री।
जा दिन नन्दनन्दन के नना अपने नन मिलैहो सखी री।
परमानन्द दास ५४४ पृ १३५

5 प्यारी चित रही मुख पियको।
अजन अधर कपोलन बिन्दन लाग्यौ काहू तिय को। सूरसागर

6 (i) चिबुक चारु तिल तांकि बनायो। सूरसागर २६११।
(ii) चिबुक बिन्दु बिच न्यौ विधाता रूप सीव निरवारि। वही २११८
(iii) चिबुक मध्य सामल बिन्दु राज, मुख सुख सन्त सयानी।
परमानन्द ६१६

१ आनन की उपमा प सकल विकल भई,
भली शोभा लै रह्यो तिल कपोल पर को ।
पकज के बीच आली अलिगो समाइ तहाँ,
मानो री बिछुरि छौना बैठ्यो मधुकर को ।[1]

पकज के बीच समा जाने वाले भ्रमर का यह तिल बिछुड जाने वाला छौना है । इसी प्रकार की अनेक नवीन उद्भावनाएँ और अछूती कल्प नाएँ समक्ष आती हैं ।[2] इनसे कवियो की बौद्धिक उर्वरता का ज्ञान होता है ।

हाथ और परो का सौदय बढाने के लिये मेहदी और महावर को प्रसाधन रूप म प्रयोग किया जाता रहा है । परमानन्द दास और कुम्भन दास ने मेहदी रचाए जान का वणन किया है 'अचल सुहाग भाग्य की लहरें, हस्त हैं मेहदी दाग ।[3] पाँय पजनी महदी गजति पीठि पुरट क पान ।'[4] महावर या जावक स्त्रियो का प्रमुख सौदय प्रसाधन है । इससे परो का आकषण बढता है । इस रसवक प्रिय प्रसन्न होता है नखनि रग जावक की सोभा, देखत पिय मन भावत ।[5] जावक नाइन लगाती थी 'नाइन बोलई नवरगी, ल्याऊँ महावर रगि ।[6] प्राय शृगार के अय उपकरणो के साथ इसका वणन किया गया है ।

सौभाग्यसूचक सौदय के उपकरण—शरीर पर लगाय जान वाले सौन्दय प्रसाधनो म सिन्दूर बिन्दी और तिलक आदि को सौभाग्य सूचक उप करण मानते हैं । सधवा स्त्रियाँ सिन्दूर का प्रयोग करती हैं । बिन्दी का प्रयोग कुमारी कयाए भी करती हैं । इन उपकरणो से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती

---

1 अकबरी दरबार के हिन्दी कवि–पृ ४२०

2 (1) चन्द स आनन म तिल राजत, ऐस विराजत दात मसि के ।
फूलन की फूलवारिन म मनो खेलत हैं लरिका हबसी के । गग कवि
(ii) रूप की रासि मैं क रसराज को, अकुर आनि कढ्यो शुभ होना ।
क शशि ने तम ग्रास कियो, तिहि को रह्यो शेष दिखात सो कोना ।
प्यारी के गाल कपोलन मैं, द्विजराजि रह्यो तिल श्याम सलोना ।
क मधु पान परयो अलमस्त किधौं अरविन्द मलिन्द को छौना ।

3 परमानन्द ६१६ ।

4 कुम्भनदास ५० ।

5 सूरसागर १०५४

6 वही—१०/४०

है (१) सौभाग्य की सूचना (२) रूप का आकर्षण बढाना। इन दोनो उद्देश्यो की सिद्धि भक्तिकालीन रचनाओ म बताई गई है।

बालो को सवार कर बीच से माग निकालन और उसे सिन्दूर से भरने की परम्परा सधवा स्त्रियो मे ही पाई जाती है। माग निकालने को पाटी पारना कहते हैं 'मुण्डली पाटी पारि सवारे।"[1] माग को सजान की स्पष्ट प्रवृत्ति दीख पडती है। इसके लिए तीन उपकरणो का उपयोग भक्तिकाल म किया गया है। फूल मोती और सिन्दूर द्वारा माग भरकर शाभा बढान का बार बार वणन किया गया है। मोती से माग की शोभा बढ जाती है।[2] फूलो के द्वारा माग को सजाया गया है।[3] सिन्दूर तो प्रमुख उपकरण ही है। इसका प्रयोग अनिवाय रूप स होता रहा है।[4] इससे स्त्रियो के मुख पर चमक आ जाती है। इसी कारण माग की शाभा का वणन अधिक हुआ है।[5] सिन्दूर लाल रग का एक विशेष पदाथ होता है। इसी से मिलता एक दूसरा पदाथ इगुर भी काम म लाया जाता है जिसे अभ्रक पारद और गधक को घोटकर बनाते हैं।

बिन्दी अथवा तिलक भी सौभाग्य का सूचक माना जाता है। बिन्दी के लिए सिन्दूर, रोरी और चन्दन का प्रयोग तथा तिलक के लिए मृगमद केशर आदि का प्रयोग किया जाता था। तिलक का प्रयोग पुरुष वग भी करता था। तिलक लगाने के कई प्रकारो का वणन है। सीधा और आडा तिलक लगाया जाता था।[6] तिलक लगाने के लिए कुमकुम गोरोचन सिन्दूर आदि का प्रयोग होता था। सिन्दूर सौभाग्य सूचक है। गारोचन शुभ अवसरो पर प्रयुक्त हाता

---

1 सूरसागर ३०२६ वेंकटेश्वर-प्रेस

2 (i) मोतिन माग बिथुरी ससि मुख पर, मानहुँ नक्षत्र आए करन पूजा। कुम्भनदास ३०५

(ii) गजमोतिनि सुन्दर लसत मग। सूरसागर २८४६

3 (i) बनी गुही बिच माँग सँवारी सास फूल लटकारी। कुम्भनदास २५०

4 (i) मुख मण्डित रोरी रग सेन्दुर माग छुहा। सूरसागर १० २४

(ii) मुखहि तम्बोर नैन भरि काजर, सेन्दुर माग सु देस जू। कुम्भनदास ६२

5 सिर सीमन सवारी। सूरसागर २११८

6 (i) सोहत केसर आड कुमकुम काजर रेख। चतुर्भुज ८०

(ii) कुमकुम आड स्रवत स्रम जल मिलि। सूरसागर १७०३

था।[1] सिन्दूर के साथ कस्तूरी या मृगमद के आडे तिलक की सजावट आकर्षक हो जाती है।[2] कुम्भनदास ने काजल का तिलक लगाये जाने की बात कही है "काजल तिलक दियौ नीकी विधि रुचि रुचि माग सँवारी।" ऐसा लगता है कि गोरे बदन पर काले काजल के तिलक से रग-वैषम्य का वैचित्र्य उत्पन्न किया गया होगा। सूरदास ने तिलक के चारो तरफ चूनी लगाकर यही निरालापन दिखाया है 'नाटक तिलक सुदेश झलकत, खचित चूनी लाल। [3] बिन्दी द्वारा मुख की शोभा बढाई जाती है। "गोरे ललाट सोहैं सेन्दुर को बिन्दु। [4] हरि इस बिन्दु को देखकर रीझ जाते हैं 'बदन बिन्दु निरखि हरि रीझ ससि पर बाल विभाग। केसर के तिलक के बीच मे बनाया गया सिन्दूर बिन्दु अद्भुत शोभा युक्त हो जाता है। अब तक स्पष्ट हो गया कि शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य साधनों मे तीन दृष्टियाँ—शरीर को कोमल बनाना, सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना और सौभाग्य की सूचना—कार्य करती रही हैं। इन तीनों द्वारा किसी न किसी रूप मे सौन्दर्य स्पष्ट ही होता है। इन सभी शृङ्गार-प्रसाधनो का एक मात्र उद्देश्य प्रिय का रिझाना है। इस रूप मे भक्तिकालीन कवियो को सफलता मिली है।

(ग) सौन्दर्य-साधक अन्य उपादान—सोलह शृगार के अन्तर्गत जिन सौन्दर्य प्रसाधनो की चर्चा की गई है, उनमे शरीर पर धारण किये जाने वाले और लगाये जाने वाले उपकरणो के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे सौन्दर्य प्रसाधन हैं, जो इन दोनो की सीमा मे नही आते हैं फिर भी उनकी गणना शृगार-साधन के अन्तर्गत ही होती है। इनसे सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है। ऐसे प्रसाधनो मे स्नान, केश विन्यास और पान रचना का नाम लिया जा सकता है। स्नान से शरीर की सुघरता खुल जाती है, केश विन्यास से मुख का आकर्षण बढता है और पान अधर की लालिमा को निखार कर व्यक्तित्व का आकर्षण बढा देता है। भक्तिकालीन साहित्य मे इन तीन सौन्दर्य प्रसाधनो का वर्णन है।

स्नान से शारीरिक निर्मलता के सम्बन्ध मे मत वैभिन्य नहीं है। प्राय उबटन और तैल मर्दन के उपरान्त ही स्नान की व्यवस्था होती है। स्नान के

---

1 दधि रोचन को तिलक कियो सिर। परमानन्द ४८९

2 (i) भाल लाल सिन्दूर बिन्दु पर मृगमद दियो सुधारि। सूरसागर २११८
(ii) सेन्दुर तिलक तम्बोल खुटिला बने बिसेख। चतु० ८०
(iii) तिलक केसरि को ता बिच सिन्दूर बिन्दु बनायो। सूरसागर २६११

3 सूरसागर २८४२

4 वही—१०७६

जल में सुगन्धित पदार्थ मिलाये जाते थे। भक्तिकालीन कृष्ण साहित्य में स्नान के जल में केशर और अष्टगंध मिलाये जाने का वर्णन मिलता है।[1] यह जल ऋतु के अनुसार उष्ण या शीतल हुआ करता था।[2] स्नान का वर्णन प्राय श्रीकृष्ण के प्रसंग में आया है। स्नान के पूर्व तेल मर्दन एवं उबटन का वर्णन बार बार किया गया है।[3] तेल मर्दन एवं स्नान से शरीर में मृदुता और चमक पैदा हो जाती है।

स्नान के उपरान्त केश विन्यास द्वारा मुख की शोभा बढाई जाती है। केश विन्यास का मूल सम्बन्ध स्त्रियों से रहता है। सद्य स्नाता के लटों से टपकते हुए जल का वर्णन किया गया है।[4] लम्बे एवं एडी तक पहुँचने वाले बालों का सौन्दर्य वर्णित है।[5] ऐसे बालों को सुगन्धित द्रव्यों एवं तेल फुलेल से सुवासित करके उसे चमकीला बनाया जाता है। बिना तेल के बालों में लटें आ जाती हैं। बालों के द्वारा ही नायिका की मानसिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वियोग की अवस्था का आभास बालों के रूखेपन से हो जाता है। कृष्ण की दूरी बढ जाने से गोपियाँ के बालों की लटें बन जाती हैं[6] ये केश विन्यास करना छोड देती है। कृष्ण के वियोग में राधा के अलक भी छूट जाते हैं और उसका बन्धन बुझ्हाना जाता है।

संयोगावस्था में बालों की ऐसी दशा नहीं रहती है। प्रिय मिलन की भूमिका के लिये विन्यस्त केश आवश्यक होते हैं। रूप गर्विता या प्रेम गर्विता व्रजांगनाओं के केशों का विन्यास श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं।[7] कभी कभी सखियाँ

---

1 केसर सौंधि घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायो री। परमानन्द २०७
(ii) अष्टगंध उष्णोदक सौं अस्नान कराय।
नन्ददास-रुक्मिणी मंगल पृ० १४६

2 तातो जल अरु तेल उबटनो देखत ही भज जाने। सूरसागर
(ii) उष्ण शीतल अन्हवाय खोर जल चन्दन अंग लगाऊंगी। परमा० ६०८

3 तेल लगाइ कियो रुचि मज्जन बसन मलि मलि धोए। सूरसागर १-५२

4 तसीय लट बगरि रही उर पर स्रवत नीर अनूप। सूरसागर ११६६

5 बड़े-बड़े बार जु ऐंडनि परसत स्यामा अपने अचल में लिए। सू० २६१७

6 अलक जु हुती भुवंगम हू सी बट लट मनहुँ भई। सूरसागर ३४०४

7 मोहन माहिनि अंग सिंगारति।
बेनी ललित ललित कर गूंथउ सुन्दर मांग सवारत।

भी वेनी गूँथकर उसे सजा देती हैं। वेनी चम्पक बकुलनि ग्रथिन, रुचि रुचि सखिन सँवारी।' सयोग की अवस्था म बालो को गूँथकर वेणी बना ली जाती है। इसे फूलो से सजाया जाता है। कलियो का गजरा लगाते हैं। फुँदने¹ से सुशोभित करते हैं "पाँच चँवर पटिया पै गूँथी, डोर चुनाव म झूले। भूलत छबि फबि सुदरता फुँदना जहाँ समतूने।"¹ बाला के सजान स ही मन के उल्लास का ज्ञान होना है। वेणी के बँधे होने से प्रिय के सानिध्य का ज्ञान होता है और उनका खुला और बिखरा होना वियोगावस्था का सूचक है। मान-दशा मे भी बिखरे बालो का वणन है। यह भी एक प्रकार का वियोग ही है। मिलन एव विछोह की मानसिक अवस्थाओ की सूचना बालो के विन्यास अथवा उसके बिखरे हुए होने से ही मिल जाती है। अत सयोग म य बाल सौन्दय साधक और वियोग म दुख को व्यक्त करने वाले होते हैं। यहाँ पर सौन्दय साधक रूप म बालो के विन्यास का महत्व स्वीकार किया गया है।

स्नान और केश विन्यास के साथ पान रचना का महत्व भी शृङ्गार के प्रसाधनो म रहा है। सोलह शृङ्गार मे इसकी गणना होती है। इससे अधर म लाली आती है और मुख का सौन्दय बढता है। प्राय मुख की बढी हुई छबि, अधर की लाली और हरि के सुरग वण की चर्चा पान खाने के प्रसग पर की गई है।² पान क सग सुगन्धित पदार्थों के सेवन से मुख सुवासित हो जाता है। पान खाने या खिलाने के माध्यम से प्रेम भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्राय रच रच कर पान खिलाया जाता था।³ प्रिया प्रियतम एक दूसरे को पान देकर तृप्त होते हैं।⁴

(ii) बेनी सुभग गुही अपने कर जावक चरनन दीन्हीं।
(iii) बेनी सुन्दर स्याम गुहीरी—गोविन्द० २०३

1 परमानन्द० ६१६

2 उज्ज्वल पान कपूर कस्तूरी आरोगत मुख की छबि रूरी। सूरसागर ३६६
(ii) तब बीरी तनक मुख नायौ, अतिलाल अधर ह्व आयौ।
सूरसागर १०–१८३
(iii) पान मुख बीरी राँची हरि के रग सुरग। परमानन्द ६६७

3 तब तमोल रचि तुम्हहिं खवावौ। सूर० १०–२११
(ii) बीरी दत बनाय बनाय। परमानन्द ६७७

4 परमानन्द दास को ठाकुर हँसि दानो मुख बीरा। परमानन्द ७१२
(ii) लेकर बीरी पिय प्रिया बदन मनोहर देत।
लेत नाहि जब लाडिली विनय करत सुख हेत।
युगल शतक पद ४४ 'आदि वाणी'।

भक्ति साहित्य म पान की पीक की चर्चा अधिक हुई है । इसका वणन खण्डिता प्रसग पर रसिक नायक की लोलुप भ्रमर वृत्ति को व्यक्त करने के लिए किया गया है । कपोलो पर लगी हुई पान की पीक नायक की इस वृत्ति को स्पष्ट कर देती है ।[1] परन्तु शृङ्गार प्रसाधन के रूप म इससे मुख की शोभा बढाई गई है । इसी से इसके सेवन से अधर म लालिमा के कारण आकर्षण बढता है, दांतो की द्युति हीरे के समान उज्ज्वल हो जाती है ।[2] आलम्बन खिचकर आश्रय के सौदय पाश म बध जाता है । पान क अभाव म मुख की शोभा खिल नही पाती है । इसी से विरह के प्रसग पर प्राय इसके अभाव से उत्पन्न प्रभाव का वणन मिलता है क्योकि वहाँ मुख की मलिन द्युति का ही सकेत होता है ।[3]

उपयुक्त विचारो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सौदय प्रसाधन के रूप म भक्त कवियो ने जिन उपकरणो को ग्रहण किया है उन सबसे शारीरिक सौन्दय की ही सिद्धि होती है । इन्हें आत्मगत साधन के अन्तगत न मानकर सौन्दय के बाह्य साधन बताये गये हैं । गुण और चेष्टा का सम्बन्ध नायक या नायिका की स्वाभाविक या अर्जित वृत्ति से रहता है जो इसके आश्रय या आलम्बन म स्वत ही रहते हैं । इससे इन्हे सौदय के आत्मगत साधन के रूप मे स्वीकार किया गया है ।

सौदय के बाह्य उपकरण म सोलह शृङ्गार का वणन हुआ है । इन उपकरणो का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है परन्तु इनके प्रयोग से शारीरिक शोभा का विकास अधिक होता है । इन उपकरणो की तीन कोटियाँ बताकर उनके व्यावहारिक रूप की समीक्षा द्वारा प्रसाधनगत सौदय का स्पष्टीकरण किया गया है । नीचे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा ।

(iii) बीरी अरोगत गिरधरलाल ।
अपने कर सो देत राधिका मोहन मुख मे मधुर रसाल ।
अष्ट० परि० पृ० २०० परमानन्ददास

1 अधर दसन छत बसन पीक सह अरु कपोल सम बिन्दु देखियत ।
गोविन्द दास २४५

2 पीरे पान पुराने बीरा । लाल भई दुति दाँतनि हीरा ।
मृगमद घन कपूर कर लीने, बाँटि बाँटि ग्वालिनि को दीने ।
सूरसागर १२१३

3 मुख तँबोर नहिं काजर विरह शरीर विगाये । परमानन्द ५२१

प्रसाधनगत सौंदर्य—शृङ्गार प्रसाधनों का वर्गीकरण—

(क) शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण—

(अ) मृदुता उत्पन्न करने वाले उपकरण—उबटन, तेल आदि

इनका उद्देश्य (i) शरीर को निर्मल करना

(ii) सुवासित करना

(iii) सुकुमार बनाना।

(आ) सौंदर्योत्कर्षक उपकरण—

अंजन महावर, मेंहदी, तिल आदि

उद्देश्य (i) सौंदर्य की वृद्धि

(ii) प्रिय को रिझाना

(इ) सौभाग्य सूचक उपकरण—सिंदूर, बिंदी, तिलक

उद्देश्य (i) सौभाग्य की सूचना

(ii) आकर्षण को बढ़ाना।

(ख) शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरण—

वस्त्र, आभूषण, फूलमाला आदि।

प्राप्ति के स्रोत

(अ) मनुष्य निर्मित—वस्त्रादि

(i) दैनिक प्रयोग के वस्त्र

(ii) ऋतु एवं पर्वों के वस्त्र

उद्देश्य—स्त्री और पुरुषों के रूप सौंदर्य को बढ़ाना

(आ) धातु एवं खनिज—आभूषण

उद्देश्य— (i) वैभव का प्रदर्शन और आत्म तुष्टि

(ii) सौंदर्य का उत्कर्ष

स्रोत—(i) प्राणियों से प्राप्त होने वाले–मोर पंख मोती

(ii) खनिज रूप में प्राप्त–स्वर्ण, हीरा, माणिक आदि

(इ) प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपकरण

(i) पशुओं से प्राप्त–मोर चन्द्रिका, कस्तूरी (मृगमद)

(ii) वनस्पतियों से प्राप्त–फूल, गुंजा वनमाला, तुलसी

(ग) अन्य सौंदर्योत्कर्षक पदार्थ—स्नान केश विन्यास और पान रचना

उद्देश्य (i) शारीरिक स्वच्छता और निर्मलता।
(ii) आकर्षण की अभिवृद्धि।
(iii) नायिका की सयोग या वियोगावस्था का ज्ञान। सयोग में इनका महत्व और वियोग में इनका अभाव।

तटस्थ सौन्दर्य—

भक्तिकाल में आलम्बन से भिन्न सौन्दर्योत्पादक बाह्य-तत्वों का ग्रहण अपने इष्ट देव के माध्यम से किया गया है। ऐसे तत्वों में तटस्थ अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों द्वारा आलम्बन की भावना का उद्बुद्ध करने की चेष्टा की गई है। इस काल में वर्णित प्राकृतिक सौन्दर्य में मानव भावनाओं की सापेक्षता का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी से प्रकृति प्रायः भगवान के अस्तित्व को लेकर ही समक्ष आती है, उन्हीं के समक्ष गतिमान् और क्रियाशील होती है, सहानुभूति तथा चेतना का प्रसार करती है। यह चेतना प्रकृति की अपनी न होकर कवि की आत्म चेतना है। इसी से वह अनेक रूपों में प्रस्तुत की गई है।

१ प्राकृतिक-सौन्दर्य का आदर्शात्मक रूप — यहाँ प्रकृति के माध्यम से उसके मुग्धकारी रूप द्वारा वातावरण निर्माण की मोहकता उत्पन्न की जाती है। कृष्ण की लीला-स्थली में सर्वत्र प्रकृति की वसन्तकालीन सुषमा छाई रहती है। प्रकृति की शोभा लीला के माध्यम से ही रहती है। अतः उसका चिरन्तन सौन्दर्य मुग्धकारी बना रहता है। सूर के वृन्दावन में सदैव वसन्तकालीन शोभा बनी रहती है।[1] परमानन्ददास की सौन्दर्य-कल्पना में यमुना का अवगाहन सुखद रहता है, लहरें चचल होकर झलकती हैं, कपोतादि गान करते रहते हैं।[2] गोविन्ददास ने लीला भूमि में चिर वसन्त देखा है।

प्राकृतिक सौन्दर्य द्वारा रास एवं मुक्त क्रीडाओं के लिये सुखद वातावरण की सृष्टि होती है। इसमें यथार्थ प्रकृति की नवीनता द्वारा सौन्दर्य की कल्पना करके उसे मानव भावनाओं के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। इस वर्णन में प्रकृति के रंग रूपादि के कथन द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

---

1 वृन्दावन निज धाम कृपा करि तहां दिखायो।
सब दिन जहाँ वसन्त कल्पवृक्षन सो छायो। सूरसागर

2 'अति मजुल जल प्रवाह। कीर्तन संग्रह (भाग ३ उत्तरार्द्ध) पृ० ८

(२) प्रकृति का सौदय लीला की भावना से होने के कारण विस्मय कारी हो जाता है। वह भगवान के समक्ष गतिमान् और क्रियाशील हो जाती है। उसम सहानुभूति और चेतना का प्रसार हो जाता है। वशी नाद से चल अचल सभी स्तम्भित हो जाते है, जमुना का प्रवाह रुक जाता है। कृष्ण द्वारा अपने मुख मे अगूठा मेलने से भी प्रकृति का यही विकारी रूप देखने को मिलता है। इसका कारण कवि की आत्म चेतना ही है। प्रकृति तो एक रस रहती है। कवि अपनी भावनाओ के अनुकूल उस बना लेता है। प्रकृतिगत मोहकता के मूल म भावनाओ का ही प्रथम महत्व है उसका यथातथ्य रूप गौण महत्व रखता है।

(३) प्रकृति का गतिमय रूप कवि के मन के उल्लास को व्यक्त करता है। यह उल्लास भगवान के आनन्द रूप के कारण है। बसन्त फाग और हिडोले के प्रसग पर प्रकृति का उल्लसित रूप देखने को मिलता है। यहा कृष्ण एव गोपियो के मानसिक आनन्द का सौदय प्रकृति म दीख पडता है। अत प्रकृति सौन्दय प्रमुख आलम्बन का विषय न होकर भगवान के माध्यम से अपने रूप-सौन्दय का विस्तार पाती है। उसके रूप की गति, चेतना आदि कृष्ण के सानिध्य के कारण ही इतनी मोहक हो जाती हैं।

(४) तटस्थ सौन्दय का वणन करने के लिये आलम्बन से भिन्न प्रकृति आदि जिन पदार्थों को ग्रहण किया गया है उसमे मानवीय रूप-सौन्दय का ध्यान बराबर बना रहा है। प्रस्तुत की सौन्याभिव्यक्ति मे प्रकृति का ग्रहण अप्रस्तुत रूप मे भी हुआ है। राधा आदि के रूप-सौन्दय वणन में प्रत्यक्ष रूप से सादृश्य विधान द्वारा प्रकृति-सौन्दय का बाध कराया गया है। यह बोध 'कूट शली' द्वारा अथवा सामान्य कथन द्वारा हो सका है। सूर का "अद्भुत एक अनुपम बाग' पद कूट शली का प्रसिद्ध पद है जिसम केवल उपमानो के माध्यम से ही उपमेय के सौन्दय का बाध करा दिया गया है। ऐसे स्थलो पर उपमानो की उन उन सौन्दयगत विशेषताओं के द्वारा उपमेय के रूप-सौन्दय की व्यञ्जना की गई है। प्रकृति की शोभा के साथ श्रीकृष्ण या राधा आदि के रूप-सौन्दय का ध्यान स्वत ही आ जाता है।

अन्त म कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कवियो ने आलम्बन से भिन्न प्रकृति आदि तटस्थ सौन्दय का जो वणन किया है उसमे आत्मीय सम्बन्धों की ही अधिक व्यञ्जना हुई है। यह सम्बन्ध इष्ट देव के माध्यम से व्यक्त हुआ है। अलकारो की योजना द्वारा प्रकृतिगत उपमानो के प्रयोग म भी भावो की ही प्रधानता है। दूती आदि के कथनो मे प्रकृति के सादृश्य मूलक और सौन्दय

कृष्ण समानान्तर की प्रकार-ज्ञानी राधा के शरीर रूपी कांति सरोवर का सम्पूर्ण शलय जल यौवन रूप द्वारा शासित कर दिये जाने पर रूप की उस राशि की सहज माधुरी सम्पूर्ण विश्व में उमगाने की शोभा धारण करने लग जाती है। उसकी तन-द्युति कनक तथा चन्द्र की आभा को मात कर जाती है। रति रंभा उमा रमा उर्वशी का रूप उसके रूप के समक्ष मलिन हो जाता है। उपमान प्रत्येक छवि वर्णन में असमर्थ हो जाते हैं। रूप की निधान राधा विश्व के सम्पूर्ण सौन्दर्य तत्वों के सार से निर्मित होकर सर्वांगशालिनी हो गई है। वह सुन्दरता की सहज राशि है। उसका अंग प्रत्यंग आकर्षक है।

राधा के नेत्र खंजन मीन और मृग की सदृशता प्रकट करते हैं। गुरु नितम्ब पर झूलती वेणी स्वर्ण स्तम्भ पर नागिनी की शोभा धारण करती है। कुटिल भृकुटि में कामदेव के धनुष का रूप दृष्टिगत होता है। चितवन में चकित चकोर मुख शशि का मधु पान करने वाले लगते हैं। भुजाओं में कमल नाल की सुन्दरता है। उरोज कनक-कलश, चक्रवाक युग्म श्रीफल या अनंग के मंगल कलश हैं। अधर में विद्रुम की लालिमा है। नाभि हृद के समान गहरी है। रोमावली मानो रेंगकर जाती हुई सर्पिणी है। चरण में मृदुलता और गुरुता है। उपमानों की सम्पूर्ण शोभा धारण करने वाली राधा के रूप को देखकर पशु पक्षियों को भ्रम हो जाता है। मोर कबरी को सर्प, भ्रमर चरण को कमल, शुक करों को नवांकुरित किसलय समझने लगता है। ऐसी राधा का रूप अनुपम है। सौंदर्य के अपूर्व घटक से निर्मित हुआ है। वह कृष्ण चन्द्र की निर्मल 'चन्द्रिका' है। उनकी शोभा भूषणों से अधिक बढ़ती है। वेश भूषण भूषित होने पर अधिक सौंदर्य को धारण करता है।

सोलह शृङ्गार मण्डित पद्मिनी राधा का अंग अंग भूषणों से प्रसाधनों से मण्डित है। मुख पर केशर, मृगमद या सिन्दुर बिन्दु, नयनों में अंजन की रेख, चिबुक में श्यामल बिंदु शोभित है। कानों में ताटक, नाक में बेसर, माँग में गूँथे मोती, चिकुर में कुसुम, कण्ठ में मणिमय भूषण, कटि में किंकिनी, चरणों में जेहर और नूपुर, हाथों में कंकन व चूड़ियाँ आदि आभूषण शोभा को बढ़ाते हैं। गोरे वदन पर रंगीन वस्त्रों की शोभा अवर्णनीय है। नीलवसन नीली साड़ी और नीले अम्बर में मेघ में दामिनी तुल्य राधा का अनुपम सौंदर्य चमकता है। मुख नव घन में मयंक की प्रभा तुल्य है। अवस्था की वृद्धि के साथ वस्त्रों के रंग में चटकीलापन आता जाता है। पचरंग साड़ी और नीली अंगिया से शोभा बढ़ जाती है।

राधा का सम्पूर्ण रूप श्री कृष्ण को प्रसन्न करने हेतु है। वह इतनी रूपवती है कि स्वयं ही रीझ जाती हैं। इस रूप की सार्थकता कृष्ण के समक्ष

पूण समपण में है। यौवन उपभोग के योग्य है। उस सौदय के पान और समपण मे मानसिक उल्लास रहता है। प्रिय की स्मृति उसमे नवीन छवि का सचार कर देती है। राधा की इस शोभा के साथ रत्युपरान्त उसकी नद्रिल ग्रस्त व्यस्त विखरे शृङ्गार की शोभा अवणनीय है। इस शोभा का वणन सभी भक्त कवियो ने किया है। खण्डिता प्रसग म श्रीकृष्ण की भी इस शोभा का वणन कविया न मनोयाग पूवक किया है। इस वणन मे काम शास्त्रीय प्रवृतिया दीख पडती हैं। अधर कपोल और कुचा का नख क्षत, विथुरी अलक, ढीली नीवी की शोभा अनुपम है। इस समय की मुद्रा एव चेष्टा दशनीय है। बाँह उठाकर कमनीय कामिनी का जँभाई लेना आवश्यक है। नीचे गिरती हुई बाहु बिजली जसी है। रति के कारण राधा की कमनीयता मे जो आकषण आ जाता है उसका पूण सचाई के साथ वणन किया गया है। इस अवसर पर प्रयुक्त उपमाना म सम्पूण शोभा एव सौदय की चेतना वतमान रहती है। ऐसी राधा की उद्दीपक चेष्टाएँ इतनी मनोहर हैं कि कृष्ण पूणत उनके दास हो जाते है।

गुण रूप चेष्टा प्रसाधन आदि से बढा हुआ सहज सौदय अनग को भी विवश कर देता है। युगल शोभा का वणन करने मे कवि असमथ हो जाता है। भक्तो के राधा कृष्ण सुदरता की खान हैं, रस के समुद्र हैं आनद को देने वाले हैं। ऐसे रूप रस म उलझा हुआ कवि उसीम तमय होकर आत्म सुधि खो बठता है। उसकी सम्पूण साधना उसकी भक्ति, सब कुछ मानो सौदय की साधना है और इस साधना मे भक्तिकालीन कवि पूण सफल हुआ है। रूप की इस आसक्ति का प्रभाव रीतिकालीन कवियो पर भी पडा और उन्होने भक्तिकाल के पद चिन्हो का अनुसरण करते हुए राधा कृष्ण का ऐसा सौन्दय उपस्थित किया, जो अपने आकषण और चमक म बेजोड है।

अनिवचनीय रूप-सौदय के अनत भण्डार श्रीकृष्ण की छवि इन्द्रनील मणि एव नील कमल की कान्ति स युक्त भूषणो को भूषित करने वाली है। पीताम्बरधारी, रत्न मण्डित, कुञ्चित और दीघकेश, मस्तक पर तिलक, घूर्णायमान रक्त नीलोत्पल कान्ति तुल्य नेत्र मणि-कुण्डल सुशोभित कण युगल, कोटि चन्द्र प्रभ मुख त्रिभगी मुद्रा आदि से कदप मोहन शक्ति वाले श्रीकृष्ण की शोभा अवण्य है। सौन्दय उनके अगो म मूर्तिमान् हो जाता है, अग कान्ति से सभी प्रकाश-पुज मद पड जाते हैं। नख चन्द्र तुल्य और अगुलियाँ अरुण कान्ति तुल्य हैं। माधुय एव सौदय के समूह श्रीकृष्ण का सब कुछ मधुर है। वय अवस्था, क्रीडाएँ चेष्टाएँ शरीर, रूप भूषण, वस्त्रादि वचन, प्रसाधन

सामग्री प्राप्ति में यही मधुरता है। संसार में सभी मधुर वस्तुओं के शिरोमणि हैं। उनका व्यक्तित्व माधुर्य की पूर्णता से युक्त है। वे सौन्दर्य के शिरोमणि हैं। ऐसे माधुर्य एवं सौन्दर्य शिरोमणि भगवान कृष्ण की उपासना भक्तों का ध्येय है। आचार्य वल्लभ ने अपने मधुराष्टक नामक ग्रन्थ में कहा है कि 'मधुरा के अधिपति श्रीकृष्ण की सभी वस्तुएं मधुर हैं। अधर वचन नयन मुसकान हृदय गमन, वचन चरित्र, वसन वलित वेणु रेणु पाणि पाद नृत्य सख्य गीत रूप, रमण गुंजा माला यमुना लता गायें भोग दृष्टि की सृष्टि सृष्टि, आदि सभी कुछ मधुर है। मधुर भाव का इस सर्वाङ्गीणता में वल्लभा चार्य ने कृष्ण और उनसे सम्बन्धित वस्तुओं में यहां माधुर्य देखा है। यह माधुर्य अंग, चेष्टा नृत्य आदि सब पदार्थों में लीन रहती है। इस माधुर्य और सौन्दर्य के निधि भगवान की ओर किस रसिक का मन आकृष्ट न हो जायगा। उनके विशाल लीलायित नेत्र किसको दास न बना लेंगे। इन नेत्रों में मद की अरुणता रस की शीतलता, भोग का आलस्य एवं लीला की विलासता आदि है।

अंगों का लावण्य प्रतिक्षण एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होता रहता है। उनके रूप की अपार छवि मिलन का आमन्त्रण देती है। गौर श्याम वरण की युगल शोभा एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होती रहती है। उनके नख शिख के सर्वाङ्ग सौन्दर्य में मन विभोर हो जाता है आँखें रूप दर्शन में अतृप्त ही रह जाती हैं। मुख की मुसकान, अर्धोन्मीलित पलकें वक्रिम भौंह अंग लावण्य, शृंगार सुरंग पाग, दन्त कान्ति कुण्डल मण्डित कपोल और मादक गज गति को निरख भक्त और गोपियाँ दोनों ही अपने को भूल जाती हैं।[1] वे कृष्ण की रूप माधुरी का पान करने के लिये व्यग्र रहती हैं। स्वयं राधा की भी

---

1 लालकी रूप माधुरी ननिन निरखि नेकु सखी।
रंग मगी सुरंग पाग लटकि रही वाम भाग
चपकली कुटिल अलक बीच बीच रखी।
आयत दृग अरुण लोल, कुंडल मण्डित कपोल,
अधर दसन दीपति की छवि क्यों हू न जाति लखि।
उर पर मंदार हार, मुक्ताहार वर सुढार
दुरद गति, तियन की देह दशा करखी। हित हरि वंश स्फुट वाणी

2 सखि मोहि हरि दरस रस प्याइ।
हौं रंगी अब स्याम मूरति लाख लोग रिसाइ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, रंग रूप सुभाई।
सूर स्वामी प्रीतिकारन सीस रहौ कि जाइ।
अनुराग-पदावली पृ० ३९ गीता प्रेस

यही दशा है। राधा कृष्ण म कौन अधिक सुन्दर है इसका निर्णय नही हो पाता। दोनो ललिता से जानना चाहते हैं।[1] यहा सौन्दय के आधिक्य की व्यञ्जना सीधे साद और सरल शब्दा म की गई है। एसे रूप सौन्दय की निधि युगल स्वरूप म साधक रम जाता है। इन भक्त कविया के सौन्दय वर्णन म दो दृष्टिकोण दीख पडता है—

(१) श्रीकृष्ण को प्रधान मानकर

(२) राधा को प्रधान मानकर

श्रीकृष्ण की प्रधानता वाले पदा म उनके रूप, कान्ति, छवि, लावण्य की अतिशयता द्वारा गोपी या राधा के मुग्ध भाव का चित्रण है। श्रीकृष्ण के रूप माधुय म भक्त अपनी भावनाओ को तल्लीन करके सदा उनका पान करना चाहता है। एसे श्रीकृष्ण के रूप वर्णन की विभिन्न विधाओ के आधार पर तीन भेद करेंगे—

(१) कौमार रूप का वर्णन।

(२) पौगण्ड रूप का वर्णन।

(३) किशोर रूप का वर्णन।

उपयुक्त तीनो प्रकार की अवस्थाओ म स्फुरित होने वाली भावनाओ एव क्रियाओ आदि क सौन्दय क साथ रूप-सौन्दय का वर्णन मध्यकालीन सभी कवियो ने किया है परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण वल्लभ सम्प्रदाय के अनुगामी भक्ता न श्रीकृष्ण रूप की महत्ता स्वीकार की तो राधावल्लभियो न राधा रूप को महत्वपूर्ण और प्रधान माना। इस दृष्टि भेद के कारण सूर आदि की सख्यभक्ति हित हरिवश आदि म सखी रूप की विभिन्न अभिलाषाओ मे परिणित हो गई। इसी से पहले म रूप का माधुय और दूसरे म केलि का माधुय प्रधान हो गया। सूर आदि की दृष्टि म बाल रूप की प्रमुखता है और हित हरिवश म किशोरी रूप की। पुरुष और स्त्री रूप म आलम्बन की भिन्नता के कारण सौन्दर्याकन की विधा मे स्पष्ट अन्तर दीख पडता है। उनकी क्रियाओ चेष्टाओ अनुभावो अग-वर्णन नख शिखादि मे यह अन्तर देखा जाता है। दृष्टिकोण की यह भिन्नता साम्प्रदायिक मान्यताओ के कारण है।

---

[1] बातनरत रस रग उच्छलिता।
पूलन के महल विरानत दोऊ भेद सुगध निकट बन सरिता।
मुख मिलाय हँसि देखति दरपन सुरत स्रमित उर माल विगलिता।
परमानन्द प्रभु प्रेम विवस हम दाउन म सुन्दर को कहि ललिता।
परमानन्द सागर

कही पर युगल रूप का युगपत् चित्र प्रस्तुत करते हुए 'राधा-सखी' की ओर कवियो का पक्षपात पूर्ण दृष्टि रही है।[1]

श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करने के हेतु अवस्था क्रम से उनकी विकसित होती हुई भावनाओ एव क्रियाओ का वर्णन है। ऊपर बताये गये अवस्था के तीन रूपो मे पाँच वर्ष तक की आयु कौमार अवस्था कही जाती है। ब्रज की आरम्भिक लीलाएँ इसी अवस्था की है। इस अवस्था के तीन भेद हो सकते है —

(१) आद्य कौमारावस्था मे बालक के सौन्दर्य का वर्णन है। अतिशय कोमलता, दतुलियो की ईषत् श्वेत छवि, जघा की स्थूलता आदि का वर्णन हुआ है। विभिन्न चेष्टागत सौन्दर्य मे चलना गिर पडना, देहली लाँघना अँगूठा पीना आदि वर्णित है। आभूषणो मे बघनख करधनी, सूत्र तथा अन्य प्रसाधनो मे तिलक काजल आदि का वर्णन है।

(२) मध्य कौमारावस्था के विकास के सग चेष्टाओ मे अन्तर आ गया है। अलको का इधर उधर फलना, मधुर तोतले स्वर, थोडा रेंगना, मुक्ता के बेसर, नवनीत, किंकिणी आदि से शोभा बढाई गई है।

(३) शेष कौमार अवस्था के प्रसाधनो मे अन्तर आ जाता है। अगो का विकास होने लगता है। मोर पख लगोटी काछनी लकुटी आदि से शोभा बढाई गई है। सखाओ के सग क्रीडा का वर्णन है। वेणु शृग आदि वादन की रुचि व्यक्त की गई है।

पौगण्ड अवस्था मे श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य के क्रमिक विकास का वर्णन है। विभिन्न नवीन क्रीडाओ मे अभिरुचि व्यक्त की गई है। गायो के बीच रज-मण्डित शोभा, केलि नृत्यादि युक्त लीलाएँ पीताम्बर, धातु के अलकारो का धारण, वन विचरण आदि का वर्णन मिलता है। नख शिख की भावना का ईषत् सकेत है। अधरो की लालिमा और उदर की क्षीणता कम्बुग्रीव की शोभा आकर्षक है। इस अवस्था के द्वितीय चरण के अगो मे गोलाकार कपोल और पार्श्वभाग सुन्दर नासिका, तिल और स्निग्धता जन्य शोभा है। मुखकान्ति से मणि एव दर्पण का दर्प समाप्त हो जाता है। उष्णीष और लकुटी विशेष प्रसाधन है। अलौकिक लीलाओ मे गोवर्द्धनधारण आदि का वर्णन है।

---

[1] बेसर कौन की अति नीकी।
होड परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की।
न्याय परो ललिता के आगे, कौन सरस को फीकी।
नन्ददास प्रभु बिलगि जिन मानो कछु इक सरस लली की।
नन्ददास ग्रन्थावली पृ० ३४८ पद ६६

पौगण्ड अवस्था के अन्तिम चरण म शरीर शाभा म अनावापन व आक्षपक शक्ति का उद्भव हा जाता है। उन्नत स्वध, अलका का लीलापूर्वक हिलना आदि वर्णित है। प्रसाघना म पगडी, केसर का तिलक, कस्तूरी बिदु आकर्षित करती है। वचन की वक्रता, नम सखाओ के साथ वार्तालाप का आनन्द और बालाओ की शोभा की प्रशसा होती है।

कृष्ण के किशोर रूप के वणन मे सभी कवियो की रुचि रही है। राधावल्लभीय और चतन्य सम्प्रदाय के भक्तो के लिये यह अवस्था परम सुख कारी है। पौगण्डावस्था म क्रीडाओ का महत्व, कौमारावस्था मे बाल्य केलि का सौदय और कशोरावस्था मे रति केलि के सौदय का वर्णन है।

किशोर वय के आरम्भ मे वण की उज्ज्वलता, नेत्रो की लालिमा, और रोमावली का उद्भव हाना है। भौंहो की धनुषाकारता नखो की तीक्ष्णता दाँतो की शुभ्रता आदि रूप-सौदय के लक्षण दीखने लगते है। वजयतीमाला मयूर पख, वस्त्रादि की शोभा नटवर-वप वणी की मधुरता से श्रीकृष्ण का आकषण बढ जाता है। इस अवस्था के मध्य भाग म स्मित पूण आनन विलास युक्त चचल कटाक्ष, चितवन और मुसकान मधुर अनुभावादि प्रकट होने लगते है। शरीर के अगो म बाहु वक्षस्थल और जघाओ की शाभा बढ जाती है। त्रिवली दीखने लग जाती है। शरीर का सौन्दय मूर्तिमान् हा जाता है। गोपी लीलाओ का यह प्रमुख काल है। इसम होली कुजलीला रासलीला आदि अनेक रसमय लालाओ का आचरण हुआ है। अय लीलाओ म नृत्य हिंडोला, झूला होली दान मान, रास जल क्रीडा आदि लीलाओ का वणन है। इन सभी लीलाओ म पूर्णावतार श्रीकृष्ण की रासलीला के अन्तगत हाव भाव नृत्य गीत आलिगन चुम्बनादि का वणन है। यहाँ गोपी और कृष्ण के सौन्दय से मिलकर प्रकृति का सौदय साधक बन गया है।

राधा-सौदय वणन की प्रधानता राधा वल्लभ सम्प्रदाय की विशेषता है। इस सम्प्रदाय म राधा क रूप-गुणादि का वणन करके श्रीकृष्ण को उसका अभिलाषी बताया गया है। लीला की अपूवता मे दृष्टिभेद के कारण सनीयता राधा की है कृष्ण की नहा।[1] राधा या गोपियो के समस्त रूप शृङ्गार का एक मात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण का सुख है।

---

[1] पिय को नाचन सिखावत प्यारी।
वृदावन म रास रच्यौ है सरद चद उजियारी।
मान गुमान लकुट लिय ठाढी डरपत कुज बिहारी।
व्यास स्वामिनी की छवि निरखत हँसि हँसि दकर तारी।
भक्त कवि व्यास ३६१ पृ पद ५२२

युगल रूप सौन्दय म कुजविहार के प्रसग की मधुरिमा वर्णित है। दोनो एक दूसरे के रूप से मुग्ध हो वस म हो जात हैं। इस छबि का वणन उपमा आदि के द्वारा स्पष्ट नही होता। कही वेसर की मच्छाइ व सम्बन्ध म प्रतिस्पर्द्धा है कही रतिवेलि जय गात के सौन्दय का वणन है। युगल सौन्दय वणन प्रसग पर भक्तो का ध्यान पारस्परिक अनुराग की ओर रहा है। सौन्दय की खान राधा को देखकर कृष्ण तन्मय हो जात हैं। व स्वय वनी गू थकर उसमे फूल लगा दत हैं। अजन महावर चित्र आदि लिख दत हैं। शृङ्गार सज्जित राधा के रह केलि का वणन अच्छे ढग से हुआ है। कृष्ण द्वारा शृङ्गार करने का वणन और प्रेम प्रदशन अनेक स्थला पर हुआ है।[1]

इस प्रकार की सयोग सुख को बढाने वाली चेष्टाओ से रूप की माद कता बढ जाती है। भक्त इस रह केलि म गोपीभाव से सम्मिलित होता है। रस की अविरल एव सान्द्र धारा प्रवाहित होन लगती है। वह उसम डूबकर सम्पूण जगत से विमुख हो जाता है। उसे सवत्र श्याम का रूप सौन्दय दीख पडता है विश्व उसके लिये 'श्याम मय' हो जाता है जित देखौ तित स्याम मई है।" भक्तिकाल के इस आधार का सहारा लेकर रीतिकालीन कवियो ने श्री कृष्ण का मोहक रूप उपस्थित किया जिसकी शोभा लौकिक धरातल पर अधिक रमणीय बन गई।

---

[1] 'भरी प्यारी के लाल लाग देन महावर पाँय।
जब भरि सीकहि चहत स्याम घन दीज चित्र विचित्र बनाय।
रहत लुभाय चरन लखि इकटक बिबस हात रग भरयो न जाय।
नददास खिजि कहत लाडिली रहौ रहौ तब पगनि दुराय।
नन्ददास ग्रन्थावली पृ ३४७

रीतिकाल मे रूप-सौन्दर्य

(१) सामयिक परिस्थिति व पृष्ठ भूमि

(२) रीतिकाल में श्रीकृष्ण का रूप

(अ) आत्मगत गुण परक सौंदय

(क) आत्मगत सूक्ष्म गुण

(ख) आत्मगत स्थूल गुण

(आ) आत्मगत चेष्टा परक सौंदय

(क) विशेष चेष्टा

(ख) सामान्य चेष्टा

(इ) प्रसाधनगत सौंदय (षोडश शृंगार)

(क) षोडश शृंगार और इनका उद्देश्य

(ख) लगाये जाने वाले प्रसाधन

(ग) शरीर पर धारण किये जाने वाले प्रसाधन

(घ) शरीर की रक्षा करने वाले सौंदय प्रसाधन

(ई) सौंदय के उत्कर्ष के अन्य शृंगार प्रसाधन

(उ) तटस्थ सौंदय

रीतिकाल की सामाजिक मान्यता—रीतिकालीन समाज के जीवन-दर्शन मे नारी की मा यता अविक रही है। विदेशी यात्रियो के विवरणो से स्पष्ट है कि नारी की कल्पना भोग्य पदाथ के रूप म की जाती थी। राज महलो मे शृङ्गारिक नृत्य, गीत, जासूसी, वासना आदि का प्राबल्य था। सुन्दर स्त्रियाँ धोखे से लाई जाती थी। नारी केवल प्रमदा और कामिनी थी पत्नीत्व का महत्व लुप्त हो चुका था। रक्षिताओ के इगित पर शासक अपनी मर्यादा को भग कर रहे थे। नैतिक जीवन मूल्या का ह्रास तीव्र गति से आरम्भ हो गया था। भक्तिकालीन आध्यात्मिक उच्चता समाप्त हो चुकी थी। इस युग मे आकर भक्ति के आलम्बन सामान्य नायक नायिका के रूप म प्रस्तुतकिये जाने लगे थे। आदश का महान् स्तर समाप्त हो गया था। इससे काव्य के क्षेत्र म उज्ज्वल रस या भक्तिभावना का माधुय लौकिक शृङ्गार मे स्थूल रूप ग्रहण करने लग गया था।

नतिक आदर्शों के स्थान पर वासनापूर्ण वातावरण का विकास हो गया। काम प्रधान इस वातावरण मे निबाध वासना और स्थूल रसिक चेष्टाओ की प्रधानता थी इसी स शारीरिक-सौन्दय की रयता म ही प्रम का अन्त स्वीकार किया गया मानसिक आत्मिक प्रेम कम ही दीख पडता है। यह सब सामन्तीय वातावरण एव दृष्टिकोण का प्रभाव था। इसीसे चेतन आकर्षण के स्थान पर निष्क्रिय भोग प्रधान आकषण की ही महत्ता थी। नायिका भेद मे नारी के इसी रूप का विस्तार किया गया। नारी के सानिध्य की उलझनो और भोगो पर अपेक्षाकृत दृष्टि केन्द्रित रही है। सहेट सहचरी, मिलन परकीया, अभिसार आदि प्रसग वणन के विषय रहे हैं। नारी के अन्य रूपा—मातृत्व पत्नीत्व भगिनीत्व आदि पर या तो दृष्टि गई ही नहीं है या उनका स्पश मात्र ही हो सका है। ऐसी एक आध पक्तियाँ ढूढने पर मिल जाती हैं। यहाँ चेतन नारी की अनुभूति प्रधान शृङ्गारिक चेष्टाओ की प्रमुखता न होकर एक विशेष निष्क्रिय यन्त्र मे लगी हुई क्रियाओ का वणन रूढि और परम्परा के आधार पर हो सका है। स्वकीया की कुलकानि, खण्डिता का मान क्रिया विदग्धा की चातुरी अभिसारिका की गोपनीयता, विप्रलब्धा की चिन्ता आदि म ही कवियो का काव्य-वैभव अपनी सीमा पाने लगा।

रीतिकाल की दो काव्यगत प्रवृत्तियाँ-आचायत्व और कवित्व-मानी गई हैं। इन पर तत्कालीन भावनाओ का प्रभाव है। सद्धान्तिक विवेचन के प्रसगों

पर भी उदाहरण के रूप म शृङ्गार परक उक्तिया ही लाई जाती रही हैं। काम जीवन का अनिवाय सत्य बन गया था। यो तो हिंदी साहित्य के प्रत्यक युग म इसको उचित स्थान मिला था, परन्तु रीतिकाल म एक मात्र काम एव शृङ्गार तत्व की ही प्रधानता थी। यहां तक कि जीवन स निराश होकर आध्यात्मिक स्फुरण के क्षणो म अलौकिक सत्ता के साथ भी अपनी यही शृङ्गार भावना रूप ग्रहण करती रही है। भक्ति युगीन साधना मे राधाकृष्ण के जिस रूप की स्थापना हुई थी, समय की गति से उसमे भी स्थूल लौकिक शृङ्गार का समावेश हो गया। नारी के दृष्टिकोण म रसिकता आ गई। फलत नारी का नसगिक रूप लुप्त हो गया और उसकी मान्यता शृङ्गार साधना के रूप मे हो गई।

समाज म सामन्तीय युग की प्रवृत्तिया का प्रभाव कइ रूपो म बढ़ने लगा।

(१) ऐश्वय और वभव के उपकरणो म विलास पूण वातावरण की सृष्टि की गई और रत्ना आदि की जगर मगर ज्योति म नायिका का सौंदय वर्णित हुआ।

(२) प्रकृति के ग्रहण से पुष्पो आदि के माध्यम द्वारा शृङ्गार साधन और उपवना के एकान्त मिलन को बल मिला। सरोवरो के स्नान म सुन्दरियो का अनावृत सौंदय वर्णित हुआ।

(३) गन्ध-द्रव्यो क प्रयोग से आकपण बढा। चोवा, चन्दन कपूर इत्रादि से शरीर सुगन्धित रहने लगा। इसकी मादकता और मोहकता का चित्र वस्त्राभूषणो के आकपण झीने और पारदर्शी वस्त्रा स भाकत हुए अग नायिकाओ की उन्मादक शोभा के विधायक हो गये। समाज की दिनचर्या में सुदर स्त्रियो की उपस्थिति का महत्व बढ़ा। लोगो के आभिजात्य की कसौटी उनकी रसिकता और आस्वदयोग्यता बनी। काव्यानन्द लेने की प्रवृत्ति छोटे छोटे जागीरदारा मे भी बढ़ने लगी। ग्राम्य सस्कृति की रुचि बढी। फलस्वरूप ग्रामीण नायिकाओ के अपूव सौंदय की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। उनक उन्मादक सौंदय मे जगमग उठता हुआ यौवन, कुच और उन्मादक अग वणन के विषय बने।

इस युग मे समाज म दो वग बन गय थ। उच्च वर्गीय लोगा म अभिमान की भावना अधिक थी। शोषण करना इनका ध्येय था। निम्न वग द्वारा उपार्जित धन का अपव्यय अधिक होता था। वश भूषा और जीवन मे विलासिता अधिक थी। जरी काम के कपडे, मलमल के पारदर्शी वस्त्र एव रेशम आदि के उत्तम कपड़ों म वभव का प्रदशन था। वस्त्र और आभूषणा का

मूल्यवान् होना गामाजिक उच्चता का प्रतीक माना जाने लगा। उच्चता के प्रतीक इन तत्वा के ग्राकपण के कारण इनका ग्रधिक प्रयोग होने लग गया। मुगल रनिवासो मे स्त्रियो की ग्रधिकता के कारण ग्रपने को सजाकर प्रिय को ग्राकर्षित करने की विभिन्न सौंदय प्रसाधक सामग्रिया का उपभोग होने लग गया था। इन सामग्रियो के फल स्वरूप वाह्य सौंदय की महत्ता बढ़ गई। मासल सौंदय का ग्रनावृत रूप प्रदर्शित होने लगा ग्रौर इसी का प्रभाव रीति कालीन साहित्य पर भी पड़ा।

इस काल म वैभवपूर्ण साधना की सम्पन्नता लोगो को ग्राकर्षित करती रहती थी। नारी की ग्राकृति, स्वभाव ग्रादि का चित्रण होने लगा। उसके सौंदय का बढ़ाने म रत्न हीरे स्वर्ण रजत ग्रादि काम मे ग्राने लगे। स्त्रैण ग्रभिव्यक्तियो म काव्य की उच्चता मानी जाने लगी। नारी केवल उपकरण मात्र रह गई। इसी रूप म कवियो ने उसे प्रस्तुत किया। सौंदय चेतना राजसी ठाठ म दीख पडने लगी। नारी का यही राजसी वैभव प्राप्त हुआ। इन बहुमूल्य वस्तुग्रो से नारी का सजा हुआ ग्रग लोगो का ध्यान ग्रपनी ग्रोर ग्राकर्षित करने लगा। यथा—

१ लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुर बार।
लागेऊ ग्रति नवेलियहि मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, द्रग तिरछान॥

२ चुची जभीरी सी बनी गोल लाल हैं गाल।
जाके नयन बिसाल वह गरे लगे कर बाल॥

नारी की इस शारीरिक शोभा से कवियो की उद्भावना मे कोमलता ग्रा गई। उसके रूप-वर्णन म कला साधक होने लगी। पुरुष नारी के चरणो म झुक गया। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी राधा का ग्रवलम्ब ग्रहण करने लग गये। समाज की इस स्थिति का उत्तरदायित्व तत्कालीन राजनैतिक विचारो पर है क्योकि राज्य सत्ता की व्यावहारिकता का ग्रनुसरण समाज का सामान्य वग भी करने लग गया था।

राजकीय परिस्थिति—रीतिकालीन विभिन्न परिस्थितियाँ ग्रौर साहित्यिक प्रवृत्तियो से काव्य के प्रभाव ग्रौर उसके रूप का निर्माण हुग्रा है। युग चेतना साहित्य मे ग्रपनी ग्रभिव्यक्ति पा लेती है। प्रेरक तत्वो के ग्रभाव मे साहित्य सजन की कल्पना केवल कल्पना मात्र ही स्वीकार की जा सकती है। इन तत्वो मे विभिन्न परिस्थितियाँ पृष्टभूमि का काय करती हैं। रीतिकाल म **राजनैतिक**

चेताओं ने काव्य प्रणयन की दिशा को बदल दिया। इस युग की व्यक्तिगत निरंकुश राज्य-सत्ता द्वारा जीवन स्तर का निर्धारण होने लगा। जीवन में कई दोषों का आभास स्पष्ट होने लगा। व्यावहारिकता में ऐश आराम द्वारा नारी का सर्वाङ्गीण आकलन हुआ। काम महोत्सव मनाने का उल्लेख एवं मादक वर्णन किया गया। साहित्य में इन भावनाओं के वर्णन का आधिक्य राजनीतिक परिस्थितियों पर है।

मुगलकाल में अकबर की दूरदर्शिता समन्वय की साधना करने वाली थी। जहाँगीर का युग और सुन्दरी के प्रति आग्रह शाहजहाँ की कलात्मक प्रतिभा में व्यक्त हो गई। कलाप्रियता और सांस्कृतिक धारा शान्ति की प्रतीक बन कर स्पष्ट हुई। प्रदर्शन और अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ चली। इसी से शृङ्गार परक जीवन दर्शन और आध्यात्मिक दर्शन को इस युग में सहारा मिल गया। साहित्य और कला की महत्ता बढ़ी उन्हें सामन्तीय आश्रय प्राप्त हो गया। अपने काव्य को अधिक से अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करने पर ही यह सम्मान प्राप्त हो सकता था। इससे चमत्कारपूर्ण शब्द नियोजन और अभिव्यञ्जनात्मक कौशल का प्रदर्शन बढ़ गया। शाहजहाँ की अभिरुचि और दारा की उदारता से हिन्दी और संस्कृत के कवियों को भी संरक्षण प्राप्त हो गया। सुन्दरदास और चिन्तामणि को पुरस्कार मिल चुका था। निर्णय सिन्धु (कमलाकर भट्ट) और ऋग्वेद की व्याख्या (कवीन्द्राचार्य) की जा चुकी थी। पण्डितराज द्वारा दाराशिकोह तथा आसफ खाँ का प्रशस्तिगान किया गया। नित्यानन्द ने ज्योतिष ग्रन्थों का सृजन किया। इस प्रकार दरबारी प्रवृत्तियों ने काव्य प्रणयन की दिशा को पूर्णत मोड़ दिया। यहाँ तक कि भक्तिकालीन कृष्ण और राम की आध्यात्मिकता भी इन शासकों की रसिकता में परिणित हो गई। शृङ्गार वर्णन और राज प्रशस्ति में पाण्डित्य प्रदर्शन एवं कवि कर्म की महत्ता स्वीकार की जाने लगी।

इन विदेशी शासकों की अपनी भाषा के प्रति रुचि बनी रही। फारसी में शीरी फरिहाद लैला मजनू आदि की प्रेम कथाएँ यहाँ के कवियों को प्रभावित करने लगी। प्रेम के आलम्बन के रूप में राधा कृष्ण का वर्णन चण्डीदास विद्यापति जयदेव आदि कवियों ने की थी इसमें भारतीय आदर्श बना रहा। राजसत्ता की रुचि और परम्परा की बढ़ती हुई शृङ्गारिता में शृङ्गार के आलम्बन और आश्रय भारतीय परम्परा में राधा और कृष्ण ही बन सकते थे क्योंकि भक्तिकालीन साहित्य में इन्हीं का प्राधान्य था। इधर युग की भावनाओं के अनुसार प्रसिद्ध आलम्बन के शृङ्गारी रूप की माँग बढ़ने लग गई

थी। राधा का मादव और त्याग शारीरिक मासलता और चचलता मे बदलने लगा। फारसी का विलास राज सत्ता के कारण नारी के नायिका भेद के रूप मे प्रकट हो गया। इन भेदो मे नारी सौन्दय को परखने की चेष्टा की गई। राधा के परकीया रूप की स्थापना हो गई। मान अभिसारादि का चित्रण प्रारम्भ हो गया। शाहजहाँ के शासनकाल म काव्य एव कला की श्रीवृद्धि होती रही, परन्तु बाद के शासक औरङ्गजेब के समय मे इनकी गति अवरुद्ध हो गई।

औरङ्गजेब की कट्टरता और असहिष्णुता से सामाजिक स्थिति में एक अ यवस्था उत्पन्न हो गई। विधर्मियो का नाश उसके जीवन का मूल मत्र हो गया। हिंदु धम, मस्याना एव मूर्तियो की तोड फोड, कला की अवहेलना, सगीत एव साहित्य के प्रति घृणा के भाव आदि प्रवृत्तियो से कलादि के सरक्षण के समक्ष प्रश्न का चिह्न लग गया। सौदय ऐश्वय, विलास और रागात्मक तत्वा का पूणत बहिष्कार कर दिया गया। कवि कलावत दिल्ली दरबार से निकाल दिये गये। कला प्रदशन, नृत्य गीतादि वेश्याकम, मद्यपान आदि को अवधानिक घोषित कर दिया गया फिर भी सामन्ता आदि की रक्षिताओ और रनिवासों मे स्त्रीयो की बहुलता बनी रही। इस प्रवृत्ति को बडप्पन का प्रतीक माना जाने लगा। काव्यकला को हेय दृष्टि से देखा गया। मन्दिरा के विनाश मे स्थापत्यकला की मर्यादा भग होन लगी। मुगल दरबार के राजकीय सरक्षण का अभाव हो गया। फलस्वरूप कलाकारो ने सामन्ता और नरेशो का आश्रय लिया। इन राजाओ के लिये भी यह गौरव की वस्तु माना गई। यही पर दरबारी कविता का विकास हुआ। कोटा, ओरछा, बूँदी, जयपुर, जोधपुर, महाराष्ट्र आदि दरबारो मे इनकी महत्ता बढी।

राजस्थान म कविता के प्रश्रय का दूसरा कारण यह था कि मुगल आक्रामको के भय से वृदावन की मूर्तिया राजस्थान मे पहुँच गई। सिंहोर' नामक स्थान पर श्रीनाथ जी की स्थापना हुई। कांकरौली भी वष्णवो का केन्द्र हो गया। इसी धम के सरक्षण म कविता का विकास राधा-कृष्ण के आश्रय आलम्बन म होता रहा। बाद म चलकर शृङ्गार युग के कारण धम की पवित्रता नष्ट हो गई और राधा-कृष्ण का नाम मात्र रह गया। इसी रूप में कृष्ण काव्य का सृजन होने लगा। ऐसी कविताओ मे इस काल की सभी विशेषताएँ आ गई। धम की पवित्रता युग के शृङ्गार धम मे नष्ट हो गई।

मुगल दरबार मे हिंदी की अवहेलना होने लगी। उनकी अपनी राज नतिक समस्याओ की जटिलता स उन्हे अवकाश नही था, परन्तु मुगल दरबार

की कोमलता राजपूतों के रक्त में भी समा गई। पौरुष का स्थान विलास ने ले लिया। इन राजपूतों ने कला को विलास के रूप में ही ग्रहण किया। दूसरी बात यह थी कि राजाओं के विश्वासपात्र उच्चवर्गीय न रह कर निम्न वर्ग के व्यक्ति हो गये। आश्रय प्राप्त कवि भी इनके निर्देशन में कल्पना और वाग्वदग्ध्य के द्वारा भोगपरक जीवन की व्यञ्जना करने लगे। इन सब का यह फल हुआ कि राजनैतिक व्यवस्था से इस युग में साहित्यादि कलाओं को ऐश्वर्य और चमत्कार के भोगपरक उद्दीपनात्मक रूप में ग्रहण किया गया। जनभाषा होने के कारण हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार जन सामान्य में होता रहा यद्यपि और ङ्गजेब द्वारा उसका विरोध किया जा रहा था। इस राजकीय संरक्षण के अभाव में उसका समुचित विकास नहीं हो सका। यह बात दूसरी है कि सामन्तों और नरेशों की प्रच्छन्न प्रियता ने काव्य के मान्य रूपों को नई दिशा में मोड़ दिया। उन्होंने प्राचीन आख्यानों पात्रों और नायकों को नवीनता के ढाँचे में ढालकर उन्हें युगानुकूल शृङ्गार प्रधान बनाने में सफलता प्राप्त की। उनकी रसीन आश्रयदाता की रुचि में बन्दकर नये कलेवर में आया और कवियों ने राधा कृष्ण को भी रसिक नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ विषय की इतनी महत्ता नहीं है जितनी वचन-वक्रता विदग्धता शब्द चयन और मण्डन शिल्प की है। इसमें विषय रूप में प्रायः परम्परा का ही पालन किया गया है। इसका प्रभाव चित्र कलाओं पर भी पड़ा। स्त्रियों का नख-सौन्दर्य चित्रों में बनाया गया। ललित भावना वाला श्रीकृष्ण शृङ्गार नायक बन गये। राधा का अलौकिक सौन्दर्य प्रकट हुआ जिसकी नींव विद्यापति के गद्य रचना

झनकार भावनाओं को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध हुई। आध्यात्मिकता की यह विकृति स्थूलता के आकर्षण में परिणत होने लगी।

भक्तिकाल की माधुर्य भावना की उदात्तता समाप्त हो गई। श्रीकृष्ण की भक्ति क्रमशः स्थूल और मांसल शृङ्गार के रूप में परिणित होने लगी। श्रीकृष्ण-सम्प्रदाय की परम्परा में मान्य माधुर्य भक्ति की स्निग्ध सरल उपासना की कामरूपा और सम्बन्ध रूपा रागानुगा प्रवृत्ति की उदात्तता और प्राञ्जलता क्रमशः स्थूल शृङ्गारपरक भावना में बदलने लगी। भक्ति की आड़ में भ्रष्टाचार बढ़ चला। रागात्मिका भक्ति के मूल रूप को समझने की मानसिक स्थिति का ह्रास हो गया। इस भावना में 'राग' तो शेष रह गया था, परन्तु उसमें भक्ति का अभाव हो चला। इसी से राधाकृष्ण की उदात्तता समाप्त हो गई।

भक्ति के क्षेत्र में उज्जवल रस की प्रधानता बनी। माधुर्य में प्रेम लक्षणा भक्ति और उज्ज्वल रस में शृङ्गार परक भावनाएँ समक्ष आईं। रूप गोस्वामी ने चैतन्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रेम के उच्च रूप की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की। इन्होंने यद्यपि स्थूल तत्वों को परिमार्जित करने का प्रयास किया परन्तु आगे चलकर काम परक चेष्टाओं की अभिव्यक्ति में ही भक्ति का स्वरूप देखने की प्रवृत्ति बढ़ चली। चैतन्य और राधावल्लभ सम्प्रदाय रसिकता के केन्द्र हो गये। राम सम्प्रदाय का आदर्श भी स्थिर न रह सका। मर्यादा पुरुषोत्तम राम रसिक सम्प्रदाय में सरयू के तट पर कृष्ण के पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए काम क्रीडा में निमग्न होने लगे। उनकी वीरता शृंगार के मार्ग में बदल गयी। सीता रमणी हो गईं और भक्त सखी बनकर उनकी लीलाओं का दर्शन करने लगे। साधकों की स्मरण चेष्टाओं और स्थूल शारीरिक आकांक्षाओं ने भक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप में परिवर्तन ला दिया। फल यह हुआ कि भक्ति का स्वरूप बदल गया और आराध्य का केवल नाम मात्र शेष रह गया। उसकी दीव्यता पूर्णतः समाप्त हो गई। कवियों ने सचाई के साथ अपने इस भाव को व्यक्त किया कि 'आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, नातरु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।" इस प्रकार भक्तिकालीन काव्य के रूप में प्राप्त भावनाएं लौकिक रूप में स्वीकार की जाने लगी।

इसके पूर्व वैष्णवों की भक्ति में कृष्ण के रूप की कल्पना अलौकिक थी। श्रीमद् भागवत में उनके किशोर रूप के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया गया था। निम्बार्क चैतन्य और वल्लभाचार्य ने इसी रूप की उपासना पर जोर दिया था। वल्लभाचार्य ने बालरूप और श्री विट्ठलनाथ जी ने किशोर कृष्ण की युगल लीलाओं को भक्ति में स्थान दिया। बाल, पौगण्ड और किशोर में

तीसरी अवस्था हो रस दृष्टि से सर्वोत्तम है। राधा भी यहाँ किशोरी हो जाती है। इसी छवि का वर्णन अधिक किया गया है। कुंज में विहरत नवल किशोर', "नवल किशोर नवल नागरिया" 'किशोरी अग अग भेटी श्याम" आदि पदों में किशोर और किशोरी के इसी रूप का सकेत है। देव ने शृङ्गार के सार रूप में इन्हे माना है ' बानी को सार बखान्यो सिंगार, सिंगार को सार किशोर किशोरी।" सुख सागर तरग छ० १०।

रीति कालीन कृष्ण काव्य को प्रभावित करने में परकीया भाव का अत्यधिक महत्व रहा है। ब्रजागनाओं को 'जारवधू' कहा गया है।[1] जार भाव या परकीयात्व में आकर्षण अधिक देखा जाता है। इसी से चैतन्य मत में परकीया का पक्ष लिया गया। गौडीय वैष्णवो ने राधा को परकीया रूप में ही ग्रहण किया। चडीदास में भी यही भाव है। निम्बार्क में स्वकीया होते हुए भी परकीयात्व का आभास है। सूर ने राधाकृष्ण के गान्धर्व विवाह का वर्णन किया है। इस प्रकार कवियों या आचार्यों की भावना 'कही न कही नारी जीवन से अवश्य सम्बद्ध रहती है। यही कारण था कि भक्तिकाल का गूढ व्यञ्जक भाव रीति काल की शृङ्गार परक उक्तियों में बदल गया। सात्विकता समाप्त हो गई। राधा नाम ही स्वकीया या परकीया का पर्याय हो गया और कृष्ण सामान्य नायक बन गये। बाद में अवध के नवाबों को भी 'कन्हैया बनने का शौक बना रहा।

भक्तिकाल में वर्णित कृष्ण लीलाओं को भी एक नये रूप में ग्रहण किया गया। इनका उपयोग युग की प्रवृत्तियों के आधार पर होने लगा। 'अष्टयाम में देव ने कृष्ण की अष्टकालिक क्रिया का लौकिक प्रेम व्यापार-युक्त वर्णन किया। ये लीलाएँ केवल प्रेम प्रदर्शन का माध्यम मात्र रह गई। अत यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल के दीव्य एवं अलौकिक कृष्ण को रीतिकाल के सामान्य नायक में परिवर्तित कर दिया, उनकी लीलाओ का ऐहिकता परक अर्थ व वर्णन हुआ उनका किशोर वय आकर्षण का केन्द्र बना तथा मधुर भाव को शृङ्गारिक रूप में ग्रहण किया गया। भक्त कवियों ने राधा कृष्ण के रूप में भगवान की लीलाओं का जो वर्णन किया था, सामान्य लोगों के लिये उसमें शृङ्गारिकता ही अधिक मिली। राज दरबारों का आश्रय कृष्ण के कामनामय प्रेम के उद्गार को व्यक्त करने का साधन बन गया। श्रीमद् भागवत के ही कृष्ण किशोरी राधा के साथ भक्तिकालीन कवियों को परमानन्द देने वाले और

---

[1] श्री मद्भागवत १०/३३/८

रीति कालीन रसिकों को शृगारिक प्रेरणा देने वाले बन गये थे। ऐसे ही राधा कृष्ण का रूप सौन्दय इस काल म प्रस्तुत हुआ।

धम म शृगार भाव के इस प्रवेश म बौद्धों के वज्रयान शाखा के महासुख की कल्पना और त्रिपुर सुदरी के साथ ही पराशक्ति की भावना काम करती रही है। इसने मध्यकालीन कवियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। भक्ति काल म इस पर आध्यात्मिक रग चढा था, परन्तु रीति काल म मानवीय प्रवृत्तियों और उसकी विपरीत लिंगी के प्रति सौन्दय-चेतना अधिक सचेष्ट रही। सूर आदि भक्त कवियों न अनजान मे ही शृङ्गार को खुली और स्पष्ट रचनाएँ प्रस्तुत कर दी थी। परकीया भाव की प्रधानता कई सम्प्रदायों म बल पा चुकी थी। साहित्य म राधा का प्रवेश एक विशेष घटना हो गई और बाद के कवियों न इसका पूरा लाभ उठाया। भागवत की असख्य गोपियाँ हिन्दी कवियों की राधा के व्यक्तित्व म समा गई। इससे उसकी शोभा अधिक विस्तार पान लग गइ थी। कृष्ण का असख्य गोपियो से सम्पक बाद मे उनके जार भाव का प्रतीक बन गया। परकीया का महत्त्व बढ गया और पर पुरुष को रिझाने के लिये अग प्रत्यग वणन नायिका की शोभा लावण्य और सम्पूण सौन्दय म आकषण उत्पन्न करन की भावना बढती चली गई। राधाकृष्ण शृगार रस के अधिष्ठाता देवता माने जाने लग। इस प्रकार विभिन्न वैष्णव धर्मों और दशन की शक्ति भावना ही राधावाद के रूप मे विकसित हुई। भक्तिपरक इस परिवेश एव विचारों के कारण तत्कालीन साहित्यिक रचनाएँ प्रभावित हुई। विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों मे राधाकृष्ण और गोपियो के स्वरूप निर्धारण मे यही प्रवृत्ति काय करती रही।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य की रचना का एक साहित्यिक विकास क्रम रहा है। हाल की सतसई अमरुक शतक और गोवधन की आर्या सप्तशती आदि शृङ्गार ग्रन्थों म प्रसिद्ध है। इनमे प्राकृत जीवन का सहज सौन्दय और अलकरण की प्रवृत्ति है। सस्कृत मे भी कालिदास का शृङ्गार तिलक घटकपर भतृहरिकृत शृङ्गारशतक, बिल्हण की चौरपचाशिका आदि सरस ग्रन्थों का रचना हो चुकी थी। भक्ति परक मुक्तकों मे दुर्गासप्त शती, चडीशतक बक्राक्ति पचाशिका और कृष्णलीलामृत आदि स्तोत्रो मे शृङ्गार की प्रधानता है। शृङ्गार और स्तोत्र ग्रन्थों के साथ ही कामशास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन भी आरम्भ हो गया था। कामसूत्र, रतिरहस्य और अनगरग की रचना का प्रभाव भी नायिकाभेद और शृङ्गार मुक्तकों पर पडा।

हिन्दी साहित्य के विकास के प्रारम्भिक युग में शृङ्गार के प्रति रुचि दीख पडती है। पृथ्वीराज रासो के पद्मावती-समय म नख शिख का वणन

है। विद्यापति की ऐन्द्रिय शृङ्गारिकता रीतिकालीन भावनाओ को प्रभावित करने म समथ सिद्ध हुई है। इनके काव्य म भक्तिरस के साथ ऐन्द्रिय उल्लास की प्रधानता है।

सूर मे शृङ्गार चित्रो की अतिरिक्तता है। अलङ्करण का प्राचुय और नायिका भेद के अन्य सभी रूप देखे जा सकते हैं। सूर ने विपरीत रति और रति चिन्हो का वणन भी किया है। रस हाव भाव सभी प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक ओर जहा भक्ति के क्रोड म शृङ्गार पलता रहा, वहीं दूसरी ओर 'साहित्य लहरी' की रचना से अलकारो और रीति परम्परा का मोह भी व्यक्त हो रहा था। रहीम का नायिका भेद और नन्ददास की रस मञ्जरी आदि नायिकाओ पर लिखे गय सरस ग्रन्थ हैं। इन सभी पृष्ठ भूमियो का प्रभाव हिन्दी की रीतिकालीन रचना पर पडा। एक ओर रीतिबद्ध ग्रन्थो की रचना हुई और दूसरी ओर रीति मुक्त। इन दोनो प्रकार की रचनाओ म पूव साहित्य और सिद्धान्तो का प्रभाव पडा। यही कारण है कि इस युग के कवि की रचनाओ मे शृङ्गार की ही प्रधानता है भक्ति तो नाममात्र के लिये है।

हिन्दी साहित्य मे भी शृङ्गार परक रचनाओ की परम्परा है। विद्यापति ने अभिसार, मान, मानभग मुग्धा के रूप विन्यासादि का शृङ्गारिक रूप प्रस्तुत किया है। सूरदास ने सयोग वियोग वणन के साथ नायिका के विभिन्न रूप वासक सज्जा खण्डिता आदि का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। नन्ददास के सामयिक कवियो मे मोहनलाल मिश्र का 'शृङ्गार सागर करनस का कर्णा भरण' श्रुतिभूषण और भूप भूषण इसी समय लिखा गया है। इनम रीति परम्परा का पूव रूप है। केशव की रसिक प्रिया प्रसिद्ध है।

सस्कृत काव्यो मे भी इस प्रकार की परम्परा थी। शृङ्गार का वणन सौन्दर्यानुभव के साधन के रूप म किया जाता रहा है। गीत गोविन्द म कहा है कि 'हरि कथा में मन सरस हो और विला[illegible] हो तो जयदेव की [illegible] ललित पदावली सुनो।[1] इस कथन म भक्ति [illegible] का ही सकेत [illegible] भागवतकार [illegible] भक्ति [illegible] और रति का युगपत् [illegible] बाद की [illegible] [illegible]

[illegible]

हिन्दी म प्रममार्गी शाखा क कवियो न लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक इश्वरीय प्रम तत्त्व का आभास दिया। इसम किसी राजकुमारी के अनुपम सौन्दय की चर्चा रहा करती थी। ऐसी कथाओ द्वारा जन सामान्य मे मासल प्रेम का ही प्रचार हुआ और इसके उद्दीपन के रूप म नारी अगो की शोभा का वणन हुआ। इस शाखा के मुसलमान कवियो के सम्पक से हिन्दु कवियो न भी अपनी शृ गारिक मानसिक ग्रथियो को स्पष्ट करने के लिए राधा और कृष्ण का अपना आधार बनाया। इस प्रकार साहित्यिक प्रवृत्तिया पहले से वतमान थी उन्ह केवल युगानुरूप बनान का काम सामयिक कविया ने किया।

उपयु क्त प्रेरणा स्रोता के आधार पर कहा जा सकता है कि रीति कालीन कविता की अभिव्यञ्जना म सस्कृत काव्य शास्त्र सहायक सिद्ध हुआ और उसका वण्यविपय एव रस भक्तिकालीन कविता का ही विकसित रूप है। भक्तिकालीन राधाकृष्ण की लीलाए अनेक विधाओ म रीतिकाल म पल्लवित हो गइ। विरासत म प्राप्त भावपरक इन रचनाओ को रीतिकाल मे युगानुरूप लौकिकता प्रदान कर दी गइ। इससे राधा और कृष्ण सामान्य नायिका और नायक बन गय और इनकी लीलाओ का एहिकतापरक लौकिक अथ लगाया जान लगा। फल यह हुआ कि शृ गार के लिए सर्वोत्तम अवस्था किशोर वय का उन्मादक रूप सौन्दय रीतिकाल म ग्रहण किया गया। इस काल की रचनाओ म श्री कृष्ण के व्यक्तित्व चित्रण एव रूप सौन्दय के चित्रण मे यही भावनाए काय कर रही थी। श्री कृष्ण क इस रूप का सक्षिप्त विचार असगत नही माना जायगा।

रीतिकाल मे श्रीकृष्ण का रूप—

भक्तिकालीन श्रीकृष्ण के रूप एव चरित्राकन का आधार लकर रीतिकाल मे कृष्ण साहित्य विशेष परिवेश म उपस्थित हुआ। माधुय भाव मे ही भक्ति साहित्य का अधिक वणन हुआ था। सूर और नन्ददास जसे प्रवीण वात्सल्य रस के पोषक कवियो का अतिम वण्य माधुय भाव था। विभिन्न सम्प्रदायो के गोपी भाव और सखी भाव म यही माधुय दीख पड़ता है। उनका शृ गार वणन उज्ज्वल रस नाम से प्रसिद्ध हो गया। जन मानस न इस भाव को पूणतया ग्रहण कर लिया। भक्ति की तल्लीनता मे इन कवियो का उस युगल केलि वणन म किसी प्रकार की अश्लीलता नहीं दीख पडी, परतु इस भाव के लोप होते ही श्रीकृष्ण राधा के रूप वणन म स्थूल एव मासल कायिक चेष्टाओ का प्रभाव बढ गया। उनके अनुभावो रूप चित्रणो और सौन्दया कन म यही

मांसलता दीख पड़ने लगी। भक्तिकाल के आराध्य श्रीकृष्ण रीतिकाल में 'नायक' कृष्ण हो गए। वे अपना समस्त भक्तिपरक रूप भूल गए और 'नायक' रूप में विभिन्न नायिकाओं की उद्भावना के प्रेरक बने। इन नायिकाओं से घिरे श्रीकृष्ण का वैभव-परक वर्णन हृष्टी आदि कवियों ने किया। स्पष्ट रूप से इन कवियों पर दरबारी संस्कृति और वातावरण का प्रभाव पड़ा। श्रीकृष्ण की रसिकता देखकर वे ही शृंगार के अधिष्ठाता बनाये गए। उनका वर्णन लाल, ललन, रसिक आदि रूप में होने लगा और इनका आभास भक्तिकाल में प्रचलित उनकी साज सज्जा के रूप में होने लगा।[1] उनकी भक्तिकालीन लीलाएँ महत्व हीन हो गईं। उनका माधुर्य रूप प्रधान हो गया। वे रसिक बनकर 'कुञ्ज कुटीर में राधा के पाँयन पर साष्टांग' होने लगे।[2] उनके नायकत्व की महत्ता बढ़ी।

नायक के रूप में श्रीकृष्ण की रसात्मकता का चित्रण बाल पौगण्ड और किशोर रूप में हुआ है। इन सभी में शृंगार का स्वर प्रमुख था। उनकी पौगण्ड लीला में सौन्दर्य के अनेक चित्र हैं। किशोर चित्र में उनका युवा मोहन रूप कोटि कन्दर्पों के मद को मर्दित करने वाला और अपनी कमनीयता जन्य रूप लावण्य से असंख्य गोपियों में काम की विह्वलता उत्पन्न करने वाला है। किशोर किशोरी का इतना रमणीय आकर्षक और मधुर रूप अन्यत्र नहीं मिलता। उनके प्रेम की गहनता शृंगार को अधिक मधुर बना देता है। इनके इस रूप में केलि में प्रकृति सहायक होती हैं व राधा का प्रसाधन करते हैं। ऐसे प्रसंगों पर शृंगार का वर्णन मिलता है।[3] उनका उपपति रूप स्पष्ट होने लगा। भक्तिकाल के वात्सल्य रस के बोधक लाल रीतिकाल में नायक लाल हो गये। गोपियाँ रूप गुण से उत्पन्न विभिन्न चेष्टाओं से मोहित कर लेने वाली बन गईं। विलास और वैभव की छटा सूर्य किरण के समान अपना प्रकाश फैलाने लगी। यह वैभव शृंगार प्रसाधक सामग्री और उपकरणों में दीख पड़ने

---

1 कहा लड़ते दृग करे पर लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पट, कहुँ मुकुट बनमाल।

2 देख्यो दुरयो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठ्यो पलोटत राधिका पायन। रसखान

3 आइ हों पाय दिवाय महावर कुञ्जन सों करिके सुखदनी।
साँवरो आजु सवारो है अंजन, नैननि को लखि लाजत ऐनी।
बात के बूझत ही मतिराम कहा करिए मद भौंह तननी।
मूँदी न राखति प्रीति अली यह गूँदी गुपाल के हाथ की बेनी। मतिराम

लगा। कृष्ण के नायक रूप को रिझाने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न किये गये। शृ गार सामग्री प्रस्तुत की गई। रूप सौदय का चित्रण हुआ। नख शिख का वणन अप्रस्तुत योजनाओ, आभूषणा एव प्रसाधन सामग्रिया के साथ हुआ। रति की उद्दीपक चेष्टाओ का प्रभाव बढा और ऐंद्रिय रूप-सौदय के वणन को प्रमुखता प्राप्त होने लगी। दोना एक दूसर का शृ गार करने लगे।[1] दूध के समान जोबन वाली अहीरी मोहन को मीठी लगन लगी,[2] और कृष्ण की सुघराई और लटक को देखकर सास और माय की अटक समाप्त होने लगी —

माय की अटक तौलो सासु की हटक जाल,
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की।" रसखान

रीतिकाल की शृ गार परक दृष्टि ने नायिका के सम्बन्ध म ही श्रीकृष्ण का रूप चित्र प्रस्तुत किया है। उनके स्वतन्त्र रूप चित्र का अभाव है। वे नायक रूप म आय हैं। इसी से उनकी चेष्टाओ आदि का मोहक रूप मिल जाता है परन्तु उनकी वेश भूषा आदि का आकषक चित्र कम मिलता है। कहीं-कहीं भूले भटके रूप म मुकुट गुजामाल, पीताम्बर आदि का कथन भक्ति-कालीन क्षीण होती हुई कृष्ण विचारधारा का सकत कर देती है। भक्तिकाल म श्रीकृष्ण की शृ गार भावना कभी प्रबल थी। उनका नयनाभिराम वह रूप रीतिकाल म वणन का विषय नही रह गया। इस काल मे पुरुष का सौदय चित्रण न होकर नारी के सौदय का ही चित्रण अनेक रूपा मे किया गया और एसा कमनीय रूप प्रस्तुत हुआ कि श्रीकृष्ण भी अपनी उदात्तता भूलकर भौतिक धरातल पर रूप के रसिक हो गय। श्रीकृष्ण विषयक एसा वणन विशेषत रीति-बद्ध कविया द्वारा किया गया है। रीति मुक्त कविया के विचारा म थोडा अन्तर दीख पडता है।

इन रीतिमुक्त कवियो म रसखान आलम आदि क प्रम की सूक्ष्मता ने श्रीकृष्ण क रूप वणन मे पुन उन्हें अलौकिकत्व की श्रेणी मे लान का प्रयास किया। रीतिकाल मे प्रचलित स्थूलता और मासलता की ओर से इन्होने अपनी

---

[1] पीतम पाग सवारि रखी, सुघराई जनायो प्रिया अपनी है।
प्यारी कपाल के चित्र बनावत, प्यारे विचित्रता चारु बनी है।
दास दुहू का दुहू को सराहिबो देखि लह्यो सुख लूटि धनी है।
वे कह भामने, वसे बन वे कहें मन भामनी कैसी बनी है। दास

[2] माखन सा मन दूध सो जोबन, है दधि सा अधिको उरऐंठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै कहौ, क्यो न लग मन मोहन मीठी। देव

दृष्टि हटाकर मानसिक पक्ष की ओर उन्मुख किया। फलतः उनमें शारीरिक रमणीयता का महत्व कुछ कम हुआ, अश्लील चेष्टाओं के वर्णन की रुचि क्रियाएँ कम होने लगी। आन्तरिक मनोदशाओं के चित्रण की प्रवृत्ति इन कवियों में बढ़ने लगी। अपनी अनुभूतियाँ ही प्रेम चित्रण के रूप में काव्यरूप में प्रकट हुई हैं। रसखान, घनानन्द, आलम की भाव-संपदा प्रसिद्ध है। ठाकुर और बोधा की भावनाएँ स्थूल और सूक्ष्म के मिश्रित रूप का आधार बनी हैं। इन कवियों में प्रेम की गम्भीरता है रीतिबद्ध कवियों के समान रसिकता की उद्दाम भावनाओं का मांसल रूप सौन्दर्य नहीं है।

रीतिमुक्त कवियों में रसखान का रूप वर्णन स्थूल मिश्रित मानव का रूप वर्णन है। कृष्ण का रसात्मक स्वरूप अपनी मोहकता में अनुकरणीय है। कृष्ण सम्बन्ध से अन्य लौकिक परिवेशों का सौन्दर्य उन्हें अधिक आकृष्ट करता है। इसी से वे ब्रज के पाहन, करील कुञ्ज, पशु, मानुष आदि विभिन्न रूपों में अपनी ब्रज वास की अभिलाषा व्यक्त करते हैं। कलधौत के धाम को करील के कुञ्जों पर वार देना चाहते हैं।[1] आलम के कृष्ण गोपीवल्लभ हैं। उनका रूप सौन्दर्य दृष्टि की पकड़ में नहीं आता और आन देख संताप नहीं होता। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में दुःख का ही अनुभव होता है।[2] इन्होंने संचारी भावों का अच्छा प्रयोग किया। लज्जा और अभिलाषा का समन्वय बड़ा मधुर है। कृष्ण का लोक मंगलकारी रूप भी दीख पड़ता है। घनानन्द में मधुर भाव की व्यञ्जना दान केलि हास विलासमय प्रसंगों पर हुई है। ये राधा वल्लभ हैं। उनकी तरुनाई की नई आभा फूट पड़ती है।[3] ठाकुर ने श्रीकृष्ण के माधुर्य एवं रूप सौन्दर्य का वर्णन मानवीय रति की दृष्टि से किया है। कृष्ण यहाँ मानव प्रेम के पोषक हैं और इसी रूप में इनका रूप सौन्दर्य रीतिकाल में वर्णित है।

सौन्दर्य साधक उपकरण —

रीतिकाल के रूप सौन्दर्य वर्णन में कवियों के उद्देश्य और आलम्बन

---

1 कोटिक हौ कल धौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं।

2 देखे टक लागे अनदेखे पलकौ न लागे
देखे अन देखे मना निमिष रहत है।
सखी तुम काहू हौ जु आन की न चिन्ता,
हम देखे हू दुखित अन देखे हू दुखित हैं। आलमकेलि छंद १८५

3 नई तरुनई की आप भई मुख सुख समोह पुलकाते।
रीझि चाप आनन्दघन बरसत मिलत हार करि हात।

के स्वरूप मे अदर आ गया। समाज म विलास की बढ़ती हुई भोगपरक भावना ने रमणी रूप के आकर्षण को बढ़ाने मे सहयोग दिया। सौंदय प्रसाधन का प्रयोग अधिक स अधिक होने लगा। युवा काल मे ये प्रसाधन सौन्दय के उत्कर्ष मे सहायक होते है। नायिका के गुण, चेष्टाओ आदि से भी आकर्षण बढ जाता है। अत गुण चेष्टा अलकार प्रसाधन आदि को सौंदय साधक उप करण कहा जायगा। इस दृष्टि से सौंदयपरक सम्पूर्ण उपकरणो को दो कोटियो म विभाजित किया जा चुका है। इन्ह आत्मगत उपकरण और बाह्य उपकरण बताया गया है।

आत्मगत उपकरण—पिछले अध्याय से स्पष्ट हो गया है कि आलम्बन से सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले सौंदर्योत्कर्षक साधनो को आत्मगत उपकरण कहते है। ये उपकरण शरीर म बिना किसी बाह्य साधन के अपने आप ही वतमान रहते हैं। गुण और चेष्टा के रूप मे सौंदय विधायक इन तत्वो का महत्त्व युवाकाल म अधिक होता है। रीतिकालीन साहित्य ने इस इसी रूप मे ग्रहण किया है।

गुण—नायक एव नायिकाओ की शारीरिक एव मानसिक विशेषताओ का नाम गुण है। इन गुणो मे कुछ तो प्रत्यक्ष रूप से अपने आप शरीर मे युवाकाल के आरम्भ होते ही प्रकट होने लगते हैं और कुछ पर नायिका या नायक का नियत्रण बना रहता है। इस दृष्टि से कायिक और वाचिक गुणो का विश्लेषण पहले किया जा चुका है। क्रमश रीतिकालीन साहित्य मे इन्ही गुणो का विश्लेषण किया जायगा।

कायिक गुण—शरीर की शोभा बढाने वाले आकारगत अथवा आकार म वतमान शोभा लावण्य आदि विशेषताओ को कायिक गुण की सज्ञा दी गई है। इन गुणो को दो वर्गों म—भौतिक स्थूलगुण और सूक्ष्मगुण—विभाजित किया जा चुका है। इनम स्थूल गुण आकारगत विशेषता को और सूक्ष्म गुण उस आकार म वतमान सत्त्व से उत्पन्न होने वाली विशेषता मे माना जाता है।

सूक्ष्म गुणो के अतगत वय, रूप-लावण्य, रमणीयता अभिरूपता सौकुमाय, यौवन म सत्त्व से उत्पन्न होने वाले गुणो आदि की चर्चा होती है। इन गुणो से आलम्बन का रूप सौंदय अपेक्षाकृत अधिक आकपक प्रतीत होने लग जाता है। रीतिकालीन सामयिक चेतना के फलस्वरूप इस काल म नारी को ही वणन का प्रधान आधार बनाया गया है। पुरुष या तो कवियो की आंखो का लुब्ध न कर सका अथवा ग्वाल जसे एक दो कवियो न श्रीकृष्ण क

रूप सौंदर्य का स्वतन्त्र वर्णन किया जिसका अनुसरण अन्य कवियों द्वारा न हो सका। प्रासंगिक रूप में भी कहीं कहीं श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का खण्ड चित्रांकन किया गया है। इससे नारी सौंदर्य के आधार पर ही रीतिकालीन सौंदर्य विषयक भावनाएँ व्यक्त की गई हैं।

गुण परक सौंदर्य के सूक्ष्म उपादान—सौंदर्य निरूपण में गुण परक उपादान का स्थूल और सूक्ष्म भेद किया गया है इनमें स्थूल गुणों में अंगों के आकारादि का वर्णन अंग के अलग अलग रूप में या सर्वाङ्ग के सामूहिक रूप में किया गया है। इन दोनों में कवियों की दृष्टि उसकी स्थूलता पर रही है। इसमें अंगों का मांसल और स्थूल गुण स्पष्ट होता है। स्थूल गुणों के वर्णन में नख शिख वर्णन और सम्पूर्ण वर्णन आता है, जिसकी रीतिकालीन परम्परा रूढ़ि होकर रह गई है।

सूक्ष्म गुणों में आकार रहित गुणों का वर्णन होता है। इन गुणों का एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। शरीर में स्थित रहते हुए भी इनका अस्तित्व होता है, परन्तु शरीर से अलग रहकर इनकी सत्ता नहीं रह सकती है। अतः शरीर में आश्रय लेने वाले इन गुणों का महत्त्व निर्विवाद है। इन गुणों से वास्तविक सौंदर्य का आभास मिलता है, रूप में चमक आती है आकर्षण उत्पन्न होता है और रूपवती सत्ता सार्थक होती है। इन गुणों में रूप लावण्य रमणीयता, नवीनता, अभिरूपता, सौकुमार्य और यौवन में सत्व से उत्पन्न होने वाले गुणों की चर्चा होती है। इन्हीं गुणों के माध्यम से विशेष वय में अभिवृद्धि को प्राप्त सौंदर्य का विश्लेषण होगा।

वय सौंदर्य—शारीरिक सूक्ष्म गुणों में यौवन का आगमन अपने आप में स्वयं भी सौंदर्य का जनक होता है। इसके साथ सत्व से उत्पन्न गुणों का सहयोग सोने में सुगन्धि का काम कर देता है। नायिका के स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहा गया है कि जिनमें यौवन, रूप गुण शील, प्रेम कुल वैभव और आभूषण हों, वही नायिका है। इन आठ विशेषताओं में यौवन को प्रथम स्थान दिया गया है इसका सम्बन्ध वय और स्वास्थ्य से है। युवाकाल और स्वास्थ्य के अभाव में रूप का महत्व ही नहीं रह जाता है। 'यौवन और 'रूप' आकर्षण का प्रथम तत्त्व है। मानसिक गुणों का परिचय व्यवहार से मिलता है। यह बाद की चीज है। प्रथम स्थान से हृदय में स्थान पाने के लिए रूप और यौवन ही महत्त्वपूर्ण है। रूप और यौवन में स्थायित्व नहीं होता। अतः प्रेम के व्यापार में निरन्तरता लाने के लिए नायिका में अन्य मानसिक गुणों का वर्णन किया गया है। इन गुणों से रूप भी शोभा पाता है। रूप के साथ

गुण का मिश्रण नायिका के सौदय मे अनोखापन ला देता है। यौवन अव स्थागत गुण है। रीति काल मे इसके वणन के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि यौवन का अकस्मात् आगमन नही हो जाता। शरीर मे इसका प्रवेश क्रमश होता है। इस क्रम की दृष्टि से यौवन को चार भेदो मे विभाजित कर देते हैं। इह क्रमश वय सधि काल नव यौवन, व्यक्त यौवन और पूर्ण यौवन मान सकते है।

वय सधिकाल से यौवन का आरम्भ माना जाता है। इसे मुग्धा के भेद के अ तगत स्वीकार किया गया है। मुग्धा नवीन वय वाली, रति से विमुख और क्रोध मे मृदु स्वभाव वाली नायिका होती है। इस अवस्था मे विभिन्न काम सहायक अगो का विकास आरम्भ हो जाता है। वय सधिकाल यौवन और बालपन के विचारो का एसा सधि स्थल है, जहा नायिका के मन म अस्थिरता बनी रहती है। वह बालपन और यौवन दोनो ही विचारो से परिचालित होना हुई भी यौवन के आगमन से अनभिज्ञ रहती है। रीतिकालीन साहित्य म इस अवस्था का वणन निम्नलिखित रूपो मे किया गया है—

१ मानसिक अस्थिरता और परिवर्तित होती हुई भावनाओ का आकषक वणन।

२ शारीरिक परिवतन।

३ विभिन्न अगो के उठान एव काम कथाओ के प्रति जिज्ञासा के भाव।

रीतिकालीन कवियो के अनुसार वय सधि काल म नेत्रो का नवीन ढग से विकास होन लगता है चतुरता एव छवि उत्कष को प्राप्त होन लगती है शरीर मे लालिमा का सचार होने लगता है, अग खिलने लगते हैं।[1] वैस के उठान के साथ रूप' चूने लग जाता है नयनो मे चचलता आ जाती है, मदन के मद से 'औरै आभा' हो जाती है। नेत्रो का विलास मद का आधिक्य शारीरिक आकषण की अभिवृद्धि कर देते हैं। इन लक्षणो से युक्त वय सधिकाल का सरस वणन हुआ है।[2] 'श्यामा' का सलोना तन दो एक दिन में मन्मथ के अधिकार

---

[1] आवत जोबन कञ्चुक तन हान डहडहे अग।
शिशुता की हलचल कहो, ललिता ललित सुरग।
कछु जोबन आभास ते बढी वधू दुति अग।
ईगुर छीर परात म पर होत जो रग।
कृपा राम—रीति काव्य सग्रह पृ० १३६

[2] वैस को उठान ठौन रूप को अनूप काह,
अग अग औरे कछू आप उलहनि है।

म पहुँच जाता है। शिशुता और यौवन इस प्रकार लगते हैं जैसे शीशी में जल या सुमन में पराग हो।[1] कहीं इस बात का वर्णन दो चुम्बकों के बीच पड़े हुए लोहे के समान किया गया है। नायिका शिशुता और यौवन दोनों के द्वारा समान रूप से खिंची चली जाती है।[2] शारीरिक परिवर्तनों का वास्तविक स्वरूप नव्य यौवन काल में दीख पड़ता है।

इस वय में अंगों के उठान के प्रति रीति कालीन कवि जागरूक हैं। इसकी प्रारम्भिक चेतना एवं विकास व्यक्त यौवन में स्पष्ट हो जाता है। यहाँ आकर रूप एवं कान्ति में गतिमयता आ जाती है। रूप का आधिक्य और अंग ज्योति का वर्णन अधिक किया गया है। मुकुलित स्तन बढ़ने लगते हैं। त्रिवली दीख पड़ने लगती है। पूर्ण यौवन में अंगों का विकास अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। यौवन की इन सभी अवस्थाओं का वर्णन रीतिकालीन साहित्य में हुआ है। इस अवस्था के विभिन्न परिवर्तनों पर कवियों की दृष्टि रही है। यौवन रूप राशि को बिखेर देता है। शरीर से ज्योति उमगने लगी है।[3] आँखों में दीर्घता आ जाती है अपांग कानों तक पहुँचने लगते हैं। देह की दीप्ति से

चिंतामणि चंचला विलास की रसाल नैन,
मदन के मद और आभा उमहति है।
कुन्दन की बेली सी नवल अलबेली बाल,
बनित गरब की सी गौरता गहति है।
उझकि झरोखे तुम्ह चाहिए की चन्द्रमुखी
चौस हूँ में चन्द्रिका पसारति रहति है।
रीतिकाव्य संग्रह पृ० १६७ चिंतामणि

1 स्यामा की सलोनीतन ताम दिन द्वक साँझ,
फिरी सी चहत मनमथ की दुहाई सी।
सीसी में सलिल जैसे सुमन पराग तैसे,
सिसुता में झलकत जोवन की झाई सी।
ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद-पृ० २३२ गंग कवि

2 लरिकापन यौवन संधि भई दुहुँ बस का भाव मिल न हिल।
बिबि चुम्बक बीच का लोह भया मन जाइ सकै न इत न उत।
रीतिकाव्य संग्रह पृ० ४०७

3 रीति काव्य संग्रह पृ० २०१ और २४०

भवन फटिक के समान स्वच्छ हो जाता है।[1] राधा की इस देह दीप्ति को देखने के लिए घडी भर के लिए यमुना भी रुक जाती है। मुख की नई झलक से रूप मिलता जाता है।[2] यौवन की लाली चमक उठती है। इन गुणों से सम्पन्न काया मे अनोखापन आ जाता है। क्रमश बढ़ती हुई अवस्था के साथ रीतिकाल मे दो प्रकार के परिवतनो का सकेत किया गया है। शरीरगत और भावगत। इन परिवतनो के माध्यम से नायिका का रूप चित्र अच्छे प्रकार से प्रस्तुत किया गया है।

शरीरगत परिवतन के अन्तगत सूक्ष्म और स्थूल परिवतन का वणन किया गया है। सूक्ष्म परिवतन 'रूप' न रहकर भी रूप से भिन्न अस्तित्व रखता है। इन गुणो से सुकुमारता आदि की गणना की जा चुकी है। रूप, लावण्य छवि, ज्योति, उज्ज्वलता, कान्ति आदि द्वारा इसी सूक्ष्म गुण का सकेत मिलता है।

रूप लावण्य—आत्म परक सूक्ष्म गुणो के अन्तगत रूप लावण्यादि का सकेत किया जा चुका है। मोती मे उसकी कान्ति की तरलता के समान अगों मे स्वत प्रतिभासित होने वाली ज्योति को लावण्य' कहते हैं। अगों में भूषण आदि प्रसाधनो के बिना ही जब शोभा भूषणादि धारणवत् प्रतीत होती है तो ऐसी शोभा को रूप कहते हैं। इसके अगों म एक प्रकाश रहता है जिससे सौन्दय की वृद्धि होती है। इससे व्यक्तित्व म आकषण उत्पन्न होता है। यह सौन्दय का आवश्यक तत्व है। लावण्य के व्युत्पत्तिगत अथ म लवणस्य भाव लावण्य' कहा गया है अर्थात् शारीरिक नमकीनपन के भाव मे लावण्य रहता है। जसे खाद्य सामग्री म नमक के योग से उसका स्वाद बढ जाता है, इसी प्रकार शरीर म लावण्य से सर्वाङ्ग की शोभा बढ जाती है। यह लावण्य रीति कालीन काव्य म छवि, ज्योति, अग दीप्ति आदि रूपों म प्रकट होता है।

---

[1] फटिक सिलान सो सुधारो सुधा मन्दिर
उदधि दधि की सी अधिकाई उमँग अमन्द।
बाहिर ते भीतर लौं भीति ना दिखाई देति
दूध कैसो फेन फल्यो आगन फरस बन्द।
तारा सी सु ताम ठाढी आनि मिलि मिलि होति
मोतिन की जोति मिलि मल्लिका को मकरन्द।
आरसी से अम्बर म आभा सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द।

[2] रस रत्नाकर पृ० ६६४

इस लावण्य का विश्लेषण करने से उसके वर्णन में कवियों की दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। १ लावण्य का काम मूलक दृष्टिकोण २ लावण्य के निरपेक्ष सौंदय का वर्णन।

काममूलक दृष्टिकोण के अंतर्गत युवा काल में उत्पन्न होने वाले अयत्नज अलकारों की गणना होती है। यौवन में इन अलकारों से नायिका की शोभा उत्कर्ष को प्राप्त होती है। अत शोभा विधायक इन अलकारों को कृति साध्य न मानकर स्वय संभूत अलकार मानते हैं। इनकी इस नसर्गिकता से रूप का आकर्षण बढ़ जाता है और अंग शोभा में प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। इनके अंतर्गत सभी अयत्नज अलकारों को न मानकर केवल शोभा, कान्ति, दीप्ति और माधुर्य को ही मानेंगे। शेष तीन अलकारों—प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य में चेष्टा अथवा मानसिक गुणों का समावेश होता है। इससे इन तीनों अलकारों की सीमा गुणपरक तथा काम मूलक नसर्गिक शोभा से भिन्न है। अत केवल प्रथम चार अलकारों का ही सकेत किया जाता है।

शोभा' रूप यौवन और सुख भोग से युक्त शरीर की सुन्दरता को कहते हैं। इसका वर्णन दो प्रकार से किया गया है (१) क्षण क्षण की नवीनता और (२) शारीरिक विकास में अनोखापन। यथा —

१ छन-छन नवता लहत हैं छवि छलकत अवदात।
चन्द्र सरिस सुन्दर बदन मृदुल सलोने गात।

२ विसरन लागो बालपन को अयानप,
सखीन सो सयानप की बतियाँ गढ़ लगी।
दृग लागे तिरछे चलन पग मन्द लागे
उर में कछूक उकसन सी बढ़ लगी।
अंगन में आई तरुनाई या झलकि
लरिकाई अब देह तें हर-हर कढ़न लगी।
होन लागी कटि अब छटी की छला सी
द्वज चन्द की कला सी तन दीपति बढ़ लगी।[1]

इन दोनों उदाहरणों में दोनों प्रवृत्तियाँ व्यक्त हुई हैं। पहले में क्षण क्षण की नवीनता और दूसरे में अंगों के विकास का अनोखापन व्यक्त हुआ है।

स्मर विलास से बढ़ी हुई शोभा को कान्ति कहते हैं। इसमें विभिन्न अंगों में रमणीयता और अनोखापन आ जाता है, जो गति हाव भाव या

[1] रस रत्नाकर पृ० १४४

विभिन्न क्रियाग्रा द्वारा व्यक्त हो जाता है। नेत्र भौंह ग्रादि म विलक्षणता ग्रा जाती है। यथा —

फरकें लगीं खजन सी ग्रँखिया, भरी भायन भौहें मरोरे लगी।
ग्रँगराइ कछू ग्रँगिया की तनी छवि छाकि त्रिनो छिन छोरें लगी।
बलि जवे पर द्विजराज' कहै मन मौज मनाज हिलोरे लगी।
बतियान मे ग्रानन्द घोर लगी दिन द्वै मे पियूष निचोरें लगी।

ग्रधिक मात्रा मे बढी हुइ कान्ति ही दीप्ति कही जाती है। इसमे स्मर विलास का प्राधान्य रहता है यथा। 'दीपावली तन द्युति निरखि दवकी सी दिखराति। विविध जाति उजरी फिरनि जरी बीजु री जाति।' प्रत्यक दशा की रमणीयता को 'माधुय' कहत हैं। इस माधुय से शोभा का विकास होता है। यथा ' तिरछे चलि लह्रि वकता करि चचलता मान। ग्रधिक मधु मयी बनति है ललना की ग्रँखियानि।[1]

उपयुक्त चारो गुणा के मूल म वर्णित शोभा कामपरक दृष्टि से स्पष्ट की गई है। यौवनागम स इन गुणा का स्वत विकास होता है। इससे ये यौवन म कामपरक गुण के ग्रन्तगत माने गय हैं।

(ख) लावण्य का निरपेक्ष सौन्दय—

रीतिकाल में लावण्य के स्वरूप का निर्धारण करने के हेतु उसका समुचित चित्र विधान किया गया है। उसके वणन मे ऐसे उपमानो का प्रयोग होता है जिससे लावण्य का मूत विधान हो जाता है। ग्रगो म वतमान छवि, ज्योति ग्रौर ग्रग-दीप्ति का ग्रकन किया गया है। इनके वणन के ग्रप्रस्तुत विधान मे ग्रनेक बातो का ध्यान रखा गया है। ये ग्रप्रस्तुत गुण मूलक, क्रियामूलक ग्रौर प्रकाशमूलक वर्णित किये गय हैं।

गुणपरक उपमानो द्वारा लावण्य को बिम्बात्मक रूप देने के लिए जगर मगर ज्योति, लावण्य के उफान ग्रौर जुन्हाई के धार जस उपमानो का प्रयोग हुग्रा है। यह ज्योति सम्पूर्ण शरीर म व्याप्त होकर सौन्दय-वृद्धक बन जाती है। इसी से इस काल की नायिकाएँ लावण्य युक्त मधुर छवि धारिणी ग्रौर ज्योति पुञ्ज होकर ग्राई हैं। उनके रूप की ज्याति चारा ग्रोर फल जाती है। उनकी छवि की झलमलाहट म दीपावली का दृश्य उपस्थित हो जाता है। पर के तलवों की लालिमा उमड पडती है। ज्योति चारा ग्रोर फल जाती है —

---

[1] रस रत्नाकर पृ० २२०

१ अंग अंग तरंग उठै दुति की परि हैं मनो रूप अबै धर च्वै ।
२ डगर डगर वगरावति अगर अंग,
जगर-मगर आयु आवति विचारी सी । ८१०
३ भौनते निकसि प्यारी पाय धारै बाहिर सौं,
लाली लखि वान री उमडि इत ओर की ।
वगर वगर अरु डगर डगर घर,
जगर मगर भारया भारि दुति ह्वा रही ।
४ थोडी-थोडी वय की निसारी तन गोरी गोरी,
भोरी भोरी बातन सा हियरो हरति है ।
× × × × × × × × ×
जगर मगर ज्योति इन्दु वदनी की दुति,
सघर अवास को प्रकाशित करति है ।
मानो भज्यौ मंजु मन मुकुर महल ताम
अमल अयम महताब सी बरति है ।
चन्द्र शेखर बाजपेयी

अंग दीप्ति के सम्बन्ध म कवियो की दृष्टि एक जसी है । मतिराम ने नायिका के अंग म इसी दीप्ति की शोभा देखी है ।[1] इसकी ज्योति सन्द जलती रहती है ।[2] सुवास म दुति के दुगुन होने की चर्चा है ।[3] घनानन्द ने अंगो के वर्णन म उसम प्रतिभासित होने वाले तरल सौन्दय और गुण का संकेत किया है । अनुभूति की सत्यता से उन्होने नये प्रतीको को जन्म दिया है । देव ने प्यारी के रूप पानिप म मन को नमक के समान विला जाने की बात की है ।[4]

छवि और लावण्य को मूर्त रूप देने के लिए अंग-ज्योति को मशाल की लौ के समान माना गया है । घूंघट हटाने पर यह छवि अचानक ही मशाल की लौ के समान एक बारगी जल उठती है ।[5] हठी की राधा का रूप स्वत

---

1 रसराज छन्द ६ मतिराम
2 बदन चन्द की चाँदनी देह दीप की जोति । ललित ललाम ३३६
3 *सहज सुवास जुत देह की दुगुन दुति दामिनि दमक दीप केसरि कनक है ।* रसराज १६५
4 प्यारी के रूप के पानिप म मन माइन मेरो बिलाइगो लोन सो ।
5 घूंघट टारि चनावती तिय हरि ताकि गुलाल ।
बुझी रही मानो बरी, एक बार मशाल । भूपति सतसई ४७२

स्वर्ण मंदिर मे फनना रहता है।[1] उनका लावण्य और मुखच्छवि चारु किरणो की कतार को बिखेर देती हैं।[2] मणि के सिंहासन से निकलती हुई ज्योति के संग मुख की ज्योति मिलकर अपूर्व शोभा का उद्घाटन कर देती है। इस छवि म वभव सम्पन्नता, स्वप्रकाश्य गुण और गति की अपूर्व शोभा वर्तमान है।

गति-सम्पन्न ज्योति म स्थिरता न होकर गतिशीलता है। इसमे ज्योति युक्त छवि की क्रियाशीलता देखी जा सकती है। अगो मे 'दुति' की तरगें उठती हैं। ऐसा लगता है, मानो रूप अभी चू पडेगा।[3] द्विज देव की नायिका के लावण्य से जुन्हाई की धार प्रवाहित होने लगती है।[4] इन वर्णनों में दुति की गतिशीलता प्रत्यक्ष रूप स लक्षित हो जाती है। इसका एक चित्र उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त रूप क फलने मुख से किरण जाल क निकलने, जुन्हाई की धार प्रवाहित होने आदि म छवि की यही गतिशीलता दिखाई पडती है। पद्माकर की गति छवि और शब्द दोनो की ही है। व्रज ठाकुर के पास जाती हुई ठकुराइन के अग अग से रोसनी निकलती है।[5] अग की शोभा फल जाती है।[6]

स्पष्ट है कि रूप-लावण्य के वर्णन म उसके प्रकाश गति और गुण का ध्यान रखा गया है। कही कही रग-सकेत भी है। इसमे मुख्यत उज्ज्वल वर्ण की आभा का ही वर्णन जुन्हाई या उजेरी चद आदि के उपमानो द्वारा किया

---

1 हठी' व्रज मण्डल मैं रूप वगराय आज,
बठी जात रूप के महल महरानी है।
श्रीराधा सुधाशतक छद २२

2 राधे महरानी बठी मणि के सिंहासन प, फली मुख चारु किरन कतारे हैं।
अङ्गादर्श छन्द १०६ रग नारायण पाल

3 अग अग तरग उठे दुति की, परिहैं मनो रूप अब धर च्व। घनानन्द

4 भीतर भौन ते बाहिर लौं द्विज देव' जुन्हाई की धार सी धावति।
री० का० सग्रह से

5 ये अग अग की रोसनी मे सुभ सोसनी चीर चुभ्यो चित चाइन।
जानि चली व्रज ठाकुर प, ठमका ठुमकी ठमकी ठकुराइन।
जगद्विनोद-पद्माकर

6 आली और आभा भई है वदन पर, जगर मगर जोति होति अग अग की।
वहत् इतिहास भाग ६ पृ० ३२३

गया है।[1] रूप के ज्वार से सौंदर्य व्यञ्जित किया गया है। अगा म याप्त रहने वागी शोभा का रूप चित्र प्रस्तुत किया गया है। रूप लावण्य के गुण और गति दोनों का ही नान कराया गया है। स्वत प्रकाशित होने वाले लावण्य के प्रभाव मूलक गुण को यक्त करने क लिए रूप म चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाले गुण का सकेत किया गया है। अत इस काल के रूप लावण्य वणन मे तरलता, गतिमयता वभव की चमक और नमकीनपन है। इसी से लुनाई' का वणन करत नही बनता। वह आखो को प्रिय लगता है। एक बार ऐसे छवि पुञ्ज आलम्बन को दखकर पुन दूसरा कुछ दखना शेष नही रह जाता। आज की या छवि देख भटू अब देखिबे को न रह्यौ कछु बाकी। यही कारण है कि ऐसे रूप के प्रभाव की भी अभियञ्जना की गई है।

रूप का प्रभाव—नारी के रूप की साथकता दशक को पभावित कर लेने म है। रूप वही सुदर होगा, जो अपन आकषण से लोगो के नेत्र और मन दोनों का ही अपनी ओर खीच ल। ऐसा होन पर ही नारी की मोहिनी सत्ता यथाथ मानी जा सकती है। रीतिकालीन कविता म इस मोहकत्व शक्ति और रूप सौंदय के प्रभाव की व्यञ्जना अनेक कवियो न की है। यह यञ्जना नायक अथवा नायिका के वास्तविक सौंदय और उसके तेजपुञ्ज रूप के माध्यम से हो सकी है। इस काल का कवि केवल अगा की स्थूलता मात्र म ही बधकर नही रह गया है अपितु उसके प्रभाव का अनक रूपो मे यक्त करने मे सचेष्ट रहा है। यह प्रभाव मन और शरीर दोनों पर ही पडा है।

रूप के मानसिक प्रभाव की अभियक्ति मे स्नेह की उत्पत्ति मन की अभिलाषा और चित्त के परवश हो जाने की बात का समथन किया गया है। स्नेहोत्पत्ति म रूप का तत्काल और सद्य प्रभाव पडता है। यह प्रभाव दोनो ओर से अभिव्यक्त हुआ है।[2] राधा और कृष्ण दानो के हृदय म स्नह का सचार होन लग जाता है। अ य स्थल पर रूप दशन से सदा निहारते रहन की भावना का उदय होता है। गापी अभिलाषा करती है कि समाज काय और लज्जा को छाडकर पल पल और घडी घडी श्री कृष्ण के मुख को ही

---

[1] चली स्याम हित राधिका, सरद उजेरी माँहि।
चद उजेरी मा मिलन नेकु न जानी जाहि। री० का० स० पृ० १४१

[2] घोखे कनी हुनी पौरि लौं राधिका नन्दकिशोर तहाँ दरसाने।
बेनी प्रवीन' देखा देखी भी म सनेह समून दोउ सरसान।
नवरसतरग पृ० ६२ छद ४४७

निहारा करें। वह उनकी आरती उतारते रहने की अभिलाषा व्यक्त करती है[1] उसका मन परवश हो जाता है। रूप के आकर्षण मे खिंचकर 'ललिता' मैन मतवारी हो जाती है।

रूप-दर्शन से उत्पन्न शारीरिक प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। नायक अथवा नायिका के सौदय को देखकर मन इतना आसक्त हो जाता है कि उसका प्रभाव शरीर पर भी पडता है। सौदय और आकर्षण के अभाव में शारीरिक परिवतन सम्भव नहीं हो सकता है। इस परिवतन मे स्तब्धता, विस्मय विमुग्धता माध्यम से देखने की भावना और अन्य अनेक शारीरिक प्रतिक्रियाओं का वर्णन है।[2]

रूप सौदय को देखकर श्रीकृष्ण के मन पर पडते हुए प्रभाव मे स्त ब्धता का यही भाव है। राधा गुलाल की मूठि मार कर' चली जाती है। श्रीकृष्ण हाथ म पिचकारी लिये ही रह जात हैं और उसे चलाने की सुधि भी उनम नही रह जाती। व राधा रूप को देखकर स्तब्ध हो जात हैं।[3] होली के एक अन्य प्रसग पर राधा रूप से प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। श्रीकृष्ण उसे देखकर विस्मय विमुग्ध होते हुए हतचेत से हो जाते हैं।[4] केवल हाथ मलकर रह जात हैं।

---

1 एमी मनि होनि अब ऐसी करौं आली
बनमाली के सिंगार म सिंगारबोई करिये।
कहैं पदमाकर समाज तजि काज तजि
लाज को जहाज तजि डारबोई करिये।
घरी घरी पल पल छिन छिन रैन दिन,
नैनन की आरती उतारबोई करिये।
इन्दु त अधिक अरविन्द त अधिक,
ऐमो आनन गोविन्द को निहारबोई करिये। जगद्विनोद छन्द ६४६

2 सनेहसागर पृ० १६

3 पिचका लियई रहै रह्यो रग तोहि देखि,
रूप की घसक लागे थके है धसरि के।
कौंधि 'घन आनन्द' का भिजयौं हसनि ही मे,
हाथ किया लालहि गुलालहि मसरिके। घन आनन्द।

4 गारी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल मूठि,
तानि के चपल चली आनन्द उठान सा।

दूसरी ओर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का प्रभाव नायिका के मन पर भी व्यक्त किया गया है। उसे देखकर नायिका के शरीर में अनंग की दाँवरी सी आ जाती है उसके हृदय में पीड़ा सालने लगती है।[1] वे अन्य माध्यम से देखकर अपनी रूप दर्शन की भावना तृप्त कर लेती हैं।[2]

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि रीतिकालीन काव्य में रूप-सौन्दर्य के प्रभाव की व्यञ्जना अभिधेय रूप में न होकर व्यंग्य रूप में हुई है। अभिव्यक्त भावों से रूपोत्कर्ष का आभास मिल जाता है। यह आभास ही रूप-सौन्दर्य के प्रभाव को स्पष्ट करने में समर्थ होता है। यह रूप की क्षण-क्षण की नवीनता द्वारा व्यक्त किया गया है।

नवीनता—रीतिकालीन काव्य में छवि की नवीनता के द्वारा रूप के अतिशय की व्यञ्जना की गई है। इससे रूप की महत्ता बढ़ती है आलम्बन के प्रति मुग्धता का भाव आता है उसका महत्त्व बना रहता है और एकरसता के कारण ऊब उत्पन्न नहीं होती। प्रायः दैनिक अनुभवों से यह सिद्ध होता है कि एकरसता और अनाकर्षण आलम्बन के महत्त्व को गिरा देता है। अतः आलम्बन के महत्त्व को बनाये रखने के लिये रूप-छवि की नवीनता का वर्णन

बायें पानि घूँघट की गहनि चहनि आट,
चोटनि करति अति तीखे नैन बान सौं।
कोरि दामिनीनि के दलनि दलमलि पाय
दाय जोति आय झुंड मिलि सयान सौं।
माडिब के लेख कर औडिबाई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं।

1 सिर मोरपखा मुरली कर लै, हरि दै गयो भौरहिं भावरी सी।
कहि तोप तहीं जबही ते चली, अंग अंग अनंग की दाँवरी सी।
नट साल सी सालि रही न कढ़ै चढ़ि आवति है तन ताँवरि सी।
अखियाँ में समाइ रही सजनी वह मोहिनी मूरति साँवरी सी।
नवरस तरंग छंद ४२०

2 बैठी हुती गुरु मण्डली में, मन में मनमोहन को न बिसारति।
त्यौं नन्दराम जू आइ गये बन तें तहँ मोरपखा सिर धारत।
लाज तें पीठ दै बैठी बहू पति मातु की आस तें आस न टारत।
सासु की नैनन की पुतरीन में प्रीतम को प्रतिबिम्ब निहारत।
अ० सा० का नायिका भेद छंद २८६

किया गया है। रीतिकाल मे रूप छवि की इस नवीनता के कई कारण हो सकते हैं--(१) कवियो के जीवन का व्यक्तिगत मोह एव प्रेम (२) अपने प्रिय पात्र के रूप के अतिशय का वर्णन (३) प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना। इन तीनो प्रेरक कारणो से रीतिकाल म जिस रूप छवि की व्यञ्जना की गई, वह नित नवीन बना रहा। यह नवीनता दो रूपो मे स्पष्ट हो सकी है।

(१) निकट से देखने पर नवीनता का भान।
(२) प्रत्येक अग की नवीनता और आकर्षण।

रूप छवि के सम्बन्ध म यह सामान्य अनुभव है कि निकट से देखने पर उसकी कमियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। केवल दूर से ही आकर्षण बना रहता है, परन्तु रीतिकालीन नायिका का रूप निकट से देखने पर और खरे रूप म प्रकट हो जाता है--

१ ज्यो ज्यो निहारिये नरे ह्वै ननि,
त्यौं त्यौ खरी निकर सी निकाइ। मतिराम
२ रावर रूप की रीति अनूप नया-नयो लागत ज्यो-ज्यो निहारिय।
त्यौं इन आखिन बानि अनोखी अघानि कहू नही आनि तिहारिय।
घनानन्द

इन उदाहरणो मे स्पष्ट है कि रूप छवि वर्णन म केवल परिपाटी के निवाह का आग्रह न होकर नवीनताजन्य सरसता और आकर्षण का वर्णन हो सका है। रूप का ऐसा वर्णन आश्रय की भावनाओ को उद्दीप्त करके उस आलम्बन की ओर आकृष्ट कर दता है। उसके प्रत्येक अग मे सुन्दरताई दीख पडने लगती है। ज्यो-ज्यो निहारिये जू प्रति अगन, त्यो त्यो लग अति सुन्दरताई।[1]

इस युग का कवि रूप छबि का वर्णन करन मे सर्वाङ्ग अथवा अग प्रत्यग का शुष्क वर्णन न करके उसका बिम्बात्मक रूप भी प्रस्तुत कर दना चाहता है। भिन्न अवयवो का नवीन दृष्टियो से वर्णित सौन्दय अनन्त छबियो को लेकर अवतरित हुआ है। हर बार एक नई कान्ति और ताजगी का अनुभव हो जाता है। यह तभी सम्भव होता है जब कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो का सहारा लता है। ऐसी स्थिति म वर्णन की सजीवता और सचाई प्रत्यक्ष हो जाती है। इस छवि के चित्रण मे वाह्य रूप-सौन्दय और लावण्य की आन्तरिक कान्ति का चित्रण मिलता है। इसी कारण नायिका प्रत्येक बार

---

1 बेनी-प्रवीन।

नवीन छवि धारण करके समक्ष प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार की यह नवीनता दृष्टिकोण की सौन्दर्यपरक मनोवृत्ति का स्पष्ट कर रही है। इसके अतिरिक्त धारम-तत्त्व के प्रभाव में परिपाटी निर्वाह में प्रयत्न पर नीरसता और पुनरुक्ति दीख पड़ती है। ऐसे स्थलों पर रूप-सौन्दर्य के बाह्य चित्रण में प्राप्तचारिक पद्धति एवं उपमानों के प्रस्तुत करने में ही कवियों की वृत्ति रमी है। फिर भी अनुभूत्यात्मक चित्रणों की कमी नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही चित्रणों में कवि की स्वच्छन्द वृत्ति नवीनता का आग्रह लेकर चली है। यही नवीनता रूप छवि के महत्त्व को स्थिर करने में प्रमुख है।

कोमलता—स्पर्शिक सुखानुभूति के लिये मार्दव गुण परमावश्यक है। मार्दव कोमल वस्तु के भी स्पर्श की असहनीयता का कहते हैं। जिस नायिका में यह गुण अधिक होगा उसका सौन्दर्य उत्तम कोटि का माना जाता है। स्पर्श की असहनीयता की दृष्टि से शारीरिक कोमलता की उत्तम मध्यम और अधम ये तीन श्रेणियाँ बताई जा चुकी हैं। कोमलता के उद्भव के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम उत्तम कुल में जन्म लेने से निसर्गगत कोमलता और दूसरी अर्जित कोमलता। अर्जित कोमलता अनुलेपन आदि के सतत प्रयोग से प्राप्त की जा सकती है। प्राप्त की गई यह कोमलता शारीरिक ही होती है। इससे स्पर्श सुख की प्राप्ति हो सकती है। अतः इस कोमलता में त्वचा के स्पर्श का महत्व रहता है। यह कोमलता केवल बाह्य होने से एकांगी है। इस पूर्णता के लिये निसर्गगत कोमलता द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना की जाती है।

निसर्गगत कोमलता का मूलकारण नायिका का उत्तम एवं उच्च कुल माना जाता है। उत्तम कुल में उत्पन्न होने से उसकी कोमलता सर्वाङ्गीण होकर प्रत्यक्ष होती है। शरीर, मन और भावों की यह कोमलता उत्तम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है। रीतिकालीन काव्य में कोमलता की यह सर्वाङ्गीणता अनेक रूपों में प्रत्यक्ष हुई है। इसकी अभिव्यञ्जना दो रूपों में की गई है—

१ असहनीयता के माध्यम से
२ अन्य माध्यम से

असहनीयता के माध्यम से प्रकट की जाने वाली कोमलता अभिधेय न होकर व्यंग्य रूप में प्रकट की गई है। असहनीयता का अर्थ किसी वस्तु के भार को सहन करने की क्षमता का अभाव है। इस अभाव की अधिकता के अनुसार ही सुन्दरता की कोटि का निर्धारण होता है। जिस वस्तु के सग

असहनीयता की भावना उत्पन्न होती है उस वस्तु की प्रकृति के अनुसार ही कोमलता की उत्तमता आदि का स्थिरीकरण होता है। यह असहनीयता रीतिकालीन काव्य म निम्नलिखित रूपा म स्पष्ट की गई है।

(१) भार की असहनीयता
(२) ताप की असहनीयता
(३) स्पर्श की असहनीयता
(४) चक्षु या दृष्टि की असहनीयता

इस काल का कवि कोमलता की अभिव्यञ्जना के लिय असहनीयता के इन माध्यमा के प्रति सदैव जागरूक रहा है। यद्यपि रीतिकाल के शुद्ध कृष्ण काव्य म इतने विभेद सूक्ष्मता के साथ वर्णित नही किय गये है, फिर भी रीतिकालीन सम्पूर्ण काव्य चेतना म यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। क्रमश इन सब पर विचार किया जायगा।

(१) भार की असहनीयता—उत्तम शरीर वाली नायिका जो किसी प्रकार का भार सहन नहा कर पाती है उसे कोमल कहते हैं और इस गुण का कोमलता कहते हैं। यह गुण वस्तु की असहनीयता से उत्पन्न होता है। वस्तु की यह कल्पना रीतिकालीन साहित्य म दो प्रकार से की गई है। प्रथम मूर्त या साकार पदार्थों का सहन न कर सकना और दूसरा अमूर्त पदार्थों का सहन न कर सकना।

मूर्त या दृश्य पदार्थों क भार क अनुसार व्यक्त होने वाली कोमलता स उद्भूत सौन्दय की तीन कोटियाँ बताइ जा चुकी है। जिन्हे उत्तम मध्यम और अधम कोमलता की सज्ञा दी जा चुकी है। ये तीनो प्रकार रीतिकालीन कविता म देखे जा सकते हैं। कचभार द्वारा लक का लचक जाना, बाला के बोझ को सभाल न सकना[1] जावक के भार की असहनीयता और महावर क भार से पता लगा लेना कि किस पग म महावर लग चुका है रीतिकालीन कविता मे वर्णित है। द्विजदेव की कोमलागी जावक भार के कारण धरा पर मन्द गति से पग आग बढाती है। दास की कोमल एव अरुणवर्णी नायिका एक पग मे जावक लग जाने की बात जावक के प्रत्यक्ष दर्शन स न बताकर उसके भार

---

1 (i) पानिप क भारन सभारत न गात लक
लचि लचि जाति कच भारन के हलक।
द्विजदेव रीतिकाव्य सग्रह पृ २६७
(ii) चिन्तामणि' कच कुच भार लक लचकनि
सोहै तन तनक बनक छबि सान की। रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६८

से ही चला पाती है।[1] मतिराम ने बताया है कि भार के डर से ही सुकुमारी अंगराग कुमकुम आदि का प्रयोग नहीं करती।[2] बागड़ में घुंघरार बाड़े और बालों में बोझ के कारण नायिका घर से बाहर निकलती ही नहीं।[3] द्विजदेव ने स्वय अपनी नायिका में भार को भी असह्नीय बताया है। यहाँ तक कि 'बरुनि के भार के कारण आँखें मुँद मुँद जाती हैं।[4]

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ ही शरीर के किसी अंग अथवा प्रसाधन सामग्री के भार की असह्नीयता के कारण सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना की गई है। इस भार का एक भौतिक और मूर्त अस्तित्व होता है फिर भी यह वास्तविक भार की दृष्टि से नगण्य है। सामान्य व्यवहार में इन तत्त्वों को बाधक या असह्नीय तत्त्व नहीं माना है परन्तु इनके माध्यम से नायिका का कोमलता-जन्य सौन्दर्य व्यञ्जित हो जाता है। कहीं कहीं सम्पूर्ण शरीर की कोमलता व्यञ्जित है। द्विजदेव जावक मय, बरुनि पानिप और कचभार की असह्नीयता से युक्त कोमल नायिका के प्रति सभी रसिकों के मन की ललक को व्यक्त कर दिया है।[5] मतिराम ने एक ही छन्द में भार, ताप, स्पर्श और चक्षु की असहनीयता का वर्णन करके नायिका की कोमलता का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत कर दिया है।[6] उनकी नायिका का मुख वातायन से बाहर निकलते मात्र से ही आतप के कारण मलिन पड़ जाता है हवा में आने से लट लचक जाता है और मुख की शोभा मन्द पड़ जाती है।

---

1 (क) दास न जान धों कौन है दीवो चित दुहूँ पाँइन माइन हारी।
आप कह्यौ अरी दाहिन द मोहि जानि परत पग याम है भारी।
री० का० सग्रह पृ० २२७ भिखारीदास

(ख) बोझिल सो यह पाँव लग, तब यौं मुसुकाइ कह्यौ ठकुराइन।
रघुनाथ।

2 भार के डरनि सुकुमारि चारु अगनि मैं,
करति न अगराग कु कुम को पक है। री० का० स० पृष्ट १९६

3 रस रत्नाकर पृ० ७००

4 द्विजदेव तैसिये विचित्र बरुनि के भार,
आधे आधे दृगनि परि है अध-पलक। री० का० स० पृष्ठ २६७

5 रीतिकाव्य सग्रह पृ० २६७ द्विजदव।

6 रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७६ छद १९

भार के इन सभी कारणा म मूर्तिमत्ता रहती है, परन्तु रीतिकाल का कलाकार कवि अमूत तत्त्वा के माध्यम स भी नायिका की कामलता की अभिव्यन्जना करता है।

अमूत अथवा अरूप की भार सम्बन्धी भौतिक सत्ता नहीं होती है। फिर भी कविया ने ऐसे तत्वा का सहारा लिया है। इसका उद्देश्य उत्तम कोटि के सौन्दय एव कामलता की व्यन्जना करना है। शोभा एव रूप के भार की प्रतिक्रियाग्रा का वणन विहारा घनानन्द ग्रोर द्विजदेव ग्रादि कवियों ने किया है। शोभा के भ र से पावा का सूधे ढग से न पडना[1] रूप के भार से मुख का लज्जित हो जाना[2] कटि का लचक जाना ग्रादि का वणन किया गया है। रस लान ने 'दृष्टि पडने मात्र स नायिका की विकलता का वणन किया है। ''क्यो का तन सुकुमारि तनि दमत परत नीठि। दीठि परति यों तरफरति, मानो लागी दीठि।'[3] इस उदाहरण म दीठि लगना मुहावरे के प्रयाग द्वारा प्रयोजनवती लक्षणा का सहारा लिया गया है। इस प्रकार के वणना का उद्देश्य शारीरिक सौन्दय की कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा वण्य वस्तु का प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना होना है। इसस भावात्मक व्यन्जना सरस रूप म प्रस्तुत नही हा पाती है। इसके लिये शाभा रूप ग्रादि के भार का वणन करके लाक्षणिक प्रयोगा द्वारा शोभाजन्य कामलता के अतिशय का ग्रथ ग्रहण किया जाता है। अरूप की इस ग्रसहनीयता से चरम काटि की उत्तम कोमलता अभिव्यक्त होनी है।

उपयु क्त वणन से स्पष्ट हा गया कि भार की असहनीयता के माध्यम से कोमलता की व्यन्जना होती है। यह अपने ही शरीर के अगा का भार

---

1 भूषण भार सभारिहैं क्या ये तन सुकुमार।
सूधे पाँव न पडि सक, शोभा ही के भार।
शोभा ही के भार, चलत लटकत कटि छीनी।
देतो पवन उडाय, जौ न होती कुच पीनी।

2 (क) रूप के भार न हानि हैं सौंही, लजौंही य दीठि सुजान यो फूली।
रीο काο सग्रह पृο ३२० घनानन्द

(ख) 'पानिप' के भारन सभारत न गात लक
लचि लचि जाति कच भारन के हलक। री का पृ २६७ द्विजदेव

3 अग दपण रसलीन

अथवा प्रसाधन सामग्री के भार का मूर्त रूप होता है। ऐसे रूपो म कच, हार,[1] कुच कुकुम जावक आदि के भार का वर्णन है। अमूर्त भार म शोभा रूप आदि का वर्णन किया गया है। भार की इस असहनीयता के साथ ताप की असहनीयता के द्वारा भी कोमलता की व्यञ्जना की गई है।

ताप की असहनीयता द्वारा प्रतिकूल परिस्थिति मे पडी नायिका का चित्रण है। मडन कवि ने लिखा है कि नायिका का स्वर्णिम अग रसोई घर की ताप को सहन नही कर सकेगा। 'यह सोना सो अग सोहाग भरो वहो कस के आगी की आच सहै।[2] इस वर्णन मे शोभा, कांति और कोमलता की व्यञ्जना एक साथ कर दी गई है। व्यञ्जना यह है कि जैसे सुहागामिश्रित सोना अग्नि के ताप के सम्पर्क से गल जाता है उसी प्रकार यह नायिका भी रसोई घर के ताप को सहन नही कर सकेगी। सोना सा अग कहकर शरीर म वर्तमान कांति का बोध कराया गया है। ताप की असहनीयता द्वारा कोमलता की अभिव्यञ्जना की गई है। आतप के द्वारा मुख के मलिन हो जाने म सुकुमारता की प्रथम श्रेणी का वर्णन किया गया है। हार आदि के भार की असहनीयता म 'मध्यम कोटि का सौकुमार्य व्यञ्जित होता है और कोमलतम वस्तुओ के स्पर्श की असहनीयता उत्तम कोटि की सुकुमारता को व्यञ्जित करती है।

स्पर्श की असहनीयता द्वारा व्यञ्जित सौकुमार्य उत्तम कोटि का माना जाता है। इसम कोमलतम वस्तुए भी स्पर्श से दुख देने वाली बन जाती हैं। इसका वर्णन दो प्रकार से किया गया है। प्रथम वास्तविक स्पर्श और दूसरा स्पर्श की आशका। इन दोनो का वर्णन रीतिकालीन काव्य म मिल जाता है।

वास्तविक स्पर्श म वस्तु की उपस्थिति रहती है और उसके सम्पर्क से नायिका की कोमलता व्यञ्जित होती हैं। यह कोमलता उसके शारीरिक

---

1 एक तो तिहारी देही रूप ही हरन मन
तामें में छुटैं ये नन मुकुलि मिलाइ हैं।
हारन के भार सर लचाने नागरी सु
नागरी निमें तें माग नन थहराइ हैं।
'ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य म अभिव्यञ्जना शिल्प' स उद्धृत
पृ० २४८ डा० सावित्री सिन्हा।

2 रीतिकाव्य सग्रह पृ० ६६

परिवर्तनों द्वारा व्यक्त हो जाती है। वरतु और कामल अगा के सम्पर्क मात्र से यह परिवर्तन दीख पडने लगते हैं। 'देवकी नन्दन' ने कहा है कि गाव की चूडी-हारिन गाँव छोडने को तयार है, क्योंकि उसकी नायिका अँगुली के स्पर्श मात्र से सिसकने लग जाती है।[1] इससे वह उसे चूडी पहिराने मे अपने को असमर्थ पाती है। इसमे स्पर्श की असहनीयता द्वारा उत्तम कोटि की कोमलता एव सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना हो सकी है। इसमे कोमलता का सकेत अभिधेय रूप मे न होकर व्यग्य रूप मे है। मतिराम ने 'विजन के बयारि' लग जाने से लक के लचक जाने की बात का समर्थन किया है। कस वह बाल लाल बाहिर विजन आव, विजन बयारि लागैं लचकत लक हैं।[2] वनभद्र कवि के अनुसार नायिका पखा के पवन के स्पर्श से उड जाती है और समीर चले जाने पर तो सौतो की मन चीती हो जाती है।[3] एक अन्य कवि महोदय के अनुसार बात यहाँ तक बढ जाती है कि श्वासा के स्पर्श से नायिका ऐसी गिरती है मानो उसे धक्का दे दिया गया हो। यही कारण है कि वह प्रिय के समक्ष ठहर नही पाती है।[4] लोक सीमा की वास्तविकता का अतिक्रमण करने वाले ऐसे वर्णना के द्वारा उत्तम कोटि की कोमलता की व्यञ्जना भले ही हो जाय, इससे रस सिद्धि नही होन पाती। यह युग की चमत्कारिक प्रवृत्ति का फल है। एसा वर्णन मजाक से अधिक महत्व का नही रह जाता क्योंकि यह वास्तविकता से नितान्त शून्य है।

स्पर्श का असहनीयता द्वारा कामनता की व्यञ्जना करना वास्तविकता के आधार पर ठीक माना जा सकता है परन्तु इस असहनीयता के ऊहात्मक वर्णन के माध्यम से वास्तव मे शरीर पर चोट दिखाना या नायिका को गिरा देना जस वर्णना द्वारा रागात्मक अनुभूति की तृप्ति नही हो पाती है। पद्माकर की नायिका के पगा म मखमल के बिछौनो का स्पर्श गड जाता है और कामल गुलाब की पखुडिया भी प्रतिकूल सिद्ध होती हैं। कामलता के अतिशय

---

[1] वे अँगुरी के छुवे सिसकै करबार सी पातरी जो मैं चढाऊँ।
दन्तन दावती जीभ उत इन प्यारी के नैन रखाई बचाऊँ।
'देवकी नन्दन' माहि बडा दुख कौतुक हाथ सो काहि लखाऊँ।
छोडिहो गाव बबा कि सौं मैं पर चूरी न ह्या पहिरावन आऊँ।
रीति काव्य सग्रह पृ० ३६१

[2] मतिराम—ललित ललाम १२१

[3] रस रत्नाकर पृ० ७००

[4] रस रत्नाकर पृ० ७०१

की व्यञ्जना रागात्मक स्तर पर स्वस्थ और उचित मानी जा सकती है। परन्तु दो पग चलने से परा म छाल पड जाना या पान की बीडी उठाने मात्र से ताप चढ जाना जैसा वरान ऊहात्मक ही माना जायगा। फिर भी इनसे कोमलता की व्यञ्जना तो हो ही जाती है।

वास्तविक स्पश की इस असहनीयता के साथ स्पश से उत्पन्न प्रतिकूल प्रभाव की आशका द्वारा भी कामलता की व्यञ्जना की गई है। बिहारी के वरान म सखी को यह आशका बनी रहती है कि बार-बार करवट लेने से नायिका के शरीर पर गुलाब की पखुडियो की खरौंच लग जायगी। इसम पखुडियो का स्पश भी प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। ऐसे वरान म स्पश की प्रतिकूलता का भय व्याप्त रहता है। कुसुम शय्या पर खरौंच लगने के भय द्वारा इस प्रकार की व्यञ्जना की गई है। मतिराम की नायिका कठोर भूमि पर पग न रखकर कुसुम बिछे पयक पर ही पाव रखकर विहरए करती है। 'चरन धर न भूमि बिहर तहाई जहाँ फूल फूल फूलनि बिछायो परजक है।'[1] इन उदाहरणा स स्पष्ट है कि रीतिकालीन नायिकाए फूल जसे कोमल पदार्थों के स्पश को सहन करने म असमथ थी। ऐसी स्थिति म कठोर पृथ्वी के स्पश की क्षमता प्राप्त कर लेने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। इन प्रसगो से स्पष्ट है कि स्पश की असहनीयता द्वारा कामलता से युक्त नायिका के सौन्दय की मधुर व्यञ्जना की गई है। यह स्पश शारीरिक होता रहा है परन्तु कही कही केवल दृष्टि के स्पश के प्रभाव की भी अभिव्यक्ति हुई है।

रीतिकालीन कवियो की कुसुम कोमल नायिकाए चाक्षुष स्पश के दृष्टिभार को भी सहन नही कर पाती हैं। रसलीन ने कहा है कि नवला नायिका पिय की चितवन को सहन नही कर पाती है। इसीसे वह मुख फेर कर बठ जाती है।[2] इस प्रकार के दृश्य चित्र सौन्दर्योपासक भावना को व्यक्त करते हैं। सुकुमारता के ऐसे वरानो मे जीवन की स्फूर्ति और प्राएा का स्पन्दन दीख पडता है। अन्य स्थलो पर ऊहात्मक वरानो द्वारा चक्षु को स्पशजन्य असहनीयता को चमत्कार क क्षेत्र मे ला दिया गया है।[3]

---

1 ललित ललाम १२१ मतिराम।

2 नवला मुरि बठनि चित यह मन हात विचार
कोमल मुख सहि ना सकति, पिय चितवनि को भार।
रस प्रबाध पृ० ८ छन्द ८६

3 रस रत्नाकर स पृ० ७०१ बलभद्र कवि

उपयु क्त विशेषण से स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियो ने असहनीयता के माध्यम से कोमलता की व्यञ्जना की है । यह असहनीयता भार ताप, स्पर्श और चक्षु की बताई गई है । इन सभी स्थलो पर कविया न अभिधा के प्रयोग का निवारण करके व्यञ्जना अथवा लक्षणा का प्रयोग किया है । ऐसे प्रयोगो द्वारा प्रस्तुत की कोमलता जय शोभा अधिक बढ गयी है । इसीसे रीतिकालीन नायिकाओं की सुकुमारता सर्वाङ्गीण है । इस असहनीयता के अतिरिक्त अन्य माध्यमो परिस्थितिया एव प्रसगा के द्वारा भी कोमलता की यही अभिव्यञ्जना कराइ गई है ।

(ख) अन्य माध्यमों से कोमलता की व्यञ्जना—भार आदि की असहनीयता के अतिरिक्त अन्य माध्यमो द्वारा भी नायिका की कोमलता अभिव्यञ्जित हुई है । इसमे मन की कोमलता और भावनाओ आदि की कोमलता व्यक्त हो सकी है । यह अभिव्यक्ति अनक प्रकार से रीति कालीन कविता म हुई है ।

(१) घनानन्द ने मन की सुकुमारता के लिये उपमालकार का प्रयोग किया है । राधा के मान करन पर सखी कहती है कि माखन सा कोमल मन मान जसे कठोर का को कसे जानता है ।[1] श्रीपति ने भी अलकारों का सहारा लेकर ससार मे प्रसिद्ध कोमल वस्तुओ की कोमलता को नायिका के अगो की कोमलता के समक्ष कठोर बताया है । इनकी नायिका चन्द्र किरणो के समान सुखद एव शीतल है । वह मखन के महल जैसी, गुलाब के पहल जसी और मखमल जैसी मुलायम है ।[2] ऐसे वर्णनो मे कोमलता स्वशब्द से वाच्य हाने के कारण अभिव्यञ्जना की दृष्टि स अभिधेय हो जाता है । फिर भी कोमलता की अभिव्यक्ति होती है ।

भावना का सौन्दय और उसके द्वारा कोमलता की अभिव्यञ्जना शेख रगरेजिन ने एक स्थल पर अच्छे ढग स की है । दूती श्रीकृष्ण से कहती है कि हे काह वह ता तुम्हारे पास आने की बात सुनकर ही नश्रा को मावन *बना लेती है । उसको इस नवल बस म बलपूर्वक उस बश मे कसे किया जा*

---

1 राधे सुजान इत चित्त दै हित म कित कीजति मान मरार है ।
माखन त मन कोवरो है यह वानि न जानति कसे कठोर है ।
सुजानहित ३७२

2 रस रत्नाकर पृ० ७०३

सकता है।[1] इस उदाहरण में 'ऐसी बस कहो कान्ह, कैसे बस कीजिए' द्वारा अवस्था जन्य सम्पूर्ण कोमलता की अभिव्यक्ति हो गई है। मुग्धात्व और भोलेपन का इतना सुंदर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ ही होगा।

आलम की वियोगिनी अपनी सुकुमारता के कारण विरह को सहन करने में असमर्थ होती है और वह नमक सी गलने लगती है, एक अन्य नायिका का मुख भावनाओं की असहनीयता के कारण ओले के समान बिला' जाता है। बिहारी की नायिका के बिछुवे की चाप से उसके पैरों से इंगुर सा चूने लगता है। ऐसे स्थलों पर कोमलता की अभिव्यक्ति वर्ण बोध के माध्यम से की गई है।[2] रीतिकालीन काव्य में वर्ण बोध की प्रचुरता द्वारा अनेक स्थलों पर कोमलता की व्यञ्जना मिल जाती है। द्विजदेव ने गत्यात्मक वर्ण-योजना द्वारा सुकुमारता की अभिव्यक्ति की है। इससे निर्मित चित्र विधान कलात्मक सौंदर्य को व्यक्त करता है। 'भीतर भौन ते बाहरि लौं द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति' पंक्ति में ज्योत्स्ना की धार की गतिमयता स्वयं ही स्फुरित होकर कोमलता एवं सौन्दर्य का मूर्त प्रत्यक्षीकरण कर देती है। इससे शुभ्र वर्णी, तन्वगी और ज्योत्स्ना की तरंगों सी प्रवाहित गतिशील ज्योति से युक्त

---

1 कीनी चाहो चाहिली नवौढा एक बार तुम,
एक बार जाइ तिहि छलु करि दीजिये।
संग कहो आवन सहेली सज आवै लाल
सीखन सीखगी मेरी सीख सुन लीजिये।
आवन को नाम सुनि सावन कियौ है नैना,
आवन कहै सो कैसे आइ जाइ छीजिये।
बरबस बस करिबे को मेरो बस नहीं,
ऐसी बस कहो कान्ह कैसे बस कीजिये।

मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ पृ० २२५

2 (क) पाँव धरै ढरै ईंगुर सो तिन में मनि पायल की घनि जोति है।
हाथ द्वै तीनी लौं चाँदिहू आर त चाँदनी चूनरी के रंग होति है।

नृपशंभु

(ख) परत जहाँई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ सी ढरत जात।
हारन तें हीरन के तारे से कितारन तें
बारन तें मुकुता हजारन झरत जात। पद्माकर

सुकुमारता का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसम प्रवहमान चन्द्र ज्योत्स्ना सी ज्योति असाधारण सौदय की अभिव्यक्ति करती है।

आलम ने सुरतात के वणन म रति केलि के उपरान्त नायिका की श्रमित अवस्था द्वारा उसकी कोमलता को व्यक्त किया है "काम रस माते ह्वै करेरी केलि कीन्ही काह फूलनि की मालिका हू मीडि मुरझानी है।"[1] छद मे नायिका के कुम्हला जान के वणन मे लाक्षणिक पदो की सहायता ली गई है। उपमान 'फूल की मालिका' म उपमेय नायिका का अस्तित्व छिपा हुआ है। इससे रति-केलि की गोपनीयता कुछ अशो मे बनी रहती है। यहा लाक्षणिक पद एव उपमानो के माध्यम से नारी सौदय एव सुकुमारता की सवेदनीयता स्पष्ट की गई है। ऐसी अभिव्यक्तिया द्वारा नायिका के रूप गुण, अवस्था, सुकुमारता आदि का ध्वनित किया जाता है।

उपयुक्त विश्लेपण से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन काव्य मे कोमलता की अभिव्यञ्जना असहनीयता तथा अन्य माध्यमा से की गई है। असहनीयता के अन्तगत वस्तु के सम्पक से शरीर या मन की प्रतिकूलता व्यक्त होती है। यह प्रतिकूलता भार, ताप, स्पश, और चक्षु के सम्पक को सहन करने की अक्षमता को व्यक्त करती है। असहनीयता के भाव को व्यक्त करने मे मूत और अमूत दोनो ही प्रकार की वस्तुआ का सहयोग लिया गया है। शोभा, छवि, लावण्य, रूप आदि अमूत पदार्थों की असहनीयता से उत्तम काटि की सुकुमारता व्यञ्जित हो सकी है और दृश्य तथा साकार पदार्थों द्वारा मध्यम या अधम कोटि की सुकुमारता भार की असहनीयता के माध्यम से व्यक्त हुई है। सुकुमारता को भार की असहनीयता से भिन्न अन्य प्रकार से व्यक्त करन के लिये अलकार योजना, भाव-सौदय, अवस्था और वण योजना आदि का माध्यम ग्रहण किया गया है। इन दोना ही प्रकारा से सौकुमाय व्यञ्जित हुआ है। रीतिकालीन कलात्मक काव्य चेतना के कारण सुकुमारता का स्व शब्द से कथन न होकर व्यग्य रूप मे हुआ है। ऐसे कलात्मक सौदय के अन्तगत लाक्षणिक प्रयोगा का प्राचुय मिलता है। वचन भगिमा, उक्तिवैचित्र्य और मुहावरो आदि के प्रयाग से अनुभूति एव भावो की सवेदनशीलता एव प्रेषणीयता बढाई गई है। उपमेय रूप नायिका की कोमलता और सुकुमारता के माध्यम से शारीरिक एव मानसिक सौदय की अभिव्यक्ति की गई है। इस गुण के कारण आलम्बन का रूप एव सौदय रुचिकर और हृदय-

---

[1] आलम केलि—स लाला भगवान दीन पृ० २५ छन्द ५७ स १९७६ विक्रमी

सकता है।[1] इस उदाहरण में 'ऐसी बस कहौ कान्ह, कसे बस कीजिए' द्वारा अवस्था जन्य सम्पूर्ण कोमलता की अभिव्यक्ति हो गई है। मुग्धात्व और भोलेपन का इतना सुंदर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ ही होगा।

आलम की वियोगिनी अपनी सुकुमारता के कारण विरह को सहन करने में असमर्थ होती है और वह नमक सी गलने लगती है एवं अन्य नायिका का मुख भावनाओं की असहनीयता के कारण ओले के समान 'बिला' जाता है। बिहारी की नायिका के बिछुवे की चाप से उसके पैरों से इंगुर सा चूने लगता है। ऐसे स्थलों पर कोमलता की अभिव्यक्ति वर्ण बोध के माध्यम से की गई है।[2] रीतिकालीन काव्य में वर्ण बोध की प्रचुरता द्वारा अनेक स्थलों पर कोमलता की व्यञ्जना मिल जाती है। द्विजदेव ने गत्यात्मक वर्ण-योजना द्वारा सुकुमारता की अभिव्यक्ति की है। इससे निर्मित चित्र विधान कलात्मक सौंदर्य को व्यक्त करता है। 'भीतर भौन ते बाहरि लौं द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति' पंक्ति में ज्योत्स्ना की धार की गतिमयता स्वयं ही स्फुरित होकर कोमलता एवं सौन्दर्य का मूर्त प्रत्यक्षीकरण कर देती है। इससे शुभ्र वर्णों, तरंगों और ज्योत्स्ना की तरंगों सी प्रवाहित गतिशील ज्योति से युक्त

---

1 कीनी चाहौ चाहिली नवौढ़ा एक बार तुम,
एक बार जाइ तिहिं छ्वै डर दीजिये।
सखी कहौ आवन सहेली सज आवैं लाल
सीतल सीरनी मेरी सास सुन लीजिये।
आवन को नाम सुनि सावन कियो है नैना,
आवन कहै सो बस आइ जाइ छीजिये।
बरबस बस करिबे को मेरो बस नहीं,
ऐसी बस कहौ कान्ह कसे बस कीजिये।

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ० २२५

2 (क) नौंद परें इंगुर सो तिन मैं मनि पायल की धनि जानि है।
हाथ द्वै चीनी सौं धारिए धार तें चाँदनी चूनरी के रंग होनि है।

नृपशंभु

(ख) चरन जहाँ जहाँ धरत है सुप्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ सो ढरत जात।
हारन तें हीरन भरत मोती नारन तें
बारन तें मुकुत हजारन झरत जात। पद्माकर

सुकुमारता का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे प्रवहमान चन्द्र ज्योत्स्ना सी ज्योति असाधारण सौन्दय की अभिव्यक्ति करती है।

आलम ने सुरतात के वणन मे रति केलि के उपरान्त नायिका की श्रमित अवस्था द्वारा उसकी कोमलता को व्यक्त किया है "काम रस माते ह्वै करेरी केलि कीन्ही कान्ह फूलनि की मालिका ह्व मीडि मुरझानी है।'[1] छद म नायिका के कुम्भला जाने के वणन मे लाक्षणिक पदो की सहायता ली गई है। उपमान 'फूल की मालिका म उपमेय नायिका का अस्तित्व छिपा हुआ है। इससे रति-केलि की गोपनीयता कुछ अश मे बनी रहती है। यहा लाक्षणिक पद एव उपमानो के माध्यम से नारी सौन्दय एव सुकुमारता की सवेदनीयता स्पष्ट की गई है। ऐसी अभिव्यक्तियो द्वारा नायिका के रूप गुण, अवस्था, सुकुमारता आदि को ध्वनित किया जाता है।

उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन काव्य मे कोमलता की अभिव्यञ्जना असहनीयता तथा अन्य माध्यमो से की गई है। असहनीयता के अन्तगत वस्तु के सम्पक से शरीर या मन की प्रतिकूलता व्यक्त होती है। यह प्रतिकूलता भार, ताप, स्पश और चक्षु के सम्पक को सहन करने की अक्षमता को व्यक्त करती है। असहनीयता के भाव का व्यक्त करने म मूत और अमूत दोनो ही प्रकार की वस्तुआ का सहयोग लिया गया है। शोभा, छबि, लावण्य, रूप आदि अमूत पदार्थों की असहनीयता से उत्तम कोटि की सुकुमारता व्यञ्जित हो सकी है और दृश्य तथा साकार पदार्थों द्वारा मध्यम या अधम कोटि की सुकुमारता भार की असहनीयता के माध्यम से व्यक्त हुई है। सुकुमारता का भार की असहनीयता स भिन्न अन्य प्रकार से व्यक्त करन के लिये अलकार योजना, भाव-सौन्दय, अवस्था और वण योजना आदि का माध्यम ग्रहण किया गया है। इन दोना ही प्रकारा से सौकुमाय व्यञ्जित हुआ है। रीतिकालीन कलात्मक काव्य चेतना के कारण सुकुमारता का स्व शब्द से कथन न होकर व्यग्य रूप म हुआ है। ऐसे कलात्मक सौन्दय के अन्तगत लाक्षणिक प्रयोगा का प्राचुय मिलता है। वचन भगिमा उक्तिवचित्र्य और मुहावरा आदि के प्रयाग स अनुभूति एव भावों की सवेदनशीलना एव प्रेषणीयता बढ़ाइ गई है। उपमय रूप नायिका की [illegible] और सुकुमारता के माध्यम स शारीरिक एव मानसिक सौन्दय की अभिव्यक्ति की गई है। इस गुण के कारण आलम्बन का [illegible] हृदय-

---

[1] आलम केलि—स [illegible] भगवान दीन [illegible]

आवजक बन गया है। इस सूक्ष्म गुण के अन्तगत माना गया है। इसके अति रिक्त शारीरिक स्थूल गुणा स भी सौन्य उत्कष को प्राप्त होता है।

सौंदय परक स्थूल गुण —सम्पूण नाम रूपात्मक जगत अनन्त सौन्दय का भण्डार है। इस सौंदय निधि के मध्य उत्पन्न होकर बढ़ने वाले मानव की भावनाओ म स्वाभाविक रूप से इसके प्रति अनुराग का आविर्भाव होता रहता है। उसकी चित्तवृत्तिया अपनी रुचि के अनुकूल वस्तु अथवा प्राणी म सौंदय की अनुभूति किया करती हैं। अनुभूति की यह परम्परा आदिम युग से चली आ रही है। मानव देश और काल की सीमाओ म बँधकर युग की भावनाओ एव अपनी व्यक्तिगत अनुभूतिया से अनुप्राणित होती हुई वस्तु के सौंदय का पारखी बनता है। उसके जीवन का सिद्धात, उसकी मा यताएँ उसकी रुचिया आदि ही सु दर अथवा असु दर बन जाने का आधार बनती हैं। वस्तु की उपयोगिता के माध्यम से भी सौंदय का निरूपण एव निर्धारण किया जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक युग मे सौंदय सम्बन्धी धारणाएँ परिवर्तित होती रही हैं। आरम्भिक युग की सौंदय चेतना बाह्य तत्वा को देखकर जागृत होती थी। उत्तु ग पवत शिखरा सागर की उत्ताल तरगा भास्कर नक्षत्रो आदि मे जो सौंदय देखा गया था वह उदात्त' कोटि का था। क्रमश सौंदय का आधार मूक वस्तु की सीमा मे न रहकर मानवीय जगत होने लगा और विधि की अत्यधिक आकषक सृष्टि नारी को सौंदय का के द्र माना जाने लगा। यही कारण था कि आरम्भिक कलाकारो ने भी मानवीय सौंदय के वणन म अपनी रुचि का प्रदशन किया। साहित्य आदि ललित कलाओ के विकास और सृष्टि मे भी व्यक्ति की सौंदय वृत्ति ही काय करती है। सौंदय का अन्वेषण करते हुए मानव ने मुख्यत प्रकृति और नारी को ही अपनी रचना का आधार बना लिया। इन दोना मे भी मानवीय ससर्गों के निकटतम सम्बन्धा के कारण प्रकृति के ऊपर नारी की विजय होगई और मुख्य रूप से समस्त मानवीय सौंदय चेतना नारी के चतुर्दिक के द्रित होने लगी। बाद मे तो प्रत्येक वस्तु को नारी के माध्यम से समझने की चेष्टा की जाने लगी। छायावादी काव्य मे प्रकृति के मानवीय करण का यही रहस्य है कि मानव अ तश्चेतना पर नारी के अमिट सौंदयपरक भाव का प्रभाव जम चुका था। यह प्रभाव इतना बढा कि रीतिकाल म नारी का सौन्दय वणन ही काव्य प्रणयन का एक मात्र ध्येय हो गया। सौन्दय की पूण अभिव्यक्ति के लिये उसके अग प्रत्यग के आकषण के साथ उसकी बनावट सुडौलता समानुपातिकता, समता आदि सौंदय विषयक तत्वा की अभिव्यक्ति मुक्त हृदय स का गई। रीतिकाल में यहीं मे नख शिख

परम्परा का सूत्रपात हुआ। यह नख शिख सौन्य भावना को लेकर अग्रसर हुआ था, परन्तु बाद मे केवल नख शिख वर्णन के निर्वाह के लिये कवियो ने इस परम्परा का अनुसरण किया। परवर्ती साहित्य की नीरसता और रूढ़िवद्धता का यही कारण है।

इन सभी वर्णना का मूल उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। मानव मन अपने विपरीत लिङ्गी की ओर खिचता है। वह नारी की शरीर यष्टि को देखकर उसके विभिन्न अगो मे आकर्षक तत्वो को ढूँढने की चेष्टा करता है, उनका वर्णन करता है और उन उन अगो की बनावट मे सापेक्षता (Proportion), समता (Symmery) सगति (Harmony) और सन्तुलन (Balance) का दृष्टि म रखते हुए विभिन्न उपमानो के द्वारा उसे स्पष्ट करता है। इन उपमाना की योजना म अगो के आकार, बनावट, विशालता, लघुता, मृदुलता, बाँकपन आदि अनेक गुणो का ध्यान रखा जाता है। उपयुक्त चारो तत्वो को प्रत्यक्ष करने के लिये नारी शरीर के अग प्रत्यग का विश्लेषण उसकी चेष्टाएँ, प्रसाधन सामग्री आदि के द्वारा उसके रूप को प्रस्तुत किया जाता है। यही कलात्मक रूप धारण कर के अगो के वर्णन की कवि परिपाटी के रूप मे विकसित हो जाता है। नख शिख वर्णन की यही वृत्ति है। यह नारी के वर्णन मे उसके सौन्य का आधार बनती है। यद्यपि यह बाह्य आधार है फिर भी इसकी महत्ता अस्वीकार नही की जा सकती है। नख शिख वर्णन का मूल आधार सौन्दर्यानुभूति है। सौन्दय बोध से शृगार भावना का आविर्भाव होता है। इसका मूल साधन रमणी है। इसीसे रमणी रूप सौन्दय के प्रति रीतिकालीन कविया की इतनी अधिक आसक्ति है। यह आसक्ति नख शिख वर्णन के रूप में प्रकट हुई है।

नख शिख वर्णन शारीरिक सौन्दय का खण्ड खण्ड चित्र है। इन्हीं खण्ड चित्रो के द्वारा सम्पूर्ण शरीर का एक सामूहिक चित्र प्रस्तुत होता है। अनेक खण्ड चित्रो के सयोजन से रूप सौन्दय वर्णन मे पूर्णता आती है। इन खण्ड चित्रो म विभिन्न अवयवो का अपना सौन्दय होता है। इसीसे निजत्व के अस्तित्व म स्थित नख शिख रूप इन अवयवा के खण्ड रूप चित्रो म वर्तमान सौन्दय एव आकर्षण सम्पूर्ण शरीर के सौन्दय की अनुभूति कराते हैं। सौन्दय की इस अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्येक युग के शृङ्गार-कविया ने नख शिख वर्णन मे की है।

नख शिख नाम से प्रसिद्ध अग प्रत्यग वर्णन की यह परिपाटी दो रूपो में दीख पडती है। (१) नख से आरम्भ करके शिख तक का वर्णन करना।

यहा नख का तात्पर्य पर के नाखून से है। इस वर्णन में आलम्बन रूप में ईश्वर आदि को मानते हैं तथा इस वर्णन से उत्पन्न सौन्दर्य आराध्य नख शिख सौन्दर्य होता है। (२) शिख नख-वर्णन--इसमें चोटी से आरम्भ करके पैर के नाखूनों तक का वर्णन होता है। इस वर्णन का आलम्बन मानव होता है और इससे उत्पन्न सौन्दर्य की गणना मानव सौन्दर्य के अंतर्गत होती है। इस दृष्टि से मानव सौन्दर्य को आधार बनाकर किया गया अंग प्रत्यंग का वर्णन 'शिख-नख' के अन्तर्गत होना चाहिए, परन्तु रीतिकालीन कविता में नख शिख वर्णन के नाम से अंगों का वर्णन मिलता है। दो चार ग्रन्थ शिख नख नाम से मिल जाते हैं।[1] मानवीय वर्णन होते हुए भी नियम के अनुकूल 'शिख नख' नाम न देकर नख शिख नाम करण के औचित्य के सम्बन्ध में दो बातें कही जा सकती हैं —

(१) रीतिकाल के आरम्भ में अंग प्रत्यंग के वर्णन के लिए राधा कृष्ण को आधार बनाया गया था जो परम्परा से अवतारी पुरुष हैं। ऐसे पुरुषों के अंग वर्णन का 'नख शिख' नाम देना उचित और समीचीन कहा जायगा। कवियों ने ऐसे वर्णनों का नाम नख शिख रख दिया और बाद में यही नाम देने की पद्धति चल पड़ी होगी। इससे इस नाम की समीचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता है।

(२) कवियों के द्वारा स्वयं भी 'शिख नख' नाम न देकर 'नख शिख' नाम ही दिया गया है। इस दृष्टि से भी यह नाम उचित है। रीति युग के उत्तरकाल में श्रीकृष्ण के नख शिख का स्वतन्त्र वर्णन मिलता है। इसमें नायक रूप में कृष्ण के अंग प्रत्यंग का वर्णन, आभूषणों से युक्त अंगों की शोभा का वर्णन और मानसिक शोभा का वर्णन किया गया है। हृदय का एक वर्णन यहाँ पर्याप्त होगा—

> ग्वाल कवि कधों आप जागी की गुफा है
> ताम ह्वै रह्यौ प्रकाश महातेज के समाज को।
> कधों वेद विमल कमल दल हू ते मृदु
> मंजुल हृदय है थौं मुकुन्द महाराज को।[2]

---

[1] (क) शिख-नख—केशवदास नागरीदास रस आनन्द रसिक मनोहर और सुजान कविकृत।
(ख) हनुमान शिख नख —खुमान। शिख नख दर्पण—गोपालकृत

[2] कृष्ण जू को नख शिख—छन्द २४ ग्वाल कवि।

वरान की ऐसी अलकारिक परम्पराएँ परवर्ती साहित्य मे रूढ़िमात्र रह गई। अग-वरान म दूर की सूझ, उक्ति चमत्कार और कल्पना की उवरता देखी जाने लगी। इस ग्रथ की सिद्धि के लिये काम के सहायक ग्रगा का मासल ग्रनावृत सौन्दय वरान का विषय बना। नायिका के तिल को कुचा के कोर पर देखकर इसी भावना की पुष्टि की गई है।[1] यहाँ प्रयुक्त ग्रप्रस्तुत चित्र योजना से ग्राकषक बिम्ब विधान हुआ है। सादृश्य का इतना सफल और उपयुक्त वरान कम स्थाना पर मिल सकेगा। इस उदाहरण मे कुच कोर की समता कली से करके ग्राकार साम्य के साथ कली के स्पश सुख की ग्रानन्ददायकता की ग्रभिव्यञ्जना हुई। कली शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। यह नायिका के ग्रगा के ग्रछूतपन का सकेत करता है। तिल को भ्रमर बताने मे वरा का सादृश्य है। ग्रप्रस्तुत की ऐसे सादृश्य विधान द्वारा कलात्मक सौन्दय की ग्रभिव्यक्ति हुई है। ग्रग वरान की इस दौड म शरीर का कोई ग्रग कवियो की दृष्टि से बच नही पाया है। तिल ग्रौर ठोडी के गढे ग्रादि का वरान इनकी पैनी दृष्टि को बताता है। ग्रग वरान के विस्तार के साथ कवियो की चमत्कारिक ग्रन्वेषक बुद्धि का सूक्ष्म भोग परक रूप सराहनीय था, कल्पना की उवरता प्रशसा के योग्य थी, सौन्दर्यानुभूति को कलात्मक सौन्दय के काव्यमय रूप देने मे वरान की विविधता ग्रौर नारी की व्यापकता ग्रसीम थी। ग्रालम्बन उन्हें पहले से ही प्राप्त था। उस ग्रालम्बन को युग की प्रवृत्तियो ग्रौर विचारो के ग्रनुकूल बना लेने की क्षमता इन कवियो ने पा ली थी। इसीसे इनके वरानो मे सचाई ग्रौर ईमानदारी ग्रधिक है। ग्रत कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियो की सौन्दय चेतना सूक्ष्म एव विशद थी। इन्होने नायक के सौन्दय का भी चित्र उपस्थित किया है, परन्तु नायिका के ग्रग एव रूप वरान में इनकी दृष्टि खूब गहराई क साथ जमी हुई है। ग्रगो म तरवा एडी पिंडुली नीवी, चिबुक रसना, कपोल, तिल श्रवरा, नासिका नयन, पलक, बरौनी, मुखमण्डल केश बेनी भाल, भ्रू ग्रधर, दशन, वाणी, उदर, कठ, भुजमूल, बाहु, मणिबन्ध, करतल कुच, कुचकोर, स्तन, त्रिवली नाभि, रोमावली, कटि, पाश्व, नितम्ब जघा, मुरवा, गुल्फ ग्रादि का वरान सूक्ष्मता के साथ किया गया है। ग्रगा के रूप चित्र उपस्थित करने के लिय प्रयुक्त उपमाना को प्रकृति

---

[1] नवल बाम कुच कोर पै, स्याम सु तिल छवि देत।
समन ग्रली मानहुँ भली कमल कली रस लेत।

शिख नखावली–छन्द ६८ रामसहायदास

के क्षेत्र से चुना गया है। इन उपमानो म कमल, चाँद, चन्द्रिका मोती हीरा, दाडिम के दान, बिम्बाफल, केसर, बिजली, मिश्री किरण, खजन, चकोर, हरिण, शुक चक्रवाक, कदली, कनक लता भ्रमर श्रीफल आदि का वर्णन हैं। अग-वर्णन म उत्कर्ष लाने के लिये आभूषण अनुलेपन आदि उपकरणो एव अग का विशिष्ट चेष्टाओ का ध्यान रखा गया है। आभूषणो म हार, सीसफूल पायजेब, घु घरू मुरकन, सुलफ, बिछिया ग्नवट नीवी डोरा किंकिनी बाजू बन्द, मुदरी चम्पाकली, कर्णफूल, बेसरि क्षुद्रघण्टिका आदि की जगमगाहट व ध्वनि फलती रही है। इनमे प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रत्नो की जगर मगर ज्योति और आभा तन द्युति को बगाकर मोहक एव मादक वातावरण की सृष्टि कर देती है। अनुलेपन के सुगधित द्रव्यो मे केशर कस्तूरी इत्र, कपूर, चन्दन तथा अन्य सुगधित पदार्थों के साथ जावक मेहदी कमल पत्र, पान बिन्दी, सिन्दूर आदि लगाकर अग शोभा बढाई गई है। अग की मोहक चेष्टाएँ नायिका के सौन्दय को बढा देती है। मुसकान बक्रिम दृष्टि अगराई लेना, वाणी का विलास आदि विभिन्न अनुभावो आदि स अगो म मोहकता आ जाती है। शरीर के रूपरग, कान्ति सौकुमार्य गठन सुडौलता सुघरता आयु तन द्युति आदि के वर्णन अगो मे आकर्षण उत्पन्न करते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियो ने नख शिख वर्णन म अग प्रत्यग उनम प्रयुक्त होने वाले आभूषणो, सादृश्य रूप म लाये गये उपमानो अनुलेपन एव गन्ध द्रव्यो शरीर की मोहक चेष्टाओ, और अगो म वर्तमान कान्ति एव आभा आदि का वर्णन किया है। अत स्पष्ट है कि नख शिख वर्णन म नायिका के अगो का सौन्दय पूर्ण कथन होता है। अगो की सुन्दरता स रति भाव की उद्दीप्ति होती है। यदि नख शिख द्वारा अग प्रत्यग की सुन्दरता वर्णित न हो तो ऐसी स्थिति मे नायिका के उपस्थित रहने पर भी रति भाव के सचार म पूर्ण योग प्राप्त न हो। अग-सौष्ठव से ही माधुर्य और आकर्षण की उत्पत्ति होती है। इसी से नख शिख द्वारा सौन्दय की अभिव्यक्ति हो पाती है। इस नख शिख का सक्षिप्त सकेत यहा किया जायगा।

रीतिकालीन नख शिख गत सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु शरीर के कुछ अगो क आकार आदि का सौन्दय प्रस्तुत किया जा रहा है। शरीर के विभाजन की दृष्टि से उसे तीन वर्गों म बाट सकते हैं। (१) उत्तमाग-इसके अन्तर्गत मुख्य अग नत्र है (२) मध्यवर्ती अगो म स्तन और अधोवर्ती अग म नितम्ब और चरण आदि हैं। इन्ही अगो के वर्णन स रीतिकालीन दृष्टि स्पष्ट हो जायगी।

नेत्र—शारीरिक स्थूल अगा म सौदय परक दृष्टि से नेत्र की महत्ता सवमान्य है। इसक लिये प्रयुक्त उपमाना की सौदय दृष्टि स्पष्ट है। इसी स आदश रूप म नेत्रा के गुणा की कल्पना और वणन किया गया है। नेत्र के सौदय वणन मे कवियो की तीन दृष्टियाँ रही हैं (१) आकार या रूप परक (२) गुण परक (३) व्यापार परक।

आकार और गुणपरक दृष्टि—आकारगत विशेषता की अभिव्यक्ति मे रूप साम्य पर दृष्टि रमी है। आकार मूलक उपमाना का प्रयोग कम ही हुआ है। आकार की विशदता का अधिक ध्यान रखा गया है। इसमे नेत्रा के लिये दीरघ नयन, विशाल लोचन बडी-बडी आखें, बडे दृग, कानन लौं अखियानि आदि का वणन मिलता है। इनसे चाक्षुप आकार मूलक बिम्ब विधान हो सका है। कलाकार की अनुभूतिया कल्पना और प्रत्यक्ष दशन द्वारा पूर्वानुभूत बिम्बा को जाग्रत करके उन्हे कलात्मक साचे म ढालने का प्रयास किया गया है। काव्य की यह उपलब्धि चित्र योजना वर्ण्य वस्तु स आकपक बन गई है। मूत चित्रा के आधिक्य स स्पश मूलक चित्र का विधान हुआ है। इससे उत्तम बिम्बा द्वारा सौन्दर्याभिव्यक्ति हो सकी है इसी से इस काल म आकार मूलक स्पार्शिक बिम्बो की अधिकता है।[1]

---

1 (क) थोडी सी सुदेश वेप दीरघ नयन केश,
गौरी जू सी गोरी भारी भाव जू की सारी सी।
री का सग्रह पृ १४८ केशव

(ख) लोचन लोल बिशाल बिलोकनि, का न बिलोकि भयो बस माई।
वही पृ १७७ मतिराम

(ग) ते हरिदास बसे इन ननननि, एते बडे दृग राधिका तेरे।
वही पृ २२४ दास

(च) बेनी प्रवीन' बडे बडे लोचन बाकी चितौन चलाकी की जोर है।
साची कहैं ब्रज की जुवती, यह नन्द लडतो बडो चित चोर है।
वही पृ २४६

(ङ) कानन लौ अँखिया य तिहारी हथेली हमारी कहा लगि फैलिहैं
मूँदे तऊ तुम देखनि हौ, यह कोर तिहारी कहाँ लौं सकेलिहै।
वही पृ ३८७

(छ) ठाढे हो तो सा कहौंगी कछू अरे ग्वाल बडी बडी आखिन वार
वही पृ ३६६ रघुनाथ

रीतिकाल मे नत्रा की गुणपरक दृष्टि को बताने के लिये उसके वण का कथन हुआ है। श्वेत श्याम और रतनार नेत्रा द्वारा आकषण उत्पन्न किया गया है। कमल आदि उपमाना के माध्यम से आकार और शीतलता की व्यञ्जना की गई है। इसमे गुण साम्य की महत्ता यक्त की गई है। सारूप्य मूलक अलकारा म गुण का ही समावेश होता है। नत्रो के गुणो म लज्जा अनुराग, रसाद्र ता आदि हृदय की आतरिक अनुभूतियाँ वर्णित है। लजीली रसीली छके दृग गरवाई भरे नयन, आसव-घूमर नयन आदि का वणन है। आकार से उनके बाह्य गुण और विशेपताओ से उनके आतरिक गुण का सकेत किया गया है। नेत्रा की सौदय सत्ता वस्तुनिष्ठ रूप म स्वीकार की गई है। इससे उसके गुण परक सौदय का नान हा जाता है। नेत्रा के यापार परक वणन मे उसके प्रभाव के बारे मे लिखा गया है। इसम नत्रा की नियाओ का वणन किया गया है। इमका आधार निया साम्य है पर तु इसके प्रभाव की यञ्जना म रूप और गुण साम्य की महत्ता भी स्वीकार की गई है। नेत्र व्यापार स उत्पन्न प्रभाव दा प्रकार का है (१) प्रियता मूलक (२) मादक। दोना ही प्रतिक्रियाए सौन्य के आधार पर अनुभूतिमूलक नियाए है। इससे आश्रय के मन की भावनाएँ स्पष्ट होती है। विशाल नत्र से वशीभूत होन का वणन है। कही कही नेत्र यापार द्वारा सचमुच म शरी पर प्रभाव व्यक्त कर दिया गया है।[1] एसा वणन विशप ग्राह्य नहा माना जाता है। यह वणन मजाक जसा प्रतीत होता है। नेत्रा क चितवन के प्रभाव का विपमूलक

(vii) घूँघट उघारि मुख लखि लखि रहै एक
 एक नगी नापन बडार्ग अँखियान की।   वही   ४०२ शभु

(viii) सावरे सु दर रप अनूप रसाल बडे बडे चचल नन री। वही देव

1 (क) राविका के दृग खेल म मूदे नदकुमार।
 करनि लगी दृग कोर सा भई छेद उर पार।

री का सग्रह पृ १८०

(ख) पन अनियार प सहज कजरार चग
 चोट सी लगाई चितवनि चवलाई की।

री० का० पृ० २०५ देव

(ग) काजर द जनि ए री सुहागिन। आँगुरी तरी कटगी कटाछन।
 रीति काव्य सग्रह पृ० ३६७ मुबारक

बताया गया है।[1] नेत्र के प्रियतामूलक प्रभाव में उसकी गुणपरक दृष्टि अपनाई गई है। नेत्र घनसार के समान शीतलता उत्पन्न करने वाले हैं।[2] इससे 'मूठि सी मार' दी जाती है। नव चित तिरछी करि दीठि चलो गयो मोहन मूठि सी मार।[3] नेत्र के अनेक व्यापारों में देखना हँसना, रोना, रोष प्रकट करना, मोह लेना लज्जा करना, गभीर बनना आदि वर्णित है। भावों के वाहक रूप में नेत्र व्यापार की महत्ता निर्विवाद है। इन क्रियाओं से शोभा बढ़ती है और रूप निखर कर सबको लुभा लेने में समर्थ हो जाते हैं। इसीसे नेत्रों की चपलता चंचलता और लालचीपन का अनोखा सौंदर्य वर्णित है।[4] ललित किशोर जी ने एक ही छंद में नेत्र के सभी गुणों का वर्णन एक साथ कर दिया है।[5] इससे स्पष्ट है कि नेत्रों के इन बहुमुखी व्यापारों से नायक या नायिका दोनों के ही सौन्दर्य की वृद्धि होती है और प्रेम का उद्दीपन उचित रीति से हो जाता है। नेत्रों की स्थिति मुख पर होने से मुख की महत्ता का वर्णन भी हुआ है।

---

1 काहू कुरी जिन मानो निहोरा, विलोकनि मे विष बीस बिस है।
केशवदास संग्रह पृ० १४६

2 (क) एक घरी घन सो तन सों अँखियानि घनो घनसार सो दयो।
मतिराम

(ख) सीर करिवे को पति नैन घनसार कह्यो,
बाल के बदन विलसत मृदुहास है। मतिराम

3 रीतिकाव्य संग्रह पृ० ३३२

4 चचल चपल ललचोहैं दृग मूँदि राखि
जौ लौ गिरधारी गिरि नख पर धर हू रा।

5 लजीले, सकुचीले, सरमाले सुरमीले से,
कटीले और कुटीले चटकीले मटकीले हैं।
रूप के लुभीले, कजरीरे, उनमीले
बरछीले, तिरछीले से फँसीले औ बसीले हैं।
'ललित किशोरी' झमकीले जरबीले मनो,
अति ही रसीले चमकीले औ रंगीले हैं।
छबीले, बँकीले अरुनाले से नसीले आली,
नैना नंदलाल के नचीले औ नुकीले हैं।
आख और कविगण पृ० २९९ जवाहर लाल चतुर्वेदी साहित्य सेवा सदन, काशी म १९८९ वि०

मुख—प्रेम व्यापार में आंतरिक भावनाओं की बदलती हुई स्थिति का स्पष्ट प्रभाव मुख द्वारा लक्षित हो जाता है। मुख आकर्षण का केन्द्र है, ज्ञानेन्द्रियों का संगम स्थल है, भावों के वहन करने का माध्यम है और प्रगट कर लेने का प्रमुख साधन है। विभिन्न अंगों और इंगितों में आह्वान और निषेध का मुख ही संचालक है। सात्विक अलंकारों की शोभा मुख पर बिखर जाती है। शोभा विधायक अन्य गुण मुख पर ही विकास पाते हैं। इससे मुख छवि का विवेचन स्वयं होने लग गया था। मुख की गुणपरक विशेषताओं का वर्णन सभी कवियों ने किया है। कमल की कोमलता शरद की ज्योत्स्ना, गुलाब की सुगन्धि रति का रूप स्वर्ण की कान्ति और सुधा का स्वाद लेकर मुख का निर्माण हुआ है, जिसकी शोभा निरखकर कृष्ण भी चेरे बन जाते हैं।[1] मुख पर ही शोभा कान्ति, दीप्ति, आदि की चमक दिखाई पड़ती है। मुख पर कपोलों की लालिमा, और गोलाई की शोभा का वर्णन है। इनसे भी कपोलों का प्रभाव व्यञ्जित है। कौन 'मतिराम' बिहँसौंह से कपोल गोल बोलन अमोल इतनोई दुख दे गई।' ठाकुर की दृष्टि इस शोभा पर ठहर नहीं पाती "ठहर नहीं डीठि फिर ढटकी, इन गोर कपालन गोलन पै।[2] श्रीकृष्ण इन्हें दर्पण समझकर अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं। प्यारी के गोल कपोल मन को मुग्ध कर लेते हैं "लेत मन मोल कहे दृगन के लोन ऐसे गोरे गोरे गोल बने प्यारी के कपोल है।[3] गोराई के साथ सान की आरसी कहकर उसके चिकने पन और पारदर्शी गुण को संकेत किया गया है। सुबरन आरसी के सीसे से अमोल कसे गोरे गोरे गोल हैं कपाल अलबली के।'[4] स्पष्ट है कि कपोल की सुन्दरता के लिये मृदुता कोमलता, सुकुमारता और कान्ति के साथ उसकी गोलाई की महत्ता है। सम्पूर्ण रूप में कहा सकता है कि ऊर्ध्वांगों में नेत्र मुख कपोलादि काम साधक अंग होने से आकर्षण के केन्द्र हैं और इन्हीं के सौन्दर्य का सभी सौन्दर्य में प्रमुखतम स्थान है।

मध्य भाग के अंगों में स्तनों का महत्त्व निर्विवाद है। मुख्यतः इसके आकार और गुण का वर्णन है। इसके आकार वर्णन में क्रमशः विकास क्रम का ध्यान रखा गया है। काम सहायक अंग होने के कारण यौनोत्तेजक उपा

---

1 रीति काव्य संग्रह पृ० ३६३/२८ ठाकुर
2 रीतिकाव्य संग्रह पृ० ३५९ ठाकुर
3 रस रत्नाकर पृ० ६५९
4 रस रत्नाकर पृ० ६६०

दान के रूप म इनका ग्रहण किया गया है। कमल, पूगफल, बिल्व, गुच्छ कुम्भ, पहाड, घडा, शिव, चक्रवाक, जबीर आदि उपमानो म आकार की महत्ता स्वीकार की गई है। इन उपमानो द्वारा इन्हें उन्नत, पुष्ट, विस्तृत, विशाल और दृढ बताने की चेष्टा की गई है। नख शिख के आकार परक वर्णन के अतिरिक्त स्तनो के निरपेक्ष सौन्दर्य वर्णन म इसे नारी के शोभन और आकर्षक अवयव के रूप मे स्वीकार किया गया है। स्तनो के अकुरित और क्रमश विकसित होने म आकर्षण और यौवन का विकास व्यक्त होता है। यौवन के प्रतीक इन स्तनो को देखकर नायक के आकर्षण और रीझ की बात बताई गई है।[1] इससे नायिका की अवस्था का सकेत मिलता है। उचके कुच कोर' उठनी छतियाँ' आदि का प्रयोग उसके वय सन्धिकाल के अछूते सौन्दय को व्यक्त करता है। चक्रवाक, शिव, घडा जैसे उपमानो से पूर्ण यौवन का बोध हो जाता है।

रीतिकाल म स्तनो के सौन्दय-वर्णन म दो दृष्टिया अपनाई गई हैं। (१) नायक का आकर्षण (२) प्रेमोत्तेजक व्यापार और अनुभावो की अभिव्यक्ति रूप म स्तनो के सौन्दय का वर्णन। इन व्यापारो से शारीरिक आकर्षण का ज्ञान होता है। अनुभावो से मानसिक आकर्षण की अभिव्यक्ति होती है।

---

१ (क) राधा महरानी जी के सुन्दर उरोज आछे
जाकी छवि देखि रीझ नन्दजी के लाला है।
श्री राधा जी का नख शिख। कालिका प्रसाद स्वर्णकार
मतवाविवन प्रस इलाहाबाद सन् १८६६ ई०

(ख) उचके कुच कोरन पै पद्माकर एसी छवि कछु छाई रही।
ललचाइ रही सकुचाइ रही मुख नाइ रही मुसकाइ रही।

(ग) एरी वृषभानु की कुमारी तेरे कुच किधौ
रूप अनुरूप जातरूप के करस हैं।
केशवग्रन्थावली। पृ० २०१ हि० ए० १९५४

(घ) याही है प्रमान 'ताप उपमान आनप्यारी
तरुनाई तरु ताके फल कुच तरे हैं।
रस-रत्नाकार पृ० ६३७

(ङ) सोहत रग अनग की अगनि, ओप उरोज उठे छतिया की।
जोवन ज्योति सी यो दमक, उकसाइ दई मानो बाती दिया की।
सनेहसागर पृ० ४६

(च) अष्टादश छन्द ३१ रगनारायणपाल भारत जीवन प्रेस सन् १८६३ ई०

नख शिख के अंतर्गत शारीरिक आकर्षण की ही चर्चा की जाती है। शारीरिक सौंदर्य का यह वर्णन सभी कवियों ने उत्तेजक रूप में किया है। इसकी प्रभावमूलक व्यञ्जना अपूर्व है। मध्य भाग के अन्य अंगों में बाहु, हाथ, नाभि त्रिवली रोमावली कटि पीठ आदि का वर्णन है। इन अंगों के वर्णन में प्राय परम्परा निर्वाह का आग्रह ही अधिक दीख पडता है। इनका सौंदर्य परक आकर्षक वर्णन न होकर कथन में उपमानों के आधिक्य की व्यञ्जना ही अधिक मिलती है। इससे इनके स्वरूप का चित्र विधान नहीं होने पाता केवल पाण्डित्य या चली आती हुई परिपाटी का अनुसरण मात्र हो जाता है।

अधोभाग के अंगों में भी परम्परा का पालन ही दीख पड़ता है। इसमें कमर के नीचे के अंगों का वर्णन होता है। इनमें जंघा नितम्ब लंक, पद कटि आदि की अनोखी कल्पनाएं की गई हैं इन कल्पनाओं द्वारा लाये गये उपमानों के माध्यम से सौंदर्य का बिम्ब उपस्थित नहीं होता अपितु चमत्कार की प्रवृत्ति ही लक्षित होती है। नीवी, कटि और नितम्बों के वर्णन में कल्पना की उड़ान का सहारा लिया गया है।[1] सौंदर्य चित्रण पर दृष्टि कम नहीं सकी है। कल्पना और अलंकार का आग्रह अधिक है इसके उपमान रूप में चक्रवाक द्विप रूप का नगाड़ा रतिश्रम थामन का ठौर, कामदेव के दरवाजे का चबूतरा और तम्बूरा कहा गया है। कटि सौंदर्य में उसकी क्षीणता की ओर दृष्टि गई है। इसके लिये केहरि, कटि मृणाल के तार मकरी के तार आदि उपमानों का सहारा लिया गया है। केशव ने इसे कपट जैसे अमूर्त अस्तित्व के समान कहा है "कौन है सवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।" तोषनिधि के अनुसार इसका अस्तित्व ही नहीं है।[2] ऐसे वर्णनों द्वारा काव्यात्मक बिम्ब विधान नहीं हो पाता है। अत स्पष्ट है

---

1 (क) राधिका के बरन को नितम्बनि हारि रही रसना कवि जे तके।
क नपशभु जु मरु की भूमि म रत क कूरा भय नदी सेत के।
कधा तमूरन के तबला रगि औधे धर कवि रभा के लेन के।
कचन बीच के पाय मनोहर क भरना है मनोज क खेत के।
नख शिख पृ० ५ नपशभु

(ख) रस रत्नाकर पृ० ६२८-६२९

2 जस भूमि अम्बर क मध्य म न गम काऊ
तस सार नाचना क अर म न लग है।

कि इन अगो के वणन म क्षीणता, कोमलता आदि का सकेत कर दिया गया है, परन्तु कवियो की दृष्टि इसम रम नही सकी है। यही कारण है कि सौदय का चित्र विधान नहीं हुआ है। केवल अग वणन स सन्तुष्टि मात्र हो जाती है।

निष्कष

उपयुक्त वणन के आधार पर यह निणय लिया जा सकता है कि किसी भी युग म किये गये नख शिख का अन्तिम उद्देश्य शृङ्गार के आलम्बन क सौन्दय का वणन है। साहित्य म अधिकाश सौदय चित्र रमणी को ही अपना आलम्बन बनात हैं। रीतिकालीन साहित्य मे नख शिख वणन की एक वनानिक पद्धति है जो अन्य किसी काल क साहित्य म उपलब्ध नही है। सभी अगो के वणन म शरीर क अनुपात का ध्यान रखकर सौदय की अभिव्यक्ति करना नख शिख के नाम से प्रसिद्ध है। सौदय की सूक्ष्म चेतना के साथ अगा की बारीकी और उसे समझान के लिये नई-नई कल्पनाओ का उद्भव हुआ है। सौन्दर्याभिव्यक्ति की यह परम्परा नख शिख देवरति और शिख नख मानव रति इन दो पद्धतियो म रही है। रीतिकाल म कवियो ने नख से शिख तक या शिख से नख तक इन दोनो ही वणन प्रणालियो को अपनाया है।

अग वणन की इस प्रणाली म कवियो क दो दृष्टिकोण दीख पडते हैं। प्रथम अगो का सहज और अप्रस्तुता के योग स स्वाभाविक वणन और दूसरा सौदय प्रसाधनो के साथ अग विशष की शोभा का वणन है। इससे अग-विशेष म आभूषणो द्वारा सौदय की वृद्धि के साथ तत्कालीन अभिरुचि एव आभूषण विषयक सामाजिक प्रवृत्ति का ज्ञान भी हो जाता है। इन दो सिद्धियो के साथ रूप सौन्दय को बताना प्रमुख उद्देश्य है। नख शिख की इस परम्परा म नायक और नायिका दोनो का ही चित्रण हुआ है। एक ओर जहाँ नायिका का शारीरिक सौदय प्रसाधनो से बनता है, वही उसके मानसिक सौदय की ओर भी दृष्टि गइ है। एस स्थलो पर आतरिक वृत्तियो की चचा की गई है। इस प्रकार नायक और नायिका दोनो का ही रूप-वणन मिल जाता है। इस वणन म विस्तार एव कल्पना-वृद्धि का पर्याप्त योग है। चमत्कार की प्रवृत्ति भोगवादी दृष्टिकोण को लेकर अग्रसर हुई है। कवियो का सूक्ष्म निरीक्षण सवेदन शील रहा है। सौदयाकन के विभिन्न पहलुओ का दृढ पूण ज्ञान था।

आगे चलकर नख शिख वणन म केवल परम्परा का निर्वाह होने लगा

सौंदय निरूपण के लक्ष्य से हटकर चमत्कार प्रदर्शन की ओर ध्यान आकृष्ट हो गया। उक्तिवचित्र्य बहुलता प्रदर्शन और अनोखी कल्पनाओं का सहारा लिया गया। नख शिख वर्णन म अलकारो की महत्ता बढ गई। फिर भी इनसे व्यक्त होन वाली सौंदय वृत्ति की स्थिति के सम्बन्ध म सन्देह नही किया जा सकता है।

सर्वाङ्ग वर्णन— अगा का वर्णन व्यष्टि और समष्टि दृष्टि से दो प्रकार का किया गया है। जहा अग वर्णन की व्यष्टि प्रधान दृष्टि है, वहा नख शिख की प्रणाली अपनाई गई है। समष्टि दृष्टि से सर्वाङ्ग का चित्रण हुआ है। ऐसे वर्णनो द्वारा शरीर के विभिन्न अगो का एक समष्टिगत रूप उपस्थित हो जाता है। सर्वाङ्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नायिका का भाल चन्द्र जसा, भृकुटी कमान जसी, कामदेव के पने सर जसे नयन नासिका सरोज जसी दशन बिजली जसे, पकज से पग, हस सी गति माना जसा शरीर और उसमे सुगन्धि का वास है।[1] बनी प्रवीन की दृष्टि म अहीर की छोटी गोरी ने करि से चाल सिंह से कटि चन्द्रमा से मुख कीर से नासा, पिक से बैन मृग से नैन, अनार से दात, बिजरी से हँसी सप से बनी तथा रति की सम्पूर्ण शोभा चुरा ली है। और अब तो इसने कन्हैया का चित्त भी चुरा लिया है।[2] ऐसे सर्वाङ्ग वर्णनो म सभी उपमानो का कथन हुआ है। यह कथन वस्तु परिगणन की प्रणाली पर होने के कारण वर्ण्य वस्तु का बिम्ब विधान करने म सवथा असमथ है। इस प्रकार के कथनो म परम्परा निर्वाह का आग्रह अधिक दीख पडता है। सीधे ढग से कहे गये इस छन्द म उपमानो का सग्रह मात्र है और ऐसा सग्रह काव्यात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का नही माना जाता है। इनमे प्रयुक्त उपमानो के गुणो का सकेत मिल जाता है। यथा सिंह-कटि के कथन मे कटि की क्षीणता का आभास मिलता है। 'चन्द्रमुख' म चन्द्रमा के प्रकाश और शीतलता का गुण वतमान है। अन इन उपमान परक सर्वाङ्ग-वर्णनो म गुणो का ध्यान रखा गया है। इन गुणो द्वारा शारीरिक सौंदय का सकेत मात्र मिल जाता है बिम्ब विधान की रुचि नही दीख पडता है, फिर भी इनसे जो सकेत मिलता है, रीतिकालीन प्रवृत्तियो को देखते हुए यह उचित ही कहा जायगा।

---

1 रस रत्नाकर पृ० ६६८-६६

2 वही पृ० ६६६

चेष्टागत सौन्दर्य—

आत्मगत सौन्दर्य वद्धक उपकरणों के अन्तर्गत आलम्बन और आश्रय के गुण और चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। इनमे गुण की चर्चा की जा चुकी है। चेष्टाओं के द्वारा व्यक्तित्व का आकर्षण बन जाता है। गुणों के रहने पर अनुकूल और प्रिय चेष्टाओं द्वारा रति भाव की उद्दीप्ति हो जाती है और आलम्बन अधिक सुन्दर प्रतीत होने लग जाता है। चेष्टाएँ दो प्रकार की होती हैं—आकर्षक और विकर्षक। इन दोनों में आकर्षक चेष्टाओं से सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है। सयोग की अवस्था में इन चेष्टाओं की आह्लादमूलकता सर्व प्रसिद्ध है। सयोग में इन चेष्टाओं को दो भागों में बाटा जा सकता है—

१ विशेष चेष्टा

२ सामान्य चेष्टा

विशेष चेष्टाओं के अन्तर्गत विभिन्न अनुभावों की गणना होती है। अनुभाव भाव को सूचित करने वाले विकार को कहते हैं। इन विकारों का आभास सत्त्व सूचक आंगिक परिवर्तनों द्वारा होता है। शरीर के इन परिवर्तनों अथवा क्रियाओं को देखकर मन में वर्तमान रति आदि विभिन्न भावों का ज्ञान हो जाता है। वस्तुत ये सभी क्रियाएँ आंगिक ही होती हैं और इनका सम्बन्ध किसी न किसी अंग के सचालन अथवा स्पन्दन से रहता है। सामान्य रूप में भाव के सूचक इन परिवर्तनों को तीन प्रकार की चेष्टाओं में बदला जा सकता है।

१ कायिक चेष्टा।

२ मानसिक अनुभाव।

३ वाचिक चेष्टा।

तीनों प्रकार की चेष्टाओं से मानसिक भावों की ही अभिव्यक्ति होती है। इन चेष्टाओं की अभिव्यक्ति में शरीर के किसी अंग का सचालन अथवा वाणी का उपयोग होता है। शरीर का सचालन अथवा विशेष ढंग से उसमें परिवर्तन करके भावों को प्रेषणीय बनाने की चेष्टा की जाती है। यह चेष्टा भावों को वहन करने एवं प्रेषणीय बनाने के लिए भाषा जैसी ही एक माध्यम का कार्य करती हैं। अपने भावों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए दो प्रकार के साधन प्रयुक्त होते हैं (१) वाणी के प्रत्यक्ष साधन को वाचिक चेष्टा का नाम दिया गया है (२) शरीर के विभिन्न अंगों के माध्यम से प्रेषित चेष्टाओं को कायिक चेष्टा कहा गया है। इनके अतिरिक्त अनेक चेष्टाओं द्वारा मानसिक प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष और सीधा सम्बन्ध रहता है। ऐसी मानसिक भावों की

अभिव्यक्ति करने वाली चेष्टाओं को भी कायिक चेष्टा के ही अन्तर्गत मानेंगे। हास परिहास से युक्त आमोद का भाव, प्रेम क्रीडा और छेड छाड तथा लज्जा और निषेध आदि को इसी के अन्तर्गत मानेंगे।

विशेष चेष्टापरक कायिक अनुभाव—

रति एवं प्रियता के भाव को उद्बुद्ध करने वाले सौन्दर्य के उत्पादक शारीरिक अनुभावों को कायिक चेष्टा कहते हैं। इन चेष्टाओं से दो उद्देश्यों की सिद्धि होती है। प्रथम नायक या नायिका के आकर्षण को बढ़ा देना और द्वितीय मनोगत भावों को अभिव्यक्त कर देना। इन दोनों उद्देश्यों की सिद्धि के लिए की जाने वाली क्रियाओं को ही कायिक अनुभाव मानते हैं। इनमें मुसकान, चितवन एवं कटाक्षपात, अंगड़ाई और तन्द्रा, पद निक्षेप और गति, लज्जा, निषेध आदि मूलक छेड़छाड़, हास परिहास आदि की गणना होती है। क्रमशः इन्हीं चेष्टाओं का रीतिकालीन काव्य में दर्शन का प्रयास किया जायगा।

मुसकान—आलम्बन के आश्रित विविध चेष्टाओं में मुसकान हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करके आश्रय को आमन्त्रण देती हुई उसे अपने मोहक रूप एवं अनुभावों में आसक्त बना देती है। अधर ओष्ठ और नेत्रों के ईषद् विकास से मुसकान लक्षित होती है। यह एक आह्लाद मूलक अनुभाव है जिससे मन की अनुरक्ति और प्रियता का आभास हो जाता है। सुयोग के प्रसंग पर मुसकान उद्दीपक हो जाती है। इससे विशेष अर्थ एवं अभिप्राय की सिद्धि होती है। इस गुण के कारण रूपाकार की शोभा और आकर्षण बढ़ जाता है। यही कारण है कि संयोग के वर्णनों में नायक अथवा नायिका की पारस्परिक मन

मुसकान के प्रभाव से गोपी विभ्रमित हो जाती हैं। वह श्रीकृष्ण की मुसकान रूपी सुधा का पान करके नींद भुला बैठती है चकित होकर देखती रह जाती है और उसकी दशा निष्कम्प दीप शिखा सी हो जाती है।[1] वह तमाल को ही श्रीकृष्ण समझकर आलिंगन करने लग जाती है।[2] श्रीकृष्ण का मद मुसकान करते हुए गोपी की ओर देख लेना उसके पाचो भौतिक तत्वों को उसके शरीर से निकाल देने का कारण बन जाता है। समीर, नीर तेज पृथ्वी और आकाश सभी तत्व उसे छोड़कर चले जाने को तत्पर हो जाते हैं।[3] नेत्रों से जल तत्व और श्वास से समीर तत्व समाप्त हो जाता है। दूसरी गोपी श्रीकृष्ण की मुसकान को सम्भालने में अपने को असमर्थ पाती है और त्रिवाचा मे टेर कर सबको बता देती है।[4] इस मुसकान के प्रभाव से गोपी बावली हो जाती है। सखी सब हँस मुरझाति कहूँ देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि की।' कु जन फिरैया श्रीकृष्ण की मन्द मुसकान को देखकर गोपी उनकी चेरी हो जाती हैं।[5]

दूसरी ओर गोपी की मुसकान का प्रभाव श्रीकृष्ण की प्रतिक्रिया में भी व्यक्त किया गया है। साकरी गली म पिक बयनी नेकु मुड़कर श्रीकृष्ण की ओर देखकर मुस्कराते हुए कुछ कहना चाहती ही है कि कृष्ण एक कांकरी' उसकी ओर फेंक देते हैं।[6] इस प्रसग पर गोपी की मुसकान श्रीकृष्ण को प्रेरित

---

1 जा दिन त छबि सा मुसक्यात कहूँ निरखे नन्दलाल विलासी।
ता दिन त मनहिं मन मैं मनिराम पिये मुसकानि सुधा सी।
नकु निमेष न लागति नैन चकी चितव लिय देव तिया सी।
चन्द्रमुखी न हलै न चलै, निरवात निवास मैं दीप सिखा सी।
रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७६

2 रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७७

3 सासन ही म समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।
रीतिकाव्य सग्रह पृ० २०८ छन्द ४३ देव

4 माई री वा मुख की मुसकान सम्हारि न जहै न जहैं न जहैं।
री० का० स० पृ० ३३२ रसखान

5 नैकु मुसकानि रसखानि की विलोकत ही,
चेरी होत एक बार कुजनि फिरया की। री० का० स० पृ० ३३१

6 मुरि मुसुकाइ के छबीली पिक बनी नकु
करत उचार मुख बोलन को बाकरी।

करने वाली बन जाती है और उनके मन म छेड छाड करने का साहस बढ जाता है। छेड छाड की भावना को प्रेरित करने वाली मुसकान को क्रीडा मूलक कहा जा सकता है।

क्रीडामूलक मुसकान—इसके मूल म पारस्परिक प्रेम का आधिक्य रहता है। दोनो का एक दूसरे के प्रति इतना विश्वास रहता है कि वे आपस मे छेडछाड की भावना से क्रीडार्थ मुस्करा उठते हैं। प्रेमगर्विता या रूपगर्विता नायिकाओं म यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह उनकी चचल प्रकृति को व्यक्त करती है। इसी से आनन्द के सामान्य क्षणो मे मुसकान की यह शोभा देखी जा सकती है। होली के अवसर पर पद्माकर ने मुसकान के माध्यम से एक सफल चित्र प्रस्तुत कर दिया है।[1] रूप गर्विता की सहज मुसकान का वर्णन चिन्तामणि ने किया है 'मन्न के मद माता मोहन के नेह राती, प्यारी मुसकाती आजु डोलति भवन म।[2] इन सभी उदाहरणो म मुसकान का शब्दत कथन हुआ है। कही कही मुसकान अभिधेय न होकर व्यग्य रूप म समक्ष आती है।

पारस्परिक क्रीडा म नायिकाओ की क्रीडा का वर्णन करते हुए रीति कालीन कवि अपनी अभिव्यञ्जना शिल्प को भूल नही पाता है। कही उसका मुसकान वर्णन अभिधेय रूप म और कही व्यग्य रूप मे अपने आकर्षक सौंदर्य से लुब्ध करने वाली बन जाती है। एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होगे —

१ भृकुटि मटकाइ गुपाल के गाल मे आगुरी ग्वालि गडाई रही।

ममारख कवि री० का० स० से

२ ऐसे ही डोलत छल भये तुम्ह लाज न आवत कामरी ओढ़ें।

उपयुक्त दोनो ही वर्णनो म नायिका की मुसकान छिपी है। रस पूर्ण भावो के वाहक प्रयुक्त इन शब्दो को बिना मुस्कराहट के कहा ही नही जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि इस वाक्य के उच्चारण म मुख एव कपोलो का ईषद् विकास अवश्य हुआ होगा। अत यह मुसकान स्वशब्द से वाच्य न होकर व्यग्य रूप म होने से कलात्मक सौन्दर्य और रति वर्द्धक सौन्दर्य दोनो का

ताक री कुचन बीच काँकरी गोपाल मारी,
साँकरी गली म प्यारी हा करी न ना करी। री० का० स० पृ० ३६७

[1] छीनि पितम्बर कम्मर ते सु विदा दई मीडि कपालन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसुकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।

[2] रस रत्नाकर पृ० ६६७ चिन्तामणि।

युगपत् भान करा देती है। रीतिकालीन काव्य म ऐसी पंक्तियाँ अनेक स्थलों पर देखी जा सकती हैं। क्रीडा मूलक इस मुसकान म सहजता वर्तमान रहती है। इसमें बनावटीपन न होकर स्वभावत ही मुसकान की प्रवृत्ति वर्तमान है।

सहजमुसकान—सहज मुसकान अवस्था विशेष मे अपने आप ही स्फुरित होती रहती है। इसमें मुग्धा नायिकाओं की अकृत्रिम मुसकान का सहज सौन्दर्य वर्तमान रहता है। ऐसी मुसकान प्राय दो अवसरो पर रीतिकालीन काव्य म वर्णित है (१) मुग्धा द्वारा अपने अगो को देखकर प्रकट होने वाली मुसकान (२) प्रिय की चर्चा या स्मृति मात्र से उद्भूत होने वाली लज्जामूलक मुसकान।

प्राय मुग्धाएँ अपने अगो को देखकर मुस्करा उठती हैं अथवा सखियों के बीच ऐसा प्रसग आने पर मुसकान स्फुरित हो जाती है। "कहैं हनुमान सखियान ते दुराइ अँगियान को नचवे लैं मुकुर मुसकाति है। अथवा "काम कला प्रकटी अग अग विलोकी हँसी अपनी परछाहीं।[1] इन दोनो उदाहरणों मे मुसकान का कारण अवस्था जन्य सहज प्रवृत्ति है।

प्रिय की स्मृति मात्र से लज्जामूलक सहज मुसकान के सौन्दर्य का वर्णन भी मिलता है। 'पिय नाम सुनै तिय चौमक तें, दुरिक मुरिं मुसकान लगी।[2] प्रिय का नाम मात्र सुनकर मुसकान की इस प्रवृत्ति मे रतिमूलक भावना वर्तमान रहती है। इसी भावना का प्रकट रूप मुसकान है। सहज मुसकान के इस माध्यम से प्रेम की अभिव्यक्ति हो जाती है। ऐसी मुसकान को प्रेम व्यञ्जक मुसकान कहेंगे।

प्रेम व्यञ्जक मुसकान—मुसकान के द्वारा पारस्परिक प्रेम की अभिव्यञ्जना और रति भाव का उद्दीपन होता है। काम की भावना के स्फुरित होने पर नायिका की मुस्कराहट आकर्षण का अभिवृद्धि करने वाली होती है।[3] श्रीकृष्ण की मुसकान को देखने की भावना अभिलाषा के रूप मे प्रकट हो जाती है। गोपी चाहती है कि कृष्ण एक बार मुस्करा कर मेरी ओर देखें।[4]यह मुसकान

---

1 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २३७

2 " " " " "

3 काम कला प्रकटी अग अग, बिलोकि हँसि अपनी परछाही।

ब्र० सा० का ना० भेद पृ० २३७

4 'कालिदास कहै नेक मेरी ओर हेरि हँसि,
माथे धर मुकुट लकुट कर डारि द।

कपोल एव भौहा के विकास से प्रकट हो जाती है। मतिराम ने लिखा है कि मधुर कपोल का मुसकान से नन्दलाल निहाल हो जाते हैं।[1] इससे सहज अवस्था के सौदर्य के साथ उद्दीपक गुण का सकेत भी मिल जाता है। प्रेम व्यञ्जक पारस्परिक अनुभाव मूलक चेष्टाओ मे भौहो की मुस्कराहट का चित्र बिहारी ने बडे अच्छे ढग से प्रस्तुत किया है। [2] मतिराम की वृषभानुलली श्रीकृष्ण के नत्र मिलत ही मुसकान के सग मुख मोड कर चल देती है—

> गहि हाथ सा हाथ सहेली के साथ म आवति ही वृषभानु लली।
> 'मतिराम' सुबात ते धावत नीरे निवारति भौरन की अवली।
> लखिके मनमोहन सो सकुची कह्यौ चाहति आपुन ओट लली।
> चित चोर लियो दृग जोरि तिया, मुख मोरि कछू मुसक्यात चली।

इस उदाहरण मे मुसकान के द्वारा अन्य अनुभावो के योग से सफल प्रेम का चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। पारस्परिक वार्तालाप मे यही प्रवृत्ति दीख पडती है।[3] अचानक भेट हो जान पर मुसकान आमन्त्रण दने वाली हो जाती है। ,वह साकरी कुञ्ज की खोरि अचानक राधिका माधव भेंटि भई। मुसक्यानि भली अँचरा की अली त्रिवली की बली पर दीठि गई।''[4] प्रम व्यञ्जक इस मुसकान की अनक अवसरा पर अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमाधिक्य के कारण ही कभी-कभी वचन से उपहास न करके मुसकान द्वारा ही उपहास कर लिया जाता है।

उपहास और व्यग्य मूलक मुसकान मे नायिका का नायक के प्रति अथवा एक सखी की दूसरी सखी के प्रति उपहास की प्रवृत्ति लक्षित होती है। उपहास का उद्देश्य अपमान न होकर प्रेम की अभिव्यक्ति ही होनी है। ऐसे अवसरो पर नायिका अथवा सखी के स्नेह का प्रदर्शन होता है।

---

[1] नेक मन्द मधुर कपोल मुसिक्यान लगी
नेक मन्द गमन गयन्दन की चाल भो।
वाल तन यौवन रसाल उलहत सब,
सौतिन को साल भो निहाल नन्दलाल भो। मतिराम

[2] बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह कर भौंहनि हँस दन कहै, नटि जाय। बिहारी सतसई

[3] हँसि हँसि करँ बातँ कपोल दोऊ मन्माते,
गौर स्याम अभिराम अग अग हिय उमग
बाढ़ी गाढ़ि अति सरस परस ललचानें।

[4] समारस

उपहाम मूलक मुसकान की अभिव्यक्ति अनेक प्रसगा पर हुई है। नायिका के सौन्दय को देखकर नाइन विस्मय विमुग्ध हो जाती है। उसकी इस दशा को देखकर नायिका की मुसकान म यही उपहास दीख पडता है[1] जो उसके सौदय को और अधिक बढा देता है। इस मुस्कान की प्रेरणा नाइन की मूढता मे मिलती है।

'विभ्रम' मे भी सखी के उपहास का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। प्रिय के आगमन आदि प्रसगा पर त्वरा के कारण भूषण वस्त्रादि का अन्य अग मे धारण कर लेना विभ्रम' कहा जाता है। इस मुसकान का शब्दत कथन और व्यग्य रूप मे व्यन्जना हुई है। दोनो का एक एक उदाहरण देखें —

१ बाघ लई कटि सो बनमाल न किंकिनी बाल लई ठहराइकै।
राधिका के रसरग की दीपति, सग की हेरि हँसी हहराइक।[2]

२ किंकिनी के उरहार किये तुम कौन सो जाय विहार करौगी।

इन दोना म प्रथम उदाहरण म भेदभरी मुसकान का सकेत किया गया है।

व्यग्यमूलक मुसकान म प्राय विप्रलब्धा नायिका की नायक के प्रति तिरस्कारपूण भावना व्यक्त होती है। रति चिन्हा को देखकर केवल मुस्कराकर अथवा मुसकान और वचन के प्रयोग से अपने आक्रोश को व्यक्त कर देती है।[3] हँसी के उड जान म क्रोध की अभिव्यक्ति होती है। 'गोत्र-स्खलन' प्रसग पर इस ढग का वणन मिलता है।

मुसकान द्वारा मान भग अथवा पारस्परिक सधि का सकेत भी रीति कालीन काय म मिलना है। मानिनी राधा के मान को छुडाने मे सखिया योग

---

[1] (क) देव सुरूप की रासि निहारनि पाय तें सीस लो, सीस ते पाँयनि।
ह्व रही ठौरई ठाढी ठगी सी, हँसै कर ठोडी दिए ठकुराइनि।
ब्र० सा० का ना० भेद पृ० २१३

[2] रस रत्नाकर पृ० २३२

[3] आव हँसी हमैं देखत लालन, भाल मे दीन्ही महावर रोरी।
एते बडे ब्रजमण्डल मे न मिल, कहू माँगिहु रचक रोरी।
री० का० सग्रह पृ० २४८

(ख) आई उन मुँहु मैं हँसी, कापि प्रिया सुर चाप सी भौंह चढाई।
आँखिन तै गिर आसू के बूँद सुहासु गयो उडि हस की नाई।
री का स पृ० १७७ छद २३

देती हैं। श्रीकृष्ण ग्राँख मूँद लेते हैं उसके इस अभिनय को देखकर राधा मुसकरा उठती है और दोनों हृदयों म प्रेम का प्रवाह पूववत् प्रवाहित हो जाता है।[1]

उपयु क्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि मुसकान के चित्रण म रातिकालीन कवियो ने अपनी प्रतिभा और कल्पना दोनो की सहायता ली है। इसके अनक भेदा म मुसकान की क्रिया मूलकता और गुण मूलकता पर विशेष दृष्टि रखी है। क्रियामूलक मुसकान म उसके प्रभाव उपहास और व्यग्य, क्रीडा, प्रेम व्यञ्जकता आदि द्वारा मुसकान से बढे हुए सौदय का रूप प्रस्तुत किया गया है। सहज एव स्वाभाविक मुसकान के आतरिक गुण और उल्लास की ओर कवियो का ध्यान गया है। सहज मुसकान म उसके उल्लास, शोभा आदि का प्रभाव कपोल और अधरो पर दिखाया गया है 'हुलास भरी मुसकानि लसै अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।'

मुस्कान का वणन करने मे इस काल के कवियो की दो प्रवृत्ति दीख पडती हैं—

(१) मुसकान के गुणो का वणन—गुण का वर्णन करने म जिन विशेषणो का वर्णन किया गया है वे क्रियामूलक, उपमानो से युक्त और अन्य परिचित विशेषणो से सम्पन्न है। क्रियामूलक मुसकान के लिए लजीली, हुलासभरी, उपेक्षा करने वाली मोहक, कुटिल आदि विशेषणो का प्रयोग हुआ है। गुणमूलक मुस्कान म मृदुता, मिठास माधुय शुभ्रता ताजगी, स्वाभाविकता मोह महिमा से युक्त मुसकान का वर्णन है। मुसकान के वर्णन को आकपक बनाने के लिये उपमाना का प्रयोग हुआ है। मुसकान म फूल गुनकद दारु और कलाकद की मधुरता, शहद और मिश्री की मिठास, सुधा की सरसता अमृत फेन और फूल की उज्ज्वलता व ताजगी कपूर की शीतलता और गन्ध द्रव्यो की सुगधि देखने की चेष्टा की गई है।

(२) मुसकान की क्रिया एव स्वरूप वर्णन म यह स्पष्ट किया गया है कि मुसकान चाँदनी सी चू पडती है, कांति चद्र की कांति को क्षीण कर देती है। अपनी मादकता से सौन्दय को प्रकाशित करती है नायक को रिझाती

---

[1] दग मूदि रहौ चितए जुप मान लला हसि ते हम मूदि रहे।
मुसकाइ कै राधिका आनन्द सौं भुजमाल सौं लाल लपटि गहे।
री का स १६६ छद १४

है रसिको को प्रभावित करती है शारदी ज्योत्स्ना के समान फैल जाती है। इसकी मिठास से रस चू पडता है। हुलासभरी मुसकान अधरो और कपोलो पर थिरकती हुई सम्पूर्ण मुख की शोभा बढा देती है। मतिराम की हँसती हुई नायिका चम्पक की लताओ से गिरते हुए फूल की शोभा धारण करती है।[1] इनसे स्पष्ट है कि शोभा विधायक चेष्टा के रूप मे मुसकान का चित्राकन हुआ है। ऐसी मुसकान के सग चितवन उसकी सहयोगिनी बनकर नायिका के सौन्दय को शताधिक बढा देती है।

चितवन और कटाक्षपात—चितवन नेत्रो की आकषक चेष्टा है। मुसकान और चितवन इन दोनो चेष्टाओ से नायिका के व्यक्तित्व का आकषण बढ जाता है। नायिका की चितवन उसके भावो की वाहिका होती हैं। चितवन की अनुभाव मूलक चेष्टा के अ तगत नत्रो की टकटकी बँध जाना, उनका निर्निमेष हो जाना भौहो का वक्रिम हो जाना और कटाक्षपात करना आदि क्रियाओ का समावेश होता है। चितवन का चित्रण व्यष्टि रूप मे और मुसकान के सग भी किया गया है। मुसकान युक्त चितवन की मादकता बढ जाती है। चितवन मानसिक भावो को प्रकट करन का माध्यम है जिसका प्रधान साधन नत्र है। भावो के अनुकूल नत्रो की स्थिति और उनकी गति, सचालन के ढग आदि म अ तर आ जाता है। नेत्रो के विकास अथवा सकोच से चितवन की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। रूप के आकषण-वृद्धि के साथ खिचाव उत्पन्न होता है। यह उद्दीपक चेष्टा है। इसस शृगार पूण रस काय मे महत्व बढ जाता है। यह प्रेम व्यापार का प्रमुख माध्यम है जो भ्रूनिक्षेप और कटाक्षपात के माध्यम से स्पष्ट होता है। रीतिकालीन काय प्रेम भावना पूण काव्य है। इस काल म प्रेम के सावक व्यापार के रूप म नेत्र की चेष्टाओ का वणन रुचि सम्पन्नता के साथ किया गया है।

रीतिकाल म नेत्र व्यापार रूप चितवन के वणन म दो दृष्टिकोणो को अपनाया गया है। (१) चितवन की चेष्टा के आधार पर उसके विभिन्न भेद और (२) उसकी मोहकता मूलक मुद्रा का वणन।

मुद्रा मूलक नत्रो की स्थिति म स्थिरता होते हुए भी उसम तद्रिल सौन्दय की मादकता वतमान रहती है। इससे आलस्य और तन्द्रा की अभि

---

[1] हसत बाल के बदन म यो छबि कछू अतूल।
फूली चपक बेलि त, झरत चमेली फूल। री का म पृ १८१/५४

व्यक्ति होती है । यद्यपि यह स्पष्ट रूप से चेष्टा जसा प्रतीत नही होता फिर भी अगो की स्पन्दनशीलता के कारण इसे चेष्टा मूलक व्यापार के अन्तगत ही स्वीकार किया गया है । तन्द्रा मूलक इस नेत्र व्यापार का वणन आलस्य, निद्रा, रति मुक्ता एव खण्डिता के प्रसग पर किया गया है ।

प्रात कालीन वला म राधा की रूप माधुरी श्री तन्द्रिलता से उत्पन्न रह केलि से स्लथ और अलसाये नेत्रो का भावमय चित्र प्रस्तुत किया गया है ।[1] रति मुक्ता राधा के नेत्रो का सौन्दय अपने अलबेलेपन म अपूव है ।[2] नेत्रा के निर्निमेष हो जान म उसकी अनोखी शोभा वर्णित है । खण्डिता प्रसग पर श्रीकृष्ण की तन्द्रिल अवस्था का वणन अनेक कवियो न किया है ।

आलस्य से उनीदी आखो के सौन्दय को श्री हठी न देखने का प्रयास किया है । "आलस्य उनीदी हग मू दि चटकाइ कर, सुन्दर सुघर सुकुमारि सेज सो रही ।"[3] इन सभी उदाहरणो मे आलस्य या आनन्द युक्त मुद्रा का जो वणन किया गया है उसम प्रत्यक्षत चितवन के सम्बन्ध म कुछ भी नही कहा गया है फिर भी नत्र के इन व्यापारो अथवा स्थितियो मे अप्रत्यक्ष रूप से नेत्रों की मादकता एव मोहकता का सकेत मिल जाता है । इन मुद्रात्मक चित्रो म सौन्दय के साथ आकपण व मोहकता है ।

चितवन के प्रत्यक्ष वणन म रीतिकाल की अनेक विशेषताएँ हो सकती हैं—

(१) क्रिया मूलक विशेषता—इसे व्यक्त करन के लिये प्रयुक्त विशेषणो म क्रिया का भाव लक्षित होता है । कटीली लजीली अनेक भाव-व्यञ्जक, हँसीली और फरकने वाली चितवन म यही विशेषता दीख पडती

---

[1] रतनारी हो थारी आँखडिया ।
प्रेम छकी रस-बस अलसानी जाना कमल की पाखडियाँ ।

मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ प १६६

[2] बडी-बडी अ खियनि नींद घुरानी ।
अति अनुराग भरी पिय के सग जागत रैन विहानी ।
झपि झपि परत छबीली पलकें, आरस जुत अरसानी
'अलबेली अलि चित्र रही सब नैन निमिष भुलानी ।

अलबेली अली ।

[3] श्री राधा सुधा शतक–६८५८ हठी जी ।

है।[1] घातक चितवन के प्रभाव की तीव्र व्यञ्जना रीतिकालीन कवियो ने की है। मुबारक कवि तो प्रत्यक्षत चितवन की घातक चोट का वर्णन करन लग जाते हैं।[2] एक अन्य कवि न राधा की चितवन से गिरिराज उठाये हुए श्रीकृष्ण के नखो से पवत के गिर जान की आशका प्रकट की है।[3]

(२) गुण-मूलक विशेषता—चितवन के अनेक गुणो की चर्चा इस काल म की गई है। चितवन म वक्र दृष्टि, टेढी चितवन और बक्रिम स्थिति का सौदय देखा गया है। चचल, लुब्ध, रसाल, आलस्ययुक्त, लाज और शील सम्पन्न चितवन के मृदुल गुणो के साथ उसकी तीक्ष्णता का वणन भी मिल जाता है। कोमल और मृदुल गुण सम्पन्न चितवन मुग्धा नायिकाओ मे अधिक देखी जाती है 'दृग लागे तिरछे चलन पग मन्द लाग' जैसी पक्तिया म यह

---

1 (क) सोभा बरसीली सुभ सील सा लसीली,
सु रसीली हँसि हेर हर विरह तपति है। घन आनन्द
(ख) मद जोवन रूप छकी अखिया, अवलोकनि आरस रग रली।
घन आनन्द
(ग) बडी अँखियानि म अजन रेख, लजीली चितौनि हियो रसपागे।
(घ) मारकरि खारि म काकरी की करि चोट चलो गयो लोट निहारो।
पद्माकर
(ङ) वृषभानु कुमारि की ओर विलोचन कोरनि सा चितवै।
चलिवे को घरै न करै मन नकु, घग फिर फेरि भरै रितवै। देव'
(च) फरक लगी खजन सी अँखिया, भरि भामन भौंह मरोरे लगी।
द्विजदेव

2 काहू कैं बाँकी चितौन खुभी, झुकि कालिह की ग्वारिन झाकी गवाच्छिन।
काजर द री न एरी सुहागिन, आँगुरी तेरी कटेगी कटाच्छिन।
आल और कविगण पृ १२ स जवाहर लाल चतुर्वेदी।
साहित्य सेवा सदन काशी स १६८६

3 (क) चचल चपल ललचौह दृग मूदि राखि,
जौ ला गिरधारी गिरि नख प धरै हैं री। वही पृ १६
(ख) तेरे ननि, तेरे बस नाहीं कहौं साचो मैं,
लाल ललिचहैं लखि रूप का उजारी री।
स्वेद कम्प ह्व हैं गिरि गिरिहै अवगु आनु
लगिहैं री कलक, लाग दहैं तोहि गारी री। वही पृ १६

प्रवृत्ति लक्षित होती है। भावों की बोधक चितवन में भौंहों की मरोड़ द्वारा इस प्रकार की प्रवृत्ति का वर्णन है। कुट्टमित अलंकार में भौंहों की ऐसी ही दशा का चित्रांकन हुआ है—

१ सैननि बरचि लई, गातनि थकित भई,
नैननि मे चाह कर बैनन में नहिया। मतिराम

२ भौंहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सों लपटाति। बिहारी

इन दोनो ही उदाहरणों में निषेध मूलक स्वीकृति के भाव की अभिव्यक्ति सैन एवं भौंहो की मरोड़ द्वारा व्यक्त किया गया है। ये दोनो चितवन मूलक व्यापार ही हैं।

(३) प्रभाव मूलक चितवन में इसके ऐसे गुणों की चर्चा की गई है जिसका प्रभाव नायक या नायिका पर तत्काल पड़ जाता है। इनमें दाँव न चूकने वाली चितवन और आक्रोश व्यक्त करने वाली चितवन का वर्णन है।

१ मद भरी अँखियां लाल तिहारी।
तिन सों तकि तकि तीर चलावति, वेधति छतियाँ आनि हमारी।
नागरीदास—आँख और कविगण २२

२ माँज मुबारक दै विष अंजन सीधे से बीध हुए घनश्याम के।
बान चितै दृग तेरे पियारी रहे सर काम के, न कहू काम के।
आँख और कविगण पृ १८

क्रोध को व्यक्त करने में भौंहों की भंगिमा का वर्णन होता है।[1]

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि चितवन का अनेक विध रूपों में सौन्दर्य वर्णित है। मुसकान और चितवन से संयुक्त होकर लज्जा नायिका के सौंदर्य को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

लज्जा—नायिकाओं में लज्जा शील सम्बन्धी भूषण एवं मुख पर अपूर्व आभा उत्पन्न करने वाली होती है। इसे कुलवती स्त्रियों का अलंकार माना जाता है। लज्जा का मूल सम्बन्ध स्त्रियों की अवस्थाओं से रहता है। वय सन्धिकाल में इसका आधिक्य और क्रमशः अवस्था के साथ इसकी न्यूनता होती जाती है। लज्जा की मूल प्रेरणा शृङ्गार भाव अथवा भय से उद्भूत होती है। मुग्धा नायिकाओं में लज्जा की अधिकता और काम की न्यूनता

[1] जागि परी मतिराम' सरूप गुमान जनावति, भौंह के भंगनि।
न सों बातनि नाहिन बाल, सुपोढति आँख अगाढति अँगनि।

होती हैं। क्रमश बढती हुई अवस्था के साथ मध्या और प्रौढा मे काम की अधिकता और लज्जा की न्यूनता होती चली जाती है। लज्जा के बाह्य-व्यञ्जक तत्त्वो मे मुख की लालिमा, नेत्र एव मुख का नत हो जाना और मुख का फेर लेना आता है। शृङ्गार वर्णन मे आवेश के कारण मुख पर रक्त का दौरा बढ जाने से लालिमा मुख की शोभा को बढा देने मे सहायक होती है। यह कुलवती स्त्रियो की सच्चरित्रता को व्यक्त करती है, परन्तु सभी स्त्रियों मे न्यूनाधिक्य मात्रा में लज्जा शोभा की विधायिका बन जाती है। शृङ्गार भाव के अतिरिक्त लज्जा का उदय भय अथवा अपराध भावना स भी होता है। इसमे वय की कोई सीमा नही होती परन्तु अपराधमूलक लज्जा सौन्दय वद्धक चेष्टा के अतगत नही आती है। यह एक प्रकार की आत्म ग्लानि है। अत इसका वणन न करके केवल शृङ्गार मूलक लज्जा का विश्लेषण होगा।

रीतिकालीन साहित्य म शृङ्गार मूलक लज्जा की आकषक चेष्टाओ का सूक्ष्मता के साथ वणन किया गया है। लज्जा का वणन प्राय दो रूपो मे किया गया है (१) कथ्य मात्र म लज्जा का अभिधेय रूप (२) अनुभावो के माध्यम से व्यग्य रूप मे लज्जा का सकेत।

कथ्य मात्र म लज्जा का कथन अभिधा से होता है। इसका ज्ञान आश्रय या आलम्बन के अनुभावो से न होने के कारण यह लज्जा निरूपण का उत्तम ढग नही माना जा सकता है। इसम दशन जन्य आनन्द की अनुभूति नही होती अपितु कवि अथवा आश्रय के कथन से लज्जा का आभास मात्र हो जाता है। दोनो का एक एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

१ श्याम रूप सागर म नैनवार पारथ के,
नाचत तरग अग अग रगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकान लोपी लाज तात,
आज राधे लाल की जहाज डगमगी है।[1]

२ लाजनि ते गडि जात कहू, पडि जाति कहू गज की गति भाई।
वस की थारी किसोरी हरे हरे या विधि नन्द किशोर पै आई।[2]

इन उदाहरणो मे अनुभावो द्वारा लज्जा का चित्राकन नही हो सका है। इससे लज्जा का बिम्ब विधान नही होने पाता है। इस प्रकार के लज्जा

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रिया से—सुन्दरि कुवरि बाई।
[2] 'नवरस,' पद्माकर—२०६, स गुलाबराय, ना० प्र० सभा, आरा। स १९९०

के वर्णन मे लज्जा मूलक सरसता की साकारता नही आ पाती है। इसीसे रीति कालीन कवियो ने इस ढग से इसका वर्णन कम ही किया है। इसके स्थान पर अनुभाव मूलक लज्जा का वर्णन ही अधिक मिलता है।

अनुभाव मूलक लज्जा—मानसिक भावना की अभिव्यक्ति मे लज्जा महत्वपूर्ण कार्य करती है। यह मन की बाह्य चेष्टा है, जो नेत्रों के माध्यम से प्रकट हो जाती है इससे नारी के सौंदर्य की कमनीय कल्पना स्वत ही होने लग जाती है।

व्यक्तित्व के आकर्षण को बढाने म लज्जा आवश्यक चेष्टा होती है। प्राय नेत्र या चितवन के वर्णन प्रसग पर लज्जा का आभास भी मिल जाता है।[1] लज्जा भीनी चितवन म अपूर्व मादकता होती है। इसके प्रकट होने पर नेत्रो के विकास, मन की प्रफुल्लता और अगो के सकुचित होने का चित्र मिलता है। इस लज्जा के वर्णन मे अनेक प्रसगा की अवतारणा रीतिकालीन साहित्य म हुई है।

(१) गुरुजना के सानिध्य म प्रिय दर्शन-जन्य लज्जा।
(२) स्वाभाविक लज्जा।
(३) रति चर्चा से उत्पन्न लज्जा।
(४) शृङ्गारिक चेष्टाओ म भयमूलक लज्जा।

लज्जा के इन प्रसगा का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि लज्जा का निसर्गगत और लोक सानिध्य से उत्पन्न स्वरूप हो सकता है। निसर्गगत या स्वाभाविक लज्जा अन्य व्यक्ति की अपेक्षा नही करती अपितु वय संधि काल म स्वत ही उत्पन्न हो जाती है। मुग्धा नायिकाओ म इसके कारण उनके मुख की शोभा बढ़ जाती है। उनकी क्रियाओ मे एक अनोखापन आ जाता है।[2] प्रिय के सानिध्य म मुख पर सहज लालिमा फल जाती है। वह अगो मे समेट लेना चाहती है। नवयौवना के सुकुमार बदन पर लाज की

---

1 (क) लाजनि लपटी चितवन चित भाय भरी,
   लसति ललित लोल चख तिरछानि म।
  (ख) लाज बढी बढी सील गसीली,
   सुभाय हसीली चित चित लोप।

2 इत उत सकुचित चित चलत डुलावत बाँह।
  दीठि बचाद सखीन की, छिनुक निहारत छाँह॥ बिहारी

ललाई, अगो का सकोच और रोमाञ्च उसकी शोभा को बढा देता है। वह इन्द्र वधूटी के समान सकुचित हो जाती है।[1] कही कही प्रिय से छिपाने मे भी यही लज्जा दीख पडती है। लजीली ललना अपने कन्त को अपनी ओर निरखती हुई देखकर लज्जा के कारण उन्हें देख नही पाती है। परन्तु उसे दूसरी ओर देखत जानकर स्वय देखने लग जाती है।[2] ऐसे प्रसगो पर लज्जा का प्रत्यक्ष रूप उपस्थित हो जाता है। मुग्धा या मध्या नायिकाओं मे इस प्रकार की लज्जा का प्राबल्य दीख पडता है।

अन्य सन्निधि से उत्पन्न होने वाली लज्जा मे लोक-मर्यादा व स्वाभाविकता दोनो ही बनी रहती है। रह केलि स्वय मे भी एक गोपनीय क्रिया है। इस क्रिया की गोपनीयता म एकान्त भाव की नितान्त आवश्यकता होती है परन्तु एकान्तता भग होते ही उसकी गोपनीयता समाप्त हो जाती है। इसीसे लज्जा का स्वाभाविक रूप से उदय हो जाता है। यह लज्जा अनेक रूपो म दीख पडती है।

गुरुजन के सानिध्य मे लज्जा के स्वाभाविक उदय का चित्र अनेक कवियो ने प्रस्तुत किया है।

१ जाति हुती गुरु लोगन म कहु आइ गये हरि कुन्ज गली म।
लाज सो सौंहे चित न सकी, फिरि ठाढी भई लगि आली अली सो।

२ बठी हुती गुरु मण्डली म मन म मनमोहन को ना बिसारति।
त्या नन्दराम जू आय गये वन ते, तहँ मोर पखा सिर धारत।
लाज त पीठ द बठी बधू पति मातु की आखि ते आँख न टारत।
सासु की नैननि की पुतरिन म प्रीतम को प्रतिबिम्ब निहारति।

उपयुक्त उदाहरणा में स्पष्ट है कि अन्य के सानिध्य मे भी प्रिय का देखने की इच्छा बनी रहती है, परन्तु इस इच्छा की पूर्ति लज्जा के कारण अन्य माध्यम से कर ली जाती है। प्रिया प्रियतम की पडती हुई छाया को सास की नेत्रो की पुतली म देख लेती है।

---

1 ज्यो-ज्यो परसत लाल तन त्यो-त्या राखे गोइ।
नवल बधू उर लाज ते इन्द्र वधू मी होइ।
अ० सा० का नायिका भेद पृ० २३६/११६ मतिराम

2 कन्त हर सामुहे तो अन्त हरे चन्द्रमुखी,
अन्त हरे कन्त तन कन्त हरे कामिनी। नवरस पृ० १७३

(३) नेत्रो के माध्यम से अपने अभिप्राय को व्यक्त कर लेने म भी वचनो की कृपणता और अन्य लोगो की उपस्थिति का आभास मिलता है।

कहति, नटति, रीझति खिझति, मिलति, खिलति लजिजात।
भरे भौन म करत हैं ननि ही सब बात। बिहारी

(४) प्रिय के सानिध्य म लज्जा के कारण वाणी स्फुरित नही होती है, परन्तु प्रिय के चले जाने के पश्चात् इस लज्जा के प्रति मन म चिन्ता बनी रहती है। एक गोपी कथनमात्र से इस लज्जामूलक चिन्ता के भाव को व्यक्त करती है।

हाय इन कुञ्जनि मे पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन सम म दुखदायिनी भई री लाज,
चलन सम मे चल पलन दगा दई।—द्विजदेव

इसम सानिध्य के कारण नेत्रा का नय जाना और विछोह के अवसर पर नेत्रों की चचलता व दगा देने की बात से लज्जा व्यग्य रूप मे वर्णित है।

(५) लीला' अलकार म मतिराम ने लज्जा का चित्राकन किया है। नायक की पगडी पहनती हुई नायिका देख लिय जाने पर लज्जित हो जाती है—

प्यार पगी पगरी पिय की धर भीतर आपन शीश सँवारी।
एते मे आगन ते उठिके तह आय गयो मतिराम' बिहारी।
देखि उतारन लागी प्रिया प्रिय सौंहन सो बहुर्यो न उतारी।
ननि बाल लजाइ 'रही, मुसक्याइ लई उर लाइ पियारी।

उपयुक्त विचारा से स्पष्ट हो जाता है कि लज्जामूलक चेष्टा की अभिव्यक्ति म रीतिकालीन कवियो ने उसके अभिधेय एव व्यग्य रूप को प्रस्तुत किया है। लज्जा के माध्यम से मन की सकोचमूलक प्रवृत्ति का आभास होता है। इसस इसकी अभिव्यक्ति अनुभावा क माध्यम से ही होती है। अत अनुभावा द्वारा इसकी अभिव्यक्ति न होकर केवल कथन मात्र से लज्जा का वणन कर देना सौन्दय का जनक नहीं हो पाता है अपितु शारीरिक आकपक चेष्टाओं द्वारा इस लज्जा का सकेत देना सौन्दय एव आकपण का कारण बनता है। ऐसी अनुभाव मूलक चेष्टाओ म नेत्रो का झुक जाना मुख का आरक्तिम होना, वचन की कृपणता ओट म हो जाना मुख पर घूँघट डाल लेना, पीठ फेर लेना, वाणी का स्फुरित न होना केवल नेत्रा से ही बात करना आदि का वणन किया गया है। इस लज्जा के दो कारण—स्वाभाविक एव लोक—सानिध्य बताया जा चुका है। लज्जा का यह स्वरूप स्वकीया और परकीया

दोना मे ही दीख पडता है। परकीया मे अभिसार के समय लज्जा का कारण अन्य लोगो द्वारा देख लिये जाने की आशका है। इससे यह भयमूलक लज्जा है। स्वकीया म यह सामाजिक अपराध नही माना जाता है। इससे इस लज्जा से नायिका का आकर्षण बढ़ता है। स्वकीया या मुग्धादि नायिकाओ मे अनुभावो के द्वारा लज्जा से उत्पन्न सौन्दय एव आकषण द्वारा शोभा बढाई गई है। इन्हीं अनुभावमूलक चेष्टाओ मे 'निषेध का सौन्दय नायक के मन के उल्लास एव आवश को बढाकर नायिका के आकपण की अभिवृद्धि करने में सहायक होता है।

निषेध-मूलक सौन्दय—लज्जा के प्रकरण मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नायिकाओ म शालीनता के कारण अनेक अनुभाव या चेष्टामूलक आक षक क्रियाएँ होती रहती हैं। इन क्रियाओ के माध्यम से उनके मानसिक आकषण का ज्ञान होता है। लज्जा के उन्य म अभिनव यौवन का आगमन महत्वपूर्ण है। इस वय की उपस्थिति एव इससे उत्पन्न मानसिक आकुलता से उनमें आकषण की वृद्धि हो जाती है। इसका सम्बन्ध यौन भावना से बना रहता है। यही कारण है कि यौवन आगमन के पूव नायिका की इच्छाओ की वास्तविक अस्वीकृति और यौवन आ जाने पर निषेध मूलक स्वीकृति या कृत्रिम अस्वीकृति प्रकट होती है। इससे प्रिय के नेत्रो म प्रेमिका का आकपण बहुत बढ जाता है।

रीतिकाल म लज्जा से उद्भुत इस स्वीकृति मूलक निषेध का अच्छा अकन हो सका है। प्राय किसी अशालीन काय की स्वीकृति देने म स्त्रियाँ अधिक लज्जा का अनुभव करती हैं। इसी से स्वीकृति देना उनके लिए बहुत कठिन काय हो जाता है परन्तु व्यावहारिक जीवन म स्वीकृति की महत्ता होने से साकेतिक स्वीकृति या निषेध मूलक स्वीकृति की परम्परा चल पडी होगी। गोपनीय कार्यों की स्वीकृति सामाजिक मर्यादा का उल्लघन माना जाता है। इसी से हाँ मूलक ना की महत्ता बढ गई। इस अस्वीकृति से दो अभिप्रायो की सिद्धि होती है (१) नायक के मन मे नायिका के प्रति आकपण की वृद्धि (२) अस्वीकृति के बाद अभिलाषा को व्यक्त करने का उचित अवसर मिलता है, क्योकि इस निषेध म वास्तविकता न रहकर कृत्रिमता और शालीनता जन्य अस्वीकार ही अधिक रहता है।

रीतिकालीन हाँ मूलक ना के सौन्दयाकन म दो प्रकार की पद्धति अप नाई गई है (१) वचन निषेध (२) क्रिया निषेध। इन दानो मे वचन निषेध मे वाणी का प्रयोग किया जाता है। मुग्धा अथवा मध्या नायिकाओ का यः

निषेध उनकी वाणी से प्रकट होता है। ऐसे निषेध का वर्णन दधि वेचन प्रसग पर अथवा पारस्परिक छेड छाड की क्रीडा एव उल्लासमय वातावरण के बीच होता है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होगे—

१ नकु नेरे जाइ करि बातन लगाई करि,
कछु मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ।
सननि चरचि गई अगनि थकित भई
ननन म चाह कर, बैनन म नहियाँ। मतिराम

२ आई जु चालै गोपाल घरै ब्रजवाल बिसाल मृनाल सी बाँही।
त्यो 'पद्माकर' सूरति मे रति छवै न सक कित हूँ पर छाँही।
सोभित सभु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मन माँही।
लाज बिराजि रही अँखियानि म, प्रान म काहू जबान मे नाँही।
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ० २४२ छद १२८, १२६

इन दोनो ही उदाहरणा म वचन विषेध केलि प्रसग एव छेड छाड के अवसर पर वर्णित है।

सहज स्वभाव के रूप म अभिलाषा मूलक निषेध द्वारा मुग्धा के मानसिक सौदय का चित्राकन शभु कवि न किया है।

'देख्यो चहै पिय को मुख प अखियाँ न कर जिय की अभिलाखी।
चाहति शम्भु कहै मन म बतियान सो सो नहिं जाति है भाखी।
भेटिव को फरक भुज प कहि जीभतें जाइ नहीं-नही भाखी।
काम सँकोच टुहून बहू वलि आज दुराज प्रजा करि राखी।"
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ० २४१

इस उदाहरण म अन्य की प्रत्यक्ष सन्निधि क बिना ही प्रिय की काल्पनिक मूर्ति के प्रति अपनी अभिलाषाएँ व्यक्त की गई हैं। वह प्रिय के स्पश से उत्पन्न सुख का अनुभव तो करना चाहती है, परन्तु उसकी जबान से 'नाही' शब्द का उच्चारण हो जाता है।

अभिलाषा मूलक वचन निषध के अतिरिक्त प्रभावमूलक वचन निषेध का वर्णन किया गया है। इस वर्णन मे निषधगत सौदय का प्रभाव बताया गया है।

१ लहि सूने घर कर गह्यो दिखा दिखी की ईठि।
गडी सु चित नाहा करनि करि ललचौंही दीठि। बिहारी

२ द गल बाँही जु नाही करी वह नाही गोपाल के भूलत नाही। देव

प्रथम उदाहरण मे बताया गया है कि 'नाही' चित्त मे गड जाती है और दूसर उदाहरण म नाही की स्मृति सन्व बनी रहती है। इन दोनो मे

निषेध का प्रभावमूलक वर्णन किया गया है। मुग्धा और मध्या मे यह निषेध स्वाभाविक शालीनता के कारण उत्पन्न होता है।

शालीनताजन्य लज्जा की अभिव्यक्ति वचन निषेध के अतिरिक्त क्रिया-निषेध द्वारा भी हो सकी है। यह अनुभाव मूलक निषेध है। इससे नायक के मन मे नायिका के प्रति ललक का भाव उत्पन्न होता है और उसकी भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं। इस निषेध की महत्ता प्रेम प्रसगो पर अधिक बढ जाती है। यह निषेध कई रूपो मे व्यक्त हुआ है।

१ नत्रा के सचालन द्वारा निषेध।
२ विभिन्न अगा के सचालन से निषेध।
३ क्रिया द्वारा निषेध।

नेत्र सचालन के माध्यम से व्यक्त निषेध का सौदय अपूव होता हैं। इसम भौंहा की बक्रिम अवस्था द्वारा निषेध की अभिव्यक्ति होती है। बिहारी ने ऐसे निषेध द्वारा एक आकपक चित्र स्थित किया है—

भौंहनि त्रासति मुख नटति, आखिन सो लपटाति।
ऐंचि छुडावत कर इची आगे आवति-जाति॥

इमम भौंहो द्वारा त्रास दिखाने म निषेध का यही भाव व्यक्त होता है। इस निषेध की अभिव्यक्ति 'सैन' द्वारा की गई है। नत्र-सकेत से मुख का ईषद् विकास आकषण को बढान म सहायक होता है। इस निषेध में गम्भीरता का भाव न रहकर मुसकान की तरलता और हृदय की प्रफुल्लता भी व्यक्त हो जाती है।

नेत्र से इतर विभिन्न अगो के सचालन द्वारा निषेध की भावना व्यक्त हुई है। प्राय इस निषेध मे हाथा का प्रयोग होता है।[1] इसमे नायिका द्वारा कृत्रिम अवहेलना का भाव व्यक्त होता है। नायिका अपने अगो को छिपा लेती है। प्रिय की दृष्टि के स्पश का निषेध कर अपनी अस्वीकृति व्यक्त करती है।[2] मुख स क्रोध दिखाकर, हाथा से प्रिय के मुख को हटाकर या अपना मुख दूसरी तरफ करके निषेध के इसी भाव को व्यक्त किया गया है।

इन अनुभाव मूलक चेष्टाओ से भिन्न अन्य क्रियाओ द्वारा भी निषेध का आकपक सौदय व्यक्त हाता है। नायक द्वारा पानी मागे जाने पर नायिका

---

1 अलक सवारन व्याज मे परस्यौ चहत कपाल।
मृदुल करनि डारति झटकि रसमय कलह कलोल। ध्रुवदास

2 जो अग चाहत रसिक प्रिय इन ननिनि सा छ्वाई।
सोठौं सुदरि पट्नि ही, राखत बसन दुराई। ध्रुव० रस० पद ४०

उसके भावो को समझकर उसके पास नही जाती है और द्वार के पास ही जल रखकर चली आती है।[1] उसकी इस क्रिया में निषेध का सांकेतिक अर्थ प्रतीत होता है। इससे अभिलाषा की वृद्धि और आकर्षण की प्रबलता बढ़ती है। इसी प्रकार कई अन्य कवियो ने भी प्रेम प्रसंग में निषेध द्वारा चेष्टा मूलक सौन्दर्य का अंकन किया है —

> चचल चतुर छरकायल छबीली बाम
> अचल छुब न दीनो स्याम अभिराम को।
> पाटी पग धरि गई चेटक सौ करि गई
> नटी लौं उछरि गई, छरि गई स्याम को।
>
> ब्र० सा० का भेद पृ० २४०/१२२ कालिदास

इन पंक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि निषेध मूलक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में कवियो ने अभिधा एवं व्यञ्जना का प्रयोग किया है। वचन निषेध में अभिधा और अनुभाव अथवा नायिका की क्रियाओं द्वारा अभिव्यञ्जित निषेध में व्यञ्जना का प्रयोग हुआ है। इस निषेध को मुग्धा या मध्या नायिकाओं की स्वाभाविक क्रिया कहते हैं। इस चेष्टा की अभिव्यक्ति में नायिका की शालीनता व्यक्त होती है। प्राय यौवनागम पर शालीनता का यह भाव बड़ा प्रबल रहता है जो क्रमश काम भावना की वृद्धि के साथ कम होता चला जाता है। इस निषेध में लज्जा प्रेम और विश्वास का अपूर्व भाव बना रहता है। इसी से इन निषेधो से नायक के मन में विकर्षण का भाव उत्पन्न न होकर आकर्षण का भाव ही उत्पन्न होता है। इस आकर्षण की स्पष्ट अभिव्यक्ति पारस्परिक हास्य विनोद आदि में होती हैं।

हास्य विनोद—पारस्परिक प्रेम भाव की पूर्णता मे नायक-नायिका का हास्य विनोद दोनो के बीच हृदय की निष्कपटता और एकता की अभिव्यक्ति करता है। प्रेम व्यापारो में हास्य विनोद से उसके घनत्व और आकर्षण में वृद्धि होती है। हास के द्वारा वाणी की मधुरता एक विशिष्ट अर्थ को व्यंजित करती है जिसका सम्बन्ध रह केलि से होता है। हास्य विनोद मानसिक आकर्षण का बाह्य प्रकाशन है, जो वचन वक्रता अथवा वचन की

---

[1] केलि की रति अघाने नहीं दिन हू में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोऊ पानी द जाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरैं 'मतिराम' पठाई।
कान्ह के बोल प कान न दीनो सो गेह की देहरी पै धरि आई।
अ० सा० का ना० भेद पृ० २४०

मधुरिमा से व्यक्त हो जाता है। इस परिहास का उद्देश्य प्रिय की अवहेलना नहीं, अपितु प्रेम की अभिव्यञ्जना ही होती है। इसी से प्रेम पूर्ण हास्य-विनोद या नोंक-झोंक कलह का कारण नहीं है, अपितु आकर्षण का साधन है।

रीतिकालीन हास्य-विनोद में कवियों की मूल दृष्टि पारस्परिक आकर्षण के बनाने में अधिक थी। वे नायक-नायिका की नोक-झोंक एवं व्यंग्य विनोद का चित्र निम्नांकित रूपों में प्रस्तुत करते हैं —

१ छेड़-छाड़ के रूप में-क्रियामूलक।
२ कटाक्ष या व्यंग्य मूलक।
३ प्रशंसा मूलक।
४ उपहास मूलक।

इनमें छेड़-छाड़ के रूप में चित्रित नोक-झोंक द्वारा दोनों के पारस्परिक प्रेम का भान होता है। शरीर एवं वचन दोनों की ही क्रियाशीलता दिखाई गई है। इसका वर्णन तीन अवसरों पर हुआ है (१) श्रीकृष्ण और गोपी की पारस्परिक नोक-झोंक में। (२) गोपी द्वारा श्रीकृष्ण की अचगरी का वर्णन सखी से करने में। (३) दान प्रसंग पर। इनमें पहले में शारीरिक प्रेममूलक चेष्टा और दूसरे में वचन की प्रगल्भता व्यक्त हुई है। एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

(१) वह साकरी कुञ्ज की खोरि अचानक राधिका माधव भेंट भई।
मुसक्यानि भली अँचरा की अली, त्रिवली की बलीपर दीठि गई।
भहराइ झुराइ रिसाइ 'ममारख' बासुरिया हँसि छीनि लई।
भृकुटी मटराइ गुपाल के गाल में आँगुरी ग्वालि गडाइ गई।

(२) मेरी गगरी उन चूनरी मोहन मैं हू गह्यो उनको तब फेंटा।
मेरो गह्यो उन हारि झपेटि कै, मैं हू गही बन माल झपेटा।
आजुलौं बेनी प्रवीन सही जे भई सखियानि में घाल समेटा।
मोसों कह्यो अरी कौन की बेटी है मैं हू कह्यो तू है कौन को बेटा।

री० का० संग्रह पृ २५०

इनमें प्रथम उदाहरण में श्रीकृष्ण और राधा समभाव से छेड़-छाड़ में संलग्न हैं और दूसरे में एक दूसरे के उत्तर प्रत्युत्तर का वर्णन सखी से किया गया है। दोनों में ही सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत हो सका है। प्रेम पूर्ण विनोद का एक अच्छा पद देव ने लिखा है। सखियों के संग साकरी गली में जाती हुई राधा को जानकर श्रीकृष्ण आ जाते हैं और पुकार कर कहते हैं कि आप तो हमारा कोउ जान पहचान की मालूम पड रही हैं। इसे सुन राधा ने मुँह फेर कर उत्तर दिया कि आप यहाँ से चले जायँ, आप हमें जानते हैं और मैं भी

आपको जानती हूं।'[1] इस प्रसंग के सौंदर्य को एक भुक्तभोगी ही जान सकता है।

दान प्रसंग पर वचनों की प्रसन्नतापूर्ण परिहास एवं प्रेम पूर्ण फटकार से आकर्षण की योजना की गई है। गोपी कहती है कि "तुम्ह ही नई तरुणाई मिली है जो दिन रात छके रहते हो। आप अपना दान लो और मुझे जाने दो। मैं तुम्हारी बातें अच्छी प्रकार जानती हूं।'[2] इस वचन में नायिका की प्रगल्भता से सौंदर्य- चित्र मोहक हो जाता है। रसखान ने तो मतिराम के इस सांकेतिक भाव को और स्पष्ट करने की चेष्टा की है। गोपी कहती है कि हे काह! यदि तुम दूध और माखन चाहते हो तो तुम जितना दूध पीना चाहो पीलो और जितना माखन चाहो खालो, पर तुम्हें तुम्हारे हृदय की बात जानती हूं। तुम 'गोरस' के माध्यम से जिस रस को चाहते हो वह तुम्हें रंच मात्र भी प्राप्त न हो सकेगा।

'छीर जो चाहत चीर गहे, ए जू लेहु न केतक छीर अचहौ।
चाखन के हित माखन माँगत, खाहु न माखन केतिक खैहौ।
जानत हैं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत, सो रस काहु जू नेक न पैहौ।[3]

वचन माधुर्य एवं द्वयार्थक रूप में प्रयुक्त 'गोरस' शब्द से अभिव्यञ्जनात्मक सौंदर्य स्पष्ट होता है। प्रगल्भता पूर्ण फटकार द्वारा शृङ्गारिक चेष्टाओं

---

1 लागी प्रेम डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ि आई
नेह सो तिहोरी जोरि आली मनभावती।
उतते उताल 'देव' आये नन्द लाल
इत सौंहे भई आन नव लाल सुख सानती।
काह रह्यो टेरिके वहाँ ते आइ को हो तुम,
लागरि हमारे जान कोई पहिचानती।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हरि जू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत तुम्हैं हू हम जानती। देव

2 ऐसी करी करतूति कलाप त्यों नोकी बड़ाई लहौं जग जातें।
आई नई तरुनाई तिहारी ही, ऐस छके चितवौ दिन रात।
लीजिये दान हौं दीजिये जान, तिहारी सब हम जानति घातें।
जानौ हमैं जनि के बनिता जिनसौं तुम ऐसी करो बलि बातें।
मतिराम

3 रीति काव्य संग्रह से पृष्ठ २३२/१६ रसखानि

का सौदय व्यक्त हो जाता है। श्रीकृष्ण स्वय भी छेड छाड करने म प्रगल्भ हैं। मून कवि ने लिखा है कि मुस्करावर बोलने को तत्पर छबीली के कुचो के बीच म ताक कर कृष्ण काकरी मार देते हैं और वह हाँ या ना कुछ भी न कहकर द्विविधा की स्थिति म पडी रह जाती है।[1]

कटाक्ष या व्यग्य रूप मे छेड-छाड की प्रवृत्ति भी प्रेममूलक ही कही जायगी। यह प्रवृत्ति दो रूप म लक्षित होती है (१) नायिका द्वारा नायक पर कटाक्ष करना। (२) सखी द्वारा नायिका स परिहास करना।

नायिका द्वारा नायक पर कटाक्ष प्राय रति चिह्नो के देखकर किया है। इस कटाक्ष म नायिका की नायक के प्रति अवहेलना व्यक्त की गई है। इसका उद्देश्य उसका अपमान करना नही हैं अपितु इससे उसकी अभिलाषा बढ्ती है और वह नायिका की ओर आकृष्ट होता है। इस प्रकार का वणन रीतिकाल मे अधिक हुआ है। बेनी प्रवीन का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा —

आव हँसी हमें देखत लालन भाल म दी ह्वी महावर घारी।
एत बडे ब्रजमडल मे न मिली कहू मागेहूँ रचक रारी।
रीति काव्य सग्रह पृष्ठ २४८

इस उदाहरण मे रति चिह्नो को देखकर श्रीकृष्ण की रसिकता पर करारा व्यग्य किया गया है। इसकी चोट साधे हृदय म जाकर प्रविष्ट हो जाती है और श्रीकृष्ण निरुत्तर हो जाते हैं।

सखी द्वारा इसी प्रकार के रस प्रसग के सकेत से भावनाओ का सौन्दर्य व्यक्त किया गया है। गौने के दिन बिछुवा पहनाते समय सखी परिहास के माध्यम से कटाक्ष करती है कि "यह बिछुआ प्रियतम के कानो के समक्ष सदा बजता रहे।" इसे सुनकर बनावटी क्रोध से नायिका अपना हाथ चलाना चाहती है, परन्तु हाथ उठ ही नही पाता है।[2]

---

[1] मुरि मुसकाई के छबीली पिक-बनी नक,
करत उचार मुख बोलन को बाक री।
ताक री कुचन बीच कांकरी गोपाल मारी,
सांकरी गली, मे प्यारी हाँ करी न ना करी।
री का स पृ ३६७

[2] कचन के बिछुवा पहिरावत प्यारी सखी परिहास वढायो।
पीतम स्रौन समीप सदा बज या कहि के पहिले पहिरायो।
मनिराम–री का कवियो की प्रम व्यञ्जना पृ १८६ से

प्रशंसामूलक हास्य में अंगों की विशेषता को व्यक्त करते हुए छेड़छाड़ से उत्पन्न विनोद की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें एक ओर श्रीकृष्ण को छेड़ा जाता है और दूसरी ओर उनकी प्रशंसा की जाती है। रघुनाथ कवि की गोपी कहती है कि "हे बड़ी आँखों वाले ग्वाल तू खड़ा हो जा मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।'[1]

उपहास के द्वारा हास्य विनोद के भाव व्यक्त किये गये हैं। यहाँ चेष्टा के द्वारा *मानसिक भावनाओं का प्रकटीकरण है। यह उपहास श्रीकृष्ण के* छलापन और उनके रंग का किया गया है। श्रीकृष्ण एक ओर तो छैला बनते हैं और दूसरी ओर कामरी ओढ़े हुए हैं। उनके इस विरोधी स्वरूप को देखकर गोपियाँ उपहास करती हैं कि इस वेश में घूमते हुए तुम्हें लज्जा नहीं प्रतीत होती है 'ऐसे ही डोलत छैल भये, तुम्हें लाज न आवत कामरि ओढ़े।[2] एक अन्य गोपी श्रीकृष्ण के काले रंग का उपहास करती हुई अपनी प्रेम मूलक भावना व्यक्त करती है कि हे कृष्ण तुम्हारे स्नान करने से ही कालिन्दी काली हो गई है यदि इस कालिन्दी में भूल से भी साड़ी धोऊँ तो काली हो जायगी। यदि यह साँवरा रंग मेरे सुन्दर अंगों में लग जायगा तो मेरे अंगों की गोराई समाप्त हो जायगी।

न्हानई न्हान विहारद स्याम कलिन्दियौ स्याम भई कहत है।
धोवहु धोवहु मो मैं कहूँ तो यहै रंग सारिन मैं सरसैहै।
साँवरे अंग को रंग कहूँ यह मेरे सुअंगन में लगि जैहै।
छैल छबीले सुभाग जो माहि तो गातन मेरे गोराई न रहै।[3]

इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक आकर्षण की अभिव्यक्ति में हास-परिहास पूर्ण आमोद एवं छेड़छाड़ द्वारा मन की दूरी हटकर निकटता बढ़ जाती है। कायिक चेष्टाओं से भिन्न इनके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकती है फिर भी सौन्दर्य की जनक चेष्टाओं की सुविधा के लिए कायिक और मानसिक चेष्टाओं में वर्गीकरण स्पष्ट किया गया है। कारण यह है कि केवल शारीरिक आकर्षण ही सब कुछ नहीं

---

[1] रीझी मन्द सी भाखी मनहु या बानी नई रंग आगर भार।
टाढ़ हो तनिक कन्हैया बड़ दृग ग्वाल कहा कछु बात।

है मानसिक आकर्षण का भी महत्त्व निर्विवाद रूप से है। अब वाचिक चेष्टा का सकेत करके इस प्रसग को समाप्त किया जायगा।

वाचिक चेष्टा—मानसिक भावो की अभिव्यक्ति वाचिक चेष्टा द्वारा भी की गई है। वाचिक चेष्टा का अर्थ वचन द्वारा मानसिक भावनाओ की अभिव्यक्ति है। यह वचन चेष्टा द्वारा प्रकट होने वाली मन की क्रिया है। इसे दो रूपो म देखा जा सकता है (१) वचन विदग्धा नायिका मे (२) स्वर माधुर्य मे।

वचन विदग्धा नायिका चतुरता से पर पुरुष के अनुराग विषयक काय को सम्पन्न करती हुई सकेत स्थल समय आदि का ज्ञान करा देती है। वचन का यह वैदग्ध्य दो प्रकार स व्यक्त हुआ है। (१) अन्य सखी के माध्यम से (२) स्वय नायिका के नायक स निवेदन करने पर।

(१) अन्य सखी के माध्यम से व्यक्त वचनो म सहेट की चर्चा की गई है। कृष्ण को आया जानकर नायिका अपनी सखी से ऊँचे स्वर म कहती है कि मैं तारा की छाया म कार्तिक नहाऊँगी, तू भी वशीवट पर मुझ मिल जाना।[1] इसी प्रकार घर के पिछवारे स्थित कृष्ण को जानकर दूसरा गोपी 'देवी के धौरहे' की पूजा करने की बात कहकर सकेत स्थल का ज्ञान करा देती है।[2] ऐसे प्रसगो पर साक्षात् सकेतित अर्थ से भिन्न एक प्रतीयमान अर्थ का अभिव्यञ्जनात्मक सौदर्य भी वर्तमान रहता है। कभी नायक की ओर स भी दूती द्वारा सकेत स्थल का ज्ञान करा दिया जाता है।[3]

(२) स्वय दूतिका का काय करती हुई कृष्ण को गोदोहन के बहाने से आमन्त्रित करने मे यही वचन वैदग्ध्य दिखाई पडता है।

१ जब लौं घर को धनी आवै घर, तब लौं इतनी करि दबो करौ।
'पद्माकर' ये बछरा, अपने बछरान के सग चरैबो करौ।
अब औरन के घर सो हम ते तुम दूनी दुहावनी लबी करौ।
नित साझ सकारे हमारी हहा, हरि गया भले दुहि जबो करौ।[4]

---

[1] ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २७३

[2] सुदर शृङ्गार पद ७१

[3] नखन से फूलि रहे, फूलन के पुज घन
कु जन म होति जहा दिन हू मे राति है।
ता बन की बाट कोऊ सग न सहेली साथ,
कसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है। रसराज २६७ मतिराम

[4] ब्र० साहित्य का नायिका भेद प २७६/२७४

२ कवि 'ग्वाल' चराय ल भावनी है श्ररु बाँधनी पौरि सुहावनी है।
मन भावनी दहीं दुहावनी मैं, यह गाय तुही प दुहावनी है।[1]

वचन वदग्ध्य के साथ ही नायिका के स्वर का माधुय भी नायक को ग्राकर्षित कर लेने का साधन है। उसके कण्ठ स्वर को सुनने म नायक की उत्सुकता व्यक्त हो जाती है। उसकी वाणी की रसालता स्निग्धता, प्रफुल्लता, ग्रमृतमयता ग्रादि गुणों से नायक का मन ग्राकृष्ट हो जाता है। ऐसा उदाहरण रीतिकालीन काव्य म कहीं भी देखा जा सकता है। दूसरी ग्रोर नायक के वचन माधुय का रस लेने के लिये नायिका भी ग्रनेक उपाय करती दीख पडती है।[2] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वाचिक चेष्टा या स्वर माधुय ग्राकषण को बढाने म सहयोग देने वाली क्रियाग्रा के रूप म ग्राह्य हैं। इसम वचन विदग्धा नायिका का सौदय ग्रधिक होता है। भाव प्रकाशन की इस वाचिक क्रिया से मन का ग्रनुराग व्यक्त हो जाता है ग्रौर स्वर माधुय से मन खिचकर एक दूसरे पर केंद्रित हो जाता है।

(ख) सामान्य चेष्टा—

चेष्टापरक सौन्दय विवेचन के ग्रारम्भ म सम्पूण शृंगार मूलक चेष्टाग्रो को विशेष चेष्टा ग्रौर सामान्य चेष्टा म विभाजित किया गया था। विशेष चेष्टा को तीन वर्गो—कायिक मानसिक ग्रौर वाचिक—म विभाजित करके उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। यहा इन चेष्टाग्रा स भिन्न ग्रन्य सामान्य चेष्टाग्रो का सक्षिप्त सकेत करक प्रबध की शृङ्खला को बनाये रखने का प्रयास किया जायगा।

सामान्य चेष्टा के ग्रतगत यौवनावस्था के ग्रलकारो का ग्रहण हुग्रा है। इस ग्रवस्था म ग्रनेक शारीरिक एव मानसिक परिवतन होत हैं। इन परिवतनो से नायिका के व्यक्तित्व मे मोहकता ग्रा जाती है। वह ग्राकषक प्रतीत होने लगती है। यह परिवतन सभी नायिकाग्रा म समान रूप से होता है। इन परिवतनो का ज्ञान उसकी ग्रनेक चेष्टाग्रो से होता है। इन चेष्टाग्रो मे भी समानता रहती है। ग्रपनी इस सामान्य स्थिति के कारण ही इन्हे सामान्य चेष्टा के ग्रतगत माना गया है।

इन ग्रलकारो की सख्या बीस मानी गई है। इनकी तीन कोटियाँ

---

[1] ब्रज साहित्य का नायिका भेद प २७७/२७६

[2] बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय। बिहारी

अगज, अयत्नज और स्वभावज की गई हैं। अगज मे हाव, भाव, हेला की गणना होती है। अयत्नज म शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि अलकारा की गणना होती है। ये शारीरिक गुण हैं जो अपने आप ही स्वाभाविक रूप म नायिका मे उत्पन्न हो जात हैं। ये कृति साध्य नही है। इनका विकास चेष्टा क रूप म न होकर गुण के रूप मे हाता है। इससे चेष्टापरक क्रिया के अन्तगत इनका समावेश नही हो सकता है। लीला विलास विच्छित्ति, विब्बोक, किल किंचित्, विभ्रम ललित विहृत, मोट्टायित कुट्टमित आदि की गणना स्वभावज अलकारो के अतगत होती है। ये अलकार स्वभाव सिद्ध होत हुए भी कृति साध्य हैं। यौवनावस्था म स्वभाव से ही इसकी उत्पत्ति होनी है फिर भी इनमे यत्न की महत्ता वतमान रहती हैं। ध्यान रखने की बात है कि अगज और स्वभावज अलकारा द्वारा व्यक्त विभिन्न चेष्टाआ म शारीरिक व्यापार की प्रधानता बनी रहती है। शरीर का कोई न कोई अग इनका आधार बना रहता है।

अगज अलकार अपने नाम से ही शारीरिक महत्ता का प्रतिपादन करत हैं। यह कामज अलकार है। इनम सभोग की इच्छा को प्रकाशित करने वाले भकुटि नेत्र आदि क विलक्षण व्यापार का 'हाव' कहत हैं। यह स्वाभाविक चेष्टा नायिका की भाव भगिमा द्वारा प्रकट हाती है। इससे उसका सौदय बढ जाता है। इन चेष्टाआ की महत्ता शृङ्गाररस म ही रहती है, अन्य रसो म नही। भाव यौवनारम्भ पर निर्विकार चित्त म उत्पन्न हुए प्रथम काम विकार को कहत हैं। इन दोना म हाव म शारीरिक व्यापार और भाव मे हृदय की प्रधानता रहती है। हाव की योजना रीतिकालीन साहित्य म अधिक दीख पडती है। बिहारी, मतिराम और दव की हाव योजना आकषक है। यह स्त्रिया की एक स्वाभाविक शृङ्गार चेष्टा है। मानसिक व्यापार ही भ्रू-निक्षेपादि से प्रकट होकर हाव सज्ञा को धारण करत हैं। दोना का एक एक उदाहरण लें—

(१) हौं अलि आज बडे तरके भरिके घट गोरस को पग धारो।
 त्यो कब को धौं खर्यो री हुतो, पद्माकर मोहित मोहिनी वारो।
 साँकरी खोरि मे काँकरी की करि चोट चला फिर लौटि निहारो।
 ता खिन तें इन आखिन ते न कढयो वह माखन चाखन हारो।

(२) गहि हाथ सो हाथ सहेली के साथ म आवति ही वृषभानु लली।
 'मतिराम' सुवात ते आवन नेरे, निवारति भौंरनि की अवली।
 लखि के मनमोहन सो सकुची, कह्यो चाहति आपुनि ओट लली।
 चित्त चोर लियो दृग जोरि पिया मुख मोरि कछू मुसक्यात चली।

प्रथम उदाहरण में काँकरी मारकर पुनः लौटकर देखना मोहक 'हाव की योजना करता है और दूसरे में वृषभानु लली के निर्विकार चित्त में मनमोहन का प्रेम उत्पन्न होने से सकोच की अभिव्यक्ति हो गई है जिसका शारीरिक व्यापार के रूप में वह मुख मोड़ कर मुस्कराती हुई चली जाती है। इस चेष्टा से आकर्षण बढ़ता है। इससे यह सौन्दर्य वर्द्धक चेष्टा हुई। 'हाव मूलक' आंगिक चेष्टा ही सुव्यक्त हाव कहला कही जाती है।

'फाग के भीर अभीरनि में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर ऊपर डारि अबीर की झोरी।
छीनि पितम्बर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अंगज अलंकारों की योजना में रीतिकालीन कवियों ने सदर्भ विशेष या एक लघु कथा का समावेश कर दिया है। इसीसे इन नायिकाओं में इन चेष्टाओं द्वारा अपनी अभिरुचि को प्रकट करने का वर्णन सभी कवियों ने किया है। ये नायिकाएं भ्रू नेत्रादि का स्व च्छन्दता से प्रयोग करके नायक को रिझाने में सदैव तत्परता दिखाती हैं। उनके इस विलासमय आकर्षण और सौन्दर्य का बढानेवाली चेष्टाओं में युग की प्रवृत्तियां पूर्णत दीख पडती हैं। रीतिकालीन इन अलंकारों में अभिव्य ञ्जनात्मक सौंदर्य भी पूर्णत दीख पड़ता है जिससे प्रेमिका के हृदय की *सजीवता मूर्तिरूप धारण करके स्पष्ट हो जाती है। उसमें चित्र विधायिनी* शक्ति एवं गुण से इसका महत्त्व बढ जाता है। प्राय ऐसे प्रसगों पर वातावरण की सृष्टि द्वारा मादकता की सृष्टि की गई है।

स्वभावज अलंकारों में लीला विलास आदि केवल दश अलंकारों की ही गणना होगी। साहित्यदर्पणकार द्वारा कहे गये शेष तपन मौग्ध्य आदि में कायिक चेष्टाएं सुव्यक्त न होकर मानसिक भावों की ही प्रधानता होती है। इससे उनकी गणना चेष्टा के अन्तर्गत नहीं होती है। स्वभावज अलंकार स्वाभाविक होते हुए भी कृति के द्वारा साध्य है। इनमें लीला विलासादि में शारीरिक व्यापार रहता है और मोट्टायित, कुट्टमित बिब्बोक विहृत मान सिक भावों की अभिव्यक्ति करने वाले व्यापार हैं। रीतिकालीन काव्य में इन अलंकारों का स्वच्छन्दता के साथ प्रयोग किया गया है।

इन सभी अलंकारों द्वारा शारीरिक क्रियाओं से सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है। इन अलंकारों का व्यापार की दृष्टि से अनेक भागों में बाँट सकते है—

(१) स्वरामूलक चेष्टा म 'विभ्रम' का नाम लिया जा सकता है। प्रिय आगमन प्रसग पर जल्दी के कारण वस्त्रभूषणादि को अन्य अगो मे धारण कर लिया जाता है। इसकी प्रतिक्रिया म सखियो का उपहास अथवा विनोद का भाव छिपा रहता है। इसम एक ओर प्रसन्नता और दूसरी ओर नायिका की जल्दीबाजी का मजाक रहता है। यथा —

स्याम सो केलि करी सिगरी निसि सावन प्रात उठी थहराय क।
आपने चीर के धोखे वधू, पहिरो पट पीत भट्ट भहराय कै।
बाँधि लई कटि सो बनमाल न किकिनी बाल लई ठहराय क।
राधिका के रसरङ्ग की दीपति सग की हरि हँसी हहराइ कै।

रस रत्नाकर पृ० २३२

(२) प्रसाधनमूलक चेष्टा म विच्छित्ति और ललित की गणना होगी। कान्ति को बढाने वाली अल्प रचना 'विच्छित्ति'[1] कही जाती है। स्वाभाविक शोभा होने पर ही आकषक एव अल्प रचना सौदय की वृद्धि कर सकती है। सयोग के अवसर पर शृगार द्वारा अगो का विन्यास भ्रू विलास की मनोहरता और आंगिक क्रियाओ की सुकुमारता 'ललित'[2] कही जाती है। इन दोनो मे ही शारीरिक रचना द्वारा स्वाभाविक सौन्दय को बढाने की चेष्टा की जाती है। इससे सौदय साधक इन चेष्टाओ द्वारा सयोग का आकषण बढता है।

(३) अनुकरणमूलक चेष्टा म 'लीला' का नाम लिया जा सकता है। इसमे रम्य वेश, क्रिया और प्रेमपूण वचनो द्वारा नायिका और नायक के

---

1 वारते सकल एक रोरी ही की आडपर,
हा हा न पहरि आभरन और अग मे।
स्वेत सारी ही सो सब सा तो रग्यो स्याम रग,
स्वेत सारी ही मे स्याम रग लाल रग म। मतिराम

2 सजि ब्रजचद प चली या मुखचद जाको
चद चादनी को मुख मन्द सो करत जात।
कहै 'पदमाकर' त्यो सहज सुगध ही के,
पुज बन कुजन म कज से भरत जात।
धरत जहाँ ही जहा पग है पियारी तहाँ,
मजुल मजीठ ही के माठ से धरत जात।
बारन ते हीरा सेत सारी की किनारिन ते,
हारन ते मुक्ता हजारन भरत जात।

पारस्परिक अनुकरण की महत्ता होती है। वेष परिवतन द्वारा नई कांति एव छवि को धारण करने की भी चेष्टा की जाती है। इससे एक दूसरे के भिन्न रूप का आस्वादन मिल जाता है।[1] लीला के द्वारा प्रेम व्यापार में सान्द्रता उत्पन्न हो जाती है और नायक-नायिका की निकटता बढती है। यह प्रेम भाव की अभिवृद्धि करने वाली चेष्टा है।

(४) अभिव्यक्ति मूलक चेष्टा म भावा का बाह्य प्रकाशन किया जाता है। इसमे कुट्टमित, बिब्बोक और विहृत की गणना होगी। कुट्टमित म निषेध का सौदय रहता है। यह रति को बढाने वाली एक कृत्रिम क्रिया है। प्रिय के द्वारा केश स्तन, मुख, अधर आदि काम अ गा के स्पश से हृदय म प्रसन्न होते हुए भी कृत्रिम अनिच्छा का अ गा के सचालन और सीत्कार आदि के द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसम भावा की अभि यक्ति विपरीत व्यापार द्वारा की जाती है, पर तु उसका उद्देश्य प्रतिकूलता उत्पन्न करना न होकर नायक की भावनाओ को अधिक उद्दीप्त करना होता है। 'बि बोक मे रूप और प्रेम गव के कारण अथवा पति की रसिकता के कारण उसका अनादर कर दिया जाता है। इसमे मानसिक लगाव बना होते हुए भी केवल वचनो द्वारा प्रिय का अनादर करके उसके दोष का कथन किया जाता है। यह भी कुट्टमित की ही भाति स्वीकृतिमूलक अस्वीकृति पूण क्रिया है। कुट्टमित मे वचन निषेध या अनुभाव निषेध होता है और बिब्बोक म अवहेलना मूलक निषेध होता है। रीतिकाल म बि बोकगत' इस निषेध की चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ वर्णित हैं—

---

[1] रूप रच्यो हरि राधिका को उनहू हरि रूप रच्यौ छबि छावत।
गावत तान तरग दुहू दुहू भाव बताय दुहून रिझावत।
त्यौं 'भुवनश' दुहून के नन, दुहून के आनन प टक लावत।
छाइ रही छबि वैसेई री, सुनी जो हुती चद चकोर कहावत।

[2] तेरा परतीति ना परति अब समुख हू,
छैन जू छबीले भरी छूजे जिन छतियाँ।
रात सपने मे जनु बैठी मैं सदन सूने,
गोपाल तुम मेरी गहि लीनी बहियाँ
कहै कवि ताप तब जसो-तैसो कि ही अब,
कहत न बनि आव तैसी हम पहियाँ।
तुम न बिहारा नकु मानो मन हारी अरु
कहि कहि हार रही नाही अरु नहियाँ। नवरस पृ० २४६

(क) विपरीत लक्षणा द्वारा अस्वीकृति से स्वीकृति का बोध करा देना। इसमें स्पष्ट रूप से किसी काय को करने के लिए नायिका मना करती है परन्तु उसके इस निषेध से आमन्त्रण की ध्वनि निकलती रहती है। प्रयुक्त क्रिया शब्दो से निषेधात्मक अर्थ न निकलकर स्वीकारात्मक अथवा आमन्त्रण देने वाला अर्थ ध्वनित होता है—

> 'ऐ अहीर वारे लो सा जोरि कर कोरि कोरि
> विनय सुनावों बलि बासुरी बजावैं जनि।
> बासुरी बजाव ता बजाउ मो बलाय जानै,
> बडी बडी आखिन त एक टक लाव जनि।
> लाव तो लाव टक 'तोप' मोसो कहा काम,
> परि नाम दौरि-दौरि मेरी पौरि आवै जनि।
> आव है ता आव हम आदवो कबूलो पर
> मेरे गोरे गात मे असित गात छ्वाव जनि।

इस छद मे निषेध द्वारा सभी क्रियाओ को सम्पन्न करने का निमन्त्रण देना स्पष्ट रूप से व्यजित है। इनका विपरीत लक्षणा से अर्थ लगकर यह भाव होगा कि हे अहीर के बालक इन सभी क्रियाओ को तू अवश्य सम्पन्न करले।

(ख) रूप अथवा प्रेमगर्विता द्वारा प्रिय का अनादर करके अपने प्रेम भाव की अभिव्यक्ति की जाती है।[1] प्राय रूप लुब्ध नायक नायिका के सौंदर्य की प्रशसा करता है। नायिका समान रूप म प्रयुक्त प्रसिद्धतम उपमानो की महत्ता को जानकर भी उस समता से अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करती है। इस अप्रसन्नता में अपने प्रेम अथवा रूप के गव की भावना रहती है। दिये गये उदाहरण मे राधा कहती है कि श्रीकृष्ण नित्य ही मेरे मुख को चन्द्रमा के समान कहते हैं तो फिर मेरा मुख देखने की 'क्या आवश्यकता है वे तो चन्द्रमा ही देखा करें।' इन पक्तियो से स्पष्ट है कि इस अभिव्यक्ति म नायिका का असीम विश्वास वतमान है। उसी के बल पर वह गव से युक्त इन वचनों के बोलने का साहस सचित कर पाती है।

(३) प्रिय के उपहास द्वारा उनका अनादर करने की चेष्टा मे भी 'विब्बोक' की अभिव्यक्ति होती है। यह प्रेम व्यजक अभिव्यक्ति कही जा सकती

---

[1] मेरो मुख चन्द सो बताव ब्रजचद रोज,
कहो ब्रजचद जू सा चन्द देखिवो कर। रस रत्नाकर २३०

है। इससे विनोद के साथ ही मन के प्रेम भाव की सान्द्रता एवं गहन अनुराग का भान हो जाता है।

ऐसे ही डोलति छैल भये, तुम्हें लाज न आवति कामरि ओढ़े।

रस रत्नाकर पृ० २२६

इस प्रेमपूर्ण मीठी झिड़की में अनुराग लिप्त हृदय बरबस स्पष्ट हो जाता है।

(४) प्रेम गर्विता का आकाश पूर्ण अनुराग भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है। सोती हुई नायिका का शृङ्गार नायक करता है। इसी बीच मे वह जाग जाती है और भौंहो की भगिमा तथा अनबोले वचन से अपने रूप का गुमान व्यक्त कर देती है—

'जागि परी 'मतिराम' सरूप गुमान जनावति भौंह के भगनि।
लाल सो बोलति नाहिन बाल, सु पोछनि ओंखि अंगोछति अगनि।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि नायक के प्रसाधन की स्पष्ट स्वीकृति न देकर अपने प्रेम गर्व के कारण अनादर द्वारा अस्पष्ट स्वीकृति देती है।

'विहृत' में शालीनता का भाव वर्तमान रहता है। इस शालीनता से 'लज्जा की उत्पत्ति होती है। लज्जा के कारण अभिलाषा का अभिव्यक्त न हो सकना ही विहृत कहा जाता है। यह एक मानसिक भाव है जो चिन्ता के रूप में अभिव्यक्त होता है। प्राय मुग्धा नवोढा नायिकाएँ प्रिय के समक्ष अपनी अभिलाषा को लज्जा के कारण व्यक्त नहीं कर पाती हैं। उनके मन की बातें मन मे ही रह जाती है, प्रिय के जाने के बाद अनभिव्यक्त अभिलाषा ही चिन्ता मे बदल जाती है। वचन और नेत्रों का असहयोग ही इसका मुख्य कारण माना जाता है। यथा—

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन
सिखै हारी सखी सब जुगुति नई नई।
द्विजदेव' की सौं लाज बरिन कुसग इन,
अगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुञ्जनि मे पलटि पधारे स्याम
देखन न पाई वह मूरति सुधा मई।
आवन समैं मे दुखदायिनी भई री लाज
चलन समैं में चल पगेन दगा दई।

इसके अंतिम पंक्ति मे लज्जा और चंचल नेत्रों के असहयोग की भावना को स्पष्ट किया गया है। इसी असहयोग के कारण नायिका ने अपनी चिंता व्यक्त की है।

(५) वशिष्ट्यमूलक चेष्टा मे विलास, किलकिञ्चित और मोट्टायित आते हैं। इन तीनो चेष्टाओं म प्रिय सम्बंध से एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है यह मानसिक भावो की अभिव्यक्ति मे सहायक होती है। प्रिय के दर्शन से अथवा सयोग से स्थान, आसन, मुख नत्रादि की चेष्टाओं मे तात्कालिक उत्पन्न वैशिष्ट्य को विलास कहते हैं। यह वैशिष्ट्य अवस्थागत,[1] औत्सुक्यमूलक[2] और प्रेम व्यजक[3] हो सकता है। अवस्थागत वशिष्ट्य म प्रिय दर्शन से उत्पन्न अतृप्ति और दर्शन की अभिलाषा बनी रहती है। किसी बहाने से प्रिय दर्शन का अधिक से अधिक लाभ ले लेने की चेष्टा की जाती है। प्रेम व्यजक चेष्टाओं म पारस्परिक प्रेम चेष्टाओं का वैशिष्ट्य रहता है। इन सभी विशेषताओं से युक्त चेष्टा को 'विलास' कहा गया है।

'किलकिञ्चित' म भावो की शबलता का वशिष्ट्य होता है। प्रेमाधिक्य के कारण विपरीत भावो की स्थिति भी बनी रहती है। भय प्रीति, परिहास आदि अनेक भाव व्यक्त हो जाते हैं। अत प्रिय समागम से उत्पन्न प्रसन्नता के कारण गर्व, अभिलाप, कृत्रिम रुदन मुस्कराहट भृकुटि, भय, त्रास क्रोध आदि की मिश्रित क्रिया को 'किलकिञ्चित' कहते हैं। इन क्रियाओं द्वारा प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना होती है। छेड़छाड़ मूलक, या परिहास मूलक क्रियाओं द्वारा भी प्रिय की ओर से किसी प्रकार के अनिष्ट की आशका नही रहती है। इसी से नायिका की प्रगल्भ चेष्टाएँ भी वर्णित होती हैं। ऐसी

---

[1] आइ है खेलन फाग इहाँ, वृषभानु पुरा तें सखी सग लीने।
त्यो 'पद्माकर' गावती गीत, रिझावति भाव बताय नवीने।
कचन की पिचकी कर मे लिये केसर के रग से अग भीने।
छोटी सी छाती छुटी अलकें, अति बैस की छोटी बडी परबीने।

[2] बँसुरी सुनि देखन दौरि चली, जमुना जल के मिस बेगि तवै।
कवि देव सखी के सकोचन सो, करि ऊउ सु औसर को चितवै।
वृषभानु कुमारि मुरारि की ओर, बिलोचनि कोरनि सा चितवै।
चलिबे को घरै न करै मन नैकु घरै फिर फेरि भर रितवै।

[3] हँसि-हँस कर बातें रगीले दोऊ मदमाते।
गौर स्याम अभिराम अग अग हिय उमग बाढी, अतिसरस पास ललचाते।

चेष्टाओं में प्रिय को देखकर मुसकराना, भृकुटि मटकाना, गाल में अंगुली गड़ा देना आदि क्रियाओं का वर्णन किया गया है।[1]

'मोट्टायित' में भावों के गोपन के लिये चेष्टा की जाती है। प्रायः देखा जाता है कि प्रिय सम्बन्धी अपनी आसक्ति के व्यक्त हो जाने पर स्त्रियाँ उसे छिपाना चाहती हैं। यह भावना दो रूपों में प्रकट होती है (१) अन्यमनस्कता दिखाकर (२) किसी माध्यम से भावों को छिपाकर।

प्रियतम से सम्बन्धित चर्चा के विभिन्न अवसरों पर उसे सुनने में दत्त चित्त होती हुई भी ऊपर से सुनने में अरुचि या अन्यमनस्कता दिखाई जाती है। यही अन्यमनस्कता उसकी इस चेष्टा को आकर्षक बना देती है।

अन्य माध्यम से अपने भावों को छिपाने की चेष्टा की जाती है। श्याम को देखकर शरीर में कम्प का भाव उत्पन्न हो जाता है परन्तु शीत का नाम लेकर नायिका सिर पकड़ कर बैठ जाती है —

> श्याम विलोकत काम ते भयो कम्प तन आय।
> शीत नाम लै लाज ते, बैठि गई सिर नाय।

गोपन की यह प्रवृत्ति सखियों के समक्ष और स्वयं प्रिय से भी छिपाने में दीख पड़ती है। सखियों से छिपाने की चेष्टा का वर्णन बिहारी ने गमिष्यत् पतिका के प्रसंग पर किया है। ललन का चलना सुनकर नायिका की पलकों में आँसू झलक आते हैं परन्तु वह जमुहाई लेकर सखियों से आँसुओं को लक्षित होने से बचा लेती है।[2]

प्रिय से अपनी भावनाओं को छिपाने में भी यही प्रयास नायक नायिका दोनों द्वारा किया जाता है। दोनों एक दूसरे के रूप को सुनकर मानो संग ही रहने लगे हों वे दोनों अंग में उत्साह बढ़ाकर ध्यान में ही एक दूसरे को देखने

---

1 वह सांकरी कुन्ज की खोरि अचानक, राधिका माधव भेंट भई।
मुसक्यानि भली अँचरा की अनी, त्रिवली की बली पर दौठि गई।
भहराइ झुकाइ रिसाइ ममारख बासुरिया हसि छीनि लई।
भृकुटी मटकाइ गुपाल के गाल में आंगुरी ग्वालि गडाइ गई।

2 ललन चलन सुनि पलन में अँसुवाँ झलक्यौ आइ।
भई लखाई न सखिन हूँ झूठे ही जमुहाइ। बिहारी

लग जाते हैं,[1] परन्तु इसका नान किसी को भी नही हो पाता है। यह भी एक विशिष्ट क्रिया है। इन्ही क्रियाओ के माध्यम से सौदय की अभिवृद्धि की जाती है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सयोग के अवसर पर विभिन्न आलकारिक चेष्टाओ द्वारा नायिका को आकषक बनाने की चेष्टा की जाती है। शारीरिक सौदय की अतिशय रमणीयता और चेष्टामूलक अनुभावो की सफलता से ही प्रिय के सदभ मे नायिका का यौवन अनुकूल भावो को उद्बुद्ध करने म सहायक सिद्ध होता था। इसी से रीतिकालीन कवियो ने नायिका के गुणमूलक एव चेष्टापरक विविध हावो द्वारा उसकी नैसर्गिक शोभा को और अधिक मादक बनाकर उसके सौदय के माध्यम से नायक को आकर्षित करने मे अपने अनुभव गत रसिकता का मूत रूप प्रस्तुत कर दिया है। इन आत्मगत तत्त्वो के साथ बाह्य तत्त्वो द्वारा भी रूप सौदय की अभिवृद्धि की जाती है। एसे तत्त्वा मे *प्रसाधन गत सौन्य और तटस्थ सौदय का नाम लिया गया है।*

प्रसाधनगत सौदय—

शारीरिक एव मानसिक सौदय के उत्कप के लिये दो प्रकार के साधनो का सकेत किया जा चुका है। इनम सौन्य साधक कुछ उपकरण आलम्बन के शरीर से सम्बधित होत हैं और अन्य शरीर से बाहर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। इस दृष्टि से इन उपकरणो को आत्मगत और बाह्य उपकरण कहते हैं। आत्मगत उपकरण आलम्बन के शरीर से सम्बधित होने से स्वाभाविक या निसगगत उपकरण हैं। इनम गुण और चेष्टा का वणन अभी तक किया जा चुका है। गुण यौवनावस्था म स्वत ही स्फुरित हो जाते हैं। इन गुणो मे रूप सौदय शाभा छवि नवीनता आदि तथा यौवनावस्था के स्वभावज अलकारों की गणना होती है। चेष्टा मानसिक भावो को प्रेषणीय बनाने के लिये कायिक क्रियाएँ हैं। इनसे व्यक्तित्व का आकषण बढता है और नायिका की इन क्रियाओ से नायक के मन मे प्रेम एव रतिभाव की उद्दीप्ति होती है। इन चेष्टाओ को कामज' चेष्टाओ का नाम देना असगत नही कहा जा सकता है। ये आत्मगत चेष्टा होने से स्वाभाविक या नैसर्गिक है।

आत्मगत चेष्टाओ से इतर आलम्बन में स्थित न रहने वाले सौदय

---

[1] रूप दुहूँ को दुहून सुन्यो सु रहे तब तें मनो सग सदा ही।
ध्यान मे दोऊ दुहून लखैं, हरषे अग अग उछाही। पद्माकर

साधक उपकरणों को बाह्य साधन माना गया है। इन साधनों द्वारा प्राप्त सौंदर्य अर्जित सौन्दर्य है। बाह्य होने के कारण इन उपकरणों को सौन्दर्योत्पन्न या कृत्रिम साधक मानते है। ऐसा होने पर भी सौन्दर्य को वर्धन में इनकी महत्ता निर्विवाद है। इन उपकरणों में प्रसाधनगत उपकरण एवं तटस्थ साधना की चर्चा होगी।

प्रसाधनगत उपकरणों के अन्तर्गत षोडश शृंगार का वर्णन होता है। यह वर्णन अनेक कवियों ने किया है। सभी ने सोलह शृङ्गार प्रसाधनों को बताया है परन्तु उनके नामों में कहीं कहीं अन्तर दीख पड़ता है। आचार्य वल्लभदेव ने मज्जन चीर, हार तिलक अञ्जन कुण्डल नासा मौक्तिक, केश, कञ्चुक, सुगंधि कंकण, चरणराग मेखला, ताम्बूल दर्पण आदि को षोडश शृंगार कहा है।[1] उज्ज्वल नीलमणिकार के अनुसार स्नान केशरचना अंगराग कुसुम हाथों में कमल ताम्बूल, बिन्दु चिबुक, अञ्जन आदि षोडश शृङ्गार हैं।[2] रामचन्द्र वर्मा ने उपटन, मजन मिस्सी, स्नान सुबसन केश विन्यास, माँग भरना, अंजन, महावर बिन्दी तिल मेंहदी गंध द्रव्य आभूषण, फूलमाला और पान रचना को षोडश शृंगार कहा है।[3] रीतिकालीन कवियों में केशवदास[4] सरदार कवि[5] बलभद्र[6] आदि ने षोडश शृङ्गार का वर्णन किया है। कबीर[7] जायसी[8], तुलसी[9] चन्द्र बरदाई[10] और ढोला मारू रा दूहा[11] में षोडश शृंगार

---

1 आद्यौ मज्जन चीर हार तिलक नेत्राञ्जन कुण्डल,
नासामौक्तिक केशपाशरचनासत्कञ्चुक नूपुरौ।
सौगन्ध्य करकङ्कण चरणयोरागोरणन्मेखला।
ताम्बूल करदर्पण चतुरता शृङ्गारका षोडशा। वल्लभदेव

2 उज्ज्वल नील मणि–पृ० ७७ निर्णय सागर प्रेस।

3 प्रामाणिक हिन्दी कोश सभा १९८० वि० पृ० ४७।

4 केशव ग्रन्थावली–भाग १ रसिक प्रिया छन्द ४३ स० विश्वनाथ प्रसाद

5 रसिक प्रिया टीका पृ० ५१

6 बलभद्र पृ० २६६ छंद ६५ पूना विश्वविद्यालय हस्तलिखित प्रति

7 कबीर ग्रन्थावली पृ० ७४ ना० प्र० सभा १९२८।

8 जायसी ग्रन्थावली पृ० १३१ चौथा संस्करण ना० प्र० सभा।

9 रामचरित मानस पृ० १३६ स० १९८० वि० सभा

10 काशी से प्रकाशित पृथ्वीराजरासो पृ० ६६–६८।
ढोला मारू रा दूहा छन्द ३९४

की चर्चा है। प्रसिद्ध सगीतज्ञ तानसेन ने भी इन शृङ्गारो की चर्चा की है।[1]

इन शृङ्गारो के नाम मे कही कही अतर है, परतु इसकी सख्या के सम्बध मे किसी प्रकार का कोई मतभेद नही है। सभी लोगो न शृङ्गार प्रसाधना की सख्या सोलह मानी है। इन प्रसाधनो के प्रयोग एव उद्देश्य म भी समान भाव दीख पडता है। सभी विचारको ने इसके सौंदय साधक गुण का अनुमोदन किया है। इनके धारण करने के अनेक उद्देश्य बताये जा सकते हैं। शृङ्गार मूलक य प्रसाधन रस की दृष्टि से उद्दीपक और रूप के उत्कषक हैं। नायिका भेद की दृष्टि स इन्ही प्रसाधना से नायिका की विशेष स्थिति और भेद का ज्ञापन होता है। वस्त्रादि प्रसाधना से शरीर के विभिन्न अगा की रक्षा उपगूहन, यौन अगा का आकषक प्रदशन और नायक को आकृष्ट करने की चेष्टा की जाती है। वेश रचना द्वारा शालीनता की रक्षा और लौकिक मर्यादा का पालन किया जाता है। इन उपकरणा स सहज एव नसर्गिक सौंदय की वृद्धि होती है आलम्बन की मानसिक स्थिति का प्रकाशन होता है नायक का आकषण एव उसके प्रेम की उद्दीप्ति होती है अलकरण प्रवृत्ति का विकास होता है और प्रेम के प्रकाशन म इनका योग रहता है। मूलत इन प्रसाधना स प्रमुख दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) शारीरिक सौंदय की अभिवृद्धि करना (२) विशेष अभिप्राय एव भावा की अभिव्यक्ति करना। इन्ही दाना उद्देश्यो का सकेत यहाँ होगा।

१ प्रसाधनो का अभिप्रायमूलक प्रयोग —

षोडश शृङ्गार के अतगत वस्त्र आभूषण और अन्य लगाये जाने वाले उपकरणो का सकेत किया जा चुका है। इन उपकरणा का सामान्य प्रयोग शरीर को सजाने अथवा आकषक बनाने के लिये होता है परन्तु कभी-कभी इनसे एक विशेष अभिप्राय की सिद्धि होती है। ऐसे स्थला पर वस्त्राभूषण या अन्य प्रसाधक उपकरण नायक अथवा नायिका की विशेष मन स्थिति या अवस्था का व्यक्त करते हैं। वस्त्रा की विभिन्न स्थितियाँ अन्तप्रवृत्ति को व्यक्त करती हैं। उदाहरणाथ नीवी बद का खुलना अथवा उसका कसकर बँधा होना मेखला का शिथिल होना या विगलन, कचुकी के बद टूटने आदि मे नायिका की परिवर्तित होती हुई धारणा पुष्ट हो जाती है। इसी प्रकार प्रसाधक उपकरणा के अस्थान अथवा विपरीत स्थान पर लगे होने स भी नायक के चरित्र और नायिका का प्रतिक्रिया सम्भावित की जा सकती है। नायक के मस्तक पर महावर आखो मे पीक अधरो म अञ्जन और अगों म अन्य स्त्री के आभूषणो या वेणी के दाग उसके बहुनायकत्व की सूचना देते हैं। इस दृष्टि से

[1] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७९ सरयूप्रसाद अग्रवाल

विचार करने पर आभूषणों व अन्य प्रसाधन उपकरणों के दो अभिप्राय हो सकते हैं —

(१) सौंदर्य वर्द्धक उपकरण के रूप में।

(२) भाव या स्थिति के बोधक उपकरण के रूप में।

इन दोनों अभिप्रायों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन साहित्य में हुई है। शृङ्गार का सौंदर्योत्पक रूप सर्वविदित है परन्तु यही शृङ्गार कोप विधायक रूप से भी प्रस्तुत हुआ है। कहीं पर उल्लास को सूचित करता है और कहीं विपरीत मानसिक भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है। इससे शृङ्गार द्वारा मानसिक भावों की व्यञ्जना होती है। इसी रूप में यहां पर शृङ्गार का विचार होगा।

शृङ्गार एवं प्रसाधनों की भाव बोधकता —शृङ्गार एवं अन्य प्रसाधनों द्वारा दो प्रकार की भाव स्थितियों का चित्रण हुआ है।

(१) उल्लासमूलक स्थिति।

(२) दुःख मूलक मानसिक स्थिति।

प्रिय के मिलन की अभिलाषा अथवा उसकी सम्भावना मात्र से हृदय में जो प्रसन्नता होती है, उसका ज्ञान वस्त्राभूषणों से हो जाता है। किसी विशेष परिस्थिति में आभूषण आनन्द को उत्पन्न करने वाले होते हैं। ऐसा प्राय अभिसारिका अथवा आगत् पतिका नायिका के प्रसंग पर देखा जा सकता है। स्वकीया नायिका की सज्जा से प्रिया प्रियतम के सम्बन्धों का ज्ञान होता है। मानवती नायिका का प्रसाधन अभिप्राय विशेष की अभिव्यक्ति करता है। इससे स्वीकृति अथवा निषेध का आभास मिल जाता है। इस प्रकार का ज्ञान काव्य अभिप्राय के नाम से बताया जा सकता है। इसका मध्यकाल में निम्न लिखित रूपों में प्रयोग हुआ है।

(१) रति अथवा प्रेम के प्रसंग पर वस्त्रों की स्थिति का वर्णन है। अंगिया या कंचुकी नायिका की रतिमूलक भावनाओं की वाहिका होती है। प्रिय के मिलन की सम्भावना से अंगिया के बन्द का टूटना या उसमें कसाव आ जाना मानसिक उल्लास का द्योतक है।[1] मिलन की अवस्था में मानसिक

---

1 (क) कसि आई कंचुकी उकसि आया दोऊ उर।

नवरस तरंग–बेनी–१५/८८

(ख) मानती आवत ह्यां सुनिकै उहि ऐसी गई हद द्यामता जो गुनी।
कंचुकी हूँ में नहीं मनी कसनी कुच की अब तो भई दो गुनी।

भिखारीदास १ १२४/१६३

ल्लास के कारण स्तनो म उभार का आ जाना स्वाभाविक हो सकता है, रन्तु इसी बात को बनाकर सचमुच मे अगिया को फटता हुआ वणन कर ना[1] केवल अतिशयोक्ति मात्र ही हो सकती है क्योकि लोक–व्यवहार मे ऐसा ही देखा जाता है ।

इन्ही वस्त्रो के द्वारा मानसिक उल्लास का वणन दूसरे ढग से भी किया गया है । प्रिय के मिलन पर गाठ का शिथिल हो जाना नायिका की वीकृति का सूचक है । स्वकीया नायिका या मुग्धा की विभिन्न क्रियाओ । इसका भान होता है । नीवी बद का शिथिल होना, उसकी गाठ खुलना, न्ते हुए यौवन और रति इच्छा का प्रकाशन माना जा सकता है —

१ गति भारी भई, बिथि कीवी कहा, कसि बाँधत हू कटि नीबी ढहै ।

भिखारीदास

२ घरी घरी यह घाघरि परति ढीलियै जाति ।

पद्माकर ग्रन्थावली ८५।३१

३ प्रिय भेटिबे को उमगी छतियाँ सु छिपावती हेरि हियो हसिक ।
अगिया की तनी खुलि जाति घनी, सुवनी फिरी बाधति है कसिक ।

सुजान० ३५–२१ छद

४ ललकि गहति लखि लाल को, लली कचुकी बन्द ।
मिस ही मिस उठि उठि हँसति अली चली सानन्द ।

भिखारीदास १ ६४।४५

उपयु क्त चौथे उदाहरण मे लाल' को देखकर कचुकी के बन्द का छूना रति इच्छा का प्रकाशन है । इसी प्रकार नीवी का स्पश उसका उकसाना या खीचना आदि रागदीप्त स्थिति का सूचक है ।[2] कभी-कभी इनकी विपरीत क्रियाओ द्वारा असहमति की सूचना मिल जाती है । जसे नीबी की शिथिलता

---

[1] झारि डार्यो पुलक प्रसेद हूँ निवारि डारयौ
रोके रसना हू त्यो भरी न कछू हागी री ।
एतै पै रह्यौ न भान मोहन लट्ट पै भट्ट
टूक टूक ह्वै के जो छरक भई आगी री ।

पद्माकर ग्र० १४७/२७६

[2] (क) कसिब मिस नीबिन के छिन तो, अग अगन दास दिखाइ रही ।

भिखारीदास

(ख) जी बधि ही बधि जात है
ज्यो ज्यो सुनीवी तनीन की बांधनि छोरनि ।

से रति इच्छा का प्रकाशन होता है उसी प्रकार उसका कसकर बँधा होना नायिका के क्रोध का सूचक है। ऐसी स्थिति में या तो उसके मन में मान की प्रवृति रहती है या असहमति की भावना व्यक्त करती है।[1] हार के धारण करने में गाढालिंगन के बाधक होने से इसे भी असहमति का सूचक ही माना जाता है और उसके न पहनने से आलिंगन की कामना व्यक्त होती है।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वस्त्राभूषणों द्वारा मन की उल्लासमय स्थिति का ज्ञान होता है।

इस उल्लास के कारण आंगिक परिवर्तनों का वर्णन रीतिकाल में हुआ है। अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थितियों में शरीर में कसाव आ जाने तथा कृशता का वर्णन हुआ है। प्रिय मिलन की अनुकूल स्थिति में आंगिक परिवर्तन भाग सूचक होते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति में अंग की कृशता प्रधान हो जाती है। अनुकूल स्थिति में आनन्द का अनुभव होता है जो कई रूपों में प्रकट हो जाता है। इसमें उमंग से शरीर में पुष्टता आ जाने का वर्णन है फलस्वरूप वलय आदि टूट जाते है।[3] अंगों में थिरकन उत्पन्न हो जाती है। यह थिरकन आनन्द को व्यक्त करती है। अंग में उमंग आ जाती है कंचुकी कसने लग जाती है दोनों कुच उकस आते हैं।[4] यह सभी वर्णन आनन्दमूलक है। कहीं कहीं दुःख मूलक भावना भी व्यक्त हो जाती है।

वस्त्राभरणों द्वारा दुःख की व्यंजना प्रोषितपतिका नायिका के प्रसंग पर होती है। ऐसे स्थलों पर कंकण वलय आदि की शिथिलता विरह जन्य कृशता का सूचक हो जाती है। यथार्थ जगत् में इसकी वास्तविकता न रहते हुए भी काव्यात्मक जगत् में इसका प्रतीकात्मक महत्त्व विरह की अभिव्यंजना के लिए होता है। इसमें विरह जन्य दौर्बल्य की उत्कृष्ट भावना व्यक्त हो जाती है। बहुधा प्रोषित पतिका नायिका के प्रसंग में आभरणों के

---

1 एसे सयान सुभायन ह्वै सौं, मिला मनभावन सो मन भारे।
मान गो जानि सुजान तबै, अंगिया की तनी न छुटी जब छारे।
मतिराम-रसराज ६६/१२७

2 और सिंगार सजे ता सजौ इक हार हहा हियरे मति गरो।
पद्माकर ग्रंथावली–१२८/२२२

3 सरकी सारी सीमते सुनतहि आगम नाह।
तरकी बलया कंचुकी दरकी फरकी बाँह। रामसहाय सतसई २५२

4 (क) भावन को सुनि आगम आनन्द मग्न अंगन में उमड्यो है। रसराज
(ख) कसि गई कंचुकी उकसि आयो दोऊ कुच
लसि गई बलया मो फँसि आयो भुजबंध। नवरस-चन्द्रिका १५/८८

शिथिल हो जाने का वर्णन है।[1] केशवदास ने राम की कृशता का वर्णन मुद्रिका के माध्यम से उत्तम व्यग्य प्रणाली मे किया है।[2]

विचारो की यह प्रतिकूलता कोप व्यञ्जक रूप म वर्णित है। प्राय भोग चिह्नो को देखकर नायिका के मन म विपरीत विक्षपक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। एसे स्थलो पर प्रसाधन सौन्दय वद्धक न होकर नायिका के क्रोध की व्यञ्जना कराने म समथ हो जाते हैं। प्रसाधक उपकरणो का इस स्थिति मे वर्णन कई रूपो म किया गया है।

(१) स्वकीया नायिका के रति प्रसग पर आभूषणो से कई अर्थो की सिद्धि बताई गई है। नायक द्वारा नायिका के शृङ्गार म प्रेमाधिक्य की व्यञ्जना होती है। *विपरीत रति की अवस्था म वेष परिवतन रीतिकाल का एक प्रिय* विषय रहा है। इससे नायक के ऊपर नायिका के पूर्ण आधिपत्य की व्यञ्जना हो जाती है। *मतिराम तोष आदि अनेक कवियो ने इस प्रकार का वर्णन किया* है।[3] इस वेष परिवतन स नारी क कामाधिक्य की व्यञ्जना होती है। कभी कभी बहुनायकत्व के प्रसग पर यह वेष स्वकीया के मान का कारण बन जाता है। बहुधा भूल या असावधानी के कारण नायक के शरीर पर प्रसाधन चिह्न रह जाते हैं। *स्वकीया के प्रसग पर यह उसकी लज्जा का कारण बनता है* क्योकि समाज के प्रति गोपनीयता का भ व स्थिर नही रह पाता और उसकी क्रियाओ का ज्ञान सबको हो जाता है।[4] नायिका का वेष परिवतन उसके

---

1 दास चली करते बलया, रसना चली लक त लागा अबारन।
प्रान के नाय चले अनतैं, तनत नहिं प्रान चले केहि कारन॥
भिखारीदास ग्र० १, १३२/१६६

2 तुम कहि बोलत मुद्रिके मौन होति यहि नाम।
ककन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम। केशव–रामचन्द्रिका।

3 (क) राधा हरि हरि राधिका बन आये सकेत।
दम्पति रति विपरीत सुख सहज सुरति हू लेत।
बिहारी रत्नाकर दोहा १५५

(ख) राधे हरि हरि राधे रूप की सुरति कीन्ह,
रति विपरीत विपरीत रति ह्वै गई।
तोष–सुधा निधि ११२/३३१

4 लाल भाल बिंदी दिय उठ प्रात अनसात।
लोनी लाजनि गडि गई लखे लाग मुसकात। मतिराम सत० दो० ६५०

अनुराग का सूचक है।[1]

खण्डिता प्रसग पर नायक के शरीर पर य प्रसाधन कोप को बढ़ाने वाले होते हैं। इसकी दो प्रकार की प्रतिक्रिया वर्णित है (१) अनुत्साह मूलक (२) व्यग्य मूलक। अनुत्साह की स्थिति म नायिका कुछ न बोलती हुई भी अपन मान को उदासीनता के माध्यम से प्रकट कर देती है। व्यग्य म वचन और क्रियाओ द्वारा यह भावना व्यक्त की जाती है। क्रिया द्वारा मान का वणन सूर ने एक स्थल पर बहुत अच्छा किया है।[2] वचनो द्वारा मान एव व्यग्य दोनो की ही सूचना मिल जाती है। यथा —

(१) पलनु पीक अजन अधर, धर महावर भाल।
आजु मिल सुभली करी, भले बन हौ लाल।

बि० रत्नाकर दाहा २२

(२) आव हँसी हम देखत लालन भाल म दीन्ही महावर घोरी।
एत बडे ब्रज मण्डल म न मिली कहूँ रचक माँगेहु रोरी।

नवरस से

पहले उदाहरण म प्रशसामूलक व्यग्य है और दूसरे म स्पष्ट रूप से नायक को अपराधी सिद्ध करते हुए उस पर व्यग्य किया गया है। इन उदाहरणो म प्रसाधन द्रव्यो के अस्थान या विपरीत स्थान पर लग जाने के कारण ये कोप विधायक मण्डन हो जाते है। नायक की पलको पर पान का पीक, भाल व अगुलियो म महावर अगो पर आभूषणो या बनी के दाग इमी भाव को उद्दीप्त करते हैं। य मण्डन विपरीत रति क समय स्वय लगाय जाते हैं या परकीया के सम्पक म अनायास लग जाते है। स्वकीया क सम्ब ध स ये आनन्द विधायक और परकीया सम्बन्ध स कोप विधायक हो जाते है। इन मण्डनो के अतिरिक्त वस्त्राभूषणो का शृङ्गारिक प्रसगो पर साकेतिक महत्त्व होता है।

रीतिकालीन काव्य म कई आभूषणो की ध्वनि आदि क सम्बन्ध म विशेष सावधानी बरती जाती थी। ध्वनि दो प्रसगो पर विशेष अवस्था की सूचक होती थी —

---

[1] मेरे सिर कैसी लग, यो कहि बाधी पाग।
सुन्दरि रति विपरीत म, प्रकट कियौ अनुराग।

मतिराम सतसई ससक दाहा ३६७

[2] प्यारी चित रही मुख पिय को।
अजन अधर कपोलन बिन्दन, लाग्यो काहू तिय को।
× × × × × ×
तुरत उठी दरपन कर लीन्हा देखा वदन सुधारौ। सूरसागर

(१) सयोग प्रसग पर ।
(२) अभिसार प्रसग पर ।

सयोग के अवसर पर किंकिणी के मुखर हाने या नूपुर के मौन होने म विशिष्ट साकेतिक प्रसगो की अभियक्ति होनी थी। बिहारी और पद्माकर आदि ने इसके द्वारा विशिष्ट भावो के उद्रेक की अभिव्यञ्जना की है।[1] प्राय किंकिणी वजने के माधुय से विपरीत रति की कल्पना की जाती थी।

अभिसार के अवसर पर विशिष्ट प्रकार के वस्त्र या आभूषण पहन जाते थे। उनकी व्यावहारिक उपयोगिता सवमा य थी। अभिसार की क्रिया परकीया सम्ब ध से ही होती थी। अत इसम गोपनीयता को इसका अनिवाय तत्व मानते थे। इसी गोपनीयता के लिये कृष्णाभिसारिका काले रग के प्रसाधन, शुक्लाभिसारिका श्वेत प्रसाधन और दिवाभिसारिका दिन की उज्वलता म मिल जाने वाले सौ दय के उपकरणा का प्रयोग करती थी। इन तीना प्रकार की अभिसारिकाए अपनी गति को गुप्त रखन के लिय शब्द या झनकार करने वाले आभूषणो को यथा सम्भव दूर रखती थी। मुग्धा नायिका म झिझक अधिक होने के कारण पूणतया ऐसे आभूषणा का बहिष्कार हो जाता था।[2] प्रौढाएँ आभूषणो की झनकार से चि तित नही होती थी 'गूजरी बजाव रव रसना सजाव कर चूरी झनकाव गरो गहति गहकि क।[3]

अभिसार के समय परिस्थिति म मिल जाने वाले वस्त्राभूषणो पर ध्यान जाता था। सामाजिक नियमा के विपरीत होने से अभिसार को सव स्वीकृति प्राप्त नही थी। इसी कारण गोपनीयता की भावना स युक्त आभरणो को धारण करने की परम्परा चल पडी। कृष्णाभिसारिका साँवरी होकर

1 (क) करत कुलाहल किंकिणी, गह्यौ मौन मजीर।
बिहारी रत्नाकर दोहा १२६
(ख) कहैं पद्माकर त्यौं करत कुलाहल,
न किंकिनी कतार काम दु दव सी द रही। पद्माकर

2 किंकिनी छोरि छपाई कहूँ कहूँ बाजनी पायल पाँय ते नाही।
लाजनि त गडि जात कहूँ अडि जाति कहूँ गज की गति भाई।
बैस की थोरी किसोरी हरै हर या विधि न द किसोर पै आई।
पद्माकर ग्र० १३०।२३०

3 देवकृत सु० विनोद ६१।५६

श्याम के पास अभिसरण करती है।[1] शुक्लाभिसारिका के श्वेत पुष्प, श्वेत अम्बर धारण करने का वर्णन है। वह भनकार वाले आभूषणों को दूर करके श्रीकृष्ण के पास ऐसे आती है कि कोई उसे देख नहीं पाता।[2] यहा स्पष्ट रूप से प्रसाधन सामग्री का अतर वर्णित है। परिस्थिति के अनुसार गोपन मनोवृत्ति की प्रेरणा से सामाजिक विधि निषेधों के पालनार्थ दुग्ध धवल साडी, पुष्पों या मोती के आभरण तथा श्वेत वस्त्रो का प्रयोग होता है। दिवाभिसारिका के प्रसग पर इन वस्त्राभरणों में पुन परिवर्तन हो जाता है। अग्नि के प्रकाश मे जरतारी की साडी का प्रयोग वर्णित है।[3] क्योंकि इसकी भलमलाहट प्रकाश म मिल जाती है। ग्रीष्म ऋतु मे दिवाभिसारिका का वर्णन होता है। इस ऋतु म ध्वनि करने वाले आभूषणों की भनक तीव्र गति से चलती हुई वायु मे मिलकर अलग से श्रुति गोचर नही हो पाती। इससे आभूषणों के धारण मे ध्वनि विषयक सावधानी की उपेक्षा भी हो जाती है।[4]

अत स्पष्ट है कि वस्त्राभरण एव प्रसाधन सामग्रियों का उपयोग रूप को आकर्षक बनाने और विशेष परिस्थिति म अपनी मनोवृत्ति को व्यक्त करने के लिये होता है। वस्त्रादि के आकर्षक गुणों के कारण यह सौन्दर्य वृद्धि म सहायक होता है। भाव या परिस्थिति के बोधक रूप मे वस्त्रादि से नायक या नायिका के चारित्रिक गुणों पर प्रकाश पडता है। भिन्न परिस्थिति म भिन्न आभूषणादि मनोगत भावों को अभिव्यक्त करते हैं। इनस मानसिक उल्लास

---

1 सामरी पामरी की द सुही बलि, सामर प चली सामरी ह्व क।
पद० ग्र० १३३।२४३

2 सिख-नख पूनन के भूषण विभूषित क,
बाँधि लीनी बलया विगत कीन्ही बजना।
तापर सँवारयो सेत अम्बर को डम्बर,
सिधारी स्याम सन्निधि बिहारी काहू न जनी। भिखारी०ग्र० १२५।१६७

3 सारी जरतारी की भलकि झलकनि तसी
केसर को अग राग कीन्हो सब तन मैं।
तीछन तरनि की किरनि त दुगुन जाति
जागति जवाहिर जटित आभरन मैं। ललित० मतिराम छ० ६०

4 मन्द मन्द चली नन्दनन्दन प प्रवान बना ग्रीषम दुपहरी भरी रही है।
सन्धी भूषन पहरान भुज मूलन प पूनन क भूषन सुगन्धि भरि रही है।
नूपुर भनक जग भनक समार तार चहुँ ओर भौरनि की भीर भरि रही है।
नव० तरग २६।१७२

या क्रोध का आभास मिल जाता है। आभूषणादि का भावो की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित यह विशेष उपयोग है। इनसे मानसिक प्रवृत्तियों का उद्घाटन होता है। यहा प्रसाधन बाह्य सौदय का व्यञ्जक होकर आन्तरिक भावनाओ का उद्घाटक है। अय स्थलो पर शोभा विधायक उपकरण के रूप मे इनके प्रयोग का वणन है। वहाँ सौदय साधक उपकरण होने से इन्हें प्रसाधन गत सौन्दय के अतगत माना गया है।

प्रसाधनों का सौदय साधक प्रयोग

सौदय-साधक प्रसाधन गत उपकरणो का वणन करते हुए रीति कालीन काय म दो प्रकार की पद्धतिया अपनाइ गई हैं —

(१) षोडश शृङ्गार के परिगणन वाले छदों क सृजन से राधा अथवा अय नायिका के सौदय का वणन।

(२) एक या दो उपकरणो की सहायता से व्यष्टि रूप म सौ दय साधक उपकरणो का वणन।

इन दोना पद्धतियो मे प्रसाधना की गणना वाले छदों मे कवियो ने अपने षोडश शृङ्गार के ज्ञान को ही दिखाया है। ऐसे छदो से किसी प्रकार की कोई सौदय वृद्धि नही होती। इनसे केवल इन उपकरणो का ज्ञान मात्र हो जाता है। केशवदास बलभद्र आदि कविया न इस प्रकार के छदा को प्रस्तुत किया है।[1] पद्माकर ने कुछ ही प्रसाधना का नाम लिया है। ग्वाल कवि

---

[1] (क) प्रथम सकल सुचि मज्जन अमल बास,
जावक सुदेश केश पास को सुधारिबो।
अगराग भूषण विविध मुख-बास,
राग-कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु,
पल-पल प्रति प्रति पतिव्रत प्रतिपालिबे।
'केसादास' सविलास करहु कुँवरि राधे,
इहि विधि सोलह सिंगार सिंगारिबो। — रसिक प्रिया

(ख) करि दंत धावन उबटि अग उबटन
मज्जन क देह अगुछानु अगु छाइ है।
करिक तिलक माँग पाटी पारा 'बलभद्र'
भली भाल बन्दन को बेंदुरी बनाई है।

ने भी रसरंग में गणना वाले पद को लिखा है।[1] बक्सी हंसराज के स्नेह सागर (पृ० ८०–८१) और सोमनाथ के रासपचाध्यायी[2] में भी गणना वाले उपकरणों का उल्लेख है। इन सभी प्रसंगों को देखने से स्पष्ट है कि इन अवतरणों द्वारा कवियों ने सौंदर्य साधना का प्रयास नहीं किया है, अपितु इन साधनों के वर्णन मात्र का ही उद्देश्य व्यक्त किया है। कहीं पूर्ण सोलह साधनों और कहीं छन्द में मात्रादि की आवश्यकतानुसार कम साधनों या उपकरणों का उल्लेख मात्र होने के कारण इन उपकरणों के प्रयोग से उत्पन्न सौंदर्य का बिम्ब विधान नहीं होने पाता। इससे परम्परा निर्वाह की शुष्कता और आचार्यत्व की प्रवृत्ति का ही संकेत मिलता है। कुछ कवियों ने व्यष्टि रूप में प्रसाधक उपकरणों के प्रयोग से सौंदर्य बढ़ाने की चेष्टा की है।

आलम्बन के सौंदर्य को आकर्षक बनाने के लिये प्रारम्भ से ही सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग होता रहा है। इनसे दो प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति होती रही है। प्रथम शृङ्गारिक उपकरणों से अपने आभिजात्य तथा सौंदर्य का प्रकाशन और द्वितीय इनके प्रयोग से सुखद अनुभूति की उत्पत्ति द्वारा नायक का आकर्षण। इन दोनों ही उद्देश्यों में रीतिकालीन कवियों की सफलता असन्दिग्ध है।

अंजन दै मंजन दसनि दपन चिबुक चिन्ह,
अधर तम्बोर की अधिक छवि छाई है।
महदी करन एडि मांजि के महावर दै,
सोरह सिंगारन की मूल चतुराई है। रस रत्नाकर ७०४

[1] प्रथम न्हवाय चीर सुनि पहिराय भाय
बेनी हू बनाय फूल गथनि गहत है।
मांग सीसफूल खौरि कजरा सुगंध हार,
पत्रावली करत कपोलन महत है।
'श्याम' कवि बीरी टोड़ी बिन्दु हार फूल,
किंकिनी महावर मे आनन्द लहत है।
रार मन करत निहारत रहत माहि,
सार है सिंगारन सिंगारत रहत है।

रसरंग-प्रथम उमंग छन्द ३ श्याम

इन कवियों द्वारा प्रयुक्त शृङ्गार साधना की तीन कोटियाँ की जा सकती है—

(अ) शरीर पर लगाये जाने वाले सौंदर्य के उपकरण।

(आ) शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य साधक उपकरण।

(इ) अन्य उपकरण।

(अ) शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण—ऊपर बताये गये सौंदर्य साधक सोलह उपकरणो मे से अनेक उपकरणों को शरीर मे लगाकर सौंदर्य की वृद्धि की जाती है। इन उपकरणों के प्रयोग मे उनके उद्देश्य की दृष्टि से उन्हें तीन वर्गों में बाँट सकते हैं —

(क) मृदुता उत्पन्न करने वाले सौंदर्य-साधक उपकरण।

(ख) रूपाकर्षण को बढ़ाने वाले सौंदर्य साधक उपकरण।

(ग) सौभाग्य सूचक सौंदर्य साधक उपकरण।

(क) शारीरिक कोमलता को बढाने वाले उपकरणो का आलम्बन से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इनके प्रयोग से शरीर कोमल, मसृण और स्पर्श सुखद बन जाता है। इनमे उबटन, अङ्गराग और सुगंधित द्रव्यो का प्रयोग वर्णित है। षोडश शृङ्गार मे इनका बहुत महत्त्व है। राजानक रुय्यक के अनुसार रत्न, हेम, अंशुक, माल्य मण्डन, द्रव्य योजना और प्रकीर्ण ये सात अलंकार अंगराग से सम्बन्धित हैं।[1] इन सभी मण्डनो को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। द्रव्य अलंकार के अन्तर्गत चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, अगरु पटवास ताम्बूल अंजन, गोरोचन आदि बताये गये हैं। गन्ध द्रव्यो के प्रयोग से घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होती है और उसकी सुगन्धि मन को भी आकृष्ट कर लेती है। इन उपकरणो की प्राप्ति का स्रोत जीव जन्तु, जड़-पदार्थ और रासायनिक सश्लेषण है। मृग से कस्तूरी प्राप्ति और वनस्पतियों से पुष्पादि की प्राप्ति होती है। अनुलेपन विविध द्रव्यों के सम्मिश्रण आदि से बनाया जाता है।

अंगराग का मूल उद्देश्य गोरे वर्ण की शोभा को निखार देना है। अनुलेपन का प्रयोग प्रिय मिलन के पूर्व होता है। स्त्री और पुरुष दोनों है

---

1 रत्न हेमांशुके माल्य मण्डन द्रव्य-योजन।
प्रकीर्ण चेत्यलङ्कारा सप्तवेते मयामता।
निर्णय सागर काव्यमाला-पचमा गुच्छ, पृ० ११८

जाती हुई नायिका के पीछे भौरा का झुण्ड चलने लग जाता है।[1]

रीतिकालीन ग्रन्थ गन्ध द्रव्या मे कस्तूरी चोवा, चन्दन, अगरु अतर एव विभिन्न फूलो आदि के फुलेल के प्रयाग का वणन है। अभिसारिका का रहस्य उसकी सुगधि अथवा अग-ज्योति से खुल जाता है। मिलनोत्सुका नायिकाओ म ही केश मुख शरीर आदि को सुवासित करन का वणन है।[2] इस प्रकार अगरागादि के प्रयोग से एक ओर शरीर म कोमलता उत्पन्न की जाती है और दूसरी ओर सुगधि द्वारा प्रिय का आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है। इस दृष्टि से इन पदार्थो के प्रयोग का मूल उद्देश्य प्रिय के सम्बन्ध मे उनका उपयोगिता मूलक होना ही है। इसी को ध्यान मे रखकर सुगधि, अगराग, अनुलेपन उबटन आदि का प्रयोग अभिसारिका, वासक सज्जा आदि नायिकाएँ शृङ्गार के सौ दय माधक उपकरणा के रूप मे करती थी।

इन सुगधित पदार्थो का वणन अनेक स्थला पर अनक कवियो द्वारा किया गया है। मृगमद,[3] चन्दन,[4] घनसार[5] केशर[6] आदि द्वारा इन्ही

---

[1] रस रत्नाकर पृ० ६६३

[2] मतिराम रसराज छद १७२

[3] रन अधेरी नीलपट मृगमद चर्चित अग।
सघन घटा सी लखि पर रँगी स्याम के रग।
—री का स पृ १४१ कृपाराम

[4] (क) चदन चढाउ जिन ताप सी चढति तन,
कुमकुम न लाउ अग आग सी लगति है।
—री का स पृ १४७ केशव

(ख) अगन मे चन्दन चढाय घनसार सेत
सारी छीर फेन की सी आभा उफनति है।
—री का स पृ १७३ मतिराम

[5] (क) सीरे करिबे को पिय नन घनसार केधो,
बाल के बदन बिलसन मृदु हास है।
—ललितललाम मतिराम

(ख) घसिहौं घनसार पटीर मिल, मिल बात कही न बनावटी ऊ।
—बेनी प्रवीन

(ग) घनसार पटीर मिल मिल नीर, चहै तन लाव न लाव चहै।
—बेनी प्रवीन

[6] (क) केसरि कुसुम हू ते कोरी जो न होती
तो किसोरी सा कुसुम सर कौनी भांति जीतती। देव

अंगरागादि का प्रयोग करते थे परन्तु रीतिकालीन काव्य में स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त अंगराग की अधिक चर्चा हुई है।

कस्तूरी अगरु, केशर, मलाई सन्तरे के छिलके आदि को एक मे पीस कर अंगराग बनाने की परम्परा रही है। इससे शरीर मे सुगन्धि रहती है और यह सुगन्धि मन को तृप्त करती रहती है। रीतिकालीन साहित्य मे ऐश्वर्य एवं वैभव परक सामाजिक स्थिति का प्रभाव सर्वत्र दीख पड़ता है। इसी से केसर के प्रयोग का वर्णन अनेक कवियों ने किया है।[1] कान्तिमान् स्वर्णाभा से युक्त शरीर मे केशर का लेप आकर्षण एवं सुगन्धि से मन को आप्लावित कर देता है। इन सुगंधित पदार्थों का प्रयोग सखी द्वारा, स्वयं नायिका द्वारा या नायक के द्वारा नायिका के अंगो में किया जाता है। इससे इनके भोग परक दृष्टिकोण की ही पुष्टि होती है। प्रायः अभिसारिकाएँ अभिसार के समय अंगराग एवं सुगन्धित पदार्थों का लेपन करके प्रिय मिलन को जाती थी। सखियाँ इस सुगंधि के सहारे नायिकाओं के पीछे जाती हुई बताई गई हैं।[2] नायक के शरीर की सुगन्धि उसके अन्य नायिका के साथ रति प्रसंग को उद्घाटित कर देती है। ऐसे स्थलों पर रति चिह्न के रूप में सुगन्धि की उपयोगिता हो जाती है। कुंजादि इस सुगंधि से भर जाता है।[3] सुगन्धि युक्त नायिका का आकर्षक चित्र उपस्थित हो सका है।[4] सौन्दर्यवृद्धि के उपकरण के रूप में सुगन्धित द्रव्यादि के प्रयोग से तत्कालीन वैभव की स्मृति हो जाती है। राधा का मुख सुगन्धिपूर्ण है।[5] मुखवास से रुचि बढ़ती है। जमुना की

---

[1] 'मतिराम ग्रंथावली' रसराज छन्द २०१ देव–भावविलास छन्द १०५ रघुनाथ 'रसिक मोहन' छन्द ४०१ सुन्दरी तिलक छन्द २६६।

[2] बिहारी

[3] सजि ब्रज चन्द पै चली या मुखचन्द जाको,
चन्द चाँदनी को मुख मन्द सा करत जात।
कहै 'पद्माकर त्यो सहज सुगन्ध ही के,
पुंज बन कुंजन में कुंजन से भरो जात। जगद्विनोद छन्द २८३

[4] अटा सुवासी भीर ही सोरी मानु घटा
छटा सुहासी सदी सामान मन्द में।

श्री राधा सुधा शतक छन्द ७१ हठी

[5] गंधि में न सोनी में न रम्भा रमा जानकी में
जैसी है सुगन्ध प्यारी राधा सास अंग में।

श्री राधिका जी नख शिख छन्द ६६ कालिका प्रसाद

जाती हुई नायिका के पीछे भौंर का भुण्ड चलने लग जाता है।[1]

रीतिकालीन ग्रय गघ द्रयो मे कस्तूरी, चोवा, चन्दन, अगरु अतर एव विभिन फूला आदि के फुलेल के प्रयोग का वरणन है। अभिसारिका का रहस्य उसकी सुगधि अथवा अग-ज्याति से खुल जाता है। मिलनोत्सुका नायिकाओ मे ही केश, मुख शरीर आदि को सुवासित करने का वरणन है।[2] इस प्रकार अगरागादि के प्रयोग से एक आर शरीर म कोमलता उत्पन्न की जाती है और दूसरी ओर सुगधि द्वारा प्रिय को आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है। इस दृष्टि से इन पदार्थों के प्रयोग का मूल उद्देश्य प्रिय के सम्बन्ध मे उनका उपयोगिता मूलक हाना ही है। इसी को ध्यान म रखकर सुगधि, अगराग, अनुलेपन उवटन आदि का प्रयोग अभिसारिका वासक सज्जा आदि नायिकाएँ शृङ्गार के सौदय सावक उपकरणा के रूप मे करती थी।

इन सुगधित पदार्थों का वरणन अनक स्थला पर अनक कवियो द्वारा किया गया है। मृगमद,[3] चदन [4] घनसार,[5] केशर[6] आदि द्वारा इन्हीं

---

1 रस रत्नाकर पृ० ६६३

2 मतिराम रसराज छद १७२

3 रन अधेरी नीलपट, मृगमद चर्चित अग।
सघन घटा सी लखि परै रँगी स्याम के रग।
—री का स पृ १४१ कृपाराम

4 (क) चदन चढाउ जिन ताप सी चढति तन,
कुमकुम न लाउ अग आग सी लगति है।
—री का स पृ १४७ केशव

(ख) अगन म चदन चढाय घनसार सेत,
सारी छीर फेन की सी आभा उफनति है।
—री का स पृ १७३ मतिराम

5 (क) सीरे करिबे को पिय नन घनसार केधा,
बाल के बदन बिलसत मृदु हास है।
—ललितललाम मतिराम

(ख) घसिहौं घनसार पटीर मिल, मिल वात कही न बनावटी ऊ।
—बेनी प्रवीन

(ग) घनसार पटीर मिल मिल नीर, चहै तन लाव न लाव चहै।
—बेनी प्रवीन

6 (क) केसरि कुसुम हू ते कोरी जो न होती
तो किसोरी सा कुसुम सर कौनी भाति जीतती। देव

उद्देश्यों की सिद्धि की जाती थी। इन पदार्थों की फलती हुई सुगंधि से वातावरण म भोगमूलक भावना फलती है और उसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। ऐसी नायिकाओं के पीछे भौरा का झुण्ड लग जाता है और पहरा देने वाले पहरुओं के मन म भी औत्सुक्य जाग्रत हो जाती है।[1] अगों से निकलती हुई सुगन्धी की झकोर प्रवाहित होने लगती है।[2]

प्रश्न म कहा जा सकता है कि शारीरिक कोमलता को अर्जित करने के लिये उबटन, अगराग अनुलेपन आदि को सौन्दर्य साधक उपकरणों के रूप मे प्रयोग किया जाता है। इनसे शरीर म कोमलता आती है वातावरण मे मादकता फलती है नायक के मन म रतिमूलक भावना का उद्भव होता है और भोग परक उद्देश्य की सिद्धि होती है। इनके प्रयोग से नायिका का आकर्षण बढ़ता है, स्पर्श सुखदता आती है, घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। नायिका के सहज सुगध म उसके 'पद्मिनी' होने की बात का समर्थन मिलता है। अनुलेपनादि से प्राप्त सुगन्धि नैसर्गिक न होकर कृत्रिम है। इस कृत्रिम सुगन्धि से भी भोगपरक भावना का प्रकाशन होता है और रतिमूलक भाव की उद्दीप्ति होती है। रीतिकालीन कवियों का यही उद्देश्य था और इसम उन्हे पूर्ण सफलता मिली है।

(ख) रूपाकर्षण को बढ़ाने वाले सौन्दर्य साधक शृगार के उपकरण— षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत सौन्दर्य को बढ़ाने वाले अनेक उपकरणों का वर्णन रीतिकालीन साहित्य म मिलता है। इन उपकरणों म अञ्जन, तिल, जावक मेंहदी की गणना होगी। अजन नेत्रों म और तिल की रचना कपोल या चिबुक के ऊपर की जाती है। पैरों म लगाने के लिये महावर या जावक का प्रयोग होता है। सौन्दर्य वर्द्धक इस उपकरण का प्रयोग स्त्रियाँ अपनी एडी को रँगने म करती हैं। आखों का अजन और पग म महावर सौन्दर्य को बढाने वाला होता है। शृङ्गार साधन मे यह महत्वपूर्ण उपकरण है। इससे कई बातों का ज्ञान होता है—

(ख) केसर रग रगे पट धारि, चली वृषभानुलली बिमला सी।
—पृ ३२५/४७७ ब्र सा का नायिका भेद

1. रीति काव्य सग्रह पृ० २०२
2. जमुना के तीर वह सीतल समीर तहाँ, मधुकर करत मधुर मद सोर है। कवि मतिराम तहाँ छवि सो छबीली बैठी आँगन म फैलत सुगंध की झकोर है।
—रीति काव्य सग्रह पृ० १७३

(१) नायिका की एडी की लालिमा और इससे नाइन को धोखा हो जाना।

(२) जावक के भार से नायिका के सौकुमार्य की अभिव्यक्ति।

(३) जावक लगाने म नायक के प्रेम का प्रदशन एव नायिका का रूप गर्विता एव प्रेम गर्विता होने का सकेत।

(४) जावक द्वारा नायक के अन्य नायिका के साथ रहने का सकेत।

(१) जावक का रग नायिका की एडी के रग से मिल जाता है। इससे महावर लगाने को आई हुई नाइन भ्रम मे पड जाती है। वह निणय नही कर पाती कि किस पग मे महावर लग चुका है। नाइन के इस भ्रम के माध्यम से नायिका की शारीरिक अरुणिमापरक सौन्दर्य की व्यञ्जना हुई है।[1]

(२) जावक सौकुमाय को व्यञ्जित करने के साधन के रूप म भी प्रयुक्त हुआ है। जावक के भार स नायिका का पग मन्द गति से धरा पर पडता है।[2] इसी भार से स्वय नायिका भी जान पाती है कि उसके किस पग मे जावक लग चुका है।[3] जावक के भार की इस असहनीयता द्वारा उसकी कोमलता अभिव्यञ्जित है। कामल शरीर आकषण एव स्पश सुख का साधन होता है।

(३) जावक को शृङ्गार प्रसाधक रूप म प्रयोग करके नायक नायिका अपनी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। रीतिकालीन साहित्य मे प्रिय द्वारा जावक लगाया जाना सौभाग्य का सूचक माना जाता है। इसे देखकर अन्य स्त्रियाँ स्पृहा करती है। ऐसे वणन म रीतिकालीन नायिकाओं की दो मानसिक प्रवृतिया व्यक्त हो जाती है (क) ऐसी नायिका जो प्रिय से जावक लगवा कर अपने प्रेम की प्रशसा सखियो से सुनती हैं।[4] (ख) ऐसी नायिकाएँ जो प्रिय द्वारा परो का स्पश किया जाना सामाजिक मर्यादा के कारण अनुचित समझ

---

1 पांय महावर देन को नाइन बठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एडी मीडति जाय। बिहारी

2 व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २१२/१३ द्विजदेव

3 (क) बोझिल सा यह पाव लगै तब यौं मुसुवाइ कह्यो ठकुराइन। रघुनाथ
(ख) आप कह्यो अरी दाहिनै द माहि, जानि पर पग बाम है भारी।
री० का० सग्रह पृ० २२७

4 आपुहि पाँइन देत महावर बेनी गुहै और बनी डुलावै।
आपुहि बीरी बनाइ खवाव, अनव विलासन रीभि रिभाव।
री का स पृ १६५/८ चितामणि

कर उसका निवारण कर देती हैं और अपने प्रेम प्रदर्शन द्वारा पैरों के स्पर्श करने से प्रिय को विरत कर देती हैं।[1] इन दोनों ही प्रवृत्तियों में स्वकीया नायिका का प्रेम गर्व और अपने प्रिय के प्रति असीम विश्वास का भाव लक्षित होता है। इससे ऐसे प्रसंगों पर जावक भाग्य सूचक सौंदर्य का उपकरण बन जाता है। यही जावक अस्थान पर लगा होने से नायिका के क्रोध का कारण भी बनता है। इससे नायक की रसिकता और परस्त्री गमन की सूचना मिल जाती है। खण्डिता नायिका के चित्रण में ऐसा वर्णन मिलता है।[2] नायक के मस्तक पर लगा हुआ जावक उसकी गुप्त रति क्रीडा के रहस्य को प्रकट कर देता है। जावक का अर्थ यदि इस उपभोग मूलक अभिप्राय की सिद्धि में न लें तो नायिकाओं द्वारा इसके प्रयोग से उनके सौंदर्य की वृद्धि होती है। ऐसे प्रसंगों पर मीलित अलंकार के प्रयोग से नायिका की स्वाभाविक लालिमा को जावक की लालिमा से तद्रूप कर देते हैं। इससे नायिका की कोमलता अरुण कांति, शोभा एवं आभिजात्य का आभास मिलता है। इसके विशेष अभिप्राय मूलक प्रयोग से पर रति की व्यञ्जना होती है। रीतिकालीन साहित्य में जावक का वर्णन दोनों रूपों में किया गया है।

मेंहदी को षोडश शृङ्गार में समाविष्ट कर लेने की धारणा का विकास परवर्ती कवियों की देन है। षोडश शृङ्गार का विवेचन करते हुए आरम्भिक

---

[1] ह्वै कै रस बस जब दीवे कौ महावर कों,
　सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
　चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों,
　कही प्राणपति यह अति अनुचित है।

　　　　　　　　　　　　　　　　कवित्त रत्नाकर' सेनापति

[2] (क) अंजन अधर दसि जावक लिलार भाए,
　　　बाल के गु नन महालाल रंग सरावार।

　　　　　　　　　　　　　　ब्र सा ना भे प ३३२/५०४

　(ख) जावक लिलार ओठ अंजन की लीक सोहै
　　　सघन अगार लार-लीक न बिगारिए।

　　　　　　　　　　　मतिराम ब्र० सा० ना० भे प ३३२/५०५

　(ग) काहे को नन्द, बद बनन प्रकट होत,
　　　अनुराग प्रिया को लिलार धरि आए हो।

　　　　　　　　　　　सोमनाथ ब्र० सा० ना० भे प ३,३/५०६

युग मे तथा सस्कृत कवियो द्वारा इसकी गणना इन शृङ्गारिक उपकरणो मे नहीं की गई थी । याद म तत्कालीन समाज के प्रभाव के कारण इसे सौन्दर्यो त्कप का प्रमुख साधन स्वीकार कर लिया गया होगा । इसी से इसकी गणना षोडश शृङ्गार के अन्तगत होने लगी होगी । इससे उत्पन्न शारीरिक लालिमा और सुगधि मन को आकृष्ट करने म सफल होती है । इस दृष्टि से मेहदी के प्रयोग के दो उद्देश्य दीख पडते हैं —

(१) नायिका के सौन्दय की अभिवृद्धि ।

(२) मेहदी से उत्पन्न सौन्दय द्वारा नायक की मन स्थिति का वणन ।

सौ दय साधन के रूप मे वासकसज्जा नायिका द्वारा इसका प्रयोग वर्णित है ।[1] अन्य नायिकाओ द्वारा भी सौदय को बढाने के साधन के रूप म महदी का उपयोग होता है । देव की नायिका सौभाग्य के अन्य चिह्नो के साथ मेहदी का प्रयोग करती है ।[2]

मेंहदी द्वारा नायक के अतिशय प्रेम की व्यञ्जना की गई है । वह प्रेम मे पूर्ण होकर अपने ही हाथो से मेहदी रचा देता है । नायिका इस काय के लिये नायक का निवारण करती हुइ कहती है कि तुमने अगो म अगरागादि लगाया, मैंने मना नही किया, परन्तु हे प्रवीण तुमसे अपने पैरो म मेहदी नही लगवाऊँगी ।[3] इन उक्तियो म स्वकीया का निर्मल और मर्यादित प्रेम भाव व्यक्षित किया गया है । नायिका प्रिय द्वारा अपने पैरो का स्पश किया जाना अनुचित मानती है । इसी से इस काय का निवारण अपनी प्रेमपूर्ण और मधुर उक्तियो से कर देती है ।

सौन्दर्योत्कर्षक इन उपकरणो म तिल अजन मेहदी और जावक का सकेत हुआ है । इनम जावक सौभाग्य सूचक उपकरण के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है । अन्य उपकरणो से शारीरिक शोभा एव आकषण को बढाने का प्रयास

---

[1] मेहदी रचाइ कर पावनि महावर द, देखति कनखनि सखिन खुबहतई ।
देव भेद पृ० ११/४११

[2] भूपण भेप जराउ जरे परे छोरि सुगध तमोर विसारेई ।
पैन्हें फिरै भियरे पट फीके सुनीक लग मुख ही के उज्यारेई ।
बदन बेंदी लिलार लस चुरी चार सोहाग की रासि पसारेई ।
लाज लगै अरविदन देव रची महदी कर बिन्दु निहारेई । देव

[3] अग राग और अगनि करत कछू बरजी न ।
प मेहदी न दियाइहौ तुमसा परम प्रवीन । पद्माकर

किया गया है। इनका प्रयोग सौन्दर्य वद्धक और विशेष अभिप्राय के सूचक उपकरणों के रूप में किया गया है। इनमें अजन, जावक आदि द्वारा नायक की रसिकता का ज्ञान कराया गया है तथा स्वकीया के लिये अथवा अन्य नायिका के लिये इन उपकरणों के प्रयोग से सौदर्य एवं आकर्षण को बढ़ा कर नायक को लुब्ध करने की चेष्टा की गई है।

(ग) सौभाग्य सूचक सौदर्य के उपकरण—

शरीर पर लगाये जाने वाले शृङ्गार के उपकरणों को तीन वर्गों—मृदुता उत्पन्न करने वाले, आकर्षण बढ़ाने वाले और सौभाग्य की सूचना देने वाले—में विभाजित किया गया था। इनमें दो का वर्णन किया जा चुका है। षोडश शृङ्गार में कुछ ऐसे उपकरण भी माने जाते हैं जिनसे दो उद्देश्यों की सिद्धि होती है (१) सौंदर्य को बढ़ाकर व्यक्तित्व को मोहक बनाना (२) सौभाग्य की सूचना देना। सभी उपकरणों में प्रसाधन का गुण तो रहता ही है। उनके बिना इनकी गणना शृङ्गार प्रसाधन में हो ही नहीं सकती है। इस वर्ग के उपकरणों से स्त्रियों के सौभाग्य की सूचना भी मिलती है।

सौभाग्य सूचक षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत इन उपकरणों में सिन्दूर, बिन्दी और तिलक की गणना होती है। सिन्दूर का प्रयोग केवल विवाहित सधवा स्त्रियाँ ही करती हैं। बिन्दी और तिलक रचना द्वारा सौभाग्य की ही सूचना मिलती है। बिन्दी, चदन, कुमकुम केशर कस्तूरी गोरोचन रोरी, ईंगुर सिन्दूर से बनाई जाती है। इनमें रोरी कुमकुम सिन्दूर और ईंगुर की बिन्दी विवाहिता स्त्रियाँ लगाती हैं। रीतिकालीन साहित्य में बन्दन शब्द रोरी, सिन्दूर और गोरोचन आदि की बिन्दी के लिये प्रयुक्त होता है। मुग्धा अनूढ़ा के प्रसंग पर बन्दन का अर्थ गोरोचन से लगाया गया है।[1] इस सहज शृङ्गार में बेंदी, तमोल अजन आदि की अनिवार्यता का समर्थन मिलता है।[2]

तिलक अमंगल को हटाने के लिये तथा मुख शोभा बढ़ाने के लिये प्रयुक्त होता है। आड़ा तिलक का यही उद्देश्य था। इसे केशर का बनाते थे।

---

[1] (क) करि चदन की खौरि द बदन बेंदी भाल
दरप भरी निद्रक म दरपन देखति बाल।
भिखारी० ग्र० १/ पृ० ७/३२

(ख) अजन नैन जिन्नी मुख म कहि तोष सा बदन माँग सवारी।
तोष सुधानिधि पृ० १२३/२६३

[2] बिहारी रत्नाकर ६७६ वाँ दोहा।

ऐपन के आडा तिलक का वणन सतसई मे है।[1] इसे ही खौर तिलक भी कहते हैं। बीच मे खुरचे हुए आड़े तिलक को खौर कहते हैं। पत्रावली रचना का काय आज भी नवलवध के मस्तक पर होता है। इसे बुदकी कहते हैं। ललाट, कपोल, वक्षदेश आदि अगो पर चदन केशर कस्तूरी से चित्रित करने का वणन इस साहित्य मे मिलता है।

सिन्दूर मगल सूचक द्रय क रूप म प्रयुक्त होता है। यह विवाहिता स्त्रियो का प्रथम लक्षण है। मागो पर सिन्दूर और ललाट पर उसका टीका उसके सधवात्व की सूचना देते हैं। रीतिकालीन साहित्य में सिन्दूर की चर्चा अनेक स्थलो पर है। यह चर्चा दो रूपो मे है (१) सामान्य वणन मे (२) सिन्दूर के प्रभाव की व्यञ्जना मे।

सामान्य वणन मे सिन्दूर के प्रयाग की बात कही गई है। अय प्रसाधना के साथ इसका भी प्रयोग नायिकाएँ करती थी।[2] कही पर केवल मांग सँवारे जान का सकेत है। ऐसे स्थलो पर इससे उत्पन्न या बढ जाने वाली शोभा का कम वणन हो सका है। प्रभावमूलक व्यञ्जना मे इसे कामदेव की दुधार के समान कहकर इसकी घातक और अचूक चोट का सकेत किया गया है।[3]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि बदी,[4] टीका, गोरोचन और रोरी [5] आदि

---

[1] बिहारी रत्नाकर छद ६३

[2] (क) सुथरे सम्हारे वार सन्दुर सी मांग भरि,
सीसफूल जोति सब जोतिन सो आगरी।
ब्र मा ना भेद पृ० २१४/२२

(ख) मांग सँवारत काधई लै, कचभार भिजावत अग-समेत हो।
ब्र सा ना भेद पृ० ३०८/३६८

[3] काली पटियो के बीच मोहिनी की माग है
कि सान पर ठाढा कामदेव का दुधारा है।

[4] (क) वदी बर बीर नग हीर गन हीरल की,
देव भमकन म भमक भरि भारी सी। ब्र सा ना भेद पृ० २१५

(ख) फूलन सो बाल की बनाय गुही वनी लाल,
भाल दर्ई बदी मृगमद की असित है।
ब्र सा ना भेद पृ० ३०८/३९९

(ग) बसर लाइ सँवारि कै आट निहारि क नेह नगे तरिवौ कर।
ब्र सा. ना भेद पृ० ३०९/४०१

की प्रसाधना के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। सभी मनोमूलक हैं। लगाये जाने वाले उपकरणों द्वारा तीन उद्देश्यों की सिद्धि बताई गई है (१) शरीर में सुगन्ध लाना (२) रूप का निखारना (३) सौभाग्य को सूचित करना। इन तीनों उद्देश्यों में रीतिकालीन साहित्यकार सफल हुआ है। इन सभी वस्तुओं के प्रयोग में भोगमूलक प्रवृत्ति सन्निहित है। इनके द्वारा साज सौन्दर्य के द्वारा नायक के हृदय में उद्वेग उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। प्रिय मिलन की आकांक्षा वाली स्त्रियाँ इनका प्रयोग करती हुई दिखाई पड़ती है। सहज शृङ्गार के साथ इन उपकरणों का विशेष अभिप्राय मूलक सज्जा को भुलाया नहीं जा सकता है। यह अभिप्राय रीतिकालीन साहित्य में दो रूपों में वर्णित है (१) मिलन के उत्साह में इनका सुन्दर उपयोग किया गया है। ऐसी स्थिति में अपने रूप को अधिक आकर्षक बनाकर नायक के समक्ष अपने को प्रस्तुत कर देना प्रमुख उद्देश्य था। उस काल में पुरुष अनेक स्त्रियों से सम्पर्क रखते थे। अतः जो स्त्री अधिक बन सँवर कर आकर्षक दीख पड़ती थी, उसी की महत्ता सर्वोपरि रहती थी। इस दृष्टि से इनका उपयोगितामूलक प्रयोग होता था।

(२) रति चिह्नों के रूप में ये ही उपकरण मानसिक विकर्षण के कारण बन जाते थे। ऐसा वर्णन खण्डिता या अन्य सम्भोग दुःखिता नायिकाओं के प्रसंग पर हुआ है। अपने पति के अंगों पर स्त्री द्वारा लगाये गये इन उपकरणों को देखकर या पर स्त्री के बदन पर रति चिह्नों को देखकर इस प्रकार का मानसिक विकर्षण उत्पन्न होता है। ऐसा वर्णन इस काल के साहित्य में मिल जाता है।

लगाये जाने वाले सौन्दर्य साधक उपकरण ही वियोग की अवस्था में अपनी सुखदता और आकर्षण को छोड़ देते हैं। मिलनोत्सुका नायिका के लिये ये ही उपकरण उद्देश्य साधक हैं परन्तु विरहिणी के द्वारा इनके प्रयोग का निवारण किया गया है। ऐसी स्थिति में इनके द्वारा प्रतिकूलता ही वर्णित की गई है, फिर भी इनके अनुकूल और सुन्दर प्रयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रतिवाद उत्पन्न नहीं हो सकता है। सौन्दर्य साधक इन उपकरणों के साथ शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरणों द्वारा भी सौन्दर्य की वृद्धि की जाती है।

---

[1] रोचन रोरी रची मेहदी नृपशंभु कहै मुक्ता सम हानि है।
ब्र सा ना भेद पृ० २१५/२८

(आ) शरीर पर धारण किये जाने वाले सौदय के उपकरण —

पोडश-शृङ्गार के अतगत सभी उपकरणो को तीन वर्गो म बाटा गया था। इनम शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। इन पक्तिया म शरीर पर धारण किये जाने वाले उप करणा का विश्लेपण हागा। इन उपकरणा को दो वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं। यह विभाजन वस्तुआ की उपयोगिता के आधार पर किया गया है—

(क) वभव के प्रदशक एव सौ दय को बनाने वाले उपकरण।

(ख) शरीर की रक्षा करने वाले उपकरण।

वभवगत उपकरण के अतगत उसका विभाजन प्राप्ति के स्रात के आधार पर वर्गो म हो सकता है—

(१) धातु या खनिज क रूप म प्राप्त होने वाले उपकरण-अलकार आदि।

(२) वनस्पतिया से प्राप्त हाने वाले उपकरण—फूल माला आदि।

(३) जीवा स प्राप्त होने वाले उपकरण—मोती, मारपख आदि।

शरीर की रक्षा करने एव उसको ढकने के लिय मनुष्य निर्मित वस्त्रादि का प्रयोग किया जाता है। क्रमश इन सब पर विचार किया जायगा।

(१) **अलकार**—रीतिकालीन साहित्य म युग की भोगपरक दृष्टि सवत्र लक्षित होती है। नायिकाए अपन सौदय और यौवन को प्रभावशाला एव ऐन्द्रिय बनाने के लिय सदव से प्रयत्न करती चली आई हैं। इसके लिय निसगगत सहज एव कृत्रिम अर्थात् अर्जित सौदय की अभिरुचि देखी जाती है। सहज सौदय मुग्धा नायिकाआ म स्वत ही प्रतिभासित होता रहता है। मध्या और प्रौढा नायिकाआ म सहज सौदय की अपेक्षाकृत कमी पड जाती है। इसी कमी की पूर्ति हेतु पोडश शृङ्गार की व्यवस्था की जाती है। मुग्धाओ के शृङ्गार का वणन भी विशप अवसरा पर किया गया है। इन अलकरणा स अनेक उद्देश्या की सिद्धि बताई गई है।

(अ) अलकारों द्वारा नायिका के सौदय का उत्कर्प दिखाना।

(आ) मादक वातावरण की सृष्टि करना और प्रेमोद्दीपन करना

(इ) विशप अभिप्राय की अभिव्यक्ति करना।

अलकारा के प्रयोग से नायिका का रूप पहले की अपेक्षा अधिक बढ जाता है। ऐसा वणन अनेक स्थला पर हुआ है। इनम मादक वातावरण की

सृष्टि होती है। किंकिणी, नुपूर, बिछुवा, क्षुद्रघंटिका आदि द्वारा नादात्मक सौंदर्य उत्पन्न होता है। इससे उत्पन्न ध्वनि वातावरण की सृष्टि करती हुई नायक के मन में मादकता और आकर्षण का संचार करती है। अलंकारों का अनुरणन नायक में औत्सुक्य और जिज्ञासा को उत्पन्न करता है। इसके श्रवण मात्र से रमणी की मोहक मूर्ति साकार हो उठती है।[1] अभिसार एवं समागम प्रसंग पर अलंकारों के अनुरणन से उत्पन्न ध्वनि द्वारा मादकता की सृष्टि की गई है। इसीसे अभिसार के अवसर पर प्रौढ़ा अभिसारिका निर्भय होकर प्रिय मिलन के लिये झंकार की चिन्ता न करती हुई जाती है। मुग्धा में संकोच लोक लाज और भय की मात्रा अधिक होती है इससे वह झंकार करने वाले आभूषणों को या तो उतार देती है अथवा उसका शब्द होने से रोक रखती है। सामान्य अभिसारिका में इस प्रकार का कोई भी बंधन नहीं होता। इससे इसके आभूषणों द्वारा मादकता फलती हुई चलती है। मतिराम देव, पद्माकर बेनी प्रवीन आदि कवियों ने आभूषणों के झंकार के विषय में नायिकाओं की अवस्था और परिस्थिति का ध्यान रखा है। इससे उत्पन्न मादक वातावरण के कारण नायक और नायिका दोनों के मन में प्रेम का उद्दीपन हो जाता है। समागम के समय इस झंकार से रस की दीप्ति हो जाती है।[2] नुपूरादि की झंकार सहजरति और क्षुद्रघंटिका की झंकार विपरीत रति को व्यक्त करता है। इससे स्पष्ट है कि अलंकारों के प्रयोग और झंकार द्वारा विशेष स्थिति और अभिप्राय की व्यन्जना भी होती है। इससे नायिका की अवस्था का ज्ञान होता है। प्रौढ़ा नायिकाएं झंकार की चिन्ता नहीं करती हैं परन्तु मध्या और मुग्धा को झनकार को सुनकर सखियां उनका परिहास करने में चूकती भी नहीं हैं। इसीसे लज्जाशीला नायिका लोगों के सो जाने तक प्रतीक्षा करने को

---

[1] किंकिनी पायल पैंजनियाँ बिछुआ घुँघरू मिलि गाजन लागे।
(क) मानो मनोज महीपति के दरबार नगारनि बाजन लागे।

सुंदरी तिलक छंद ४३

[2] किंकिनी नेवर की झनकारनि चारु पसारि मयारन मारहिं।
काम कचौरनि में मनिराम कलानि निहाल कियो नन्दलालहिं।
(ख) भूषन बनक घुँघरुनु की घनक रति
कूज की झनक देत लालसा प्रसंग की। तोषसुधानिधि छंद ६६
(ग) भाव विलास छंद ३६ देव।

कहती है।[1] उसे भय है कि आभूषण की ध्वनि से सखियाँ जान जायँगी और प्रात काल उसका परिहास होगा। इसके विपरीत प्रौढाएं इस प्रकार की चिन्ता नही करती हैं। 'साजिसिंगारनि सेज चढी, तबही ते सखी सब सुद्धि भुलानी। कचुकी के बद छूटन जाने न नीवी की डोरि न टूटत जानी। एसी विमोहित ह्व गई है जनु जानति रातिक म रति मानी। साजी सबै रसना रस केलि म बाजी कब बिछुवानि की बानी।'[2] इन विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि अलकारो के प्रयोग म ऐन्द्रिय दृष्टिकोण सदैव बना रहा है। इससे उत्पन्न मदिर वातावरण रमणी के प्रति आकर्षित करके नायक को अधीर बना देता है। इसके साथ ही आभूषणा क विभिन्न अगो मे प्रयोग से उत्पन्न सौदय को भी जान लेना चाहिए।

सौन्दय साधक अलकारो की सख्या अनक मानी गई है। इनमे बारह आभूषणो को प्रमुखता प्रदान की गई है। इन आभूषणो म शीशफूल टीका, बालो बेसर ग्रैवेण्ठ हार, बाजूबद, चूडी, ककन, अगूठी, किंकिणी और नूपुर का वणन है। बलभद्र ने भी बारह आभूषणो का समथन किया है।[3] इन आभूषणो का प्रयोग मस्तक, कान नाक गला, बाहु, कटि और पैरो म होता है। रीतिकालीन साहित्य म प्राय स्त्रियो के आभूषणा का ही वणन

---

1 भाँझरियाँ झनकगी खरा खनकगी चुरी तनको तन तोरे।
'दास जू जागती पाम अली परिहास करगी सबै उठि भोरैं।
सौंह तिहारी है भागो न जाऊँगी आई हौं लाल तिहारेई धोरे।
कलि के रगनि परी है घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे।
मुदरी तिलक छन्द ३९

2 भावविलास छद ४७ देव

3 बेनी भाल मांगश्रुत नासिका के बरभद्र'
कव के कनक सुबरन अपार है।
भुज पहुँचानि कर पल्लव के कौन गन
उरन के मण्डल जित हमल हार है।
कटि मुरवान के सु हाथन की अगुरा
कि बिछियानि दे केणित कोऊ नकार है।
चारि मन धातु रसुगधवार अलकार
बारह आभरण ये सोलह सिंगार है।
बलभद्र पृ० २६६/६५ पूना विश्वविद्यालय से प्राप्त हस्त लिखित प्रति

किया गया है। कुछ कवि इस परम्परा के अपवाद म पुरुषो के प्रसाधनो की ओर आकृष्ट दीख पडते है। ऐसे कवियो मे ठाकुर और बक्सी हसराज आदि की गणना की जा सकती है।

अलकारो के धारण करने की कई प्रवृत्ति रीतिकाल म दीख पडती हैं (१) सौन्दय की अभिवृद्धि (२) वभव और ऐश्वय का प्रदशन (३) आत्म तुष्टि का भाव। इन तीनो ही प्रवृत्तिया मे रीतिकालीन कवि सफल हुए। इन अलकारो की प्राप्ति के स्रोत पशु, खनिज धातु एव रत्नादि है। पशुओ से प्राप्त होने वाले पदार्थो मे मोती और मोर पखो की गणना होगी और खनिज पदार्थो के रूप म स्वण, चादी, हीरा आदि अय रत्नो की गणना होती है।

आभूषण रूप म प्रयुक्त बहुमूल्य रत्नो आदि के प्रयोग से वभव के प्रदशन की वृत्ति सन्तुष्ट होती है। इनका प्रयोग स्त्रिया प्रसाधन के रूप मे करती आ रही हैं। इससे अपने रूप को बढाकर प्रिय को रिझाने का प्रयास किया जाता है। इन बहुमूल्य रत्नादि के धारण करने से सामाजिक मर्यादा एव वभव का ज्ञान भी होता है परन्तु रीतिकालीन कवियो की दृष्टि इन अलकारो के सौन्दर्यवद्धक गुण की उपयोगिता को समझकर ही किया गया है। रीतिकालीन नारी के आभूषणो म मोती के हार नथुनी, कचन के बिछुआ,[1] नग गजमुक्ता की नथुनी, हीरा मोती की माँग, कनक किकिनी और मोती की माला आदि आभूषणो की चर्चा की गई है।[2] इन आभूषणो मे मोती के प्रयोग के प्रति अधिक रुचि दिखाई पडती है।[3] समकालीन सामाजिक

---

[1] (क) कचन के बिछुवा पहिरावत प्यारी सखी परिहास बनायो।
रीο काο सο पृο १६५/६६ मतिराम

(ख) तिय निपट लटी कटि मे, चटकीली कनक किकिनी सनक रास।
पद्माध्यायी पृο ४४ सोमनाथ भारतवासी प्रेस, प्रयाग १६३६ ईο

[2] (क) हारन ते हीरे दर, सारीके किनारिनतें,
बारनतें मुकुता हजारन झरन जान।
रीο काο सο २२३/१३ पद्माकर

(ख) कहै 'पद्माकर मुगध सरसाव सुचि,
बिथुरी बिराजै बार हीरन के हार पर।
रीο काο सο २३२/६ पद्माकर

[3] (क) मोतिन की मेरो तोरयो हरा गहि हाथन सो रटी चूनरी फाड़।
रीο काο सग्रह पृο १६६/२१ मतिराम

वैभव को प्रदर्शित करने मे रत्नादि का प्रयोग कवल आभूपणो तक ही सीमित न रखकर उसक द्वारा चौकी तखत आदि बनाये जाने का वणन मिलता है।[1] कवियो ने हीरा, मोती, लाल, स्वण आदि बहुमूल्य पदार्थों के विभिन्न आभूपणो द्वारा इसी वभव को स्पष्ट किया है। वभव परक अन्य पदार्थों म सुगन्धित द्रव्य और वस्त्रादि का प्रयोग भी किया गया है। दरबारी वातावरण और सामन्ती जीवन के आडम्बर और दिखावे का प्रभाव कवियो के मस्तिष्क पर इतना अधिक हो गया था कि हठी जस कवियो की दृष्टि अलकारो से उत्पन्न सौन्दय या शोभावृद्धि की ओर जाती ही नही थी। वैभव से मिलकर शारीरिक

(ख) हिय हार मोतिन का सोहे अरु फूलन की माला।
सनेह सागर पृ० १८ बक्सी हसराज

(ग) छोटी नथुनी बडे मोतीयान, बडी आखियानि बडे सुघरे हैं।
री० का० स० पृ० ३५६/५ ठाकुर

(घ) बेंदी ज्योति चहूँ निसि फन मोतिन मांग भराई।
सनह सागर पृ० ८० बक्सी हसराज

(ङ) माल तोल छबि एकके गुही मोतिन की हार।
री० का० स० पृ० १३६/११

(च) नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा केधा
देहवत प्रगटित हिए को हुलास है।
री० का० स० १६८/३०

(छ) मोतिन की हार गर मातिन सोमाग भर,
मोतिन सौं बन गुही हठी' सुख साज की।
श्री राधा सुधाशतक छद ६

१ (क) चामीकर चौकीपर चपक वरन 'हठी
अग की चमकै चारु चचल चलावनी।
श्री राधा सुधा शतक छद २१

(ख) हीरन तखत बठी राधे महरानी हठी,
रभा रति रूप गिरि घसक धरा पर।
श्री राधा सुधा शतक छद १६

प्रभा और ज्योति का चित्र प्रस्तुत करने म इनकी कल्पना शक्ति अवश्य ही सचेष्ट थी ।[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी अगा म अनेक आभूषणा को धारण करके शोभा वृद्धि या ऐश्वय का प्रदर्शन होता था । शरीर के बारह अगों[2] म बारह आभूषणो को धारण करते थे । रघुनाथ कवि ने बारह अगा म इन आभूषणो के धारण करने का एक ही पद म विवरण दिया है । मुग्ध-नायिकाओ क सहज सौन्दय म एक ही आभूषण से अ ग शोभा बढ जाती है । 'और आभरण अब काहे को सजैगी बीर एक ही म बाढी अग अग छवि तुद है ।' बेनी प्रवीन के इस कथन से निसगगत शोभा की व्यञ्जना की गई है । इन आभूषणा के साथ ही जीव जन्तुओ से प्राप्त होने वाले वस्तुओ को भी प्रसाधन के रूप म प्रयोग किया जाता रहा । ऐसे प्रसाधनो को प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपकरणो के अन्तगत स्वीकार किया गया है ।

(२) प्रकृति से प्राप्त उपकरण

सौदय के साधन उपकरणो म से अनेक उपकरणो की प्राप्ति प्रकृति से हो जाती है । ऐसे उपकरणा म फूल मोर पख मुक्तामाल और बनमाल का वणन रीतिकाल म मिलता है । फूल द्वारा सजाने की प्रवृत्ति स्त्री और पुरुष दोनो म पाई जाती है । मोर पखादि का प्रयोग केवल कृष्णपक्ष म ही वर्णित है । विपरीत शृङ्गार के समय राधा द्वारा मोर पखादि को धारण करके शोभा को बढ़ाने की चेष्टा की गई है । मोर पख श्री कृष्ण का प्रिय-प्रसाधन है ।[3] इसके अभाव म उनका शृङ्गार अधूरा रह जाता है । इसी के

---

1 जात रूप तखत पर बैठी रूप रासि राधे,
अगन की प्रभा प्रभाकर को लजावती ।

श्री राधा सुधा शतक छन्द २५

2 सीस भाल श्रुति नासिका ग्रीवा कटि उर बाहु
मूल मणि अँगुरी चरन बारह भूषण चाहु ।

काव्य प्रभाकर पृ० ३०९ सन् १९६६ जगनाथ दास भानु

3 (क) मोर के पखौवन को मजुल मुकुट माथे
तकिय लकुट कर कजनि ढरति है ।

बेनी प्रवीन पृ० १२४ नवरसतरग

साथ गुजामाल को धारण करके प्रकृति प्रेम को व्यक्त किया गय है।[1] मोरपख गुञ्जामाल वैजयन्तीमाल उनके प्रिय प्रसाधन हैं। वनमाल का प्रयोग भी श्रीकृष्ण करते थे।[2] इन प्रसाधना से स्पष्ट है कि मोर पखों को मस्तक पर, गुञ्जामाल, बनमाल और वजयन्ती माल को गले म धारण करते थे। मोर पखों का मुकुट, टटिया, किरीट आदि बनाया जाता था। पखा की चन्द्रकनि से श्रीकृष्ण की शोभा बढ़ जाती थी। प्रत्येक अवसर पर श्रीकृष्ण मोर पखो को अवश्य धारण करते थे। यहाँ तक कि उनके वीर वेष के साथ भी शोभा

(ख) मोर मुकुट की टटिया लीन्हैं, कीन्हें नन डिठौना।

स्नेह सागर पृ० १६

(ग) गुञ्ज गरे सिर मोर पखा, मतिराम यो गाय चरावत डोल।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२१

(घ) मोर पखा 'मतिराम किरीट मनोहर मूरति सो मनु लँगो।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२५

(ङ) मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यो राजत नन्दनद।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २८८/८२

1 (क) सखि, सोहत गोपाल के उर वैजयन्ती माल।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २८७/६४

(ख) माल गरे गुञ्जन की कुञ्जन को बसिबो।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २६३

(ग) मनो निसानो दृगनि दई गुञ्ज की माल।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २१८/२६ रसलीन

(घ) गुञ्जन के अवतस लस सिर, पच्छन अच्छ किरीट बनाओ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६५/१४ मतिराम

2 (क) मोरपखा 'मतिराम किरीट मे कठ बनी बनमाल सुहाई।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६६/२६ मतिराम

(ख) मेरो गह्यो उन हार झपोटि कै, मैं हूँ गही बन माल झपेटा।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २५०/१६ बेनीप्रवीन

(ग) कन कानन कुण्डल मोर पखा, उर पै बनमाल बिराजति है।

रसखान

प्रभा और ज्योति का चित्र प्रस्तुत करने म इनकी कल्पना शक्ति अवश्य ही सचेष्ट थी।[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी अगा म अनेक आभूपणो को धारण करके शोभा वृद्धि या ऐश्वय का प्रदशन होता था। शरीर के बारह अगो[2] म बारह आभूपणो को धारण करते थे। रघुनाथ कवि ने बारह अगो म इन आभूपणो के धारण करने का एक ही पद म विवरण दिया है। मुग्ध-नायिकाओ क शहज सौदय म एक ही आभूपण से अग शोभा बढ जाती है 'और आभरण अब काहै को सजगी वीर एक ही म बाढी अग अग छवि तुद है।' बेनी प्रवीन के इस कथन से निसगगत शोभा की व्यञ्जना की गई है। इन आभूपणा के साथ ही जीव जन्तुओ से प्राप्त होने वाले वस्तुओ को भी प्रसाधन के रूप म प्रयोग किया जाता रहा। ऐसे प्रसाधनो को प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपकरणा के अन्तगत स्वीकार किया गया है।

(२) प्रकृति से प्राप्त उपकरण

सौदय के साधक उपकरणो म से अनेक उपकरणो की प्राप्ति प्रकृति से हो जाती है। ऐसे उपकरणो म फूल मोर पख, मु जामाल और वनमाल का वणन रीतिकाल म मिलता है। फूल द्वारा सजाने की प्रवृत्ति स्त्री और पुरुष दोनो म पाई जाती है। मोर पखादि का प्रयोग केवल कृष्णपक्ष मे ही वर्णित है। विपरीत शृङ्गार क समय राधा द्वारा मोर पखादि को धारण करके शोभा को बढाने की चेष्टा की गई है। मोर पख श्री कृष्ण का प्रिय-प्रसाधन है।[3] इसके अभाव म उनका शृङ्गार अधूरा रह जाता है। इसी के

---

1 जात रूप तखत पर बैठी रूप रासि राधे,
अगन की प्रभा प्रभाकर को लजावती।
श्री राधा सुधा शतक छन्द २५

2 सीस भाल श्रुति नासिका, ग्रीवा कटि उर बाहु
मूल मणि अगुरी चरन बारह भूपण चाहु।
काव्य प्रभाकर पृ० ३०६ सन् १९६६ जगन्नाथ दास भानु

3 (क) मोर क पखौवन को मजुल मुकुट माथ
तसिय लकुट कर कजनि दरति है।
वनी प्रवीन पृ० १२४ नवरसतरग

साथ गु जामाल को धारण करके प्रकृति प्रेम को व्यक्त किया गय है ।[1] मोरपख गुञ्जामाल वैजयन्तीमाल उनके प्रिय प्रसाधन हैं। वनमाल का प्रयोग भी श्रीकृष्ण करते थ ।[2] इन प्रसाधनो से स्पष्ट है कि मोर पखों को मस्तक पर, गुञ्जामाल, वनमाल और वजयन्ती माल को गले मे धारण करते थे । मोर पखों का मुकुट, टटिया, किरीट आदि बनाया जाता था । पखा की चन्द्रकनि से श्रीकृष्ण की शोभा बढ़ जाती थी । प्रत्येक अवसर पर श्रीकृष्ण मोर पखों को अवश्य धारण करते थे । यहाँ तक कि उनके वीर वेष के साथ भी शोभा

(ख) मोर मुकुट की टटिया लीन्हें, कीन्हें नन ग्ठौना ।

सनेह सागर पृ० १६

(ग) गुञ्ज गरे सिर मोर पखा, मतिराम' यो गाय चरावत डोल ।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२१

(घ) मोर पखा 'मतिराम किरीट मनाहर मूरति सो मनु लगो ।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२५

(ङ) मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यो राजत नन्दनद ।

गीतिकाव्य सग्रह पृ० २८८/८२

1 (क) सखि, साहत गोपाल के उर वैजयन्ती माल ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २८७/६४

(ख) माल गरे गुञ्जन की कुञ्जन को बसिवो ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २६३

(ग) मनो निमानों दुगनि दई गुञ्ज की माल ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २१८/२६ रसलीन

(घ) गुञ्जन के अवतस लस सिर, पच्छन अच्छ किरीट बनाया ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६५/१४ मतिराम

2 (क) मोरपखा 'मतिराम किरीट म कठ बनी बनमाल सुहाई ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६६/२६ मतिराम

(ख) मेरो गह्यो उन हार कपोटि के, मैं हूँ गही वन माल भपेटा ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २५०/१६ वेनीप्रवीन

(ग) कन कानन कुण्डल मोर पखा, उर पै बनमाल बिराजति है ।

रसखान

विधायक मोर पखा का वर्णन अवश्य ही होता था। प्रत्येक ब्रजवासी इसी रूप में श्रीकृष्ण को देखने का अभ्यस्त हो गया था। यही कारण है कि इस प्रसाधन से युक्त श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर गोपियाँ अपनी सुधि-बुधि भूल जाती है, उनके नेत्र निर्निमेष हो श्रीकृष्ण को देखने लग जाते हैं और वृषभानु की किशोरी राधा तो बौरी हो जाती है।[1] प्रकृति से प्राप्त अन्य प्रमुख प्रसाधन में फूलों का महत्त्व है जिसे स्त्री-पुरुष दोनों ही प्रयोग में लाते थे।

फूल—वनस्पति से प्राप्त होने वाले प्रकृति सुलभ पदार्थों में फूलों द्वारा आज भी अपने को प्रसाधित करने की परम्परा है। फूलों में नागरिक जीवन का वैभव एवं ऐश्वर्य न होकर स्वच्छन्द और मुक्त जीवन का सद्भाव उपयोग है। इसी से प्रकृति सुलभ इस उपकरण के प्रति नागरिक एवं ग्राम्य जीवन दोनों की ही अभिरुचि व्यक्त होती है। फूलमालादि धारण करने के कई उद्देश्य दीख पड़ते हैं—

(१) सुगंधित एवं अनुकूल वातावरण की सृष्टि।
(२) अपने रूप को आकर्षक बनाकर प्रिय को रिझाना।
(३) घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति और लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना।

इन सभी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए कृष्ण साहित्य में फूलमालादि का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। गोपियाँ फूलों से अपने को सजाती हैं। फूलों की माला को ही आधार बनाकर श्रीकृष्ण पर व्यंग्य करती हैं।[2] रूप

---

[1] सूघैं न सुवास रहै राग रंग न उल्लास
भूलि गई सुरति सकल खान पान की।
कवि 'मतिराम' इक टक अनिमेष नैन,
बूझै न कहति बात समुझै न आन की।
थोरी सी हसनि मैं ठगौरी तैने डारी स्याम
बौरी कीनी गोरे त किसोरी वृषभानु की।
तब तै बिहारी वह भई द परवान कीसी
जब मैं निहारी रुचि मोर के पखान की। 'रसखान

[2] फूलन की माल मोसो कहत गुलाब ऐसो
फूलन की माल मेलि राखत न क्यो गर।
मेरो मुख चद सौ बतावै ब्रजचन्द रोज,
कहो ब्रजचद जू सो चद दखिवौ कर। ब्र सा ना भेद पृ २६६/३५७

गर्विता का प्रेम एव रूप गव व्यक्त किया गया है। श्रीकृष्ण स्वय फूलो की माला बनाकर पहनाते हैं।[1] फूलो से निर्मित अलकारो द्वारा सभी अपना शृगार करती हैं। बहुमूल्य आभूषणों के बीच के बिना शृगार अधूरा ही रह जाता है। इसी से हीरे और मोती के अवतस तथा स्वण के भूषणों की छवि के साथ चमेली और चपक की शोभा भी बनी रहती है।[2] फूल मालादि से युक्त श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर गोपियाँ नत्रो के लाभ का फल पा लेती हैं।[3]

अत स्पष्ट हो जाता है कि सौंदय प्रसाधक उपकरणों की दो कोटियाँ रीतिकालीन साहित्य मे वर्णित है। (१) ऐसे उपकरण जो वभव के प्रतीक तथा रूप के उत्त्पक हैं। इनमे बहुमूल्य धातु एव रत्नो आदि के आभूषण का वणन है। स्वण, हीरा, माती, आदि के आभूषण इसी श्रेणी मे आते हैं। इन आभूषणो के प्रयोग से अग मे उत्पन्न होने वाली ज्योति एव प्रकाश आदि का चित्र भी अकित किया गया है। (२) दूसरी कोटि म प्रकृति से प्राप्त किये जाने वाले सौन्दयसाधक उपकरणो की गणना होती है। इन उपकरणो में सादगी और शोभा रहती है। इनसे वैभव परकता का भान न होकर मुक्त प्रकृति के उपयोग का भान होता है। ऐसे उपकरणो म मोरपख वनमाला गुजामाला और फूल के विभिन्न आभरणो से उत्पन्न शोभा का वणन है। इन सभी आभूषण आदि क धारण करने का उद्देश्य रूपोत्कष द्वारा स्वय रिझना और प्रिय को रिझाना है। पद्माकर की गोपी राधा से ऐसे ही साज सजने को कहती है जो गोपाल की आँखो म प्रिय लगे।[4] इन प्रसाधनो के साथ वस्त्रादि के धारण द्वारा भी रूप का आकषण बढाया जाता है।

---

[1] (क) हीरन मोतिन के अवतसनि सोन के भूषण की छबि छावै।
हार चमेली क फूलन मे तिनमे रचि चपक की सरसावै।
ललित ललाम ३३२

(ख) हिये हार मोतिन को सोहे अरु फूलन की माला।
सनेह सागर पृ १६

[2] ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २०८/२६६ सेनापति।

[3] आजु को रूप लगै नन्दलाल को, आजुहि ननिनि का फल पायो।
रसराज २३८ मतिराम

[4] (क) मागि सवारि सिंगारि सुधारिन बेनी गुही जु दुगनि लौ छाव।
'त्यों पद्माकर या विधि औरहु साजि सिंगार जु स्याम को भावै

(२) शरीर की रक्षा करने वाले सौन्दर्य साधक उपकरण—

शरीर की शोभा का बढाने वाले उपकरणो म धारण किये जान वाले उपकरणो का महत्त्व सदा से रहा है। भूषण वस्त्र और फूलमालादि म वस्त्र शरीर के आक्षादन के लिए प्रथम आवश्यक उपकरण है। इसका प्रयोग तीन दृष्टिया से किया जाता है। (१) अलकरण की प्रवृति (२) शालीनता (३) शरीर की रक्षा।

इनम शरीर रक्षा परक उपयोगिता तो स्पष्ट है। शालीनता मूलक प्रवृत्ति भी प्रबल रूप मे दीख पडती है। शालीनता का सामाजिक दृष्टि से महत्त्व है और इसके मूल म लज्जा वतमान रहती है। यौन अगो के ढकने और आकपण की दृष्टि से उसे उत्तेजक बनान के वस्त्रो का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। इसस अगो की रहस्यात्मकता बनी रहती है। देखने वाला के मन म कौतूहल और जिज्ञासा का सचार होता रहता है। उपगूहन और प्रदशन दानो ही भावनाए समानान्तर गति से चलती रहती है। इससे आलम्बन की मानसिक प्रवृति का ज्ञान होता है प्रेम की उन्नीति होती है और सहज सौन्दय मे उत्कप आता है अलकरण की प्रवृत्ति तृप्त होती है। इस वेशभूषा स स्वाभाविक शोभा बढती है। शाभा वृद्धि के लिए इन उपकरणो म वस्त्र से कई उद्देश्या की सिद्धि हा जाती है।

वस्त्रा के प्रयोग से उत्कप को प्राप्त शोभा द्वारा नायक को आकृष्ट करन की चेष्टा की जाती है। इसीसे सौता का शृगार करत हुए देखकर नायिका के मन मे भय उत्पन्न हो जाता है कि सौत नायक को अवश्य ही आकृष्ट कर लेगी। मिलन के प्रसग पर वेश भूषा की व्यावहारिकता यथाथ जीवन पर निभर है। वेश के आधार पर ही नायिका के कई भेद—वासक सज्जा और अभिसारिका—किये गय। उत्कण्ठिता और विप्रलब्धा नायिकाओ म भी वस्त्रादि की महत्ता रहती है। प्राय मध्या और प्रौढा नायिकाए साज–सज्जा

रीझ सखी लखि राधिका का रग जा अग जो गहनो पहिराव।
होत यो भूषित भूषणगान ज्यो डॉकट ज्योति जवाहिर पाव।

जगद् विनाद ६३/२५१

(ख) श्रीनन्दलाल गोपाल के कारण, कीन्हे सिगार जो राधे बनाई।
सुन्दरी तिलक ६६/६८७

के प्रति अधिक सचेष्ट रहती हैं। मुग्धा की शालीनता स्पष्ट रूप से कुछ करने मे उन्हे रोकती है। वस्त्रा का चटकीलापन सामान्य नायिका मे अधिक पाया जाता है, क्योकि उसके समक्ष सामाजिक बन्धन या नियन्त्रण का कोई प्रश्न ही नही रहता। इससे वह यथारुचि अपने को अधिक से अधिक आकषक बनाने की चेष्टा करती है।

अभिसारिका नायिकाओ के वेश वणन मे कवियो की रुचि रही है। रीतिकाल मे प्राय दो अवसरा पर वेश से उत्पन्न शोभा का वणन किया गया है। (१) दूती के कथन म नायिका के सौन्दय तथा वेशादि का आकपक वणन (२) प्रत्यक्ष दशन के बाद नायक द्वारा नायिका के वेश की प्रशसा। इन सभी शोभाओ के लिए वस्त्रो का आकपक और समुचित प्रयोग आवश्यक था। इसी से रीतिकालीन कवियो ने वस्त्रादि वणन मे इसका ध्यान रखा है। इस युग का कवि वस्त्रा के चुनाव मे अनुरूप एव प्रतिरूप रग-योजनाओ, वस्त्रो के कटाव आदि के माध्यम से अगो की सुडौलता और आकपण को बढाने की चेष्टा किया करता था। वह विविध प्रकार की सजावटो द्वारा शरीर को आकपक बनाता था। तत्कालीन वैभव परक समाज की प्रचलित परम्पराओ का स्पष्ट प्रभाव इन वस्त्रा पर दीख पडता है।

इस युग के प्रयुक्त वस्त्रा म साडी चोली अगिया, चूनरी आदि प्रमुख हैं। पुरुषो के वस्त्रा मे पीताम्बर चीर, वागा आदि का वणन है। इन वस्त्रो का प्रयोग केवल शरीर रक्षा के लिये ही न होकर उसकी सजावट के लिये भी होता था। इससे रगो की विशेषता महत्वपूण स्वीकार की गई है। वस्त्र बारीक, झिलमिल और स्वर्णाग्नि के तारो से खचित होते थे।

श्वेत, श्याम और हरे रग की साडी का वणन है।[1] श्वेत वस्त्रा के

---

१ (क) सेत सारी सोहत उजारी मुखचद की सी,
मलहनि मद मुसकान की महमही। रसराज १७६ मतिराम

(ख) उजरई की उजारी गारे तन सेत सारी,
मातिन की ज्याति सा, जुन्हैया मानो बाटी है।
री० का० स० ३३६/५ आलम

(ग) गह मा मनहु मैं सिधारी स्याम सारी सजि
राजनि अधेरी न सजी काऊ साथ म।
री० का० स० पृ० २४८/११

(घ) सेत वसन म यो लस उयरत गोर गात।
री० का स० पृ० १८१/५१ मतिराम

श्यामपरण को वनान के लिय विभिन्न उपमाना और अप्रस्तुता द्वारा उसका चित्र प्रस्तुत किया गया है। श्वेत साड़ी के तत्काल प्रभाव का वर्णन है। स्वयं कृष्ण भी उस रग म रग जाते हैं।[1] इन रगो के अतिरिक्त केसरिया, कुसुम्भी आदि रगो से रगे वस्त्रो का प्रयोग किया जाता था।

वस्त्रों के प्रयोग में शरीर शोभा बढ़ाने के साथ ऐश्वय और वैभव का प्रदर्शन भी होता था। यह प्रदर्शन जरतारा के काम द्वारा होता था।[2] 'जरतार' म सोने के महीन तारो द्वारा वस्त्रो पर कारीगरी अंकित की जाती थी। इससे शरीर पर भी उसके प्रकाश द्वारा सौन्दय की अभिवृद्धि होती थी तथा झिलमिलाते हुए चमक म नायिका की शोभा कई गुनी बढ़ जाती थी।

चोली, कचुकि या अंगिया का प्रयोग शरीर को उन्नत बनाने यौन दृष्टि से आकर्षक दीखने और उभार लाने के लिये किया जाता था। इससे यौन अंग का महत्व बढ़ता है स्तन पुष्ट और कटि प्रदेश क्षीण दीखने लगता है। इसकी कोर का सुनहरी किनारी स मढ़कर इसकी शोभा बढ़ा देते हैं। मूल रूप म कचुकी के प्रयोग द्वारा स्तनो को उन्नत और आकर्षक बनाने तथा उसके द्वारा नायक को आकर्षित करने की चेष्टा की गई है। सभी स्त्रियाँ गोटा लगे हुए कटावदार व 'बान्ले' के काम से युक्त उभार देने वाली चोली का ही प्रयोग करती थी। इससे अनेक अभिप्रायो की सिद्धि बताई गई है।[3] कचुकी के प्रयोग

---

1 (क) स्वेत सारी ही सो सब सौतें रगी स्याम रग
सेत सारी ही सा रग स्याम लाल रग म। रसराज ३५७
(ख) लाल मन बूडिबे को देवसिरि सौत भई
सौतिन चुनौटी भई वाकी सेत सारी रा। काव्य निर्णय दास

2 (क) सारी जरतारी की झलके झलकति तैसी
केसरी के अंग राग कीने सब तन मे। रसराज २०१ मतिराम
(ख) सारी जरतारी अंग तैसी सग आलिका।
री० का० स० पृ० २५०/१७ वेनी प्रवीन

3 (क) कचुकी मे कसे आवें उकसे उरोज बिंदु
बदन लिलार बडे बार घुमडे परत।
(ख) आँगी कस उकसे कुच ऊँचे, हुस हुलस फुफन्दान की फूदे।
(ग) भावत को सुनि आगम आनन्द अंगन अंगन मे उमह्यो है —
गाढ़ी भई कर की मुदरी अंगिया की तनीन तनाव गह्यो है।
रसराज पृ० ३२० मतिराम

मे भावा की प्रेपणीयता, प्रियदशन की उमग, अगो का उभार आदि व्यक्त किया गया है। इसका रग श्वेत, श्याम, हरा[1] और केसरिया होता था। ये सभी रग गोरे बदन पर अच्छे लगते थे। कचुकी के वणन की इस विशदता के मूल म यही भावना काम करती है कि इसका प्रयोग वक्ष प्रदेश के लिये होता है, जो एक आकषक अ ग है और इसी अ ग के सहारे से नायक खिचा हुआ चला आता है। इस कचुकी के साथ चटकीले रग की चनरी से शोभा बहुत बढ जाती थी।[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वस्त्रा के प्रयोगादि के सम्बन्ध मे रीतिकाल का कवि सचेष्ट था। इसके प्रयोग का मुख्य रूप से दो ही उद्देश्य दीख पडता है—

(१) शालीनता जन्य लज्जा एव शरीर के विभिन्न अगा की रक्षा।

(२) यौन दृष्टि से अधिक आकर्षक दीखने का प्रयास। इन दानो ही उद्देश्यो म रीतिकाल का कवि पूर्णत सफल हुआ।

सौन्दय के इन उपयुक्त उपकरणा के सग षोडश शृङ्गार के अन्तगत अन्य भी अनेक प्रसाधनो का वणन किया गया है। इन प्रसाधना को न तो धारण किया जा सकता है और न शरीर पर लगाया ही जा सकता है अपितु इनका उपयोग अन्य रूप म ही होता है। इसी रूप म वे सौन्दर्य साधक उपकरण बन जाते हैं।

(घ) रजनी मन्दि प्यारी ने गौन कियो निरखी अ गिया पिय रग भरी।
खरी खीन हरे रग की अ गिया दरकी प्रगटी कुच कोर सिरी।
सुदरी तिलक पृ० २५८

(ङ) अँगिया की तनी खुलि जानि घनी,
सुबनी फिरि बाँधति हैं कसि कै।
सुजान विनाद पृ० ३६ देव सभा, काशी

1 (क) छारी धरी हरी कचुकी न्हान का अ गन त जग जोति के कोंछे।
पद्माकर

(ख) खरी खीन हरे अँगिया दरकी प्रकटी कुच कोर सिरी।
सुदरी तिलक पृ० २५८

2 चुई सी परत चपन सी च चपन
चख-चचल चितौनि चटकीलो चारु चूनरी। री० का० म० २५१/२५

(ङ) सौन्दर्य के उत्कर्षक अन्य शृङ्गार प्रसाधन—

प्रसाधन का सौन्दर्य के अन्तर्गत द्वादश शृङ्गार की चर्चा की जा चुकी है। ये शृङ्गार प्रसाधन शरीर पर धारण किए जाने पर लगाये जाने पर अथवा अन्य प्रकार से शारीरिक शोभा के विधायक बनते हैं। इनमें प्रारम्भिक दो वर्गों का विवेचन किया जा चुका है। यहाँ द्वादश शृङ्गार के अन्तर्गत अन्य प्रकार से शारीरिक शोभा को बढ़ाने वाले उपकरणों का संकेत होगा।

इन उपकरणों के अन्तर्गत स्नान, वस्त्र विन्यास और ताम्बूल रचना का प्रयोग वर्णित है। डिठौना और दर्पण द्वारा मुख शोभा बढ़ाने अथवा निरखने का वर्णन मिलता है। डिठौना यद्यपि द्वादश शृङ्गार में वर्णित नहीं है, फिर भी इसके द्वारा शोभा की वृद्धि ही होती है। रीतिकालीन कवियों ने गोरे वदन पर डिठौने की श्याम शोभा से युक्त मुख को चन्द्रमा के समान कहा है।[1] इस साहित्य में इसके माध्यम से नजर लगने से बचाने का भाव व्यक्त हुआ है।[2]

पान या बीरी के प्रयोग के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं (१) मुख वास द्वारा अनुकूल स्थिति उत्पन्न करना (२) अधरों की लालिमा बढ़ा देना। कभी कभी यह लालिमा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि अधरों की निजी लालिमा अलग से लक्षित ही नहीं होती है।[3] पान की पीक गले में उतरती हुई अच्छी लगती है।[4] पान खाने का अनेक अवसरों पर वर्णन है—(१) किसी का आदर सत्कार करने में[5] (२) शोभा बढ़ाने में (३) स्वाधीन पतिका

---

[1] विधु सम सोभा सार लै, रच्यौ बाल मुख इन्दु।
दियौ इन्दु मैं अंक मिस राहु हेतु मसि बिन्दु। विक्रम सतसई दो० २८९

[2] (क) लौने मुँह दीठि न लगै, यौं कहि दीनि ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं डिठौना दीठि।
बिहारी रत्नाकर दो० २८

(ख) निठुर डिठौना दी हैं नीठि निरखन कहै,
डीठि लगिबे के डर पीठ दै गिरति है। सुजान विनोद ६/१४

[3] पान पीक अधरान में सखी लखी न जाय।
कजरारी अँखियानि मे कजरा री न लखाय।

[4] खरी लागति गोरे गरै धसति पान की लीक।
मनौ गुलीबन्द लाल की लाल लाल दुति लीक। बिहारी

[5] को है ज्योतिषी है कछू जोतिष विचारत हो ?
ये ही शुभधाम नाम जाहिर हमारो है।

नायिका द्वारा शृङ्गार करने म।[1] इन अवसरो द्वारा अनुकूल भावनाओ का वणन है, परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियो म पान द्वारा दुखद वातावरण एव भाव की अभिव्यक्ति हुई है। यह अभिव्यक्ति विरह प्रसग पर अथवा गोत्र-स्खलन[2] प्रसग पर हुई है। यह पान का सौदयमूलक प्रयोग नही है। अय स्थलो पर इससे मुख की शोभा ही बढाई गई है।

स्नान द्वारा नायिका के मादक और अनावृत सौदय को देखने की ही अधिक चेष्टा की गई है। सद्य स्नाता का चित्र कही-कही प्रस्तुत हुआ है। अयत्र केवल स्नान का नाम मात्र ले लिया गया है। ऐसे स्थलो पर यह वणन के अनुरोध से ही प्रस्तुत किया गया है।[3] इससे शोभा का विकास नही बताया गया है। फिर भी इतना तो मानना ही पडेगा कि स्नान द्वारा निमलता से शारीरिक काति का विकास होता है। केश वि यास से सु दरता आती है। प्रिय द्वारा किये गये इस वियास म उसका अनय प्रम व्यक्त होता है।

षोडश शृङ्गार मे दपण महत्त्वपूण होता है। सभी शृङ्गार कर लेने के बाद नायिका की आत्मतुष्टि के लिय दपण का देखना आवश्यक है। इसकी व्यावहारिक उपयोगिता के सम्बध मे दो मत नही हो सकते हैं। अपने रूप एव शृङ्गार को देखकर नायिका स्वय सतुष्ट हो जाता है तो उसका रूप नायक को अवश्य ही आकर्षित कर लेने म समथ हो सकेगा। दपण का दो प्रभाव वर्णित है। (१) नायिका स्वय अपने रूप पर रीझती है और (२ दपण के माध्यम से प्रिय को देखने की चेष्टा की गई है। यथा —

आवौ बैठ जावौ पानी पीवौ, पान खावौ फेर,
होय के सुचित्त नक गणित निकारी तो। री० का० स० पृ० ३६१

[1] ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ३०६ छद ३८७,
पृ० ३०८ छद ३९५ ३९६ ३९८ ४०३

[2] (क) बूझत ही वह गोपी गुपालहि, आजु कहू हसि के गुण गावहि।
ऐसे मे काहू को नाम सखी कहि कैसे धो आइ गयो ब्रजनायहि।
खाति खवावति ही जु बीरी, सु रही मुख की मुख हाथ की हाथनि।
केशवदास

(ख) बार बार बरजति बावरी है वारौं प्रान
बीरो मो खवाऊँ बीर विष सो लगति है। केशवदास

[3] ब्र० सा० का नायिका भेद ३०१ छद ८०१ तथा पृ० ३१८ छद ४४६

(१) केशव एक समै हरि राधिका आसन एक लसै रग भीन।
आनद सा तिय आनन की द्युति देखत दपण मे हग दीनें।

(२) माल गुही गुन लाल लट लपटी लर मोतिन की सुख दनी।
ताहि बिलोकत आरसी लकर, आरस सा इक सारस नैनी।

केशव री० का० स० पृ० १४६

उपयु क्त षोडश शृङ्गार वणन के आधार पर हम यह निणय ले सकते हैं कि आलोच्य काल के कवियो ने इनके प्रयोग म दो बाता का ध्यान रखा है (१) वभव एव ऐश्वय का प्रदशन (२) शारीरिक रूपाकार के आकपण को अधिक से अधिक बढाकर अपने प्रिय को रिझाने का प्रयास। इन दोनो ही बाता म रीतिकालीन कवियो को पूण सफलता मिली है। प्रयोग किय जाने वाले प्रसाधनो द्वारा यह बतान की चेष्टा की गई है कि इनके द्वारा शरीर म कोम लता के उद्भव स स्पश-सुख की अनुभूति होती है तथा दृश्य रूप म आकपण एव मोहकता बढ जाती है। इससे स्पश-जन्य सुखदता और दृश्य सुखदता दोनो की ही उपलब्धि होती है। लौकिक जीवन म नायक नायिका का यह सुख ही उनके लिए काम्य आकाक्षा है और इसकी तृप्ति म रीतिकालीन कवि पूणत सफल हुआ है।

तटस्थ सौंदय—रीतिकालीन कवियो ने तटस्थ सौंदय के अतगत प्राकृतिक शोभा का वणन किया है। बहुधा शरीर या प्रस्तुत वण्य वस्तु के उपमान के रूप म प्रकृति का ग्रहण हुआ है। उपमाना के एस प्रयोग से प्रस्तुत का सौंदय तो बढ़ता ही है अप्रस्तुत के गुणा का भी ज्ञान होता है। उनकी कोमलता हृदय ग्राहकता स्पश सुखदता आदि अनेक गुणो का ज्ञान होता है। सादृश्य मूलक अलकारो म इस प्रकार क अप्रस्तुतो का अधिक प्रयोग मिलता है। नायक या नायिका के अग वणन या उसके उठते हुए यौवन के विकास को पुष्पा के खिलन के समान बनाकर पुष्प की प्रफुल्लता विकास शोभा सुगधि आदि अनेक तत्वा का एक साथ वणन कर दिया जाता है। अप्रस्तुता के सफल प्रयाग स ही प्रस्तुत क रूप म निखार उत्पन होता है। एक उदाहरण देखें—

"कनक लता श्रीफल भरी रही बिजन वन फूलि।
ताहि तजत क्या बावरे अरे मधुप मति भूलि। वाणीभूषण

इस वणन म सोने की लता श्रीफल आदि के कथन स नारी का सम्पूण रूप चित्र उपस्थित कर दिया गया है। एस स्थला पर प्रकृति के ये

उपकरण शोभा विधायक रूप म प्रयुक्त हो जात हैं। इनके प्रयोग स नारी के रूप चित्र का जो बिम्ब विधान होता है उसकी व्यन्जना करने मे ये उपमान सहायक होते हैं और प्रयुक्त इन अप्रस्तुतो द्वारा अभिव्यञ्जना शिल्प इतनी सजी सँवरी रहती है कि अश्लीलता की गन्ध नही मिलती। गुण और धर्म साम्य का आधार लेकर वर्णन को अनुभूतिमय बनाया जाता है। कही कही तो केवल उपमानो के माध्यम से ही प्रस्तुत का रूप उपस्थित किया जाता है।

'कोक नद पद कज कोप से गुलफ गोल,
जघ कदली से लक केहरि बिसाल सा।
पान सो उदरि नाभि कूप सी गभीर गुर,
उर नवनीतपानि पल्लव रसाल सा।
ग्वाल कवि लसति लतान सी भुजाहै वैस,
कबु सो गरो है मुख नील कज जाल सा।
श्याम के सचौर जौन गज सो सुजध वारो,
सुसि सो मुकुट सब तन है तमाल से।[1]

उपयुक्त छन्द म कोकनद, कोप कदली केहरि, पान कूप, रसाल लता, कबु नील कज, गज आदि के कथन मे उसक प्रति सौन्दय विषयक धारणा व्यक्त होती है। साहित्यिक परम्परा म इन प्रयुक्त शब्दो का गुण बोधक जो प्रतीकात्मक अर्थ है उससे प्रस्तुत का रूप चित्र गुणो के आधार पर सौन्दर्योत्कर्षक हो जाता है।

प्रकृति आदि तटस्थ सौन्दय के व्यञ्जक पदार्थो का वर्णन दो अवसरो पर हुआ है। (१) सयोग क अवसर पर (२) वियोग के अवसर पर। सयोग में तटस्थ सौन्दय की अभिव्यन्जना दो दृष्टियो या अवसरो पर की गई है। प्रथम नायिका या नायक के अग प्रत्यग वर्णन के चाक्षुष रूप या उसके सूक्ष्म रूप वर्णन म कान्ति, छवि, लावण्य आदि के अकन में उपमान रूप म इनका प्रयोग हुआ है। इन उपमानो द्वारा शरीर की विभिन्न छवियो अकित की गई हैं। इनसे शरीर की मृदुता, कोमलता, अग दीप्ति आकार आदि का बोध होता है। यह बोध रागात्मक अनुभूति म परिवर्तित होकर आलम्बन के रूप का अधिक बढा देता है। बहुधा मानव जब अपनी प्रशसात्मक भावनाओ की तृप्ति मानव मात्र के कथन से नही कर पाता, तभी उस प्रकृति की शरण मे जाना

1 कृष्ण जू को नख शिख ग्वाल ६८/६५

पडता है। वह मन एव ज्ञानेन्द्रियो के अनुभव क्षेत्र म आने वाली प्रकृति प्रदत्त वस्तुओ मे सुदरता एव तत्सम्बन्धी सभी गुणो का अनुभव करके प्रस्तुत को उत्तम से उत्तम बनाना चाहता है। कलाकार का यह विचार है कि इससे सुदरता की उसकी मानसिक कल्पना प्रेषणीयता का गुण पाकर दूसरा के मन मे भी उसी प्रकार की भावानुभूति उत्पन्न कर देती है। इस दृष्टि से प्रकृति आदि तटस्थ पदार्थों का उपयोग सौदय एव आकषण को बढाने के साधन के रूप म होता है। इसे तटस्थ सत्ता इस कारण प्राप्त होती है कि सौदय साधक ये उपकरण आलम्बनगत न होकर आलम्बन से अलग होते हैं परन्तु अपनी इस तटस्थता म भी सौन्दय के उपकारक होते हैं। इनस रति की भावनाए उद्दीप्त होती हैं। अत तटस्थ सौदय का यह प्रियता मूलक उपयोग है क्योकि इनके प्रयोग से आलम्बन या आश्रय की बनी हुई छवि आकषण का कारण बनकर प्रिय के मन मे अनुकूल भावनाओ का सचार करने म समथ होती है।

प्राकृतिक साधनो द्वारा सयोग की अवस्था म भावनाएँ उद्दीप्त होती है। नदी तट वन उपवन आदि स प्रिय मिलन की आकाक्षा बलवती हो जाती है। ऐसे स्थलो पर इनका चयन उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। ये वातावरण का निर्माण करके उसकी मोहकता बढान म सहायक सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से ये सौन्दय परक होते हुये भी साक्षात् रूप म न होकर अवान्तर रूप म ही होते है। इनकी सौन्दय मूलकता उद्दीपन की सरणि से होकर आगे आती है। इस प्रकार का उदाहरण कही स भी लिया जा सकता है।[1]

---

[1] (क) पाय रितु ग्रीषम बिछायत बनाय,
वेष कोमल कमल निरखत दल टकि टकि।
इदीवर कलित ललित मकरद रची,
छूटत फुहारे नीर सौरभित सकि-सकि।
ग्वाल कवि मुदित बिराजत उसीर खान
छाजत सुरा म सुधा सुषमा को छकि छकि।
होत छवि नीकी वृषभान-नन्दिनी की साट
भानु-नदिनी की ते तरगन को तकि-तकि।

ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु सौदय

(ख) 'रसिक बिहारी चारु हार मृदु फूलन के,
सरस सुगध चारु अमित बनाव है।' वही पृ ७३

प्राकृतिक उपकरणो की सौदय मूलरता एव मृदुता का ज्ञान नायिका की कोमलता व्यक्त करते समय कराया गया है। ऐसे चित्रो क अप्रस्तुत विधाना मे अनुभूति की भावना ही अधिक प्रधान रहती है। नायिका की कोमलता का कथन इन्ही उपमानो द्वारा हुआ है। उसके श्रम की व्यञ्जना में फूलन के हार, तारक वृन्द, कुन्द, चन्द आदि का ग्रहण हुआ है—

मैंने तो कही ही वह अति सुकुमार नारि,
हार हार जाति हार फूलन के धारे हैं।
तुम्हें जब लगी लाल इहाँ ही बुलाइबे को,
यात जाय कहे प्रेम वचन तिहारे हैं।
'ग्वाल कवि नक चलि बैठि गई सी करि,
कैसी कर समूह वाके बदन पसारे हैं।
तारन के वृन्दन को करत हुतो कुन्द,
चद आज चढि चद पर चमकत तारे हैं।[1]

चन्द्रमा पर तारा का चढ़ना' यह अप्रस्तुत योजना वस्तु को सुन्दर बना देने मे समथ है। इसी के माध्यम से मुख रूपी चन्द्रमा पर स्वेद कण रूपी तारो की व्यञ्जना की गई है।

प्रसाधन स युक्त प्रकृति के उपकरण से रूप निखर जाता है। उसमे अनोखी मोहकता आ जाती है, दीप्ति फलने लगती है—

सत सारी सोहत उजारी मुख चद की सी,
मलहनि मद मुसक्यान की महमही।
अँगिया के ऊपर ह्वै उलही उरोज ओप,
उर 'मतिराम' माल मालती डहडही।
माँजे मजु मुकुट से मजुल कपोल गोल,
गोरी की गुराई गोरे गातन गहगही।
फूलनि की सेज बठी दीपति फकाय लाय,
बेला को फुनेल फूली बेलि सी लहलही।

यहा नायिका को लता का समान फूली हुई बताकर उसकी कोमलता, अगों की प्रफुल्लता और विकास का स्पष्ट सकेत है। अन्य शब्दो के प्रयोग में

---

1 रसरग ग्वाल प्रथम उमग छद १५

भी सौ दय की यही भावना दीख पडती है । इन सभी प्रयोगो से स्पष्ट है कि प्रत्येक युग का कवि अपने आलम्बन रूप नायक अथवा नायिका के रूप सौ दय की उत्तमता के वणन के लिये प्रकृति आदि से विभिन्न वस्तुओ का सग्रह करके अपनी इस भावना की तृप्ति करता है । आलम्बन से भिन्न सभी प्रेमोद्दीपक पदाथ वस्तु या व्यक्ति आदि को तटस्थ साधन के रूप म स्वीकार किया गया है । इससे ये सभी साधन आत्मगत न होकर परगत हैं और इसी रूप म इनका सकेत किया गया है ।

अन्त म यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियो की सौ द चेतना बहुत ही सचेष्ट थी । उन्होने कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप सौ दय का हृदय ग्राही और चमत्कार प्रधान जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह अपनी अभिव्यञ्जना म सवथा नवीन आकपक एव रस की अनुभूति कराने वाला है । यही कारण है कि शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इस काल के काव्य म रूप-सौ दय की पूण अभिव्यक्ति अपनी सफलता की उद्घोषणा करती रहती है । ऐसे काव्य म अकित रूप सौ दय म अवगाहन करता हुआ सहृदय एक अनिवचनीय सुख का अनुभव करके उसम पूण तन्मय हो जाता है और यही इस काव्य की सफलता है ।

उपसहार

उपसहार—

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य म रूप सौन्दय के स्पष्टीकरण के हेतु जिस साहित्यिक क्षेत्र को ग्रहण किया गया है, उस भक्तिकाल और रीतिकाल में विभाजित कर दिया गया है। इसकाल के आलम्बन के रूप-सौन्दय की वर्णन करने के लिये आलम्बन के शोभा विधायक धर्मों की चर्चा की गई है। इनके अन्तगत यौवन, रूप, लावण्य, सौन्दय, अभिरूपता, सुकुमारता आदि की गणना होती है।

सौन्दय के विधायक तत्त्वो म आलम्बन के गुण और उसकी चेष्टा मे अलकृति और तटस्थ का नाम लिया गया है। इन चारो को उद्दीपन के अन्तगत माना गया है। इनसे आलम्बन का रूप-सौन्दय उत्कर्ष को प्राप्त होता है। आलम्बन का गुण आश्रय को आकृष्ट करन का प्रधान कारण होता है। उसकी चेष्टाओ स भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं, आलम्बन की मोहकता बढती है और आश्रय मुग्ध होकर अनायास ही खिचा हुआ चला आता है। चेष्टा के अन्तर्गत आश्रय को मोहित कर लेने वाले हाव, मुसकान चितवन आदि तथा अनेक अलकारो–लीला, विलास, कुट्टमित आदि की गणना होती है। हाव एवं अलकारों के समुचित विधान से रूप आकषक हो जाता है और आलम्बन की शोभा उद्दीपक बन जाती है।

अलकृति मे अन्तगत शोभा विधायक वाह्य प्रसाधनो की चर्चा हुई है षोडश शृगार सौन्दय को बढाने में सदा से मान्य रहा है। इसमें धारण किये जाने वाले, अन्य प्रकार के (स्नान दपण, पान) और शरीर पर लगाये जान वाले उपकरणो की गणना होती है। वस्त्र आभूषण अगरागादि द्वारा आज भी स्त्रियाँ अपने सौन्दय को मुखरित करके आकषण को बढाती हैं। इस बढ़े हुए आकषण का मुख्य उद्देश्य लोगो को अपनी ओर खीच लेना होता है।

'तटस्थ तत्त्व को सौन्दय साधक उपकरण न मानकर उद्दीपक माना गया है। इसमे प्रकृति के विभिन्न अगो–चन्द्र चन्द्रिका, बाग तरु, कोकिल मलय–पवन एकान्त आदि–द्वारा मानव की रतिमूलक भावना को उद्दीप्त करने की चेष्टा की जाती है। प्रकृति के माध्यम से नायक–नायिका की अनुकूल अथवा प्रतिकूल मानसिक स्थितियो का चित्रण होता है। प्रकृति भाव की व्यञ्जना मे सहायक होकर आती है। यह सौन्दय-वर्णन का सीधा

प्रत्यक्ष साधन नही है अपितु प्रकृति की पृष्ठभूमि म व्यक्ति ही अपनी भावनाओ की तृप्ति का एक साधन पा लेता है। ऐसी स्थिति म नायिका माध्यम का काय सम्पन्न करती है और नायक अपनी ही भावना का उपभोग करता है। इसस प्रकृति सौन्दय-साधक न होकर भावनाओ की उद्दीपक ही रही है। इस रूप म प्रकृति को प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नही है। इसी कारण केवल मानवीय रूप-सौदय के स्पष्टीकरण हेतु गुण चेष्टा और प्रसाधनो स उत्कर्ष को प्राप्त सौन्दय को ही विश्लेषित करके मध्यकालीन साहित्य म इस के स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

मध्यकालीन साहित्य म केवल नारी के ही रूप-सौदय को प्रश्रय न देकर पुरुष-सौदय को भी वणन का विषय बनाया गया है। भक्तिकालीन कवियो ने पुरुष के बाह्य एव आन्तरिक सौदय का मोहक चित्र प्रस्तुत किया है। रीतिकाल म नारी-सौदय की प्रमुखता होते हुए भी पुरुष सौदय सवथा आंखो से ओझल नही रहा है। प्रेम के आलम्बन रूप मे कृष्ण-विषयक रचनाओ म पुरुष सौन्दय का यदा-कदा चित्रण मिल जाता है। ग्वाल जसे कवियो ने तो स्वतत्र रूप स श्रीकृष्ण के नख-शिख सौदय की अभिव्यक्ति करने के लिय पूरा ग्रथ पुरुष-सौन्दय के ऊपर लिखा है। ऐसे स्थलो पर परम्परा का पालन होते हुए भी प्रभावोत्पादकता है परन्तु ऐसे ग्रन्थो की सख्या कम है। मुक्तक काव्य म श्रीकृष्ण की शृगार मूलक चेष्टाए कम वर्णित की गई है। रसखान जसे कवियो ने अनुभावो का वणन किया है परन्तु प्रसाधन गत सौदय के उपकरणो पर दृष्टि जम नही सकी है। बाह्य-आकषण के वणन की परम्परा भी कम दीख पडती है क्योकि रीतिकाल की भोगपरक दृष्टि पुरुष अगो के सौदय मे हटकर नारी सौदय के उद्घाटन म लगी रही।

इस काल की नायिका के सौदय वणन म मुख्यत गुण गत लावण्य एव उसके प्रभाव का सफल और सजीव चित्रण हुआ है। इसमे सौदय चित्रण म अनुभूतिपरक सचाई दीख पडती है। यह सचाई युग से प्रभावित वभव और ऐश्वर्य के विलास परक उपकरणो और रूप म चमक और ज्योति उत्पन्न करने वाले साधनों से लाई गई है। नायिका के सहज लावण्य द्वारा स्वच्छद धारा के कवियो न रूप सौन्दय का यथाथ और ममस्पर्शी रूप भी प्रस्तुत किया है। इन दोनो पद्धतियो स सौन्दय पूणत्व का पहुँच जाता है। यह पूणता नारी और पुरुष दोनों के ही सौन्दय-वणन द्वारा लाई गई है। यद्यपि पुरुष-सौदय का वणन प्रधान रूप स न होकर प्रसगत ही हुआ है फिर भी ग्वाल आदि कवियो न रीतिकालीन परम्परा के विपरीत कृष्ण को आलम्बन बनाकर पुरुष-सौन्दय की अभिव्यक्ति म नवीन प्रयास द्वारा नवीन दृष्टि दी है।

रीतिकालीन कवियों ने सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये 'सुन्दर' के प्रतीक रूप में कुछ वस्तुओं को ग्रहण कर लिया है। इन्हीं के माध्यम से मानवीय जीवन को आधार बनाकर मांसल सौन्दर्य के प्रमुख आलम्बन रमणी की दैहिक रूप की सज्जा और कामोत्तेजक अंगों का आकर्षक रूप चित्र उपस्थित किया गया है। यह चित्र किशोर अथवा किशोरी का है क्योंकि शृंगार के सार रूप में यही अवस्था सर्वोत्तम मानी गई है। ऐसा मांसल बाह्य और हृदय आवर्जक चित्र अन्य स्थलों पर प्राप्त नहीं हो पाता है। नवल अंगनाओं की मकरध्वज के बाणों से विद्ध छवि की अभूतपूर्व आकर्षक कल्पना, वय सन्धि और यौवन के उठान के वर्णन के प्रति सचेष्टता और वीय विक्षोभक अंगों का मांसल सौन्दर्य इस युग की अनिवार्य विशेषता है।

इन अंगों में स्तन, नितम्ब, नयन आदि का वर्णन है। वक्ष के अनावृत सौन्दर्य से नारी अंगों की शोभा बढ़ाई गई है। इसके लिये अनेक चित्र और विशेषणों के साथ उपमानों का प्रयोग है। कड़े कुच ठाढे और उठत हुए उरोज, उचके कुच कोर अछूत उराज आदि विशेषणों से मांसल सौन्दर्य का उत्तेजक एवं ऐन्द्रिय रूप उपस्थित किया गया है। यौवन में इन अंगों द्वारा सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाया गया है। इसी अवयवपरक सौन्दर्य के साथ अंगों में प्रतिभासित होने वाले लावण्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है। इससे गुणपरक अकृत्रिम सौन्दर्य के सहज रूप के साथ कुल की अभिजातता से सौकुमार्य की व्यञ्जना होती है। वैभव और ऐश्वर्य के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। गार्हस्थ्य सौन्दर्य को देखने का प्रयास किया गया है। उस युग की सामाजिक भावना पार्थिवता का पक्ष ग्रहण करती है, परन्तु भक्तिकालीन अपार्थिव आलम्बन से सौन्दर्य का भाव पक्ष भक्तिकाल में अधिक प्रबल हो जाता है। यही कारण है कि भक्तिकाल के अपार्थिव आलम्बन श्रीकृष्ण रीतिकाल में सामान्य मानव हो जाते हैं और युग की परिवर्तित सौन्दर्य वृत्ति के कारण विलास भावना को प्रश्रय मिल जाता है। रीतिकाल में भोग भावना के प्रधान साधन नारी के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कहीं कहीं तो नाप-जोख वाली प्रणाली अपनाई गई और अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यह चमत्कार स्थूलता को आधार बना कर प्रदर्शित हुआ है। स्थूलता भाव और अभिव्यक्ति दोनों में दीख पड़ती है। नवीन रूप रचना न होकर परम्परा का ही निर्वाह हुआ है। दृश्य विस्तार और उसके उद्घाटन में अतिशयोक्ति की महत्ता बढ़ने लगी। स्थूल रेखाओं में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अनुकरण के माध्यम से होने लगी। इसी के साथ कोमल व मान्नभाव को प्रश्रय मिला। इन सबके मूल में उक्ति वैचित्र्य का

प्राधान्य हो गया। रूप दर्शन में "अँखियाँ मधु की मखियाँ" बन गईं। अलंकार प्रियता से उपमानों की गणना होने लगी। इससे सौन्दर्य का सहज रूप स्फुरित नहीं हो सका और ऐसे सभी वर्णनों में निसर्गगत सौन्दर्य की हत्या हो गई। यहाँ तक कि भक्तिकालीन सौन्दर्य के आश्रय और आलम्बन को भी रीतिकालीन विचित्र कल्पनाओं से व्याप्त कर दिया गया। आराध्य का रूप-सौन्दर्य स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम बन गया। प्रकृत उपमानों के स्थान पर उक्ति वचित्र्य का महत्व बढ़ गया। सौन्दर्य वर्णन की रुचि सम्पूर्ण मध्यकाल में एक समान ही थी परन्तु उसके आलम्बन और अभिव्यक्ति के ढंग में महान् अन्तर आ गया।

भक्तिकालीन सौन्दर्य चेतना के कारण कवियों ने अपने आराध्य श्री कृष्ण के विश्वजित भुवन मोहन व्यक्तित्व का भावान्दोलित जो स्वरूप उपस्थित किया वह सौन्दर्य की इयत्ता में न बँधकर असीम था। उनका रूप सौन्दर्य विश्व के सभी प्रसिद्धतम उपमानों से बढ़कर है। वह केवल नख शिख का शुष्क या मांसल सौन्दर्य नहीं है अपितु भावों का निसर्ग सिद्ध सौन्दर्य है। बाह्य-सौन्दर्य तो सहायक बनकर अपने आप ही अनायास आ गया है। इससे भक्तिकाल में शाश्वत सौन्दर्य के अप्रतिम रूप दर्शन जन्य आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित होने लगती है। श्रीकृष्ण का माधुर्य एवं सौन्दर्य मानवीय रूप में भी अनन्त अलौकिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है। श्रीकृष्ण का मानवीय सौन्दर्य भौतिक उपकरणों के माध्यम से और आध्यात्मिक सौन्दर्य शाश्वत एवं चिरन्तन तत्वों से निर्मित हुआ है। प्रकृति के सभी उपमान ऐसे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में व्यर्थ हो जाते हैं। कवि आलम्बन के रूप को स्पष्ट करने में दिव्य दृष्टि रखकर आगे बढ़ता है।

श्री कृष्ण के मानवीय रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा अंग वर्णन और सौन्दर्य चित्रण में उसकी समष्टिगत चेतना जागरूक रही है। वहाँ अंगों के सौन्दर्य वर्णन की अनेकता में एकता वर्तमान है। प्रत्येक अंग अपने आप में पूर्ण मात्र नहीं है अपितु वह सामूहिक सौन्दर्य में योग देने वाली छवि का स्रोत भी है। इससे अनन्त मुग्धता का भाव अनेक रूपों और रेखाओं में अभिव्यक्त किया गया है। कहीं कहीं यही सौन्दर्य अलौकिकता की परिधि में आ जाता है। इस काल में चमत्कार के अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य के स्थान पर रूप की भावात्मक और सचेतन उपस्थिति हुई है। रीतिकालीन सौन्दर्याङ्कन में अलौकिकता रूढ़ि एवं चमत्कार में बदल गई सौन्दर्यानुभूति में भौतिकता का महत्व बढ़ गया अलौकिक कल्पना का ह्रास हुआ और पुरुष सौन्दर्य के स्थान पर नारी-सौन्दर्य

चित्रण कवियों का प्रमुख लक्ष्य बन गया। इसमें भक्तों की सौंदर्य भावना आध्यात्म लोक की सुखमय कल्पना के स्तर से गिरकर रीतिकालीन इहलोक की वास्तविक सुंदरता में बदल गई। राधा-कृष्ण का सौन्दर्य माधुर्य गोचर और लौकिक रूप का आकर्षण उत्पन्न करने लगा। मानसिक भावों की तुलना में अभिव्यञ्जनात्मक साम्य की रुचि बढ़ गई। इससे वस्तु का बिम्ब उपस्थित नहीं हो पाता और बहुधा रूढ़ि का पालन मात्र रह जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के सौंदर्य विधान में भाव की महत्ता है और यह सौंदर्य वर्णन प्रयत्न साध्य न होकर कवि के अन्तःकरण से स्वयं सम्भूत है, परन्तु रीतिकाल में प्रयत्न एवं बौद्धिक चेतना की अभिव्यञ्जनागत शिल्प के कारण रूप सौंदर्य बहुधा उक्ति वैचित्र्य और चमत्कार में बदल जाया करता है।

सम्पूर्ण मध्यकाल पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ में पुरुष सौंदर्य अङ्कन की प्रवृत्ति बाद में नारी सौंदर्याङ्कन में बदल जाती है। भक्तिकाल में नारी के रूप सौंदर्य का वर्णन स्वतन्त्र रूप से न होकर श्रीकृष्ण के संदर्भ में हुआ है। इससे उसके असत् रूप का भोगपरक मांसल सौंदर्य भौतिक धरातल पर प्रमुख नहीं हो पाता है। कवियों ने उसके वाह्य आवरण की असारता और वीभत्सता के बीच उदात्त गुणों का आदर्श और मोहक रूप प्रस्तुत किया। इस युग की सम्पूर्ण शोभा सुन्दरता और रूपाकर्षण आदि श्रीकृष्ण के लिये ही थी, इसीसे उसके मूल में भक्ति की भावना वर्तमान रहती है। इसके विपरीत रीतिकालीन साहित्य में आदर्श एवं भक्ति को प्रश्रय न देकर पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न करने वाले शरीर के विभिन्न अंगों, प्रसाधक उपकरणों आदि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया। बाह्य शरीर के मांसल-सौंदर्य और कामोद्दीपक चेष्टाओं की प्रवृत्ति बढ़ गई। श्रीकृष्ण का लीलापरक रूप लुप्त होने लगा और वह मात्र मन मोहन बन कर रह गये। मोहिनी राधा नायिका के सामान्य स्तर पर आ गई और उनके रूप-वर्णन में नख शिख की प्रधानता हो गई।

रीतिकालीन सूक्ष्म दृष्टि के कारण अनुभावों आदि के सौन्दर्य का मोहक चित्र उपस्थित हो सका है। इसमें स्थूल एवं भौतिक दृष्टि सन्व साथ करती रहती है। मानसिक सौन्दर्य के साथ बाह्य शारीरिक सौंदर्य की सफल अभिव्यञ्जना हुई है। बाह्य सौन्दर्य-वर्णन में नायिका के अंग प्रत्यंग, रूप रंग कान्ति, गठन आयु, सौकुमार्य, चेष्टा, वस्त्राभूषा प्रसाधक उपकरण आदि का आधार बनाया गया है। शारीरिक अंगों के [illegible]

शारीरिक शोभा तनद्युति, ज्योति छवि, लावण्य आदि का अनुपम चित्र उप स्थित किया है। यह छवि अंग ग मे स्वत प्रकाशित होती हुई बताई गई है। इसके और अधिक उत्कष के लिए ग्रह नक्षत्र, पशु पक्षी, बनस्पति, बहुमूल्य पदार्थों आदि को अप्रस्तुत रूप म लाया गया है। इन उपमानों में कमल, चाँदनी, बिजली किरण मोती, हीरा, चकोर, हरिण, चक्रवाक, कदली, कल्पलता आदि का प्रयोग किया गया है। सुगंधित द्रव्यों में केशर, कस्तूरी, मृगमद, कपूर आदि द्वारा आकषण बढाया गया है। इन सभी पदार्थों एव उपकरणो तथा आलम्बनगत गुणो और विभिन्न चेष्टाओ से रूप सौंदय की सफल व्यञ्जना हो सकी है। अत कहा जा सकता है कि रूप-सौंदय की आक षक और यथाथ अभिव्यक्ति करने में मध्यकालीन कृष्ण साहित्य के कवि पूणत सफल हुए हैं।

परिशिष्ट

ग्रन्थानुक्रमणिका–आलोच्य एवं सहायक ग्रन्थ

१	अनुराग पदावली	गीता प्रेस, गोरखपुर।
२	अनुराग बाग	दीनदयाल गिरि।
३	अष्टछाप पदावली	सोमनाथ गुप्त।
४	अष्टछाप पदावली	प्रभूदयाल मीतल।
५	अष्टछाप पदावली	विद्या विभाग, कांकरौली।
६	अष्टछाप परिचय	प्रभुदयाल मीतल।
७	अंग दर्पण	रसलीन।
८	अंगादर्श	रंगनारायण पाल
९	आलम केलि	सम्पा० भगवान दीन
१०	आख और कविगण	सम्पा० जवाहरलाल चतुर्वेदी
११	कवित्त रत्नाकर	सेनापति
१२	कवितावली	तुलसीदास
१३	कामायनी	जयशंकर प्रसाद
१४,	काव्य प्रभाकर	जगन्नाथदास भानु
१५	कुम्भनदास-जीवनी और पद	विद्या विभाग, कांकरौली
१६	केलिमाल और सिद्धान्त के पद	स्वामी हरिदास।
१७	केशव ग्रंथावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१८	कृष्ण जू को नख शिख	ग्वाल कवि
१९	कृष्णदास पदावली	सम्पा० व्रजभूषण शर्मा कांकरौली।
२०	कीर्तन-संग्रह भाग १,२	लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद।
२१	गोविन्द स्वामी-जीवनी और पद	विद्या विभाग, कांकरौली
२२	घनानन्द-ग्रंथावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२३	चतुर्भुजदास–पद संग्रह	विद्या विभाग, कांकरौली
२४	छीतस्वामी-जीवनी और पद	विद्या विभाग, कांकरौली
२५	जगद्विनोद	पद्माकर
२६	जायसी-ग्रंथावली	सम्पा० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
२७	जुगल-सनेह पत्रिका	चाचा वृन्दावनदास

२८ ताप सुधा निधि	ताप भारत जीवन प्रेस, काशी
२९ दास-ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
३० नख शिख	ग्वाल कवि
३१ नख शिख	नृप शभु । नारायण प्रेस मुजफ्फर पुर ।
३२ नन्ददास ग्रन्थावली	सम्पा० ब्रजरत्न दास ।
३३ नन्ददास ग्रन्थावली	सम्पा० उमाशकर शुक्ल
३४ निम्बार्क माधुरी	सम्पा० विहारी शरण
३५ परमानन्द सागर	सम्पा० गोवर्धन शुक्ल
३६ पल्लव	सुमित्रा नन्दन पत
३७ पृथ्वीराज रासा	चन्द्र बरदाई
३८ ब्रजनिधि ग्रन्थावली	सम्पा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा
३९ ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य	सम्पा० प्रभुदयाल मीतल
४० ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद	सम्पा० प्रभुदयाल मीतल
४१ ब्रज माधुरी सार	सम्पा० वियोगी हरि।
४२ बलभद्र कवि	हस्तलिखित प्रति पूना विश्वविद्यालय, पूना ।
४३ बिहारी रत्नाकर	सम्पा० जगन्नाथ दास रत्नाकर ।
४४ ब्यालीस लीला	ध्रुवदास
४५ भक्त कवि व्यास जी	सम्पा० वासुदव गोस्वामी
४६ भारतेन्दु ग्रन्थावली	सम्पा० ब्रजरत्नदास
४७ मतिराम ग्रन्थावली	सम्पा० कृष्ण बिहारी मिश्र
४८ युगलशतक	श्री भट्ट
४९ रस तरग	ग्वाल कवि
५० रस खानि	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
५१ रस प्रबोध	रसलीन
५२ रस रत्नाकर	देव
५३ रसराज	मतिराम
५४ रस विलास	देव
५५ रामचरित मानस	तुलसीदास
५६ रास पचाध्यायी	सम्पा० सोमनाथ
५७ रीतिकाव्य सग्रह	सम्पा० जगदीश गुप्त
५८ विद्यापति पदावली	रामवृक्ष बनीपुरी

५९ सनेह सागर	बकसी हसराज, सम्पादक लाला भगवानदीन
६० सूर सागर	नागरी प्रचारिणी सभा।
६१ सूर सागर	वेंकटेश्वर प्रेस।
६२ सगीत-अष्टछाप	सम्पा० गोकुलानन्द तलग।
६३ शिख-नखावली	राम सहायदास
६४ शृङ्गार-शतक	ध्रुवदास
६५ श्री राधा सुधा शतक	हठी
६६ श्री राधिका जी का नख शिख	कालिका प्रसाद।
६७ हित चौरासी	हित हरिवश।

सहायक ग्रथ

६८ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	सरजू प्रसाद अग्रवाल।
६९ अवध के प्रमुख कवि	ब्रजकिशोर मिश्र।
७० अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा दीनदयाल गुप्त।
७१ अष्टछाप काव्य का सास्कृतिक मूल्याकन	डा मायारानी टडन।
७२ आधुनिक काव्य मे रूप विधाएँ	डा निर्मला जैन।
७३ आधुनिक काव्य मे सौन्दर्य भावना	शकुन्तला शर्मा।
७४ आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम सौन्दर्य	डा रामेश्वर खण्डेलवाल
७५ उदात्त सिद्धान्त और शिल्पन	जगदीश पाण्डेय।
७६ कविवर पद्माकर और उनका युग	डा ब्रजनारायण सिंह।
७७ कविवर परमानन्द और वल्लभ सम्प्रदाय	गोवर्धन नाथ शुक्ल।
७८ काव्य मे उदात्त तत्व	डा नगेन्द्र।
७९ काव्यात्मक बिम्ब	अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद।
८० घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा	मनोहरलाल गौड।

८१ दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक — डा त्रिभुवन सिंह ।
८२ देव और उनकी कविता — डा नगेन्द्र ।
८३ प्रकृति और काव्य (हिन्दी) — डा रघुवंश ।
८४ प्रामाणिक हिन्दी कोश — रामचन्द्र वर्मा ।
८५ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ — सम्पा वासुदेवशरण अग्रवाल ।
८६ ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में अभिव्यञ्जना शिल्प — डा सावित्री सिन्हा ।
८७ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन — डा सत्येन्द्र ।
८८ भारतीय साधना और सूर साहित्य — डा मुन्शीराम शर्मा ।
८९ मतिराम-कवि और आचार्य — डा महेन्द्रकुमार ।
९० मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ — डा सावित्री सिन्हा ।
९१ महाकवि मतिराम — डा त्रिभुवन सिंह ।
९२ मूल्य और मूल्यांकन — रामरतन भटनागर ।
९३ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य — डा विजयेन्द्र स्नातक ।
९४ रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यञ्जना — डा बचन सिंह
९५ रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग — डा अरविन्द पाण्डे ।
९६ सत्य, शिव, सुन्दरम् भाग १ और २ — डा रामानन्द तिवारी ।
९७ सूर और उनका साहित्य — डा हरवंशलाल शर्मा ।
९८ सूर की झाँकी — डा सत्येन्द्र ।
९९ सौन्दर्य-तत्त्व (हिन्दी) — अनुवादक डा आनन्द प्रकाश दीक्षित
१०० सौन्दर्य तत्त्व और काव्य सिद्धान्त — अनु मनोहर काले ।
१०१ सौन्दर्य मीमांसा (हिन्दी) — अनु रामकेवल सिंह ।
१०२ सौन्दर्य शास्त्र — डा हरद्वारीलाल शर्मा ।
१०३ सौन्दर्य शास्त्र के तत्व — डा कुमार विमल ।

संस्कृत-ग्रन्थ

१०४ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास ।
१०५ अलकार-कौस्तुभ	कर्णपूर ।
१०६ उज्ज्वल नील मणि	रूप गोस्वामी ।
१०७ उत्तर राम चरितम्	भवभूति ।
१०८ उपनिषद् (कठ मुण्डक, छान्दोग्य,	मैत्रेय
१०९ औचित्य विचार चर्चा	आचार्य क्षेमेन्द्र ।
११० कालिदास ग्रन्थावली	सम्पा सीताराम चतुर्वेदी ।
१११ काव्य प्रकाश	व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
११२ काव्य प्रकाश	ज्ञान मण्डल लिमिटेड ।
११३ काव्यालकार सूत्र-वृत्ति	वामन ।
११४ किरातार्जुनीयम्	भारवि ।
११५ कुवलयानन्द	अप्पय दीक्षित ।
११६ कोश	अमर, वाचस्पत्य और हलायुध ।
११७ गीत गोविन्द	जयदेव ।
११८ दशरूपकम्	धनञ्जय, व्याख्या भोलाशकर व्यास
११९ ध्वन्यालोक	व्याख्याकार रामसागर त्रिपाठी ।
१२० ध्वन्यालोक	व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
१२१ ध्वन्यालोक	व्याख्याकार बदरीनाथ शर्मा ।
१२२ नागानन्द	हर्ष ।
१२३ प्रताप रुद्रीयम्	विद्यानाथ ।
१२४ पुराण	पद्म, वायु, वामन, कूर्म, गरुड, ब्रह्मवैवर्त्य, श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु ।
१२५ ब्राह्मण	कौशितकी ऐतरेय, शतपथ ।
१२६ बाल्मीकि रामायण	अनु चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा ।
१२७ भास नाटक चक्रम्	भास ।
१२८ महाभारत	वेद व्यास ।
१२९ मनुस्मृति	मनु ।
१३० मालती माधवम्	भवभूति व्याख्या, बदरीनाथ झा ।
१३१ रस-गङ्गाधर	

८१ दरबारी संस्कृति और हिंदी मुक्तक — डा त्रिभुवन सिंह।
८२ देव और उनकी कविता — डा नगेन्द्र।
८३ प्रकृति और काव्य (हिंदी) — डा रघुवंश।
८४ प्रामाणिक हिंदी कोश — रामचन्द्र वर्मा।
८५ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ — सम्पा वासुदेवशरण अग्रवाल।
८६ ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य मे अभिव्यञ्जना शिल्प — डा सावित्री सिन्हा।
८७ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन — डा सत्येन्द्र।
८८ भारतीय साधना और सूर साहित्य — डा मुन्शीराम शर्मा।
८९ मतिराम-कवि और आचार्य — डा महेन्द्रकुमार।
९० मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ — डा सावित्री सिन्हा।
९१ महाकवि मतिराम — डा त्रिभुवन सिंह।
९२ मूल्य और मूल्यांकन — रामरतन भटनागर।
९३ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य — डा विजयेन्द्र स्नातक।
९४ रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यञ्जना — डा बचन सिंह
९५ रीतिकालीन काव्य म लक्षणा का प्रयोग — डा अरविन्द पाण्डे।
९६ सत्य, शिव, सुन्दरम् भाग १ और २ — डा रामानन्द तिवारी।
९७ सूर और उनका साहित्य — डा हरवंशलाल शर्मा।
९८ सूर की झाँकी — डा सत्येन्द्र।
९९ सौन्दर्य-तत्व (हिन्दी) — अनुवादक डा आनन्द प्रकाश दीक्षित
१०० सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त — अनु मनोहर काले।
१०१ सौन्दर्य मीमांसा (हिन्दी) — अनु रामकेवल सिंह।
१०२ सौन्दर्य शास्त्र — डा हरद्वारीलाल शर्मा।
१०३ सौन्दर्य शास्त्र का तत्व — डा कुमार विमल।

संस्कृत ग्रन्थ

१०४ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास ।
१०५ अलंकार कौस्तुभ	कर्णपूर ।
१०६ उज्ज्वल नील मणि	रूप गोस्वामी ।
१०७ उत्तर राम चरितम्	भवभूति ।
१०८ उपनिषद् (कठ मुण्डक, छान्दोग्य,	मत्रेय
१०९ औचित्य विचार चर्चा	आचार्य क्षेमेन्द्र ।
११० कालिदास ग्रन्थावली	सम्पा सीताराम चतुर्वेदी ।
१११ काव्य प्रकाश	व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
११२ काव्य प्रकाश	ज्ञान मण्डल लिमिटेड ।
११३ काव्यालंकार सूत्र-वृत्ति	वामन ।
११४ किरातार्जुनीयम्	भारवि ।
११५ कुवलयानन्द	अप्पय दीक्षित ।
११६ कोश	अमर, वाचस्पत्य और हलायुध ।
११७ गीत गोविन्द	जयदेव ।
११८ दशरूपकम्	धनञ्जय, व्याख्या भोलाशंकर व्यास
११९ ध्वन्यालोक	व्याख्याकार रामसागर त्रिपाठी ।
१२० ध्वन्यालोक	व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
१२१ ध्वन्यालोक	व्याख्याकार बदरीनाथ शर्मा ।
१२२ नागानन्द	हर्ष ।
१२३ प्रताप रुद्रीयम्	विद्यानाथ ।
१२४ पुराण	पद्म, वायु, वामन, कूर्म, गरुड, ब्रह्मवैवर्त, श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु ।
१२५ ब्राह्मण	कौशितकी, ऐतरेय शतपथ ।
१२६ वाल्मीकि रामायण	अनु चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा ।
१२७ भास नाटक चक्रम्	भास ।
१२८ महाभारत	वेद व्यास ।
१२९ मनुस्मृति	मनु ।
१३० मालती माधवम्	भवभूति
१३१ रस-गङ्गाधर	व्याख्या, बदरीनाथ झा ।

१३२ वेद — ऋग्वेद, यजुर्वेद अथर्ववद।
१३३ साहित्य दपरा — व्याख्या सत्यव्रत सिंह।
१३४ संहिता — वाजसनेयी, तत्तिरीय।
१३५ शिशुपाल वध — माघ।
१३६ शृङ्गार तिलक — रुद्र भट्ट।
१३७ हरिभक्ति रसामृत सिन्धु — रूप गोस्वामी, अच्युत ग्रन्थ माला।
१३८ हिन्दी दशरूपक — टीकाकार डा गोविन्द त्रिगुणायत।
१३९ Encychlopaedea Brittanica Vol, IX
१४० Essay on Study of Greek Poetry — Fr V Schelegela
१४१ From the style in Poetry — W P Ker
१४२ From the philosophies of Beauty — E F Carritt
१४३ History of Aesthetics — George, Bosanquette
१४४ The Critique of judgement — Immanuel Kant
१४५ The Sense of Beauty — G Santayana